शोध-प्रबन्ध

॥ जयपुर की संस्कृत साहित्य को देन ॥

[१८३५-१९६५ ई०]

CONTRIBUTION OF JAIPUR TO SANSKRIT LITERATURE 1835-1965 A. D.)

लेखक :

डॉ० प्रभाकर शास्त्री

एम. ए. (हिन्दी-संस्कृत)

पी-एच. डी., डी. लिट्.

साहित्य-धर्मशास्त्राचार्य

प्रवाचक, संस्कृत विभाग

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

प्रस्तावना :

डॉ० रामजी उपाध्याय

आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, संस्कृत-विभाग

सागर विश्वविद्यालय, सागर (म० प्र०)

प्रधान विक्रेता

शरण बुक डिपो

भारतीय संस्कृति एवं चिकित्सा साहित्य के विक्रेता

गल्ता मार्ग, रामगंज चौपड़, जयपुर-३०२००३
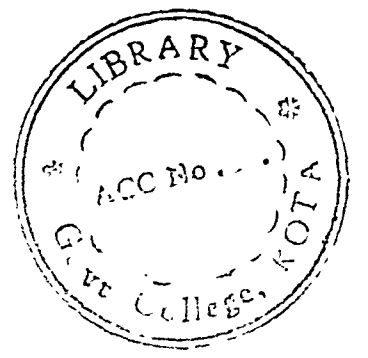
प्रस्तावना

"जयपुर की संस्कृत साहित्य को देन" विषय पर डी० लिट्० की उपाधि के लिए शोध-प्रबन्ध लिखकर डा० प्रभाकर शास्त्री ने संस्कृत जगत् का उपकार किया है। उन्होंने उस पथ को प्रशस्त किया है, जिस पर चलकर हम आशा कर सकते हैं कि भारत के प्रत्येक नगर और जनपद के संस्कृत के विद्वानों की कृतियाँ उजागर हो जायेंगी। मैं समझता हूं कि प्रत्येक स्थान और प्रत्येक व्यक्ति की कुछ विशेषतायें होती है और उनसे सम्बद्ध साहित्य उनकी विशेषताओं से समवेत होने के कारण अभूतपूर्व आनन्द की सृष्टि करता है। यही विशेषता आप देखते हैं रामकथा से सम्बद्ध साहित्य में। आज तक सैंकड़ों कवियों ने रामकथा पर आश्रित महाकाव्य, नाटक, गीतिकाव्य, चम्पू, आख्यायिका आदि नानाविध ग्रन्थों की रचना की। अनाडी तो यही कहेगा कि यह पिष्टपेषण मात्र उस रामकथा का है, पर सहृदय जानता है कि ऐसी प्रत्येक रचना में कुछ नया ही रस-सौरभ है। जैसे प्रत्येक नदी या झील में पानी ही तो होता है, किन्तु उनमें से प्रत्येक के जल में कुछ विशेषता होती है, केवल रूप, रंग और गुण में ही नहीं, अपितु उसके जल की थिरकन में भी, जिन्हें देखकर कवि हृदय थिरकता है और वह अपने भावों को संजोकर सदा-सदा के लिए जीवन को सार्थक बनाने की कामना करने वाले सहृदय पाठकों के लिए रस-निर्झरिणी प्रवाहित कर देता है। यही काव्य का शाश्वत उपयोग है।

डा० शास्त्री ने इसके पूर्व भी जयपुर के प्राचीन और मध्यकालीन कवियों की अमृतवाणी का परिचय पी-एच० डी० के शोध निबन्ध में प्रस्तुत किया है। उनकी इस विषय में कुछ विशेष आस्था ही है कि अपने प्रदेश और नगर के प्राचीनकाल से लेकर आज तक के कवियों की अमरवाणी से पाठकों को परिचित कराया जाय। मुझे प्रसन्नता हो रही है कि उन्हें इस संकल्प में सफलता मिली है। उनका यह यज्ञ पूरा हुआ, जिसके द्वारा उन्होंने युग-युग के विस्मृतप्राय पितृरूप पूर्वज कवियों को अपनी कृति के द्वारा तर्पण प्रदान किया है।

प्रश्न उठता है कि क्योंकर कोई कवि रचना करता है, जब उसे अपने काव्य से प्रायः यश, धन आदि की कोई उपलब्धि संभाव्य नहीं होती। वस्तुतः निष्काम कला का प्रगमन अथवा कलाकार की साधना उसके समग्र व्यक्तित्व का अंग बन जाती है। भगवान् ने मानों उसे इस उदात्त परिकल्पना के ही लिए बनाया है। आप देखते हैं कि कोई पथिक मार्ग चलते गाया करता है। उसके इस गायन के लिए न तो कोई अनुरोध होता है और न वह इसकी चिन्ता करता है कि मैं किस-किस के हृदय में अपनी स्वरलहरी से रस घोल रहा हूं, किन्तु वह गाता है। उसका गायन उस अनन्त दिव्य गायन का मानों अङ्ग है, जो असीम विश्व के कोटिशः सूर्यादि ग्रहों की स्वाभाविक गति में पारस्परिक प्रभाव के परिस्फुटित होता है। उसी दिव्य गान का एक पार्थिव अंश है, कवि की रसमयी सरस्वती, जो अपने-आप में पूर्ण है, प्रफुल्ल है, प्रकाम है। महाभाग्य है, उस सहृदय का, जो उस दिव्य गायन को अपनी आनन्दानुभूति का अंग बनाता है।

वैसे तो सभी भाषाओं का अपना विशेष गौरव होता है, किन्तु संस्कृत भाषा सर्वातिशायिनी है। वह भाषाओं के बीच वैसे ही सर्वश्रेष्ठ है, जैसे नदियों के बीच गंगा। इस भाषा की लोकप्रियता का एक प्रधान कारण सनातन आस्था रही है कि यह अनादिकाल से चलती आ रही है और अनन्तकाल तक चलती रहेगी। यह देवभाषा है। देवता अमर हैं तो उनकी भाषा भी अमर है। अन्य भाषाओं के विषय में ऐसा नहीं कहा जा सकता। भाषाओं का इतिहास जानने वाले ठीक समझते हैं कि संस्कृत को छोड़कर विश्व की कोई भी भाषा हजार वर्ष से अधिक का जीवन नहीं प्राप्त कर सकी है। कुछ सैंकड़ों वर्षों में ही उनका कलेवर इतना जीर्ण-शीर्ण हो जाता है कि समाज

उन्हें फेंक देता है और उसके स्थान पर एक नई भाषा अपना लेता है। संस्कृत की अमरता से प्रभावित होकर केवल हिन्दू राजाओं ने ही नहीं, मुसलमान राजाओं ने भी कवियों को प्रोत्साहित किया कि वे संस्कृत में लिखें, जिससे उनके शासनकाल की यशोगाथा अमर बने। इसी उद्देश्य से मुसलमान राजाओं ने संस्कृतभाषा में अपने चरित्र लिखवाये। उन्होंने संस्कृत के महाग्रन्थों—वेद, पुराण, उपनिषद्, रामायण, महाभारत आदि का समसामयिक भाषाओं में अनुवाद कराकर उनमें नवजीवन प्रदान करने का उपक्रम किया। मानव संस्कृति का पुरातनतम इतिहास जानने के लिए समुत्सुक योरप, अमेरिका और एशिया के अनेक देशों में वेद, महाभारतादि का उनकी भाषाओं में अनुवाद हो रहा है।

कुछ विद्वद्बन्धुओं का मत है कि अब संस्कृत में कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं है। अब तो प्रादेशिक भाषाओं में ही लिखना चाहिए। यह विचारणा नितान्त भ्रामक है। वास्तविकता तो यह है कि आज केवल संस्कृत-वाणी में ही वह भरपूर शक्ति है, जो मानवता के बीच जीवन के शाश्वत मूल्यों को प्रकाशित करके आधुनिक सांस्कृतिक धारा को सनातन विचारणा से सुबद्ध कर सके। अन्य भाषायें और उनके लेखक तो वर्तमान मायात्मक चाकचक्य की चकाचौंध में सनातन प्रशस्त कविमार्ग से मानों भटक रहे है। संस्कृत-कविमार्ग अनादिकाल से चलता आ रहा है और अनन्तकाल तक चलता रहेगा।

प्रस्तुत ग्रन्थ में लेखक ने केवल संस्कृत के आचार्यो, साहित्यकारों और उनकी कृतियों का ही उल्लेख नहीं किया है, अपितु उनसे सम्बद्ध राजाओं, संस्थाओं और शिष्यमण्डली का परिचय देकर तत्कालीन सांस्कृतिक वातावरण की पूरी झलक दी है। इस प्रकार का सांगोपांग समारम्भ संस्कृत के विकास को पूर्ण रूप से हृदयङ्गम करने के लिए आवश्यक ही है।

डा० शास्त्री ने जिस लगन और तपस्विता के साथ इस महाग्रन्थ का प्रणयन किया है, वह स्तुत्य है। उनकी यह कृति समग्र भारत के संस्कृत-प्रेमियों के बीच आदर्श रूप में प्रतिष्ठित हो सकेगी। मेरा विश्वास है कि उनकी पद्धति पर चलते हुए शोधच्छात्र भारत के विभिन्न भागों में सांस्कृतिक दृष्टि से महिमान्वित नगरों के विषय में अनुसंधान करते हुए असंख्य अमूल्य ग्रन्थ-रत्नों को प्रकाश में लायेंगे और साथ ही उनके श्रेष्ठ कवियों का इतिवृत्त प्रस्तुत करेंगे।

वसन्त पञ्चमी, सं० २०३६
दिनांक २२ जनवरी, १९८० ई०

डॉ० रामजी उपाध्याय
एम.ए. डी.फिल्., डी.लिट्.
आचार्य एवं अध्यक्ष संस्कृत विभाग
सागर विश्वविद्यालय, सागर (म० प्र०)

निवेदन

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर से सन् 1970 के दीक्षान्त समारोह में सर्वोच्च उपाधि डी. लिट्० के लिए स्वीकृत यह शोध-प्रबन्ध प्रकाशित रूप में विद्वानों को समर्पित करते हुये हर्षानुभूति हो रही है। यह गौरव का विषय है कि राजस्थान विश्वविद्यालय के विगत ३२ वर्षो के इतिहास में सर्वोच्च उपाधि डी. लिट्० के लिए स्वीकृत अद्यावधि यह प्रथम शोध-प्रबन्ध है। इस शोध प्रबन्ध का पूर्व भाग—"जयपुर की संस्कृत-साहित्य को देन (१६६६ से १८३४ ई०)" अद्यावधि अप्रकाशित है, जो सन् १६६४ ई. में पी-एच० डी० की उपाधि के लिये राजस्थान विश्वविद्यालय ही स्वीकृत हुआ था। दोनों शोध-प्रबन्धों के सम्मेलन से जयपुर नगर के संस्कृत विद्वानों का इतिहास बन जाता है।

सन् १६६१ ई. में एम० ए० (संस्कृत) परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् मैंने महाकवि बिल्हण के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर शोध-कार्य प्रारम्भ किया था, परन्तु किन्हीं कारणों से इसे परिवर्तित करना पड़ा। प्रातः स्मरणीय पूज्य पिताजी एवं गुरुवर स्वर्गीय पं. वृद्धिचन्द्रजी शास्त्री व्याकरण धर्मशास्त्राचार्य का यह आदेश था कि जयपुर नगर के विद्वानों पर शोधकार्य किया जाए। उनके इस आदेश का यथावत् पालन हो गया—यह हार्दिक प्रसन्नता का विषय है। इस कार्य की सम्पन्नता हेतु मैंने सर्वप्रथम आमेर के कछवाहा शासकों का इतिहास पढा और उन शासकों के आश्रय में रहे विद्वानों का परिचय प्राप्त किया। यह सामग्री एक स्थान पर नहीं मिली और इसके संकलन हेतु सारे भारतवर्ष के हस्तलिखित ग्रन्थालयों के सूचीपत्रों को देखना पड़ा। इस कार्य में अनेक गवेषकों, विद्वानों व इतिहास-विज्ञों का मार्गदर्शन प्राप्त किया गया। जयपुर नगर के मूर्धन्य विद्वान् महामहोपाध्याय पं. श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदीजी ने जब इस ग्रन्थ को देखा, तो वे बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने इस कार्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की, क्योंकि ऐतिहासिक दृष्टि से सम्पन्न यह कार्य उनकी दृष्टि में प्रथम ही था। उस समय इस ग्रन्थ के प्रेरणा स्रोत मेरे पूज्य पिताजी का स्वर्गवास हो चुका था। उस ग्रन्थ पर निर्विवाद रूप में पीएच. डी. की उपाधि प्राप्त हो गई, परन्तु ग्रन्थ के प्रेरणा-स्रोत उसे अपने जीवन काल में न देख सके, इसका खेद ही रहा।

उनके आदेश व अन्तिम इच्छा की यथावत् पूर्ति के उद्देश्य से मैंने 'पीएच. डी.' के लिए स्वीकृत विषय को पूर्ण करने का निश्चय किया और इस कार्य के लिए सामग्री-संकलन में लग गया। सन् १६६७ ई. में "जयपुर की संस्कृत साहित्य को देन—(१८३५–१६६५ ई.)" विषय का डी. लिट्. की उपाधि हेतु पंजीकरण हो गया।

पंजीकरण के उपरान्त मैंने जयपुरीय विद्वानों से समय-समय पर सम्पर्क किया और मुझे इस तथ्य को प्रकट करने में प्रसन्नता है कि उन्होंने पूर्ण सहयोग प्रदान किया और वांछित सामग्री उपलब्ध कराई। इस सामग्री-संकलन में स्वर्गीय पूज्य पिताजी के नाम का पर्याप्त प्रभाव परिलक्षित हुआ, जब मैंने अलभ्य एवं दुर्लभ सामग्री प्राप्त करने में सफलता पाई। इस ग्रन्थ को सारगर्भित कर इस रूप में प्रस्तुत करने में मैं उनके आशीर्वाद को ही प्रमुख कारण मानता हूं। यह ग्रन्थ उन्हीं दिवंगत पूज्य पिताजी को सादर समर्पित कर आज आत्मिक तोष की अनुभूति कर रहा हूं। वास्तव में यह जो कुछ भी है, उनकी कृपा का ही परिणाम है और इसलिये उन्हीं को समर्पित है।

जयपुर नगर संस्कृत वाङ्मय के इतिहास में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इसके महत्त्व को प्रतिपादित करने वाले उपर्युक्त दोनों शोधप्रबन्ध तो इसके वैशिष्ट्य का केवल संकेत ही प्रस्तुत करते हैं। वास्तव में 'गागर में सागर' नहीं भरा जा सकता। लगभग एक हजार वर्ष का संस्कृत-साहित्य का इतिहास सीमित पृष्ठों में नहीं समेटा जा सकता। अतः यह इतिहास का दिग्दर्शन मात्र है। आमेर-जयपुर के इतिहास में सर्वप्रथम संस्कृत-संस्कृति के अनन्य रक्षक शासकों में फर्जन्दे दौलत मिर्जाराजा मानसिंह प्रथम का नाम उल्लेखनीय है, जिन्होंने

मुगल बादशाह के अन्तःपुरों में पानी गर्म करने के लिए जलाये जाने वाले प्राचीन ग्रन्थों की रक्षा की ओर बड़ी युक्ति से उन्हें अपनी राजधानी आमेर भिजवाया। आमेर के अन्य शासकों में **मिर्जा राजा जयसिंह प्रथम** व उनके पुत्र **मिर्जा राजा रामसिंह प्रथम** का उल्लेख अत्यावश्यक है, जिनके आश्रय में संस्कृत वाङ्मय के अनेक विद्वान् निवास करते थे। जयपुर नगर का इतिहास इसके संस्थापक **सवायी जयसिंह द्वितीय** से प्रारम्भ होता है, जो स्वयं संस्कृत प्रेमी थे और जिन्होंने अश्वमेध, राजसूय, वाजपेय आदि अनेक श्रौत यज्ञों का सम्पादन किया था अथवा करवाया था। यद्यपि इनके परवर्ती शासकों ने भी संस्कृत-साहित्य को सरक्षण प्रदान किया, परन्तु इस दिशा में इनके द्वारा सम्पादित कार्य अतुलनीय है ।

जयपुर नगर के इतिहास में वस्तुतः संस्कृत-संस्कृति के संरक्षण रूप में दो ही शासकों का प्रमुख उल्लेख किया जाता है, जिनमें प्रथम हैं जयपुर-संस्थापक **सवायी जयसिंह द्वितीय** (१६६६ से १७४३ ई.) तथा दूसरे हैं **सवायी रामसिंह द्वितीय** (१८३५ से १८८० ई.)। **सवायी रामसिंह द्वितीय** प्रस्तुत शोधप्रबन्ध-समय के प्रमुख आश्रयदाता अथवा संरक्षक शासक हैं, इन्होंने संस्कृत भाषा के अध्ययनार्थ एक स्वतन्त्र महाविद्यालय की आवश्यकता का अनुभव किया और तदनुसार **महाराज संस्कृत कॉलेज** नामक स्वतन्त्र संस्कृत-शिक्षण संस्थान की स्थापना कर यश अर्जित किया। इसमें विभिन्न विषयों के अध्ययनार्थ आपने अनेक विशिष्ट विद्वानों की नियुक्ति की और इस कार्य से इस विद्यालय को भारतवर्ष में ख्याति प्राप्त हुई। इसी कारण यह नगरी संस्कृत शिक्षा के क्षेत्र में **'दूसरी काशी'** के नाम से जानी जाने लगी। इनके उपरान्त शेष दो शासकों, महाराज माधवसिंह द्वितीय (१८८० से १६२१ ई.) तथा महाराजा मानसिंह द्वितीय (१६२१ से १६४७ ई.) के अतिरिक्त विभिन्न लोकतन्त्रीय सरकारों के मुख्यमन्त्रियों व शिक्षामन्त्रियों ने महाराज रामसिंह द्वितीय द्वारा स्थापित परम्पराओं के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

इस शोधप्रबन्ध को विषय व्यवस्थितीकरण की दृष्टि से तीन खण्डों में विभक्त किया गया—परिचय खण्ड, कृतिकार खण्ड और कृतित्व खण्ड। परिचय खण्ड के प्रथम अध्याय में पूर्व प्रस्तुत (पीएच० डी० की उपाधि हेतु) शोधप्रबन्ध का सारांश तथा द्वितीय अध्याय में विगत तीन शासकों व लोकतन्त्रीय सरकारों के संस्कृतोन्नति के लिए किये गये प्रयासों का दिग्दर्शन किया गया है। तृतीय अध्याय को ६ खण्डों में विभक्त किया है, जिसमें क्रमशः (क) महाराज रामसिंह द्वारा स्थापित संस्कृत कॉलेज के इतिहास को प्रस्तुतः करता है। (ख) में संस्कृत-संस्कृति-पोषक जयपुरीय अन्यान्य विद्यालयों का इतिहास, (ग) में राजस्थान विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग का इतिहास, (घ) में जयपुर नगरस्थ संस्कृत-संस्कृति की प्रचारक संस्थाओं का इतिहास, (ङ) में संस्कृत भाषात्मक पत्र-पत्रिकाओं का इतिहास एवं (च) में संस्कृत-संस्कृति के संरक्षक उल्लेखनीय पुस्तकालयों तथा संग्रहालयों का इतिवृत्त प्रस्तुत किया गया है। द्वितीय कृतिकार खण्ड में अकरादि क्रम से १५२ विशिष्ट विद्वानों का परिचय व उनके रचनात्मक कार्यों का दिग्दर्शन किया गया है। तृतीय खण्ड 'कृतित्व खण्ड' अभी अप्रकाशित है, जिसमें इन कृतिकारों की रचनाओं में से प्रमुख उल्लेखनीय कुछ रचनाओं का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। यह खण्ड भी शीघ्र ही प्रकाशित हो सकेगा, ऐसा विश्वास है।

इस शोधकार्य की पूर्ति में सर्वाधिक सहयोग व मार्गदर्शन करने वाले विद्वानों में स्वर्गीय कथाभट्ट पं० **नन्दकुमारजी** साहित्याचार्य का नाम अविस्मरणीय है। अन्यान्य विद्वानों में सर्वश्री **गोपालनारायणजी बहुरा, पं. रामगोपाल जी शास्त्री**, पं. गंगाधरजी द्विवेदी, श्रीकलानाथजी शास्त्री, श्रीदेवेन्द्रप्रसादजी भट्ट, श्रीमाधवरामजी भट्ट पर्वणीकर, डॉ. पुरुषोत्तमलालजी भार्गव, डॉ. सुधीरकुमारजी गुप्त, श्रीनवलकिशोरजी कांकर, श्री नारायणशास्त्रीजी कांकर, श्रीप्रवीणचन्द्रजी जैन, श्रीजगदीशजीशर्मा साहित्याचार्य प्रभृति विद्वानों का हृदय से आभार अभिव्यक्त करता हूं, जिनके सफल मार्ग-निर्देशन व सहयोग से यह कार्य सम्पन्न हो सका। मैं इन सभी विद्वानों के प्रति विनयावनत होकर कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं।

यद्यपि इस ग्रन्थ के प्रकाशन की योजना १९७० ई. से ही प्रारम्भ हो गई थी, परन्तु वह साकार न हो सकी। मेरे राजस्थान विश्वविद्यालय में प्रवाचक के पद का कार्यभार ग्रहण करने के उपरान्त **श्री सिया शरण जी नाटाणी** ने इस ग्रन्थ के प्रकाशन के प्रति उत्सुकता दिखाई और अनेक कठिनाइयों के उपरान्त वे अपने दृढ़ निश्चय को कार्यरूप में परिणत करने में सफल हो सके, एतदर्थ मैं उनके प्रति भी आभार अभिव्यक्त करता हूं।

इस शोधप्रबन्ध की प्रस्तावना के लेखक आदरणीय **डॉ. श्री रामजी उपाध्याय,** आचार्य एवं अध्यक्ष संस्कृत विभाग, सागर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र) का अनुग्रह तो मुझे प्रारम्भ से ही प्राप्त है। आधुनिक संस्कृत-साहित्य के क्षेत्र में उनका जो शोधकार्य है, संस्कृत जगत् से प्रच्छन्न नहीं। उनके ही निर्देश से मैं भी इस आधुनिक संस्कृत साहित्य के शोधकार्य में प्रवृत्त हूं। डॉ. उपाध्यायजी ने इस ग्रन्थ की प्रस्तावना लिखकर जो मुझ पर कृपा की है, मैं उसके प्रति उनका अत्यन्त कृतज्ञ हूं।

इस ग्रन्थ के प्रूफ पढ़ने में **श्री रूपनारायणजी त्रिपाठी** व ग्रन्थ के मुद्रण-प्रकाशन में आदित्य प्रिन्टिग वर्क्स तथा वरूणा प्रिण्टर्स के प्रोप्राइटर **श्री दयारामजी खुशलानी** के प्रति धन्यवाद अर्पित करना अपना पुनीत कर्त्तव्य मानता हूं, जिन्होंने इस ग्रन्थ के शुद्ध प्रकाशन में निरन्तर सहयोग प्रदान किया।

इस ग्रन्थ में कुछ विद्वानों के चित्र भी मुद्रित किये गये हैं। इन अलभ्य चित्रों के प्रकाशन में संस्कृत कॉलेज के अध्यापक श्री जगदीश शर्मा व अन्य विद्वानों का योग प्रशंसनीय रहा है। इन सब के प्रति भी आभारी हूं। ग्रन्थ के आवरण पृष्ठ के लिये संस्कृत के प्राचीन व दुर्लभ हस्तलेख उपलब्ध कराने के लिये आचार्य **श्रीरामचरण शर्मा व्याकुल,** संस्थापक एवं अध्यक्ष, **श्रीरामचरणप्राच्यविद्यापीठ संग्रहालय-प्रन्यास** का भी आभारी हूं, जिनके सहयोग से पांडुलिपियों के पृष्ठ उपलब्ध हो सके। इसके अतिरिक्त इस कार्य के सुव्यवस्थित सम्पादन में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से जिनका भी सहयोग प्राप्त हुआ है, मैं उन सभी के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं।

यह कृति विद्वानों के प्रमुख प्रस्तुत कर रहा हूं और आशा करता हूं कि वे इसमें दृष्टिगत होने वाले स्खलनों के लिए क्षमा करते हुये तथ्यों के संकलन से मेरा सहयोग कर मुझे अनुगृहीत करेंगे।

विनीत
डॉ० प्रभाकर शास्त्री

माघ पूर्णिमा, सं० २०३६
(३१ जनवरी, १९८० ई.)

विषय - सूचनिका

१. परिचय-खण्ड

२. कृतिकार खण्ड

[उपर्युक्त अवधि में विद्यमान १५४ सस्कृत विद्वानों का अकारादि क्रम से सारगभित महत्त्वपूर्ण परिचय, इनकी सूची ग्रन्थ के अन्त में प्रस्तुत सारणी (पृ० ३७०) से जानी जा सकती है।]

परिचय-खण्ड

प्रथम अध्याय

"जयपुर की संस्कृत-साहित्य को देन"

(१६६६-१८३४ ई०)

एक संक्षिप्त विवेचन

"संस्कृत भाषा एवं इसका साहित्य संसार में सर्वतः समृद्ध है"—इस कथन से सभी विद्वान् एकमत हैं। जयपुर का नाम अपनी सुन्दरता, विद्वत्ता, ऐतिहासिकता एवं कलात्मकता के लिये सम्पूर्ण विश्व में प्रख्यात है और यही कारण है कि इसे 'पेरिस' तथा 'तारातम्बोल' का प्रतिनिधि माना गया है।[1] एक उक्ति 'वाराणसी वा जयपत्तनं वा' के अनुसार यह सिद्ध होता है कि जयपुर विद्वत्ता में वाराणसी की समता रखता था। जयपुर नगर के संस्कृत भाषा के प्रति इस अत्यन्त प्रेम को देखकर "जयपुर की संस्कृत साहित्य को देन" (१६६६–१८३४ ई.) विषय पर एक शोध-प्रबन्ध लिखा गया।[2] इस क्षेत्र के कार्य की विशालता देख कर इसे दो भागों मे विभक्त करना पड़ा, जिसमें प्रथम भाग जयपुर नगर के संस्थापक, महाराज सवाई जयसिंह द्वितीय के शासन काल से प्रारम्भ कर सवाई जयसिंह तृतीय के शासन समाप्ति काल, अर्थात् १६६६ ई. से १८३४ ई. तक निश्चित किया गया। शेष भाग १८३५ ई. से वर्तमान १९६५ ई. तक विद्वानों के सम्मुख प्रस्तुत किया जा रहा है।

उपर्युक्त प्रथम भागात्मक शोध प्रबन्ध को भी दो खण्डों में विभक्त किया गया था—(१) ऐतिहासिक खण्ड तथा (२) विवेचना खण्ड। ऐतिहासिक खण्ड में जयपुर नगर का ऐतिहासिक महत्त्व, भौगोलिक स्थिति का चित्रण, जयपुर के पूर्व-शासको का इतिहास, जयपुर की स्थापना से पूर्व विद्यमान शासकों के आश्रय मे हुआ संस्कृत का रचनात्मक-कार्य, जयपुर संस्थापक सवाई जयसिंह द्वितीय का इतिवृत्त, सवाई जयसिंह की धार्मिक प्रवृत्ति तथा उनके द्वारा अनुष्ठित अश्वमेध, वाजपेय, राजसूय आदि श्रौत-यज्ञ, विद्वानों का इस निमित्त जयपुर आगमन तथा स्थायी निवास, परम्परागत विद्वानों का सम्मान तथा विद्वत्ता की प्रतिष्ठा के रूप में अनेक बिन्दुओं का विवेचन है।

द्वितीय खण्ड—(विवेचना खण्ड) में सवाई जयसिंह द्वितीय से लेकर सवाई जयसिंह तृतीय तक राज्याधिरूढ सभी शासको के आश्रय में विद्यमान विद्वानों का समयानुसार जीवन-परिचय तथा उसी के साथ संस्कृत भाषात्मक रचनाओं का परिचयात्मक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। यहाँ उक्त शोध प्रबन्ध का सारांश प्रस्तुत किया जा रहा है।

जयपुर राज्य का विवचन

वर्तमान राजस्थान की राजधानी 'जयपुर' की स्थापना महाराज विष्णुसिंह कछवाहा के पुत्र महाराजा सवाई जयसिंह द्वितीय ने सन् १७२८ ई. में की थी।[3] इस से पूर्व आमेर (अम्बावती) इन कछवाहा शासकों की राजधानी थी। यह आमेर अरावली की पहाड़ियों के बीच अत्यन्त सुरक्षित एक रमणीय स्थान है। यह आज भी अपनी ऐतिहासिक सुन्दरता के लिये प्रसिद्ध है। सर्वप्रथम महाराज सोढदेव (कार्तिक कृष्णा ९ विक्रम सवत् १०२३ तदनुसार १४ अक्टूबर, ९६६ ई.) आमेर-जयपुर के कछवाहा शासकों की वंशावली के अनुसार मूल पुरुष के रूप मे दौसा नामक नगर पर सर्वप्रथम शासक रूप मे प्रतिष्ठित हुये थे। उनके तीसरे वंशधर श्री काकिल माघ सुदी ८ सं. १०९३ (२८ जनवरी, १०३६) को सिंहासन पर बैठे और उन्होंने सर्वप्रथम अपनी राजधानी बनाया। तब से लेकर अनुमानतः ७०० वर्षों तक यह आमेर कछवाहा शासकों द्वारा प्रशासित रहा है।[1]

सन् १६६६ ई. से १८३४ ई. तक निम्नलिखित शासकों ने शासन किया है—

क्रम सं.	नाम शासक	सिंहासनाधिरोहण काल	मृत्यु-तिथि	राज्यकाल वर्ष मास दिन	विवरण
१.	सवाई जयसिंह द्वितीय	माघ शुक्ला ७ संवत् १७५६ (१ जनवरी, १७००)	आश्विन शुक्ला १४ संवत् १८००	४३।८।७	पुत्र विष्णसिंह
२.	सवाई ईश्वरीसिंह	आश्विन शु० १४ सं० १८०० (२२ सितम्बर, १७४३)	पौष कृष्णा १२ सं० १८०७	७।२।११	पुत्र सवाई जयसिंह द्वितीय
३.	सवाई माधवसिंह प्रथम	पौष शुक्ला १४ सं० १८०७ (१० जनवरी, १७५१)	चैत्र कृष्णा ३ सं० १८२४	१७।२।२१	भ्राता सवाई ईश्वरीसिंह
४.	सवाई पृथ्वीसिंह	चैत्र कृष्णा ३ सं० १८२४ (१ मार्च, १७६७)	वैशाख कृष्णा ३ सं० १८३५	११।१।२५	पुत्र सवाई माधवसिंह प्रथम
५.	सवाई प्रतापसिंह	वैशाख कृष्णा ४ सं० १८३५ (१६ अप्रेल, १७७८)	श्रावण शुक्ला १३ सं० १८६०	२५।३।१५	भ्राता सवाई पृथ्वीसिंह
६.	सवाई जगत्सिंह	श्रावण शुक्ला १३ सं० १८६० (१ अगस्त, १८०३)	पौष कृष्णा ६ सं० १८७५	१५।४।१२	पुत्र सवाई प्रतापसिंह
७.	सवाई जयसिंह तृतीय	वैशाख शुक्ला १ सं० १८७६	माघ शुक्ला ८ सं० १८६२	१६।६।७	पुत्र सवाई जगत्सिंह

सवाई जयसिंह तृतीय अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् उत्पन्न हुये थे—ऐसा इतिहासकारों का अभिमत है। इनका जन्म वैशाख शुक्ला १ संवत् १८७६ को हुआ था, अतः इन्हें जन्म से ही शासक माना गया है।

उपर्युक्त शासकों ने १३५ वर्ष तक जयपुर पर शासन किया है। इन के आश्रय में रहे विद्वानों का रचनात्मक कार्य ही उक्त शोध-प्रबन्ध का विषय रहा है।

भौगोलिक परिचय

वर्तमान में राजस्थान नाम से प्रसिद्ध यह क्षेत्र इससे पूर्व राजपूताना कहलाता था। राजपूताने के मानचित्र को देखने से ज्ञात होता है कि जयपुर राजपूताने के पूर्वी भाग में स्थित है। इसके उत्तर में बीकानेर, लुहारु व पटियाला राज्यों की सीमा रही है। इसके पूर्व में पटियाला, अलवर, भरतपुर, करौली व ग्वालियर के राज्य थे। दक्षिण में ग्वालियर, कोटा, बूंदी, टोंक व उदयपुर के राज्य के अतिरिक्त अजमेर, मेरवाड़ा तथा पश्चिम में अजमेर मेरवाड़ा, किशनगढ़, जोधपुर व बीकानेर के राज्य थे। यह जयपुर राज्य दक्षिण-पूर्व में अधिक विस्तृत है, बीच में बिल्कुल संकुचित और उत्तरी-मध्य भाग में कुछ अधिक चौड़ा है। यदि इसका क्षेत्रफल निकाला जाय तो अनुमानतः यह जयपुर राज्य १५० मील पूर्व से पश्चिम लम्बाई में तथा १४० मील चौड़ाई में फैला हुआ है।

राजपूताने के पूर्वी कोण में स्थित यह जयपुर राज्य २५.४१ तथा २८.३४ अक्षांस (Latitudes) तथा ७४.४१ तथा ७७.१३ देशान्तर (Longitudes) पर स्थित है। यह राज्य की स्थिति है, जब कि जयपुर नगर २६.५५ अक्षांश तथा ७५.५० देशान्तर पर स्थित है। प्राचीन रिकार्ड के अनुसार जयपुर का (राज्य) क्षेत्रफल १५५७६ वर्गमील है। यह समुद्र की सतह से १४०० से १६०० फीट ऊँचा है। यह अजमेर से ८४ मील उत्तर-पूर्व में, आगरे से १५० मील पश्चिम में, दिल्ली से १६१ मील दक्षिण-पश्चिम में तथा बम्बई से ६६६ मील उत्तर-पश्चिम में बसी हुई एक सुन्दर नगरी है। इस नगरी का प्राचीन क्षेत्रफल ३ वर्गमील माना गया है।

साहित्यिक दृष्टिकोण

राजस्थान के गौरवशाली इतिहास में जयपुर के शासकों द्वारा किये गये कार्य सराहनीय हैं। सुना जाता है बादशाह औरंगजेब जब भारतीय संस्कृति के अमूल्य ग्रन्थों को हिन्दुओं के घरों से मँगवा कर अपने हमाम में जलवाया

करता था, तब आमेर-जयपुर के इन्हीं शासकों ने उनकी रक्षा की थी तथा बहुत से अमूल्य व महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों को जयपुर-आमेर में लाकर सुरक्षित किया था। इन ग्रन्थों का संग्रह "पोथीखाना" के नाम से प्रसिद्ध हुआ, जो आज भी महाराज का व्यक्तिगत संग्रहालय है। किन्हीं कारणों से विगत ३० वर्षों से यह "पोथीखाना" बन्द है। अब निकट भविष्य में इसके पुन: खुलने की आशा है।[5]

पुस्तकें संग्रह करने का शौक फर्जन्दे दौलत मिर्जा राजा मानसिंह प्रथम (१६१४ ई०) को था। पोथीखाने की स्थापना का इतिहास यहीं से प्रारम्भ होता है। प्रो० जे० एम० बोप ने लिखा है कि मिर्जा राजा मानसिंह प्रथम ने आमेर के महल १५९२ ई. में बनवाने प्रारम्भ किये थे। उस समय के प्राचीनतम ग्रन्थों का संग्रह पोथीखाने के रूप में सुरक्षित है। ये सम्पूर्ण भारतवर्ष में घूमा करते थे, क्योंकि अकबर बादशाह के प्रधान सेनापति थे तथा युद्धों में अग्रणी रहा करते थे। इस पोथीखाने में शनै: शनै: पुस्तकों की वृद्धि होती रही, परन्तु सवाई जयसिंह द्वितीय के समय आशातीत वृद्धि हुई। इनके आश्रय में अनेक विद्वान् रहते थे, जिनमें से कुछ तो परम्परागत थे, कुछ स्वयं आकर रहने लगे थे तथा कुछ विद्वानों को महाराज लेकर आये थे। इन दरबारी-कवियों तथा विद्वानों ने जो भी ग्रन्थ लिखे, वे सब इसमें सुरक्षित किये गये। सवाई जयसिंह ने १७०४ ई. में ७६ पुस्तकें, १७११ ई. में ४२० पुस्तकें तथा १७१६ ई. में ३३६ पुस्तकें खरीदी थीं। इनमें संस्कृत, उर्दू, पर्सियन आदि सभी भाषाओं के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। यह पोथीखाना पहले आमेर में था, फिर जयपुर की स्थापना पर जलेबी चौक में परिवर्तित किया गया तथा कालान्तर में उसे 'मुबारक महल' में स्थापित किया गया; जहाँ आज तक भी विद्यमान है।[6]

किसी भी देश की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक गतिविधियों को निरन्तर वृद्धि प्रदान करने में साहित्य का विशेष योगदान माना जाता है। यह सत्य है कि जयपुर-आमेर के शासकों ने मुगलों की शासन परम्परा को नतमस्तक होकर स्वीकारा, वे उनके अधीन रहे; परन्तु यह भी सत्य है कि उन्होंने विनष्ट होती हुई भारतीय संस्कृति के प्राणभूत धर्म व साहित्य को भी सुरक्षित कर लिया। भयंकर रक्तपात से भूमि को अतिरंजित होने से भी बचा लिया और इस प्रकार उनकी अधीनता स्वीकार कर भी एक दृष्टि से स्वतन्त्र रहे तथा अपनी प्रजा को बर्बर व नृशंस कुकृत्यों से बचाने में पूर्ण समर्थ रहे।

यहाँ भारत विख्यात विद्वानों में न केवल संस्कृत के ही, अपितु हिन्दी, राजस्थानी व अन्यान्य भाषाओं के विद्वान् भी रह चुके हैं। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में जयपुर के कलाप्रिय शासकों द्वारा संतों तथा कलाकारों को पर्याप्त प्रोत्साहन मिला था, जिनमें कतिपय निम्नांकित मुख्य थे।[7]

१. महात्मा अग्रदासजी—१५७५ ई०
२. महात्मा नाभादासजी—१६ वीं शती
३. महात्मा दादूदयालजी—१५४४ ई०
४. महात्मा रज्जबजी—१५६३ ई०
५. महात्मा सुन्दरदासजी—१५९६ ई०
६ महात्मा गरीबदासजी—१६०३ ई०

इन-भक्ति-प्रधान रचनाओं के लेखकों के अतिरिक्त १७वीं शताब्दी के द्वितीय चरण से १९वीं शताब्दी के बीच की भाषा, डिंगल के प्रभाव से मुक्त होकर, परिष्कृत ब्रजभाषा के रूप में प्रकट होने लगी। इस समय विशेषत: राधाकृष्ण की प्रेम लीलाओं या आश्रयदाताओं के प्रशंसा या युद्धों को लेकर प्रबन्ध, मुक्तक तथा विशुद्ध रसात्मक प्रौढ कृतियाँ रची गईं। शृंगाररस सम्राट् कविवर बिहारी लाल (१६०३ ई०) आमेर के राजा मिर्जा राजा जयसिंह प्रथम के आश्रय में रहते थे—यह प्रसिद्ध ही है। इनके अतिरिक्त पद्माकर भट्ट, कुलपति मिश्र, कविकलानिधि श्रीकृष्ण भट्ट (लालकवि), कविवर मण्डन, आदि अनेक प्रसिद्ध कवियों ने इनका आश्रय प्राप्त कर साहित्य सेवा व उसकी श्रीवृद्धि में महत्त्वपूर्ण योग दिया है। इन्हीं के साथ कविवर महाराज सवाई प्रतापसिंह का नाम भी अविस्मरणीय है, जिन्होंने ब्रजभाषा में अनेक रचनायें प्रस्तुत की हैं। इनका उपनाम 'ब्रजनिधि' था।

कछवाहवंशीय राजाओं का ढूंढार आगमन तथा आमेर का शासन

जयपुर नगर की स्थापना से पूर्व कछवाह शासकों की राजधानी आमेर थी—यह कहा जा चुका है। कछवाह शब्द का संस्कृत रूपान्तर 'कच्छपघात' माना जाता है। 'कुशवाह' क्षत्रियों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक मतमतान्तर हैं। ये सूर्यवंशी कहलाते हैं।[8] कछवाहों की वंशावलियों, ख्यातों, ऐतिहासिक रचनाओं एवं अन्य प्राचीन प्रमाणों से यह सिद्ध है कि ये क्षत्रिय हैं तथा इस ढूंढार प्रदेश में बाहर से आये हैं। कुछ इन्हें ग्वालियर से तथा अन्य नरवर से

आना बतलाते हैं। जनश्रुति व मान्यता के आधार पर कहा जाता है–कि सूर्यकुल के कछवाह शासक महाराज देवानीक तथा उनके पुत्र ईशासिंह (ईश्वरसिंह या ईशदेव) ने ग्वालियर में बहुत समय तक परम्परागत राज्य का उपभोग किया था। राजा श्रीईशासिंह ने बडी उदारता से अपना राज्य अपने भानजे श्री जयसिंह तंवर को स्वप्न में या प्रत्यक्ष दान कर दिया था। अपनी पिता की वचन-परम्परा का निर्वाह करने के लिये ईशदेव के पुत्र सोढदेव ने नरवर में निवास कर कालान्तर में अपने पुत्र दूलहराय के पराक्रम एवं अपने समधी (दूलहराय के श्वसुर मोरां के चौहान राजा) की सहायता से दौसा पर अधिकार किया और वहाँ के आदिम निवासी बड़गूजरों को परास्त कर अपने आधीन बना लिया। यही इनका इस भूमि पर प्रवेश करने का श्रीगणेश है। इसके पश्चात् इनने माची, जमुवारामगढ़, खोह, झोटवाड़ा आदि स्थानों को जीतकर आमेर को अपनी राजधानी बनाया था। यह इतिहास सम्मत विषय है। यहाँ ढूंढार प्रदेश में आगमन से लेकर सवाई जयसिंह द्वितीय–जयपुर संस्थापक से पूर्व तक के शासकों की वंशावली प्रस्तुत की जा रही है, ताकि उनके समय का ज्ञान रह सके।

सर्वप्रथम संवत् १०२३ में महाराजा सोढदेव ने दौसा में राज्य प्रारम्भ किया था। इन शासकों का दौसा, खोह, माची और जमुआ रामगढ़ में कुल ७० वर्ष के अनुमान राज्य रहा। इसके पश्चात् श्री काकिल ने आमेर को एक सुरक्षित स्थान मान कर अपनी स्थायी राजधानी के रूप में स्वीकार किया। आमेर में इन शासकों की परम्परा ने लगभग ७०० वर्ष तक राज्य किया। आमेर का समयानुकूल परिवर्तन करने वाले शासकों में महाराज पृथ्वीराज, महाराज मानसिंह प्रथम, मिर्जा राजा जयसिंह प्रथम, महाराज रामसिंह आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। यद्यपि कछवाहों की परम्परा के अनुसार पिता के पश्चात् पुत्र ही राज्य का अधिकारी होता रहा है, परन्तु कुछ स्थलों पर इसमें व्युत्क्रम भी उपस्थित हुआ है। महाराज पृथ्वीराज के १८पुत्र थे और इनके पश्चात् शासन को लेकर परस्पर अनेक झगड़े भी हुये। इस समय इनके स्थायी शासन में एक अशान्तिपूर्ण स्थिति पैदा हुई थी। इसी प्रकार दूसरा व्युत्क्रम महाराज मानसिंह प्रथम के पश्चात् उपस्थित हुआ। इनके पुत्र जगत्सिंह का अल्पकाल में ही देहावसान हो गया था। राजकुमार भावसिंह और राजकुमार महासिंह के उत्तराधिकार को लेकर कुछ वैमनस्यपूर्ण स्थिति बनी थी, परन्तु इसका समाधान स्वतः ही हो गया था। यह इतिहास का विषय है। यहाँ उपर्युक्त शासकों का विवरण प्रस्तुत है।

क्रम नाम शासक	सिंहासनाधिरोहण काल	मृत्यु-तिथि	राज्यकाल
१. महाराज सोढदेव	कार्तिक कृष्णा १० सं. १०२३	माघ शुक्ला ६ सं. १०६३	४०।३।१२
२. दूलहराय	माघ शुक्ला ६ सं. १०६३	माघ शुक्ला ७ सं० १०६३	३०।०।०
३. काकिल	माघ शुक्ला ८ सं० १०६३	वैशाख कृष्णा १० सं. १०६६	२।२।१८
४. हनुदेव	वैशाख कृ० १० सं० १०६६	कार्तिक शु० १३ सं० १११०	१४।६।१७
५. जानडदेव	कार्तिक शु० १३ सं० १११०	चैत्र शु० ७ सं० ११२७	१७।४।२३
६. पज्वनदेव (प्रद्युम्न)	चैत्र शु० ७ सं० ११२७	ज्येष्ठ कृ० ३ सं० ११५१	२४।१।११
७. मलेशीदेव	ज्येष्ठ कृ० ३ सं० ११५१	फाल्गुन शु० ३ सं० १२०३	५२।६।१५
८. विज्जल देव	फाल्गुन शु० ३ सं० १२०३	वैशाख शु० १४, सं० १२३६	३२।४।१
६. राजदेव	वैशाख शु० १४ सं० १२३६	पौष शु० ६ सं० १२७३	३७।४।१६
१०. कील्हणदेव	पौष कृ० ६ सं० १२७३	कार्तिक कृ० ६ सं० १३३३	५६।१०।३
११. कुन्तलदेव	कार्तिक कृ० ६ सं० १३३३	माघ कृ० १० सं० १३७४	४१।३।१
१२. जोणशि	माघ कृ० १० सं० १३७४	माघ कृ० ३ सं० १४२३	४८।११।२३
१३. उदयकरण	माघ कृ० ३ सं० १४२३	फाल्गुन कृ० ३ सं० १४४५	२२।१।०
१४. नरसिंह देव	फाल्गुन कृ० ३ सं० १४४५	भाद्रपद कृ० ६ सं० १४८५	३६।६।२
१५. वनवीर	भाद्रपद कृ० ६ सं० १४८५	आश्विन कृ० १२ सं० १४६६	११।१।६
१६. उद्धरण	आश्विन कृ० १२ सं० १४६६	मार्गशीर्ष कृ० १४ सं० १५२४	२८।२।२
१७. चन्द्रसेन	मार्गशीर्ष कृ० १४ सं० १५२४	फाल्गुन कृ० ५ सं० १५५६	३५।२।२५

१८. महाराज पृथ्वीराज	फाल्गुन कृ० ५ सं० १५५६	कार्तिक शुक्ला ११ सं० १५८४	२४।८।२०
१९. महाराज पूर्णमल्ल	कार्तिक शु० ११ सं० १५८४	माघ शु० ५ सं० १५९०	६।२।२३
२०. महाराज भीमसिंह	माघ शु० ५ सं० १५९०	श्रावण शुक्ला १५ सं० १५९३	३।६।१०
२१. महाराज रतनसिंह	श्रावण शु० १५ सं० १५९३	ज्येष्ठ शु० ८ सं० १६०४	१०।६।१७
२२. महाराज आशकरण	ज्येष्ठ कृ० ८ सं० १६०४	ज्येष्ठ शु० ९ सं० १६०४	०।०।१६
२३. महाराज भारमल्ल	अषाढ कृ० ८ सं० १६०४	माघ शुक्ला ५ सं० १६३०	२५।७।१२
२४. महाराज भगवन्तदास	माघ शु० ६ सं० १६३०	मार्गशीर्ष शु० ७ सं० १६४६	१५।१०।१
२५. महाराज मानसिंह प्रथम	मार्गशीर्ष शु० ७ सं० १६४६ १५ दिसम्बर, १५९०	आषाढ शु० १० सं० १६७१	२५।५।२०
२६. महाराज माऊसिंह (महाराज भावसिंह)	आषाढ शु० १० सं० १६७१ ६ जुलाई, १६१४	फाल्गुन शु० ४ सं० १६७८	७।६।०
२७. मिर्जा राजा जयसिंह प्रथम	फाल्गुन शु० ४ सं० १६७८ मार्च १६२२	आश्विन कृष्णा ५ सं० १७२४	४५।८।१०
२८. मिर्जा० महाराज रामसिंह प्रथम	आश्विन कृ० ५ सं० १७२४ ८ सितम्बर, १६६७	आश्विन शु० ५ सं० १७४६	२२।५।१
२९. महाराज विशनसिंह	आश्विन शु० ५ सं० १७४६ १९ सितम्बर, १६८९	माघ कृ० ५ सं० १७५६	१०।०।६
३०. सवाई जयसिंह द्वितीय	माघ शु० ७ सं० १७५६ जनवरी, १७००	आश्विन शु० १४ सं० १८००	४३।८।७

उपर्युक्त वंशावली में क्रमांक १७ अर्थात् महाराज चन्द्रसेन के शासन काल तक साहित्यक रचनात्मक कार्य का कोई उल्लेखन नहीं मिलता। महाराज पृथ्वीराज के पश्चात् राज्याधिकार को लेकर संघर्ष हुआ था और महाराज भारमल्ल (क्रमांक २३) ने पुनः शासन सूत्र को सुव्यवस्थित किया। महाराज मानसिंह के समय, जो अकबर के सेनापति थे, पुनः साहित्य सर्जना का उल्लेख मिलता है। मिर्जा राजा जयसिंह और रामसिंह के समय तो संस्कृत साहित्य का सर्जन बहुत अधिक मात्रा में हुआ था। श्री विशनसिंह म० रामसिंह के पुत्र नहीं, पौत्र थे।

कछवाहा वंश एवं साहित्य प्रेम

(प्रथम भाग–आमेर नगरी)

जिस भूमि पर जयपुर राज्य की बनावट हुयी है, वह कभी ढूंढार' के नाम से प्रसिद्ध था। ढूंढार के नामकरण के सम्बन्ध में विभिन्न मत हैं। कुछ लोग ढुण्ढा नामक राक्षसी के कारण इसे ढूंढार मानते हैं तो कुछ ढुण्ढ नामक नदी की अवस्थिति के कारण। 'वीरान' को भी ढुण्ढ कहते हैं—संभवतः यहाँ घनघोर जंगल ही रहा होगा। बर्बर एवम् असभ्य जातियों में बड़गूजर, मीणों आदि का आदिम स्थान तो यह रहा ही है। सूर्यवंशी राजाओं द्वारा 'धुन्धु' नामक राक्षस के मारे जाने के कारण धुन्धुमार तथा परिवर्तन से ढूंढार हो गया लगता है।

ढूंढार की राजधानी आमेर का उल्लेख किया जा चुका है। राजपूताना प्रदेश में आमेर-जयपुर के शासक सदा से वीरता के कारण तो प्रसिद्ध रहे ही हैं, अपितु साथ ही एक प्रगाढ़ भगवद्भक्ति, गुणज्ञता, विद्याप्रेम तथा पाण्डित्य के लिये भी विख्यात हैं। इसीलिये यहाँ हिन्दी-संस्कृत के अनेक महाविद्वान्, उपदेशक तथा धर्माचार्यों का सदा से निवास रहा है।

सर्वतः प्राचीन महाराज पृथ्वीराज (१५५६–१५८४ सं०) के समय का एक खण्डित महाकाव्य मिलता है, जिसका नाम 'पृथ्वीराज विजय' है। इसकी एक मात्र खण्डित प्रति एशियाटिक सोसायटी लाइब्रेरी, कलकत्ता में

क्रमांक १०४३४ पर उपलब्ध हैं। इसमें संख्या ६२४ से ७७९ तक के श्लोक ही मिलते हैं। यह केवल १२ पत्रों की रचना ही प्राप्त हो सकी है। इसमें दूलहराय से लेकर महाराज पृथ्वीराज के पुत्र भीम[11] तक का वर्णन है। प्रत्येक राजा की रानियां तथा सन्ततियों की संख्या तथा शासनकाल की गणना का उल्लेख मिलता है। ऐतिहासिक घटनाक्रम भी प्राप्त होता है, परन्तु वह कल्पना से ओतप्रोत व अतिरंजित लगता है। अतः इसे सर्वथा इतिहास न कह कर ऐतिहासिक महाकाव्य कहा गया है।[12]

उदाहरण के लिये कुछ पद्य प्रस्तुत हैं, जिनसे कवि का कवित्व, भाषा-सौष्ठव तथा रचना-कौशल स्वतः ही प्रकट होता है। निम्नांकित पद्य शृंगार रस की पुष्टि में कितना सहायक है, यह स्पष्ट है—

"तावद् रत्नमयाङ्गुलीयरुचिभिः व्यारोचमानश्रिया
तेनासौ मणिबाह्यमूलविधृता व्याकर्षता पाणिना ।।
लज्जाकुञ्चितलोचना नतमुखी तल्पं समारोपिता
किञ्चित् सानुनयं प्रसाद्य बुभुजे पूर्वप्रसंगे वधूः ।।६२८।।"

युद्ध का वर्णन—

"तेऽपि प्रोद्धतबुद्धयो रुरुधिरे धीरेण तेनान्वितं
सैन्यं सैन्यबलोन्नता बहुतमा युद्धं बभूवाद्भुतम् ।
प्रांसु-प्रोत्पतनावृतारुणरुचौ व्यारोचमाना युधि
क्रुद्धाविद्धपरस्परा युयुधिरे खड्गप्रहारैर्भटाः ।।६३८।।"

वंशवर्णनात्मक पद्य, जिनमें रानियों, सन्ततियों व शासन काल आदि का उल्लेख है, इसकी ऐतिहासिकता को पुष्ट करते हैं—

(१) राजा पृथ्वीराज का वर्णन—

"तस्याष्टादश तुष्टिदा जनहृदां पुत्रा बभूवुश्शुभा—
मित्राभा सुहृदां हृदम्बुजवने शूरा रणोत्साहिनः ।
राजा राज्यसुखं चतुर्भिरधिकां संवत्सराणामसौ
भेजे विंशतिमेकविंशतिदिनैर्ह्यष्टौ च मासानपि ।।७७६।।"

(२) राजा बनवीर का वर्णन—

"षड्जानिस्स षडाननश्रियमपि स्वस्मिन् समावेशय—
ल्लब्धं राज्यमवत् पितुर्भुजबलैर्जित्वा रिपून् दुर्जयान् ।
पञ्चोत्पाद्य सुतान् प्रकामसुभगान् भुक्त्वा च भौमं सुखं
धात्रे वित्तमपि प्रणीय बहुलं यातिस्म दिव्यं पदम् ।।७६६।।"

महाराज पृथ्वीराज के पश्चात् मिर्जा राजा मानसिंह प्रथम के समय विद्यमान विद्वानों का उल्लेख है, जिनमें राय 'मुरारिदास' का नाम विशेषतः परिगणनीय है। ये 'मानप्रकाश' नामक ऐतिहासिक महाकाव्य के रचयिता थे। इस महाकाव्य की भी एक मात्र खण्डित प्रति एशियाटिक सोसायटी लाइब्रेरी, कलकत्ते में सुरक्षित है। इसका अनेक विद्वानों ने अपने लेखों में उल्लेख किया है।[13] इसमें मूल पुरुष पृथ्वीराज को मान कर वंशक्रम प्रस्तुत करते हुए लेखक ने मिर्जा राजा मानसिंह प्रथम की अनेक युद्ध-यात्राओं का वर्णन किया है। उनका पूर्व दिशा की ओर प्रस्थान तथा मार्ग में समागत राज्यों की आधीनता स्वीकार करना आदि घटनाओं का उल्लेख है। यह ग्रन्थ भी खण्डित एवं अस्त-व्यस्त रूप में उपलब्ध हुआ है।[14]—

कुछ उद्धरण प्रस्तुत है—

जलालुद्दीन (अकबर) का उल्लेख देखिए—

"दुष्टानां दमनेन देवनिलयं तीर्थं च यः स्थापयेत्
एवं चेतसि चिन्तयन्निति मुहुर्जल्लालदीनः कृती ।
एकं भारतभूतले प्रभुमसौ विज्ञापितुं मानवाः
तद्वद् भूतलरक्षणाय विजयी सस्मार जिष्णुं पुनः ।।"

महाराजा मानसिंह प्रथम का वर्णन—

"यत्राभवद् भूपकुलावतंसः पृथ्वी–नृपो नाम गुणप्रदीपः।
तस्मादभूद् भारहमल्लभूप-सद्धर्मकर्माजितपुण्यपुञ्जः॥
जज्ञेऽथ तस्माद् भगवन्तदासः प्रचण्डदोर्दण्डजितारिसंघः।
तस्मादभूत् स जिष्णुः कृतविष्णुवाक्यो जातो जयायस्य महीतलस्य॥
जाते जगत्यां कछवाहवंशे राधाधवाराधनपूतपाणौ।
दिङ्मण्डलं साधुमनस्तदानीं बाले स्फुरत्तेजसि सुप्रसन्नम्॥
मानेन सिंहो भवितेति नूनम् अवेक्ष्य स क्षोणिपतिः कृतज्ञः।
नाम्ना रिपुव्रात-भयङ्करेण श्रीमानसिंहं तनयं चकार॥"

महाराज मानसिंह के समय रचित अन्य रचनाओं का सांकेतिक रूप इस प्रकार अभिव्यक्त किया जा सकता है—

क्र.	रचना–नाम	लेखक	विषय	विवरण
१.	महाराजकोश	अज्ञात	पौराणिक रचना	अप्राप्त
२.	रागचन्द्रोदय	पुण्डरीक विट्ठल ब्राह्मण[16]	संगीत	प्राप्त
३.	रागनारायण	,, ,, ,,	संगीत	प्राप्त
४.	रागमाला	,, ,, ,,	संगीत	प्राप्त
५.	राग मंजरी	,, ,, ,,	संगीत	प्राप्त
६.	नर्तन निर्णय	,, ,, ,,	नृत्य	अप्राप्त
७.	दूती प्रकाश	,, ,, ,,	कामशास्त्र	अप्राप्त
८.	पत्र-प्रशस्ति	दलपतराज[17]	प्रकीर्णक	अप्राप्त
९.	यवन परिचय	दलपतराज	प्रकीर्णक	अप्राप्त

इनके पुत्र महाराजा भावसिंह के समय रुद्रकवि द्वारा लिखा गया "भाव-विलास" नामक काव्य, काव्यमाला सीरिज के द्वितीय गुच्छक में प्रकाशित हो चुका है। इनके पिता का नाम विद्याविलास था तथा 'न्यायवाचस्पति' की उपाधि थी। यह मुक्तक काव्य है। इनकी अन्य कृतियां जो प्राप्त होती हैं, अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर में सुरक्षित हैं, परन्तु यह कहना कठिन है कि ये सारी रचनायें आमेर में ही लिखी गई हैं, क्योंकि उनमें आद्योपान्त कहीं भी ऐसा संकेत नहीं मिलता। ये रचनायें आख्यानवाद (न्याय०) आलोकसंग्रह (आलोक टीका), तत्त्व-चिन्तामणि परीक्षा–प्रत्यक्ष, अनुमान व गुण खण्ड, किरणावली परीक्षा (उदयनाचार्य) टीका, किरणावली प्रकाश आदि हैं। एम० कृष्णमाचारी 'भ्रमरदूत' को भी इनकी ही रचना मानते हैं।

मिर्जा राजा जयसिंह प्रथम (१६२८–१६६७ ई०) के समय लिखित रचनाओं का उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है। इनमें से अब अधिकांश रचनायें पोथीखाने में उपलब्ध हो गई हैं। इनका विश्लेषण स्वतन्त्र लेखों में प्रस्तुत किया जायेगा।

क्र०	रचना-नाम	रचनाकार	विषय	विवरण
१.	बृहदारण्यक टिप्पणी	श्री नित्यानन्दाश्रम	वैदिक दर्शन	अप्राप्त
२.	धर्म-प्रदीप	श्री सुन्दर मिश्र	गृहस्थ जीवन के उपकरणों का विवेचन	अप्राप्त
३.	भक्त रत्नावली	अज्ञात	भक्ति विषयक	अप्राप्त
४.	भक्ति विवृति	अज्ञात	,, ,,	अप्राप्त

५.	भक्ति विवृति	अज्ञात	भक्ति विषयक	अप्राप्त
६.	कर्म निर्वृत्ति	अज्ञात	दर्शनशास्त्र	अप्राप्त
७.	हस्तकर रत्नावली	अज्ञात	संगीत शास्त्र	अप्राप्त

मिर्जा राजा मानसिंह प्रथम (१६६७-१६८९ ई०) के आश्रित विद्वानों का उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है—

क्र०	रचना-नाम	रचनाकार	विषय	विवरण
१.	मुहूर्त तत्त्व टीका	श्री गणेश दैवज्ञ	ज्योतिष	अप्राप्त
२.	राजनीति निरूपणम्	श्री दलपतिराय	राजनीतिकोश	प्राप्त
३.	राजोपयोगिनी पद्धति	महाराज मानसिंह	राजनीति	प्राप्त
४.	वैद्य विनोद संहिता	श्री शंकर भट्ट	आयुर्वेद	प्राप्त
५.	विजय पारिजात नाटक	श्री हरिजीवन मिश्र	नाटक	प्राप्त
६.	प्रासंगिक प्रहसन	,, ,, ,,	प्रहसन	प्राप्त
७.	सहृदयानन्द	,, ,, ,,	नाटक का भेद	प्राप्त
८.	विबुधमोहन	,, ,, ,,	नाटक का भेद	प्राप्त
९.	अद्भुत तरंग	,, ,, ,,	नाटक का भेद	प्राप्त
१०.	घृतकुल्यावली	,, ,, ,,	नाटक का भेद	प्राप्त
११.	धूर्तसमागम	,, ,, ,,	प्रहसन	प्राप्त
१२.	पलाण्डुमण्डन प्रहसन	,, ,, ,,	,,	प्राप्त
१३.	प्रभावक ज्ञान प्रहसन	,, ,, ,,	नाटक	प्राप्त
१४.	प्रभावली नाटिका	,, ,, ,,	नाटिका	प्राप्त
१५.	शृंगार वापिका	श्री विश्वनाथ महादेव रानाडे	नाटिका	प्राप्त
१६.	शंभु विलास काव्य	,, ,, ,, ,,	काव्य	प्राप्त
१७.	रामविलासम्	,, ,, ,, ,,	काव्य	प्राप्त
१८.	विद्याविलास	अज्ञात	काव्य	अप्राप्त
१९.	धातु मञ्जरी	म० रामसिंह प्रथम	व्याकरण	प्राप्त
२०.	जानकीराघवनाटकम्	अज्ञात (विचारणीय)	नाटक	संदिग्ध

महाराज रामसिंह के पुत्र थे श्री कृष्णसिंह। खेद का विषय है कि ये युवराज रूप में ही दिवंगत हो गये। महाराज रामसिंह का शासन काल समाप्त होने पर उनके पौत्र महाराज विष्णुसिंह आमेर की गद्दी पर बैठे। ये महाराज विशनसिंह के नाम से विख्यात रहे हैं। इनका शासनकाल (१६८९-१६९९ ई०) संस्कृत साहित्य के निर्माण की दृष्टि से इतना अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं माना गया है। इसका कारण इनका अल्पकालीन शासन तथा दिल्ली शासन का विशेष भय ही माना जा सकता है। उस समय बादशाह औरंगजेब दिल्ली का शासक था। इनके समय में श्रीमाधव-भट्ट पर्वणीकर, श्री हरिहर भट्ट तथा गोस्वामी शिवानन्द भट्ट का नामोल्लेखन किया जा सकता है। इनकी रचनाओं के सम्बन्ध में प्रामाणिक रूप से इसलिए नहीं कहा जा सकता, क्योंकि ये विद्वान् अनेक स्थानों पर रहे थे। यों श्री पर्वणीकरजी का कोई रचनात्मक कार्य भी नहीं मिलता। ये महाराज सवाई जयसिंह द्वितीय के विद्या गुरु थे। श्री हरिहर भट्ट का परिभाषा-भास्कर तथा गोस्वामी शिवानन्द भट्ट के ४२ ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है।

कछवाह-वंश एवं साहित्य-प्रेम

(द्वितीय भाग-जयपुर नगर)

महाराज विष्णुसिंह के पश्चात् जयपुर नगर संस्थापक सवाई जयसिंह द्वितीय का शासन प्रारम्भ होता है। इनका शासन काल कछवाहवंशीय राजाओं के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से अंकित है। इनकी प्रत्युत्पन्नमति ने इन्हें सर्वोच्च सम्मान, राजाधिराज व सवाई की उपाधियाँ तथा अन्य पार्श्ववर्ती राज्यों से गहरी मित्रता प्रदान की थी। इनकी विलक्षण बुद्धिमत्ता एवं कलाप्रियता का मूर्तिमान् दृष्टान्त जयपुर नगर आज भी भारत के काश्मीर तथा संसार की सुन्दरतम नगरी पैरिस को अपने सौन्दर्य में पीछे रखता है। कर्नल जैम्स टाड ने लिखा है कि – "शासन में राजनीति और न्याय के नाम पर सवाई जयसिंह का नाम ऊँचा है। इसमें किसी को मतभेद नहीं हो सकता, यह दूसरी बात है कि विदेशी इतिहासकारों ने निष्पक्ष होकर उसके गौरव का वर्णन नहीं किया..........।"[19] इस प्रकार एक विदेशी विद्वान् का कथन महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है।

महाराज विष्णुसिंह के दो पुत्र थे—जयसिंह तथा विजयसिंह। मार्गशीर्ष कृष्णा ६ संवत् १७४५ तदनुसार ३ नवम्बर, १६८८ को राठोड़ महारानी इन्द्रकुंवरी देवी के गर्भ से महाराज जयसिंह का जन्म हुआ था। इनके अध्यापन व शिक्षा के लिये पंडित माधव भट्ट पर्वणीकर की नियुक्ति हुई थी।[20] महाराज विष्णुसिंह का देहान्त माघ कृष्णा ७ संवत् १७५६ तदनुसार १ जनवरी, १७०० को हुआ था। तत्पश्चात् आप आमेर की गद्दी के उत्तराधिकारी बने।

महाराज सवाई जयसिंह का शिक्षा व संस्कृत-साहित्य से प्रेम

हिन्दू राजाओं में समय-समय पर अनेक विद्वान् एवं वीर राजाओं ने भी जन्म लिया था, जिनमें परमारवंशीय राजा भोज, महाराणा कुम्भा, हर्षदेव आदि के नाम प्रसिद्ध हैं। इन से भी कहीं अधिक विख्यात महाराज जयसिंह का नाम है। इनका समय संस्कृत भाषा के विकास के लिये विशेषतः उल्लेखनीय है। स्वयं महाराजा संस्कृत तथा फारसी के विद्वान् थे। साथ ही वे ज्योतिषशास्त्र के भी असाधारण ज्ञाता थे। सूर्य-चन्द्र के ग्रहणों तथा ग्रहों के उदय व अस्त की गणित में जो वास्तविक अन्तर उपस्थित हो गया था, उसे देखकर उन्होंने उस अन्तर को दूर करने की दृष्टि से विचार किया और अनेक विश्व विख्यात ज्योतिषशास्त्र वेत्ताओं को बुलाकर अनेक सारणियों का निर्माण कराया। इस कार्य के लिये अनेक ज्योतिषियों को उनने पुर्तगाल भी भेजा था। चन्द्रनगर से दो फ्रेंच पादरियों को भी बुलवाया था, जो प्रकाण्ड ज्योतिषी थे। जर्मनी से फादर ऐड्रीज तथा अन्य ज्योतिषियों को आमन्त्रित किया था। इनने ज्योतिष के अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का जो अरबियन, पर्सियन और फ्रेंच आदि भाषाओं में थे, संस्कृत में अनुवाद भी करवाया था। बहुत विचार-विमर्श के पश्चात् भारत के ५ सुप्रसिद्ध स्थानों पर (दिल्ली, मथुरा, उज्जैन, जयपुर तथा काशी) सुप्रसिद्ध ५ ज्योतिष-यन्त्रालयों (Astronomical Observatories) का निर्माण करवाया। ज्योतिष सम्बन्धी अनेक नवीन यन्त्र भी बनवाये गये। समरकन्द के ज्योतिषी मिर्जा उलगबेग ने हिजरी सन् ८४१ (१४३७-३८ ई०) में ग्रह नक्षत्रों की एक सारणी बनाई थी, जिसके निर्माता को ३०७ वर्ष बीत चुके थे और उनके अनुसार गणित में अन्तर आने लगा था। महाराज सवाई जयसिंह ने उस अन्तर को निकाल कर तत्कालीन बादशाह मुहम्मद शाह के नाम से उस सारणी को जीच मुहम्मदशाही नाम से विख्यात किया। इसका अनुवाद फारसी तथा अन्य भाषाओं में भी हुआ। इसी प्रकार "यन्त्रराज" नामक एक नवीन ग्रन्थ का निर्माण इनकी स्वयं की देन है, जिसमें इस यन्त्र के निर्माण प्रकार, उपयोग, प्रयोग आदि का सविस्तर वर्णन है। यह ग्रन्थ राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर से छप चुका है। विश्व-विख्यात भारतीय ज्योतिषियों में **सम्राट्** जगन्नाथ का नाम चिरस्मरणीय रहेगा, जिनने इनकी प्रेरणा से "युक्लिड" की संपूर्ण रेखागणित को अरबी से संस्कृत में अनूदित किया था। दूसरा ग्रन्थ "सिद्धान्त कौस्तुभसार" है, जो "क्लाडियम कालमी" के "अलमेजस्ती" के अरबी अनुवाद पर आधारित है। तीसरा ग्रन्थ "सम्राट् सिद्धान्त" है, जिसमें सम्राट् यन्त्र के निर्माण प्रकार वेध-विधि, उपयोग आदि पर प्रकाश डाला गया है। यह ग्रन्थ पर्याप्त विस्तृत एवं महत्त्वपूर्ण है। **श्री केवलराम ज्योतिषराय** ने लागरथम की फ्रेंच सारणी के बहुत अंशों को संस्कृत में अनुवाद कर परिवर्तन-परिवर्द्धन के साथ "विभाग-सारणी" के नाम से प्रस्तुत किया था। भारतवर्ष में

उस समय इस लागरथम का प्रचार-प्रसार नहीं हुआ था । इसी प्रकार "मिथ्याजीव छाया सारणी", डी० ला० हिरे की ग्रह गणित के आधार पर जयपुर के अक्षांस पर निर्मित "दृक्पक्ष सारणी" तथा "दृक्पक्ष ग्रन्थ" भी इनकी ही देन है । उलूगवेग के ग्रन्थ से "तारा-गणित" अंश का कालान्तर संस्कार के साथ अनुवाद कर उसका नाम "तारासारणी" रखा गया था । दैनिक ग्रह-स्थिति को जानने के लिये बनाये जाने वाले पंचांग की सुविधा के लिये "जयविनोद सारणी" का निर्माण भी इसी समय किया गया था । ग्रह-गणित संबन्धी एक ग्रन्थ "जयसिंह कल्पलता" अपूर्ण ही रह गया था ।

श्री नयनसुखोपाध्याय ने बतुल मयूस के अरबी ग्रन्थ "उकर" का "ऊकर" के नाम से ही संस्कृत में अनुवाद किया था । इसमें रेखागणित के ३ अध्याय हैं ।[21]

यदि स्वयं महाराज जयसिंह इस प्रकार अरब, पुर्तगाल, यूरोप आदि स्थानों के प्रसिद्ध ज्योतिपाचार्यों का रचनात्मक कार्य न देखते तथा उसकी सहायता से सारणियों का निर्माण न करवाते, न ही ५ वेधशालाओं को बनवाते, तो यह सत्य था कि भारत ज्योतिषशास्त्र की दृष्टि से मृत-वत् हो जाता । अतः इसको जीवित रखने का श्रेय स्वयं महाराज को ही दिया जाना चाहिये ।

न केवल ज्योतिष शास्त्र से ही महाराज को प्रेम था, वे संस्कृत भाषा से भी प्रेम करते थे । उनकी सभा में साहित्यिक, दार्शनिक, तान्त्रिक, मन्त्रशास्त्री, आयुर्वेदवेत्ता तथा अन्यान्य भाषाविज्ञ विद्यमान थे । प्रसिद्ध धर्मशास्त्रज्ञ तथा श्रौतस्मार्तकर्मानुष्ठाता विद्वान् **श्री पुण्डरीक रत्नाकर महाशब्दे** तथा अन्य कतिपय वैदिक याग-विशेषज्ञ आपके गुरु थे ।

आपने "वाजपेय यज्ञ" का अनुष्ठान इन्हीं श्री रत्नाकर पौण्डरीक से करवाया था । वह यज्ञ संवत् १७६५ में आमेर में हुआ था ।[22] इसके पश्चात् श्री रत्नाकरजी ने सुप्रसिद्ध पुण्डरीक यज्ञ किया था । यों श्री रत्नाकर जी ने समय-समय पर अनेक यज्ञ किये थे, जिनका उनने स्वयं उल्लेख किया है ।[23] इनकी योजना थी—महाराज सवाई जयसिंह से अश्वमेघ याग करवाने की, परन्तु इनका देहान्त सं० १७७७ में ही हो गया था । अतः यह याग इनकी उपस्थिति में पूर्ण न हो सका । अश्वमेघ याग की सम्पन्नता की कामना से महाराज को अन्यान्य विद्वान् बुलाने पड़े थे और इस प्रकार उनकी सहायता से संवत् १७९१–९२ में यह याग पूर्ण हुआ था ।[24] इनके समय में सर्वमेघ, पुरुषमेघ' सोमयाग तथा राजसूय याग के होने का भी उल्लेख मिलता है । राजसूय याग महाराज जयसिंह के पुत्र सवाई ईश्वरीसिंह कर रहे थे, जव उन्हें अपने पिता की मृत्यु का समाचार मिला था । इसका उल्लेख समकालीन ऐतिहासिक महाकाव्य "ईश्वर विलास" में मिलता है ।[25] यह यज्ञ पूर्ण न हो सका था और कहा जाता है कि ८० ब्राह्मण प्रतिदिन अनिष्ट निवारण की दृष्टि से इनकी शांति के लिये अग्निहोत्र किया करते थे ।[26]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि महाराज सवाई जयसिंह ने ज्योतिष यन्त्रालय के निर्माण तथा श्रौतस्मार्त-यज्ञों के अनुष्ठान के लिये जिन विद्वानों को ससम्मान बुलाया था, उन्हें यहीं वसा लिया था और हर प्रकार की सुख सुविधा प्रदान कर दी थी । उनकी वंश परम्परा ही साहित्य-सेवा करती रहीं, जो संस्कृत के क्षेत्र में जयपुर का नाम उज्ज्वल करने में समर्थ मानी जाती है । यों समय-समय पर अनेक विद्वानों ने आकर तत्कालीन राजा से सम्मान प्राप्त कर भी अपना स्थायी निवास वनाया था, परन्तु अधिकांश परिवार परम्परागत थे । इन परिवारों में से अधिक का नाम तो आज समाप्त ही हो गया है, क्योंकि इनके वंशज शासकों से प्राप्त जागीर का उपभोग करने में रह गये और उनने वंश-परम्परा को भुला दिया । प्रयास पूर्वक प्राप्त विद्वानों का संक्षेप में यहाँ उल्लेख करना ही पर्याप्त है । पूर्ण जानकारी पी-एच० डी० के लिए प्रस्तुत शोधप्रबन्ध से प्राप्त की जा सकती है । इस प्रकार हम जयपुर की संस्कृत साहित्य को देन · १६९९–१७४३ ई० के अन्तर्गत सारा श्रेय महाराज सवाई जयसिंह द्वितीय को ही देना उचित समझते हैं ।

सवाई जयसिंह द्वितीय कालीन संस्कृत विद्वान्
(१६९९–१७४३ ई०)

क्रम सं० विद्वान् का नाम	रचना नाम	विषय	विवरण
१. भट्ट शिवानन्द गोस्वामी[27]	१. सिंहसिद्धान्त-सिन्धुः	तन्त्रशास्त्र	अनूप पुस्तकालय
	२. ललितार्चन-कौमुदी	,,	गोस्वामी परिवार
२. भट्ट जनार्दन गोस्वामी	१. नीति-शतक	नीतिशास्त्र	अनुपलब्ध
	२. शृंगार-शतक	साहित्य	काव्यमाला गु० ११
	३. वैराग्य-शतक[28]	,,	अप्रकाशित
	४. मन्त्र-चन्द्रिका	मन्त्रशास्त्र	अप्रकाशित
	५. ललितार्चा-प्रदीपिका	तन्त्रशास्त्र	श्रीगोपाल गोस्वामी
३. भट्ट चक्रपाणि गोस्वामी	१. पंचायतनप्रकाशः	तन्त्रशास्त्र	,, ,,
४. भट्ट श्रीनिकेतन गोस्वामी	१. सभेदार्यासप्तशती[29]	गीतिकाव्य	अप्रकाशित
५. श्री रत्नाकर पौण्डरीक	१. जयसिंह-कल्पद्रुमः	धर्मशास्त्र	प्रकाशित
६. श्री सुधाकर महागब्दे	१. साहित्यसार-संग्रहः	साहित्यशास्त्र	अप्रकाशित[30]
७. श्री व्रजनाथ भट्ट दीक्षित	१. ब्रह्म सूत्राणभाष्य वृत्ति	दर्शनशास्त्र	प्रकाशित
	२. पद्य तरङ्गिणी[31]	नीति	प्रकाशित
८. कविकलानिधि श्रीकृष्ण भट्ट[32]	१. पद्य-मुक्तावली	मुक्तक	प्रकाशित
	२. वृत्त-मुक्तावली	छन्दःशास्त्र	,, ,,
	३. ईश्वर विलास महाकाव्य	साहित्य	,, ,,
	४. सुन्दरीस्तवराजः[33]	स्तोत्र	अप्रकाशित
	५. वेदान्त-पंचविंशतिः	दर्शन	अप्रकाशित
	६. रामगीतम्[34]	गीतिकाव्य	अप्रकाशित
	७. प्रशस्ति मुक्तावली	पत्र	अप्रकाशित
	८. सरसरसास्वादसागर	काव्य	अप्रकाशित
९. श्री हरिहर भट्ट	१. कुल-प्रबन्धः[35]	वंशवर्णनात्मक	प्रकाशित
१०. सम्राट् श्री जगन्नाथ दीक्षित	१. सम्राट् सिद्धान्त	ज्योतिष	प्रकाशित
	२. रेखागणित	ज्योतिष	प्रकाशित
	३. सिद्धान्तसार कौस्तुभ	ज्योतिष	अप्रकाशित
११. श्री केवलराम ज्योतिषराय	१. अभिलाषशतकम्[36]	गीतिकाव्य	अप्रकाशित
	२. गंगास्तुति पद्धति	स्तोत्र	अप्रकाशित
	३. तिथि निर्णयः	ज्योतिष	अप्रकाशित
	४. सारणियां	ज्योतिष	प्रकाशित
	५. सारणियां	ज्योतिष	अप्रकाशित
१२. श्री हरेकृष्ण मिश्र	१. वैदिक वैष्णव सदाचार	धर्मशास्त्र	,, ,,
१३. श्री मायाराम गौड़ पाठक	१. व्यवहारांगस्मृतिसर्वस्व	,,	,, ,,
	२. व्यवहारनिर्णयः	,,	,, ,,
	३. व्यवहारसारः	,,	,, ,,
	४. मिताक्षरासारः	,,	,, ,,
१४. महाराज सवाई जयसिंह	१. यन्त्रराजरचना	ज्योतिष	प्रकाशित

१५. श्री नयनसुखोपाध्याय	१. ऊकर	ज्योतिष	अप्रकाशित
१६. श्री हरिलालः	१. प्रतिष्ठा चन्द्रिका	धर्मशास्त्र	अनुपलब्ध
१७. श्री महीधरः	१. रामगीता	दर्शनशास्त्र	,,
१८. अज्ञात (श्री काशीराम ?)	१. लंघनपथ्यनिर्णयः[37]	वैद्यक	उपलब्ध

सवाई ईश्वरीसिंह कालीन संस्कृत विद्वान् (१७४३–१७५० ई०)

क्र० विद्वान् का नाम	रचना नाम	विषय	विवरण
१. श्री गंगाराम पौण्डरीक	ग्रन्थ अनुपलब्ध	—	—
२. श्री रामचन्द्र भट्ट पर्वणीकर	१. स्वरसिद्धान्तकौमुदी	व्याकरण	अनुपलब्ध
३. अज्ञात	१. विविधौषधसंग्रहः	आयुर्वेद	,,
४. श्री दीनानाथ सम्राट्	१. श्लोक सिन्धुकाव्य (अपूर्ण)	साहित्य	अप्रकाशित
५. श्री सदाशिव शर्मा (दशपुत्र)	१. आचारस्मृति-चन्द्रिका	धर्मशास्त्र	,,
	२. आशौचस्मृति चन्द्रिका	,,	,,
	३. लिंगार्चन चन्द्रिका	,,	,,

सवाई माधवसिंह प्रथम कालीन संस्कृत विद्वान् (१७५०–१७६७ ई०)

क्र० विद्वान् का नाम	रचना का नाम	विषय	विवरण
१. श्री श्यामसुन्दर दीक्षित	१. माधवसिंहार्याशतकम्	गीतिकाव्य	अप्रकाशित
	२. पर्वनिर्णयसार	धर्मशास्त्र,	,,
	३. समापवर्तन प्रयोग	कर्मकाण्ड	,,
	४. चौलोपनयन प्रयोग	,,	,,
२. देवर्षि श्री द्वारकानाथ भट्ट	१. गालवगीतम्	गीतिकाव्य	प्रकाशित
३. भट्ट राजा सदाशिव	रचना अप्राप्त	—	—
४. श्री मथुरामल माथुर चतुर्वेदी	१. समर भास्कर	—	अनुपलब्ध
५. अज्ञात लेखक	१. कृपाशतक	—	,,
	२. संस्कृत मंजरी	पत्रात्मक	उपलब्ध
	३. सुदर्शन स्तुति	स्तोत्र	अनुपलब्ध
	४. महाविपाक वर्णन	—	,,

सवाई पृथ्वीसिंह कालीन संस्कृत विद्वान् (१७६७–१७७८ ई०)

क्र० विद्वान् का नाम	रचना नाम	विषय	विवरण
१. श्री रामेश्वर पौण्डरीक	१. रस सिन्धुः	साहित्यशास्त्र	प्राप्त

सवाई प्रतापसिंह कालीन संस्कृत विद्वान् (१७७८–१८०३ ई०)

क्र० विद्वान् का नाम	रचना नाम	विषय	विवरण
१. श्री भोलानाथ शुक्ल	१. कर्ण–कुतूहलम्	नाटक	प्रकाशित
	२. श्रीकृष्णलीलामृतम्[38]	गीतिस्तोत्र	,,

सवाई जगत्सिंह कालीन संस्कृत विद्वान्
(१८०३–१८१८ ई०)

क्र०	विद्वान् का नाम	रचना नाम	विषय	विवरण
१.	श्री विश्वेश्वर महाशब्दे	१. निर्णय-कौतुकम्	धर्मशास्त्र	प्राप्त
		२. प्रतापार्कः	,,	..
२.	श्री सखाराम भट्ट पर्वणीकर	१. आख्यातवादः	व्याकरण	प्राप्त

सवाई जयसिंह तृतीय कालीन संस्कृत विद्वान्
(१८१८–१८३४ ई०)

क्र०	विद्वान् का नाम	रचना नाम	विषय	विवरण
१.	श्री सीताराम भट्ट पर्वणीकर	१. नृप विलास सटीक	श्रव्यकाव्य	प्राप्त
		२. नल विलास सटीक	,,	,,
		३. जयवंश महाकाव्यम् सटीक	,,	प्रकाशित
		४. राघव चरित्र काव्यम् (मूल)	,,	प्राप्त
		५. लघु-रघुकाव्यम्	,,	,,
		६. लक्षण चन्द्रिका	साहित्यशास्त्र	,,
		७. काव्य प्रकाशसारः	,,	,,
		८. नायिका वर्णनम्	,,	,,
		९. साहित्यसारः	,,	,,
		१०. साहित्यसुधा	,,	,,
		११. साहित्यतत्त्वम्	,,	,,
		१२. साहित्यार्णवः	,,	,,
		१३. साहित्य तरंगिणी	,,	,,
		१४. शृंगार लहरी	,,	,,
		१५. काव्य-तत्त्वप्रकाशः	,,	,,
		१६. बुधवर्यावर्णनम्	मुक्तक	प्राप्त
		१७. कुमारसम्भव टीका	साहित्य	प्रकाशित
		१८. घटकर्परकाव्य टीका	,,	प्राप्त
		१९. चतुर्दशसूत्री व्याख्या	व्याकरण	,,
		२०. श्लोकबद्धा सिद्धान्तकौमुदी	,,	,,
		२१. जातकपद्धति सटीक	ज्योतिष	,,
		२२. मुहूर्तसारः	,,	,,
		२३. गंगादीनामष्टका	स्तोत्र	,,

श्री पर्वणीकर जी की अनुपलब्ध रचनायें निम्नलिखित हैं—

रचना नाम	विषय
१. साहित्य चिन्तामणिः	साहित्यशास्त्र
२. परमलघु कौमुदी	व्याकरण
३. कामन्दकीय ग्रन्थ टीका	नीतिशास्त्र
४. छन्दः प्रकाश	छन्दशास्त्र
५. नैषध टीका	काव्य साहित्य
६. जातकालंकार टीका	ज्योतिषशास्त्र

	७. लीलावती टीका	ज्योतिष शास्त्र	
	८. जातकपद्धति	,,	
	९. गंगालहरी टीका	स्तोत्र	
२. श्री गंगाराम भट्ट पर्वणीकर	१०. स्फुट श्लोक संग्रहः	प्रकीर्णक	प्राप्त

सवाई जयसिंह द्वितीय से सवाई जयसिंह तृतीय कालीन विद्वान्
(१६९९–१८३४ ई०)
जैन विद्वान्

क्र० विद्वान् का नाम	रचना नाम	विषय	विवरण
१. श्री काशीराम	१. लंघनपथ्य-निर्णयः	(सवाई जयसिंह द्वितीय)	
२. श्री दौलतराम कासलीवाल	२. पुण्यस्रावक कथाकोष	हिन्दी टीकायें	स० माधवसिंह प्रथम कालीन
	२. आदि पुराण	,, ,,	
	३. पद्म पुराण	,, ,,	
	४. हरिवंश पुराण	,, ,,	
३. श्री खुशालचन्द काला	१. हरिवंश पुराण	हिन्दी टीकायें	स० जयसिंह द्वितीय
	२. यशोधर चरित		
	३. पद्म पुराण		
	४. जम्बुस्वामी चरित		
	५. सत्यकुमार चरित्र		
	६. सद्भाषितावलिः		
	७. उत्तरपुराण		
४. श्री जयचन्द छावड़ा	१. सर्वार्थसिद्धिः	संकृत ग्रन्थों की टीकायें	
	२. प्रमेयरत्नमाला		
	३. देवागम स्तोत्र		
	४. ज्ञानार्णव		
	५. भक्तामरस्तोत्र		
	६. पत्र-परीक्षा		
	७. चन्द्रप्रभुचरित		
५. महापण्डित टोडरमल्ल	१. आत्मानुशासन टीका	टीकायें	
	२. पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय		
६. श्री सदासुख कासलीवाल	१. तत्त्वार्थसूत्र–वृहत्काय टीका	(अर्थ प्रकाशिका	

७. अन्यान्य–भट्टारक जगत्कीर्ति (१८वीं शताब्दी) श्री जयराज पाटनी (१८वीं शती)

८. भाई रायमल्ल (१९वी शती) आदि की भी रचनायें हैं, जिनमें स्तोत्र साहित्य तथा हिन्दी अनुवाद का कार्य ही अधिक है।

निष्कर्ष व उपसंहार––इस प्रकार उपर्युक्त संकेतात्मक विवेचन से स्पष्ट है कि इस जयपुर नगरी में शासकों का आश्रय प्राप्त कर विभिन्न विद्वानों ने अनेक महत्वपूर्ण रचनायें प्रस्तुत कर साहित्य वृद्धि में अपना महत्त्वपूर्ण योग प्रदान किया था। इसीलिए विद्या के क्षेत्र में जयपुर वाराणसी से न्यून नहीं माना गया है। इनका विस्तृत विवेचन शोध प्रबन्ध में किया जा चुका है।[३७]

जिस प्रकार सवाई जयसिंह द्वितीय ने संस्कृत के विकास के लिये विद्वानों की परम्परा स्थापित की थी, उसी प्रकार स० रामसिंह द्वितीय ने भी उसी के अनुकरण पर कार्य कर अपना नाम जयपुर के संस्कृत साहित्य के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से अंकित करवा दिया है।

———

परिचय-खण्ड

प्रथमाध्याय के सन्दर्भ व उद्धरण

(References & Notes)

1. (क) नाथावतों का इतिहास—पं० हनुमान् शर्मा, चौमूं, पृष्ठ १६२, प्रकाशित प्रथमावृत्ति, विक्रम संवत् १९९४।

(ख) 'भारत के देशी राज्य'—श्री सुखसम्पत्तिराय भण्डारी, पृष्ठ ७८।

(ग) 'मुक्तक-संग्रह'—श्री माधव गोपाल भण्डाहर, (हस्तलिखित प्रति) में लिखा है कि महाराज सवाई जयसिंह द्वितीय ने फ्रांस के इंजीनियर को इस शहर में भेजकर उसका नक्शा मंगवाया था और उसी के अनुसार इसका निर्माण करवाया था।

(घ) प्राचीन पत्रों के अनुसार सिद्ध होता है कि इसके निर्माण में जयपुर के दीवान (बंगाली) श्री विद्याधर चक्रवर्ती का विशेष सहयोग था। (नं० २५० पृष्ठ १६३ नाथावतों का इतिहास)।

2. राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर से जनवरी सन् १९६५ ई० में पी-एच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत लेखक का शोध प्रबन्ध (अप्रकाशित)।

3. इसकी स्थापना के विषय में विद्वानों का मतभेद है—पण्डित हनुमान् शर्मा, चौमूं ने नाथावतों के इतिहास में (पृ० १६१) इसका निर्माण काल संवत् १७८४ मार्गशीर्ष कृष्णा ५ बुधवार, इष्ट ९|० सूर्य ६/२२ लग्न ८/९ बतलाया है तथा रा०ब० श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने अपने 'सवाई जयसिंह' लेख में पौष वदी ८ शनिवार संवत् १७८४ लिखा है। कुछ विद्वान् इसे १७८२ संवत् में ही बसाये जाने का उल्लेख करते हैं।

4. **कछवाहा वंशीय आमेर—जयपुर के शासकों की वंशावली**

नरवर (मध्यप्रदेश) से आगमन— १—श्री सोढ़देव (९६६ ई० में दौसा में राज्यारंभ)
(मृत्यु १००७ ई०)

|

२—श्री दूल्हेराय (उपर्युक्त वंश के ढूंढार प्रदेश में स्थिति-संस्थापक,)
(मृत्यु १०३६ ई०)

|

३—श्री काकिल (आमेर में राजधानी संस्थापक)
(मृत्यु १०४० ई०)

|

४—श्री हणूं, श्री इल्हण, श्री देल्हण, श्री रल्हणराय
(मृत्यु १०५३ ई०)

५—श्री जानडदेव (मृत्यु १०७१ ई०)

६—श्री पज्वन (मृत्यु १०९५ ई०, श्री पृथ्वीराज चौहान के चाचा कान्ह के जामाता)

७—श्री मलेसी (मृत्यु ११४७ ई०)

८—श्री वीजलदेव (मृत्यु ११८० ई०)

९—श्री राजदेव (मृत्यु १२१६ ई०)

१०—श्री कील्हण (मृत्यु १२७६ ई०)

११—श्री कुन्तल (मृत्यु १३१८ ई०)

१२—श्री जोनसी (मृत्यु १३६७ ई०)

१३—श्री उदयकरण (मृत्यु १३८९ ई०) | श्री कुम्भो (वांसखो के कुंभाणी) | श्री गोगा (दूनी के गोगावत)

श्री उदयकरण के ८ पुत्र पाटिल, शिवब्रह्म, वाला, वरसिंह, पीथो, पीपो, तापो

१४—श्री नरसिंह (मृत्यु १४२९ ई०)

१५—श्री बनवीर (मृत्यु १४२९ ई०) (६ पुत्र, रावतनारो, मेलक, वारो, वीरम आदि)

१६—श्री उद्धरण (मृत्यु १४६७ ई०)

१७—श्री चन्द्रसेन (मृत्यु १५०३ ई०) (३ पुत्र)

१८—श्री पृथ्वीराज (मृत्यु १५२७ ई०) | रावतकुंभो, | देवदास)

श्री पृथ्वीराज के १९ पुत्र, रामसिंह, सांगो, गोपालसिंह, पिछयान, जगमल सुलतान, प्रतापसिंह, वलभद्र, सेनदास, कल्याण, भीखोसिंह, चतुर्भुज, रूपसी, शेरमल, रायमल और पूरणमल से लेकर रतनसिंह तक व श्री भारमल सहित)

१९—श्री पूरणमल (मृत्यु १५३७ ई०)

२०—श्री भीम (मृत्यु १५३७ ई०)

२१—श्री रतन सिंह (मृत्यु १५४८ ई०)

२२—श्री आशकरण (मृत्यु १५४८ ई०)

२३—श्री भारमल (मृत्यु १५७४ ई०)

कछवाहा वंश की शासन-परम्परा में व्युत्क्रम उपस्थित हुआ है। जब श्री पृथ्वीराज के पश्चात् उनके कनिष्ठ पुत्र श्रीपूरणमल शासक बने और फिर उनके कनिष्ठ भ्राता श्री भीम दत्तक पुत्र के रूप में शासक बने, तभी परस्पर विवाद हुआ। यह व्युत्क्रम श्री भारमल तक चला। श्रीभारमल ने अपने भतीजे श्री आशकरण को १६ दिन ही शासक रहने दिया।

२४—श्री भगवन्तदास (मृत्यु १५८९ ई०) — (श्री भगवानदास छोटे भाई थे)

२५—श्री मानसिंह प्रथम (मृत्यु १६१५ ई०) — मुगल सम्राट् अकबर के सेनापति)

२६—श्री भावसिंह — (श्री मानसिंह के देहावसान पर जीवित एकमात्र पुत्र)

२७—श्री जयसिंह प्रथम (मृत्यु १६६७ ई०) — (ये श्री महासिंह के पुत्र थे, जो मानसिंह के पुत्र श्री जगत्सिंह के पुत्र थे, परन्तु महासिंह को उत्तराधिकार प्राप्त नहीं हुआ था।)

२८—श्री रामसिंह प्रथम (मृत्यु १६८९ ई०)

श्री कृष्ण सिंह (अल्पावस्था में ही दिवंगत)

२९—श्री विष्णुसिंह (मृत्यु १६९९ ई०) — (श्री रामसिंह प्रथम के पौत्र)

३०—श्री जयसिंह द्वितीय (मृत्यु १७४३ ई०) — (जयपुर संस्थापक)

३१—श्री ईश्वरी सिंह (ज्येष्ठ पुत्र) (मृत्यु १७५० ई०) — श्री शिवसिंह, श्री माधवसिंह

३२—श्री माधवसिंह प्रथम (कनिष्ठ पुत्र) (मृत्यु १७६७ ई०)

३३—श्री पृथ्वीसिंह (ज्येष्ठ पुत्र) (मृत्यु १७७९ ई०) — श्री प्रताप सिंह

३४—श्री प्रतापसिंह (मृत्यु १८०३ ई०) — (श्री माधवसिंह के कनिष्ठ पुत्र)

३५—श्री जगत्सिंह (मृत्यु १८१८ ई०)

श्री मानसिंह के १२ पुत्रों में श्री जगत्सिंह ज्येष्ठ पुत्र थे, जो युवावस्था में ही दिवंगत हो गये थे। इनके पुत्र श्री महासिंह को उत्तराधिकार प्राप्त होना चाहिए था। परन्तु यह अधिकार मानसिंह के अवशिष्ट पुत्र श्री भावसिंह को मिला और इनके मद्यपी होने व निःसन्तान दिवंगत होने पर श्री जयसिंह प्रथम शासक बने।

श्री रामसिंह के पुत्र श्री किशनसिंह युवावस्था में ही दिवंगत हो गये थे। अतः इनके पश्चात् श्री किशनसिंह के पुत्र श्री विष्णुसिंह शासक बने।

श्री ईश्वरीसिंह के पुत्र का नाम 'कल्किप्रसाद' था, जो बाल्यावस्था में ही दिवंगत हो गया था।

सन् १८०३ में सम्पन्न ब्रिटिश सरकार से शासन-संधि के प्रथम स्वीकर्त्ता शासक जगत्सिंह थे।

३६—श्री जयसिंह तृतीय (मृत्यु-१८३४ ई०) (पिता की मृत्यु के बाद जन्म)
|
३७—श्री रामसिंह द्वितीय (मृत्यु-१८८० ई०) (निः संतान दिवगत)
|
३८—श्री माधवसिंह द्वितीय (मृत्यु १९२२ ई०) (दत्तक पुत्र)
|
३९—श्री मानसिंह द्वितीय (मृत्यु १९७० ई०) (दत्तक पुत्र, राज्यकाल १९५० ई० तक)

४०—श्री भवानीसिंह- (वर्तमान)

5. १९७० ई० में 'पोथीखाना' के ग्रन्थों का सर्वेक्षण प्रारम्भ हुआ। इसका श्रेय पं० श्री गोपाल नारायण जी वहुरा को है, राज. प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर के उपनिदेशक रहे है। आपके प्रयास से खास मोहर संग्रहालय का सूचीपत्र प्रकाशित हो चुका है तथा पोथीखाने का सूचीपत्र तैयार हो रहा है।

6. "THE POTHIKHANA"

(Prof. J. M. Ghosh, M. A., ex-Vice-Principal, Maharaja's College, JAIPUR.)

The origin of the Pothikhana as an established library can not be traced. Presumably, a collection of books in the form of manuscripts began with Mirza Raja Man Singh, who started building the Amber Palace about 1592. Since then the successive ruling princes, notwithstanding their stormy lives, continued to add to the stock of manuscripts. Under Maharaja Sawai Jai Singh II it was considerably strengthened. Besides the manuscripts which were written by his court poets, he purchased 76 books in 1704, 420 in 1711, and 336 in 1716.

With the transfer of the capital to Jaipur city, the Pothikhana was lodged in the Jaleb Chowk, from where it was transferred to its present place.

It contains thousands of manuscripts in Sanskrit, Hindi and Persian, dealing with a multitude of subjects—such as the Veda, the Puranas, the Dharmashastras, mysticism, kavya, grammar, kosh, chhandas, music, history, philosophy, astrology, astronomy, morals and religion, politics, medicine, Jainism and Buddhism. Some of these manuscripts have been referred to in Chapter II under the names of the respective ruling princes.

The great treasures of the Pothikhana are the RAZMNAMAH and the Persian translation of the RAMAYANA.

The RAZMNAMAH (History of the war) is an abridged version of the MAHABHARATA The MAHABHARATA was translated into Persian by order of the Emperor AKBAR in 1582. ABDUL QADIR BADAONI, NAQIB KHAN, MULLA SHERI and

SULTAN HAJI THANESHWARI were the translators. the translation was turned into prose by SHAIKH FAIZI. The work was decorared with full-size paintings. The preface was written by ABDUL-FAZAL.

The JAIPUR RAZMNAMAH was written by KHWAJA INAYATULLAH on Doulatbadi paper. The book contains 69 full page paintings and the signatures of the artists are given. From the seals it appers that the book was in the Imperial Library at Delhi during the time of Emperor SHAH ALAM.

The translalion of the RAMAYAN into Persian was completed by BADAONI in 1589 A.D. after four years' work. The Jaipur copy is written on Doulatabadi paper with gold-coloured borders. It contains 176 full page paintings as exquisite as those in the RAZMNAMAH. There are the signatures of 52 artists. The seals of the librarians are also there. Like the RAZMNAMAH, it was in the Imperial Library at Delhi as late as the time of SHAH ALAM, as is evidenced by a seal on the last page.

Both these copies in the Pothikhana seem to be AKBAR's own copies. It is difficult to say how and when they came to Jaipur.

There are two manuscripts in Sanskrit which deserve special mention. One is a copy of the ADHYATMA RAMAYAN (with pictures in roll), and the other is a copy of the SHRIMAD BHAGWAT (with pictures in roll). The former contains seven kandas, divided into 64 chapters with 4200 slokas. It is 29 yards in length and three inches in breadth. The latter is 22 yards in length and four inches in breadth. It contaius 12 skandhas with 18000 slokas.

A few more manuscripts may be mentioned—

(1) **"Brihadaranyak Tippani."**—This was written in 1627 by **Shri Nityanandashram,** on Vedic philosophy. It contains 45000 verses.

(2) **"Dharma Pradeepa."**—This was written in 1629 by **Shri Sundar Mishra.** it deals with the various duties of domestic life.

(3) **"Muhurta Tatva Teeka."**—This was written in the time of Maharaj Ram Singh I by **Pandit Ganesh**, an astrologer. It is a long work on the subject of the determining of auspicious moments for the performance of various duties, such as marriage and travelling.

(4) **"Rajopayogini Paddhati."**—This work was written by Maharaja Ram Singh I himself after the smritis which deal with the duties of a king.

(5) **Jai Singh Kalpa Druma."**—This is a work on Hindu ritual, giving detailed description of fasts, penances, and devotions to be observed on certain days with the appropriate hymns th be recited. It was actually written by **Shri Ratnakar Pundarik**, one of Jai Singh's gurus, and was finished in 1714.

(6) **"Zeech Muhammad Shahi"**—This is a set of astronomical tables prepared under the direction of Sawai Jai Singh II and named after the Emperor Muhammad Shah.

A detailed description is given by G.R. Kaye in his book, "The Astronomical Observatories of Jai Singh." The preface to this work is interestingh as Jai Sing speaks in the third person and tells what led him to construct the astronomical instruments.

(7) **"Pratishtha Chandrika."**—A work on Dharmashastra written by **Pandit Hari Lal** in 1730. It contains 5000 verses, dealing with the consecration of idols.

(8) **"Vastumandan".**—This is a work, written by **Shri Mandan** in 1736, on architectures and town planning, and contains 880 slokas. Important chapters relate to the building of houses and defects in the construction of cities.

(9) **"Vividhaushadha Sangraha".**—Was written by order of Maharaja Ishwari Singh. It contains 1194 pages and many prescriptions,

(10) **"Ghoron-Ka-Naqsha".**—This was written by **Shri Mannalal** in Jai Singh II's time. It deals with dtfferent tyoes of horses, their characteristic features, diseases, cures, etc. It contains illustrations.

(11) An illustrated copy of the **Ramayana** translated in to persian This translation was undertaken by one **Shri Jaj Narain**. son of Sri Ram, in 1686 A. D. It was completed in 1689 A. D. The translation is in simple and colloquial Persian.

———

7. हितैषी—जयपुर अंक, सन् १९४० ई० के आधार पर तथा ढूंढार प्रदेश की हिन्दी साहित्य सेवा-राज० विश्व० जयपुर के शोधप्रबन्ध (स्वीकृत) के आधार पर।

8. "मुंहता नैणसी री ख्यात" भाग १ पृ० २९१ राज० पुरातत्व मन्दिर, जोधपुर से प्रकाशित प्रथम संस्करण—"कछवाहा री पीढी—कछवाह सूरजवंशी कही जै, तयारी विगत (१) आदि (२) अनादि (३) चांद (४) कंवल—इसी प्रकार ६४ वें क्रमांक पर म० सोढदेव का नाम मिलता है। इसके पश्चात् दूलहराय, काकिल, राजा हणूं आदि का।"

9. आपके १९ पुत्र थे, जिनमें सर्वप्रथम पूरणमल और उसके पश्चाद् भीम गद्दीनशीन हुए। भीम के पुत्र रतनसिंह और पौत्र आशकरण के पश्चात् पुनः आपके पुत्र भारमल ने शासनसूत्र सभाला।

10. वंशावली के अनुसार महाराज पृथ्वीराज महाराज सोढदेव के १८ वें वंशधर थे।

11. प्रदत्त वंशावली के अनुसार महाराज भीम महाराज सोढदेव के २० वें वंशधर थे।

12. 'पृथ्वीराज विजय महाकाव्य' का विवेचनात्मक रूप जानने के लिये देखिये—
(क) जयपुर के ऐतिहासिक काव्य—राजस्थान भारती १० वर्ष १ अंक, जून, १९६७ ई०।
(ख) 'पृथ्वीराज विजय और कच्छवंश महाकाव्य'—शोधपत्रिका (उदययुर)

13. (अ) "जययुर नरेश और साहित्य समाज"—श्री उमेश चतुर्वेदी, "हितैषी" जयपुर अंक में उल्लेख।
(अ) "जयपुर के कवि कोविद"—पुरोहित श्री हरिनारायणजी विद्याभूषण का लेख—हितैषी अंक से उद्धत
(इ) "जयपुर एलबम"—शैक्षणिक विकास—ले० म० म० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी व पं० नन्दकिशोर नामावाल।

14. "पृथ्वीराज विजय" व "मानप्रकाश" दोनों महाकाव्यों के उद्धरण इसलिये प्रस्तुत करना आवश्यक समझा गया है कि इनका उल्लेख पहले नहीं हो सका था।

15. "मानसिंह कीर्ति मुक्तावली" महाराज मानसिंह के आश्रय में लिखा गया कवि जगन्नाथ का ग्रन्थ माना जाता था, इसका उल्लेख अनेक विद्वानों ने अपने लेखों में किया है, परन्तु एशियाटिक-सोसायटी लाइब्रेरी, कलकत्ते

में प्राप्त प्रकाशित रचना के अध्ययन से यह पता चला है कि यह रचना किसी अन्य मानसिंह नामक राजा का यशोवर्णन प्रस्तुत करती है। इसका पूर्ण विवेचन विश्वम्भरा वर्ष ३।४ में लिखे गये लेख "मानसिंह कीर्ति-मुक्तावली"—एक विवेचन में किया गया है तथा भ्रम का निराकरण किया गया है।

16. "पुण्डरीक विट्ठल ब्राह्मण" शीर्षक से प्रकाशित लेख, "अनेकान्त" द्वैमासिक, दिल्ली से प्रकाशित, १८ वर्ष दूसरी किरण, जून १९६५।
17. "श्री दलपतिराय और उनकी रचनायें"—"अनेकान्त" द्वैमासिक पत्रिका, दिल्ली से प्रकाशित, वर्ष १७ किरण तीन, अगस्त, १९६४।
18. "मिर्जा राजा रामसिंह प्रथम एवं तत्कालीन विद्वान्"–शीर्षक लेख, मरु-भारती, पिलानी से प्रकाशित, वर्ष १३ अंक १ में लेखक का शोध लेख।
19. कर्नल जेम्स टाड-कृत 'राजस्थान का इतिहास', जयपुर का इतिहास, पृष्ठ ६३८, हिन्दी अनुवाद, श्रीकेशवकुमार ठाकुर—द्वितीय संस्करण–अक्टूबर, १९६५।
20. (अ) "कच्छवंश महाकाव्य" (अप्रकाशित) श्री कृष्णराम भट्ट—दशम सर्ग, श्लोक ८४–९९
(आ) "जयवंश महाकाव्य" (प्रकाशित) श्री सीताराम भट्ट पर्वणीकर, १० सर्ग श्लोक ६१–१०५
21. "जयपुर की ज्योतिष साहित्य को देन"—शीर्षक लेख प्रकाशित, ज्योतिष्मती (त्रैमासिक पत्रिका) सोलन (हिमाचल प्रदेश) १९ वर्ष १ अंक, कार्तिक सं० २०२३। इसमें श्री नयनसुखोपाध्याय के ऊकर ग्रन्थ का विवेचन भी है।
22. "साहेबकाया"—रिकार्ड सं० १७६५ नं० ७६५, राजस्थान अभिलेखागार, बीकानेर से प्राप्त प्रमाण के अनुसार।
23. "जयसिंह कल्पद्रुम"—प्रकाशित धर्मशास्त्रीय ग्रन्थ, लेखक श्री रत्नाकर पौण्डरीक, पद्य २८।
24. "साहे वकाया"—राजस्थान अभिलेखागार, बीकानेर के क्रमांक ८६३ सं० १७९१ के अनुसार।
25. "ईश्वर विलास महाकाव्य"—कविकलानिधि श्री कृष्ण भट्ट—सर्ग १० श्लोक १४—"तदा कुमारः किल राजसूयन् पित्राज्ञया धर्मपरोऽनुतिष्ठन्।" इत्यादि।
26. "महाराज सवाई जयसिंह और उनका यज्ञप्रेम" शीर्षक शोधनिबन्ध–मरुभारती, पिलानी से प्रकाशित, १२ वर्ष संख्या ४, जनवरी, १९६५।
27 भट्ट शिवानन्द गोस्वामी की ४२ रचनायें अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर, बीकानेरस्थ गोस्वामी परिवार, पुरातत्व मन्दिर, शाखा कार्यालय जयपुर, सिन्धिया ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट, उज्जैन, भण्डारकर रिसर्च-इन्स्टीटयूट, पूना आदि अनेक स्थानों पर उपलब्ध हैं। इन रचनाओं के सम्बन्ध में निर्णयात्मक रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इनमें से कतिपय रचनायें महाराज देवीसिंह आदि चन्देरी के शासकों के नाम से विख्यात हैं, तो कतिपय महाराज अनूपसिंह (बीकानेर) के नाम से। श्रीकृष्ण भट्ट ने अपने ईश्वरविलास महाकाव्य में सर्ग ? श्लोक ५ में इनका उल्लेख किया है कि इन्होंने स० विष्णुसिंह को (पूर्णाभिषेक) पूर्णयाग करने में सहयोग दिया था। विस्तार के लिये पीएच० डी० का शोधप्रबन्ध देखिये।
28 "वैराग्यशतक" लेख, "अन्वेषणा" त्रैमासिक पत्रिका, उदयपुर, वर्ष ? अंक २ में प्रकाशित।
29. "सभेदार्या-सप्तशती" लेख, "सागरिका"—वर्ष ६ अंक ४ (सागर विश्व० से प्रकाशित)।
30. पर्वणीकर—संग्रहालय, भट्टों की गली, जयपुर में इस ग्रन्थ की प्रति उपलब्ध है। ये (लेखक) श्री रत्नाकर पौण्डरीक महाशब्दे के पुत्र थे, जो स० स० जयसिंह के गुरु थे। (अब यह संग्रहालय यहाँ उपलब्ध नहीं है।)
31. (अ) "श्री व्रजनाथो भट्ट: तस्य पद्य तरंगिणी च"—सागरिका (संस्कृते) ६ वर्ष २ अंक।
(आ) "पद्य तरंगिणी एक अप्रकाशित काव्य"—विश्वम्भरा, वर्ष ४ अंक ३ बीकानेर से प्रकाशित।
32. -'कवि कलानिधि श्रीकृष्ण भट्ट"—विश्वम्भरा वर्ष १ अंक ४, हिमालयांक, १९६३।

33. "कवि कलानिधि श्रीकृष्ण भट्टः तस्य सुन्दरीस्तवराजश्च"—सागरिका वर्ष ५ अंक २।
34. (अ) "राघवगीतम् या रामगीतम्"—नागरी प्रचारिणी सभा पत्रिका वर्ष ७१ अंक ३-४।
(आ) "राघवगीतम्"—विश्वम्भरा वर्ष २ अंक ४ बीकानेर से प्रकाशित लेख।
35. *"श्री हरिहर एक समस्या और समाधान"—विश्वम्भरा वर्ष ५ अंक २ में प्रकाशित लेख।*
36. श्री केवलराम ज्योतिषराय तथा अभिलाषशतकम्"—मरुभारती अंक ३ वर्ष १२ अक्टू० ६४।
37 "जयपुर की आयुर्वेद साहित्य को देन"—आयुर्वेद ज्योति नामक श्री लक्ष्मीराम शोध संस्थान जयपुर से प्रकाशित आयुर्वेद की त्रैमासिक शोध पत्रिका के वर्ष १ अंक २ में प्रकाशित लेख। इस लेख में यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि उपर्युक्त रचना की उपलब्ध अनेक हस्तलिखित प्रतियों में लेखक का नाम प्राप्त न होने से अज्ञात कर्तृक रचना है।
38. उपर्युक्त दोनों रचनाये राजस्थान पुरातत्व मन्दिर जोधपुर से प्रकाशित हो चुकी है।
39. "आमेर जयपुर की संस्कृत-साहित्य को देन" का अद्यावधि पूर्ण व प्रामाणिक विवेचन जानने के लिए लेखक का नवीन ग्रन्थ—"राजस्थान का संस्कृत साहित्य" देखिये।

द्वितीय अध्याय

(क)

जयपुर-नगर के विगत तीन शासकों का शिक्षा, संस्कृत एवं संस्कृति से प्रेम (१८३५ ई० से १९४७ ई०)

जयपुर नगर की स्थापना संवत् १७८४ शाके १६४६ पौष कृष्णा ८ शनिवार को वृश्चिक लग्न में की गई थी। इसके संस्थापक थे महाराजाधिराज सवाई जयसिंह द्वितीय। कछवाहा-वंशीय शासकों की परम्परा में इनका उल्लेखनीय योगदान माना जाता है। 'भारतीय संस्कृति' के इतिहास में स्थापत्य कला के अनुरागी इन महाराज का नाम स्वर्णाक्षरों से अंकित है। इनका संस्कृत भाषा के प्रति प्रेम स्पष्ट रूप से परिलक्षित है। इनके द्वारा ससम्मान लाये गये विद्वान् परिवारों में से कतिपय वंशज आज भी जयपुर नगर में निवास कर रहे हैं।

महाराज जयसिंह द्वितीय के पश्चात् हिन्दी तथा व्रज भाषा के विकास व उन्नति का युग प्रारम्भ हुआ। यद्यपि इनके परवर्ती शासकों का समय या तो स्वल्प था या राजनीतिक संघर्ष से आक्रान्त, तथापि हिन्दी तथा व्रज-भाषा का साहित्य पर्याप्त मात्रा में रचा गया। यहां तक कि महाराज सवाई प्रतापसिंह स्वय एक प्रसिद्ध कवि रहे हैं, जिनका उपनाम 'व्रजनिधि' था। इनकी रचनाये 'व्रजनिधि ग्रन्थावली' के रूप मे प्रकाशित हो चुकी है।

इसी परम्परा में विशेषतः संस्कृत-भाषात्मक विकास की दृष्टि से महाराज सवाई जयसिंह द्वितीय के पश्चात् महाराज रामसिंह द्वितीय (१८३५ ई० से १८८० ई०) का नाम जयपुर के संस्कृत-साहित्य के इतिहास में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यों तो आप ने वर्तमान शिक्षा-प्रणाली को जयपुर मे प्रारम्भ कर महत्त्वपूर्ण कार्य किया ही है, संस्कृत भाषा के विकास के लिए जो कुछ किया है, चिरस्मरणीय रहेगा। इन दोनों संस्कृत प्रेमी शासकों का प्रादुर्भाव अनुमानतः एक शताब्दी के अन्तर पर हुआ है। उल्लेखनीय बात यह है कि दोनों ही शासकों का शासन समय ४४ वर्ष के लगभग रहा है। यदि यह कहा जाय कि सवाई जयसिंह द्वितीय ने ही जयपुर नगर की 'श्रीवृद्धि' करने की कामना मे तथा संस्कृत भाषा के पुनरुज्जीवन के लिए सवाई रामसिंह द्वितीय के रूप में जन्म लिया था, तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

महाराज सवाई रामसिंह द्वितीय का जीवन भी सवाई जयसिंह द्वितीय के समान ही नियमित एवं व्यवस्थित था। इन्होंने काशी, विहार, बंगाल, उत्तर प्रदेश आदि से योग्यतम विद्वानों को आमन्त्रित कर जयपुर में बसाया तथा उचित सम्मान-सत्कार किया। अन्तर केवल इतना ही है कि महाराज सवाई जयसिंह ने विद्वानों को अश्वमेध तथा वाजपेयादि यज्ञों के सम्पादन की दृष्टि से आमन्त्रित किया था तो इन महाराज सवाई रामसिंह ने संस्कृत के पठन-पाठन की सुव्यवस्था के लिए तथा धार्मिक कार्यों की निरन्तर व्यवस्थिति के लिए आमन्त्रित किया था। प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष

दोनों ही दृष्टियों से एक ही अर्थ निकलता है—संस्कृत-संस्कृति के पोषक तथा संरक्षक विद्वानों का पोषण, सम्मान तथा सत्कार करते हुए उनके विद्वत्-स्वरूप की रक्षा करना। 'महाराज संस्कृत कालेज' नामक संस्था की स्थापना करना इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है, जितना कि अंग्रेजों के शासन काल में जनता की सामान्य प्रवृत्ति के विपरीत, अंग्रेजी भाषा के कालेज के समान ही इस पुरातन भाषा संस्कृत के महत्त्व को समझते हुए इसकी अलग से स्थापना करना तथा उसमें दिलचस्पी रखते हुए इस के विकास के लिए उन्नति की कामना के साथ ही संस्कृत-संस्कृति की सुरक्षा की दृष्टि से भारत-ख्याति के विद्वानों को साग्रह जयपुर लिवा लाना, उचित सम्मान प्रदान करना एवं उन्हें उचित कार्यों में संलग्न करना महत्त्वपूर्ण है। इससे सिद्ध होता है कि महाराजाधिराज सवाई रामसिंह द्वितीय (१८३५ ई० से १८८० ई०) संस्कृत भाषा के अत्यन्त अनुरागी थे। इसका एक प्रमाण इतिहास भी है। इनके परवर्ती शासन में जयपुर के प्रधान मन्त्री थे—ठाकुर श्री फतहसिंह चांपावत। इनकी कृति '**ए ब्रीफ हिस्ट्री आफ जयपुर**' में इन्होंने महाराज रामसिंह के लिए स्पष्ट लिखा है कि *महाराज संस्कृत भाषा के ज्ञाता थे तथा संस्कृत में लिखे गये ग्रन्थों को समझने में भी समर्थ थे*। इनके मूल शब्द निम्नलिखित हैं :—

"Sanskrit was his favourite subject as he had been learning it from his Sixth year and now he had knowledge of it sufficient to enable him to understand ordinary Sanskrit books himself without the help of a teacher."

(*S*ee Appendix 3 Page 2 Para II of Reference 3)

(A Brief History of Jeypore of Thakoor Fateh Singh Chanpawat, Late Prime Minister of Jevpore State, published in 1899 Page 174–175).

सूर्यवंशी कछवाहा शासकों के परम्परा गत इतिहास में महान् प्रभावशाली इस राजा ने संवत् १८९० के द्वितीय भाद्रपद शुक्ल १४ शुक्रवार को रात्रि के २ बजे (इष्ट ४८/१७ सूर्य ५/१२/४४/२२ लग्न ३/५ पर) महाराज सवाई जयसिंह तृतीय की रानी श्रीमती चन्द्रावती जी की दक्षिण कुक्षि से जन्म लिया। इनका जीवन भगवद् गीता के वचन के समान ही सज्जनों की रक्षा करने के लिए, दुष्टों के संहार के लिए एवं धर्म के संस्थापन के लिए हुआ था। वास्तव में उस समय इस राज्य में अराजकता का साम्राज्य था। कुछ दुष्ट एवं स्वार्थलोलुप व्यक्तियों ने मनमानी करते हुए 'राज्य में नृशंसता तथा बर्बरता' से जनता को आतंकित कर रखा था। ऐसी स्थिति में 'धर्मग्लानि' को समाप्त करने के लिए तथा धर्म को संस्थापित करने के लिए साक्षात् परमेश्वर ने ही अंशावतार लिया हो—ऐसा प्रतीत होता है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि महाराज सवाई जगतसिंह के देहावसान के पश्चात् (पौष कृष्णा ९ संवत् १८७५) स्वार्थ-लोलुप कहिए या जन्मना दुष्ट, एक व्यक्ति था 'संघी झूंथाराम', जिसके कुकर्मों ने जयपुर की राजनीति को गदला कर रखा था। इसने ११–१२ व्यक्तियों का एक संघ बना रखा था, जिसमें इतिहास सम्मत निम्न-लिखित व्यक्ति सम्मिलित थे।[1]

(१) संघी झूंथाराम (२) अमरचन्द्र (३) मन्नालाल (४) स्योलाल (शिवलाल) (५) हुकुमचन्द (६) हिदायतुल्ला खां (७) मेघसिंह, डिग्गी (८) हनुमन्तसिंह–मनोहरपुर (९) चिमनसिंह, साहीवाड (१०) श्यामसिंह, बिसाऊ (११) जयपुर के श्री जी महन्त तथा (१२) अन्तः पुर की विश्वस्ता दासी—रूपां बडारण।

इस संघी झूंथाराम को अधिक अधिकार देने तथा विश्वस्त मानने की भूल महाराज सवाई जयसिंह तृतीय की माता महारानी भटियाणी जी ने की थी, जिसका परिणाम यह रहा था कि इसने महाराज को ही परमधाम पहुंचा दिया था। पं० हनुमान् शर्मा चौमूं ने लिखा है[2]—'एक बड़ीरियासत के रईस जिसके इशारे से हजारों फौजें चढ़ सकती और बात की बात में अजय शत्रुओं का विनाश कर सकती थीं, उन्हीं का एक अदने से आदमी ने क्षण भर में नाश कर दिया, जिसकी दुष्कृति से कुढ कर इतिहासकारों ने उसे–नारकी, नरपिशाच, नराधम, नमकहराम, नालायक या दुष्ट मनुष्य बतलाया है। इस प्रकार की निर्दय प्रकृति के पुरुष वही संघी झूंथाराम थे, जो आगरे से आकर फोजूराम के दिलाये हुए आश्रय में छोटी नौकरी से निर्वाह किया और फिर उसी को अकारण मरवा दिया और अवसर

आते ही अन्तःपुर के अन्दर उनका (महाराज जयसिंह तृतीय का) प्राणान्त करवा दिया। ठाकुर फतहसिंह ने अपने संक्षिप्त इतिहास में इसका पूरा विवेचन प्रस्तुत किया है।[3]

महाराज सवाई रामसिंह के जन्म होने पर जयपुर का शासनसूत्र महारानी चन्द्रावती के पास आया था। इनने सामोद के रावल शिवसिंह तथा तत्कालीन एजेन्ट (गवर्नमेंट) की सहायता से पहले तो इन्हें विभिन्न जेलों में रखा, परन्तु फिर आवश्यक जानकारी के पश्चात् अमरचन्द्र तथा हिदायतुल्ला खां को फांसी की सजा दी गई तथा झूंथाराम व हुकुमचन्द को चुनार के किले में आजन्म कारावास तथा शेष सभी को यथायोग्य कारावास का दण्ड प्रदान कर शान्ति स्थापित की थी।

सवाई रामसिंह द्वितीय का राज्याभिषेक माघ सुदी ८ संवत् १८६१ को हुआ। रावल श्री विजयसिंह आपके संरक्षक नियुक्त किये गए। पं० श्री शिवदीन जी को आपके शिक्षक होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, जो कालान्तर में इस स्टेट के प्रधान मन्त्री भी रहे। महाराज सवाई रामसिंहजी ने नगर की सुव्यवस्था के लिये बहुत प्रयास किया। पक्की सड़कें बनवाना, सुन्दरता के लिये उद्यान-निर्माण, रोशनी व्यवस्था, जल व्यवस्था आदि पर विशेष ध्यान दिया। जन स्वास्थ्य की दृष्टि से अस्पताल बनाया गया और इस प्रकार 'जयपुर नगरी' को पूर्ण युवती के समान साज-संवार कर सर्वाभूषण अलंकारों से सुसज्जित कर भाद्रपद कृष्णा १४ संवत् १९३७ सन् १८८० को दिवंगत हो गये। इनके पश्चात् आपके मनोनीत ईसरदा के कुंवर **श्री कायमसिंह** राज्याविरूढ़ हुए, जो **सवाई माधवसिंह द्वितीय** के नाम से विख्यात हुए।

महाराज माधवसिंह को जयपुर का विकासशील तथा समृद्ध रूप प्राप्त हुआ। राज्य में सर्वत्र शान्ति थी, सभी सुखी तथा प्रसन्न थे। श्री माधवसिंह का बाल्यकाल सौतेले भाई श्री प्रतापसिंह के कारण पर्याप्त कष्टमय रहा था। जब इनने अपने अधिकार प्राप्ति के लिये श्री प्रतापसिंह से मुकाबिला किया तो इन्हें पकड़कर महाराज रामसिंह के पास उपस्थित किया गया था। महाराज रामसिंह इनके व्यक्तित्व एवं वीरता से प्रभावित हुए थे और इन्हें (श्री कायम सिंह को) अपना पुत्र तथा उत्तराधिकारी मनोनीत कर लिया था। महाराज रामसिंह के कोई सन्तान नहीं थी। आश्विन कृष्णा ५ संवत् १९३७ को इन्हें टोंक से बुलाया गया था और मनोनयन के अनुसार राज्याधिकारी बनाया गया था। इन्होंने अपनी योग्यता तथा कुशलता से ४२ वर्ष तक शासन किया। जयपुर नगर को सुव्यवस्थित करने तथा उसके पर्याप्त विकास की दृष्टि से आपका कार्य भी प्रशंसनीय रहा है। पूर्व परम्परा का आपने योग्यता से निर्वाह किया। इनके भी औरस पुत्र नहीं था। अतः इन्होंने अपनी अन्तिम अवस्था विचार कर शास्त्रानुभवी तथा निपुण निरीक्षकों के सत्परामर्शानुसार ईसरदा के ही सरदार सवाई सिंह के पुत्र **श्री मोर मुकुट सिंह** को दत्तक रूप में अपना पुत्र मान लिया। यह संस्कार चैत्र कृष्णा १ गुरुवार संवत् १९७७ को सम्पन्न हुआ तथा इनका नाम **'श्री मानसिंह द्वितीय'** रखा गया। आश्विन कृष्णा प्रतिपदा संवत् १९७९ को महाराज माधवसिंह के दिवंगत होने पर महाराज मानसिंह का राज्याभिषेक किया गया।

महाराज मानसिंह द्वितीय अभी वर्तमान है। आपकी शिक्षा-दीक्षा मेयो कालेज अजमेर में हुई। आप 'पोलो' के विश्व विख्यात खिलाडी रहे हैं। विदेश में जाकर आपने 'रायल मिलेट्री कालेज, वोलविच' से मिलेट्री की उच्च शिक्षा प्राप्त की। आपने भी अपने सुयोग्य शासन से सभी को सन्तुष्ट कर दिया था। बृहद् राजस्थान बनने पर आप ही सर्वप्रथम राजप्रमुख बनाये गये थे। आजकल आप भारत सरकार की ओर से स्पेन की राजधानी मेड्रिड में राजदूत हैं। आपके ३ विवाह हुए हैं, जिनसे ४ राजकुमार तथा १ राजकुमारी का जन्म हुआ है। इस समय केवल तीसरी महारानी श्रीमती गायत्री देवी विद्यमान है, जो लोकसभा की सदस्या हैं। सबसे बड़े पुत्र श्री भवानीसिंह हैं, जो भारत सरकार की सेवा में संलग्न हैं।[4]

शिक्षा प्रेम तथा विद्वत्सम्मान

राजस्थान में शिक्षा और सभ्यता के इतिहास पर जब दृष्टिपात किया जाता है, तो उसमें जयपुर का नाम कनिष्ठिकाधिष्ठित माना गया है। शिक्षा का उद्देश्य मानव के व्यक्तित्व का विकास करना है। वास्तव में सच्ची शिक्षा वही है, जिसके द्वारा शारीरिक मानसिक, नैतिक और बौद्धिक विकास हो। शिक्षा के सद्वृत्तियां जागृत होती हैं और

नीच तथा पाशविक मनोविकार नष्ट होते हैं। परिणामतः शरीर व मन शुद्ध और सुसंस्कृत होकर समाज को भी परिष्कृत करने में सहायक होते हैं। अतः शुद्ध संस्कारों का प्रादुर्भाव ही शिक्षा का सच्चा उद्देश्य है।

अन्य राज्यों की अपेक्षा जयपुर राज्य के शासकों ने समाज के सुसंस्कृत रूप को दृष्टि में रखकर शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया है। वे स्वयं शिक्षित होते थे और सार्वजनिक शिक्षा के लिए पूर्ण प्रयत्नशील रहते थे। जयपुर राज्य में शिक्षा के विस्तार-प्रस्तार का श्रेय महाराजाधिराज सवाई रामसिंह द्वितीय को दिया जाता है। ये स्वयं अंग्रेजी, संस्कृत, उर्दू के साथ ही अपनी स्थानीय भाषा (बोली) के विशेषज्ञ माने जाते थे। इसलिये उन्होंने शिक्षा के स्वरूप व उद्देश्य को समझा था और ज्योंही शासन करने में समर्थ हुए, सर्वप्रथम इन्होंने शिक्षा पर ही ध्यान दिया था।

यों संवत् १९०४ सन् १८४७ ई० में जयपुर में एक मदरसा था, जिसका राजस्थान अभिलेखागार बीकानेर में रिकार्ड मिलता है। उस समय पं० बालमुकुन्द शास्त्री संस्कृत के अध्यापक थे। उपर्युक्त पाठशाला (मदरसा) में पंडित, मौलवी तथा मास्टर एक साथ पढ़ाया करते थे। इस तथ्य की पुष्टि ८ जुलाई, १८५० के रिकार्ड से होती है। इस समय पण्डित शिवदीनजी इस विभाग के सुपरिन्टेन्डेन्ट थे, जो महाराज रामसिंह के गुरु भी थे और कालान्तर में जयपुर के प्रधान मन्त्री भी रहे। संवत् १९०६ में मदरसे में मुन्शी किसनसहाय और मुन्शी कन्हैयालाल अंग्रेजी के अध्यापक थे। श्री बालमुकुन्द शास्त्री, ओझा परमेश्वरदत्त, भट्ट हरिश्चन्द्र तथा भट्ट लक्ष्मणराम ये चार संस्कृत के अध्यापक थे। वैद्य जीवनराम आयुर्वेद और आचार्य गोविन्दराम वेद पढ़ाया करते थे। इसी प्रकार मीर मुराद अली, लाला बालमुकुन्द, मुन्शी कुंजलाल और ओमिर अली ये चार फारसी के उस्ताद थे। इस रिकार्ड के देखने से पता चलता है कि उस समय चांदपोल व गंगापोल नामक स्थानों पर भी एक-एक उस्ताद रहा करते थे, जिनमें शेख मीजाम बख्श और मीर हबीबउल्ला क्रमशः थे। कार्यालयीय अन्य व्यक्तियों सहित कुल संख्या २४ थी। कुल १३८४ रुपये माहवार का खर्च था।[5]

श्री ताराचन्द्र यादव ने "जयपुर में शिक्षा" शीर्षक लेख में संकेत किया है कि सन् १८४४ ई० में जयपुर में शिक्षा विभाग स्थापित हो चुका था।[6] सम्भवतः शिक्षा विभाग के प्रथम संस्थापक पं० शिवदीन जी रहे हैं, जो सुपरिन्टेन्डेन्ट कहलाते थे। शिक्षा के विस्तार के समय सन् १८५२ में महाराजा कालेज नामक संस्था की स्थापना हुई। उस समय तक संस्कृत भाषा के लिए एक स्वतन्त्र संस्कृत विद्यालय की स्थापना की थी, जिसका पूर्ण विवेचन अग्रिम अध्याय का विवेच्य है।

शिक्षा के क्षेत्र में जिन अन्य प्रगतियों का उल्लेख इतिहास में उपलब्ध होता है, संक्षेप में यहाँ उपस्थित किया जाता है।[7]

(१) सन् १८६१ में एजेन्सी के सर्जन डा. बर्र के निरीक्षण में एक मेडिकल स्कूल खोला गया। सन् १८६६ तक यह येन-केन प्रकारेण चलता रहा, परन्तु एक विद्यार्थी पर ५०० रुपये खर्च होते थे, जो बहुत अधिक थे। डा० बर्र के अनुरोध पर सरकार एवं महाराजा की स्वीकृति प्राप्त होने के पश्चात् १ मार्च, १८६८ को इसे बन्द कर दिया गया और यहाँ के विद्यार्थी आगरा मेडिकल कालेज में अध्ययनार्थ जाने लगे।[7] (a)

(२) सन् १८६४ में महाराजा ने स्कूल आफ आर्ट्स नामक संस्था खोली। 'मद्रास स्कूल आफ आर्ट्स' के प्रधान डा० हन्टर ने इसके विस्तार के लिए अनुरोध किया। ये डा० वालिन्टीन के मित्र थे और जून १८६७ में जयपुर आये थे। इस संस्था का प्रारम्भ सर्वप्रथम 'बादल महल' नामक स्थान पर हुआ था, जो कालान्तर में किशनपोल बाजार में विद्यमान भव्य भवन में प्रतिष्ठित की गई। इसमें जयपुर की कला के साथ ही अन्य कलाओं पर भी विशेष ध्यान दिया गया था।[7] (b)

(३) महाराजा कालेज नामक संस्था अपने सही रूप में कार्य नहीं कर रही थी। वास्तविकता को देखकर महाराज ने ३ बंगाली विद्वानों को यहाँ नियुक्त किया था, जो बेथवन कालेज, कलकत्ता में कार्य कर रहे थे। इसके अतिरिक्त अन्य विषयों के अध्यापकों में भी वृद्धि की गई। कालेज उन्नति करने लगा और कलकत्ता विश्वविद्यालय की एन्ट्रेन्स व एफ० ए० की परीक्षा में विद्यार्थी सम्मिलित होने लगे। कालान्तर में यहाँ 'सर्वे और लेवलिंग' विषय

भी खोल दिये गये। सन् १८६६–६७ में इस कालेज में ११ अंग्रेजी अध्यापक, ११ मौलवी और ४ पण्डित थे।[7] (c)

(४) सन् १८६७ ई० से कुछ वर्ष पूर्व का मामला है, जब कि राजपूतों के लिए एक अलग से स्कूल खोला गया था, जिसका उद्देश्य था, राजपूत सरदारों के पुत्रों को उच्च शिक्षा उपलब्ध कराना। १८६७ में केवल १३ विद्यार्थी इस विद्यालय में पंजीकृत थे, जिनमें भी ८ छात्र राजकीय उच्चाधिकारियों के थे और शेष ५ राजपूत थे। महाराज रामसिंह ने इस स्कूल की उन्नति के लिए सभी राजपूतों को आदेश दिया कि वे अपने पुत्रों को अनिवार्य रूप से उक्त विद्यालय में अध्ययन के लिए भेजें और इसके लिए उन्होंने महाराज कालेज, जयपुर के तृतीय वरिष्ठ अध्यापक बाबू संसार चन्द्र सेन को उक्त विद्यालय का प्रधानाचार्य नियुक्त किया।[7] (d)

(५) महाराज सवाई रामसिंह ने छात्राओं के लिए एक अलग स्कूल स्थापित तो किया, परन्तु प्रारम्भ में यह अच्छी और उन्नतिशील स्थिति में नहीं रहा। सन् १८६७ ई० से पूर्व इस स्कूल में पढ़ने वाली छात्राओं की संख्या केवल देवनागरी अक्षरों का ज्ञान मात्र कर रही थी। मई १८६७ में महाराज रामसिंह ने मिसेज आगल्टिन को कलकत्ते से बुलाकर प्रधानाध्यापिका के पद पर नियुक्त किया। इसने आकर इस विद्यालय को तीन कक्षाओं में विभक्त किया, जिसमें प्रथम २ कक्षाओं में भूगोल और सिलाई आदि की शिक्षा दी जाती थी, जब कि तीसरी कक्षा से अध्ययन का प्रारम्भ था। इनकी देख-रेख में स्कूल उन्नति करने लगा।[7] (e)

(६) न केवल जयपुर नगर में ही शिक्षा की उन्नति का प्रयास किया गया, वरन् सारे राज्य में जनता के हित के लिए १७० पब्लिक स्कूल खोले गये, जिनमें अध्ययन करने वाले छात्रों की संख्या निरन्तर बढ़ती रही।[7] (f)

(७) सन् १८७२ में महाराज कालेज बहुत उन्नति कर चुका था। इस वर्ष तक इसका वार्षिक व्यय १७२२६ रु० ६ आने था और प्रति छात्र के हिसाब से यह खर्च २९ रु० साढे चार आने के लगभग आता था। इसका सारा श्रेय बाबू कान्तिचन्द्र मुकर्जी को था, जो उस समय इस कालेज के प्रिन्सिपल थे। यहाँ के दो छात्र सीकर व खेतड़ी के प्रधान सामन्तों के पास भी भेजे गये थे। कुछ छात्र गांवों के स्कूलों में अध्यापक नियुक्त हुए थे।।[7] (g)

(८) स्कूल आफ आर्ट्स ने भी आशातीत उन्नति की थी। इसके छात्र अच्छा ड्राइंग किया करते थे। जब इसका प्रारम्भ किया गया तो इसमें बढ़ई और पत्थर के काम करने वाले (सिलावट) व्यक्तियों के लड़के ड्राइंग किया करते थे, परन्तु बाद में इसमें सभी जातियों के तथा सभी धर्मों के छात्र अध्ययन के लिए प्रविष्ट होने लगे।[7] (h)

(९) महाराजाधिराज सवाई जयसिंह द्वारा निर्मित ज्योतिष यन्त्रालय इस समय तक इतना जीर्ण हो चुका था कि इसके सुधार की आवश्यकता महसूस होने लगी थी। अनेक यन्त्र इस समय तक नष्टप्राय हो चुके थे, उन्हें व्यवस्थित करना आवश्यक था। महाराज सवाई रामसिंह ने तत्कालीन प्रसिद्ध ज्योतिर्षियों की देख-रेख में इस ज्योतिष यन्त्रालय का जीर्णोद्धार करवाया। इसी समय 'राम-यन्त्र' नाम से एक-दो विशेष यन्त्र भी बनाये गये, जो आज भी महत्त्वपूर्ण हैं।[7] (i)

(१०) महाराज रामसिंह जी ने एक स्कूल खोला, जिसमें पटवारियों को सर्वे की शिक्षा दी जाती थी। इस स्कूल पर बहुत अधिक व्यय किया गया था। इसमें कठोर परिश्रम करने वाले और अत्यन्त योग्य व्यक्ति ही सर्वे की शिक्षा प्राप्त किया करते थे।[7](j)

(११) महाराज रामसिंह के प्राइवेट डाक्टर विलियम वेलेन्टाइन ने जयपुर में स्कोटिस मिशन हाई स्कूल की सन् १८६७ में स्थापना की। यह शिक्षा-संस्थान कुछ समय तक विदेशियों की सहायता से चलता रहा। आजकल भी यह स्कूल विद्यमान है।[8]

इस प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में सवाई रामसिंह द्वितीय का योगदान महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इनके परवर्ती शासकों में महाराज सवाई माधोसिंह द्वितीय और महाराज श्री मानसिंह द्वितीय ने उपर्युक्त परम्परा का पूर्णतः निर्वाह किया और इस शिक्षा-धारा को अक्षुण्ण बनाय रखा।

संस्कृत शिक्षा की स्थिति सन् १८६५ ई० से प्रारम्भ होती है। महाराज रामसिंह ने संस्कृत कालेज की स्थापना के अतिरिक्त दो और महत्त्वपूर्ण कार्यों में विद्वानों को उचित सम्मान प्रदान किया। इनमें से प्रथम था जयपुर में 'मोद-मन्दिर' की स्थापना और दूसरा था 'शैव-वैष्णवों का साम्प्रदायिक विवाद', जिनके कारण ख्याति-प्राप्त विद्वान् यहाँ आये थे और उन्हें राज्योचित सम्मान भी प्राप्त हुआ था।

महाराज रामसिंह ने राज्य की धार्मिक व्यवस्था को सुदृढ़ रखने की दृष्टि से तथा आगन्तुक विद्वान् ब्राह्मणों की यथोचित सत्कार भावना से मोद-मन्दिर संस्था की स्थापना की थी। इस संस्था का सम्मेलन प्रतिदिन सायंकाल चन्द्र महल (सिटी पैलेस) के समीप संस्थापित राजराजेश्वर महादेव के सान्निध्य में हुआ करता था। इसकी स्थापना संवत् १९२५ में हुई थी। सर्वप्रथम राजगुरु कथाभट्ट श्री छोटेलाल जी नामावाल (श्री हरगोविन्द) नामक विद्वान् इस संस्था के प्रधान थे और श्री राजीव लोचन ओझा आदि विद्वान् सदस्य थे। कहा जाता है कि महाराज रामसिंह स्वयं प्रायः प्रतिदिन ही इस सभा में उपस्थित हुआ करते थे। बाहर से आने वाले विद्वान् अपनी-अपनी रचनायें सुनाया करते थे और परिणाम-स्वरूप उन्हें उनकी विद्वत्ता के अनुरूप सम्मान प्राप्त होता था। कालान्तर में इस सस्था में विद्या-वाचस्पति श्री मधुसूदन जी ओझा, राजगुरु पं० चन्द्रदत्त जी झा, महामहोपाध्याय पं० दुर्गाप्रसाद जी द्विवेदी, पं० श्री केदारनाथ जी ज्योतिर्विद्, पं० श्री सूर्यनारायण जी व्याकरणाचार्य, पं० श्री कन्हैयालाल जी न्यायाचार्य, पं० श्री वृद्धिचन्द्र जी शास्त्री, व्याकरण-धर्मशास्त्राचार्य, कथाभट्ट, पं० श्री नन्दकिशोर जी साहित्याचार्य (नामावाल) प्रभृति अनेक विख्यात विद्वान् इसके पदाधिकारी रहे हैं। कुछ समय हुआ, अब यह संस्था समाप्तप्राय: हो चुकी है। इसमें शैथिल्य तो १९५० के बाद व्याप्त हो गया था, परन्तु इससे पूर्व भी यह संस्था राज्य के धार्मिक विवादों का ही हल प्रस्तुत किया करती थी। जिस उद्देश्य को लेकर महाराज रामसिंह ने इसकी स्थापना की थी, उनके दिवंगत होने के पश्चात् महाराज माधवसिंह द्वितीय तक यह ठीक स्थिति में चलती रही और उसके पश्चात् भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति तक यह येन-केन प्रकारेण उसी रूप में कार्य करती रही। यद्यपि जितना मनोयोग सवाई रामसिंह ने लिया, उतना उनके परवर्ती शासकों ने नहीं दिया। जयपुर के धर्मार्थ डिपार्टमेंट का इसके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध था। इस संस्था के सदस्यों की अनुमति के बिना यह विभाग धार्मिक विषयों में निर्णय देने में असमर्थ था।[9]

इनके समय शैव तथा वैष्णव सम्प्रदायों का एक भयंकर वाद-विवाद हुआ था। यह घटना सन् १८६६ अर्थात् संवत् १९२३ की बतलाई जाती है। विशेष रूप से चार सम्प्रदायों का यह वाद-विवाद इतिहास-प्रसिद्ध है। इस वाद-विवाद में अनेक वैष्णव जयपुर छोड़ कर चले गये थे और अनेक विद्वान् इस अवसर पर बिहार और वाराणसी आदि स्थानों से यहाँ आये थे और अपनी-अपनी विद्वत्ता के कारण सम्मानित हुये थे। वृन्दावन के श्री रंगाचार्य महन्तश्री जी के साथ जयपुर के विद्वानों का पत्रबद्ध शास्त्रार्थ हुआ था। कहा जाता है कि उनका एक पत्र नैयायिक भाषा में मीमांसा के अधिकरणों से युक्त होने के कारण तत्कालीन किसी भी विद्वान् के समझ में न आ सका और इसका उत्तर देने के लिए महाराज को योग्य विद्वानों की खोज करनी पड़ी थी। महामहोपाध्याय श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ने 'विद्या-वाचस्पति मधुसूदन ओझा' के जीवन चरित विषयक लेख में इसका उल्लेख किया है।[10] मीमांसा के अधिकरणों के ज्ञाता विद्वान् के अभाव में महाराज के सम्मुख एक समस्या उपस्थित हो गई थी, परन्तु पं० श्री राजीव लोचन ओझा ने इस समस्या का समाधान उपस्थित कर राज्य में सम्मान प्राप्त किया था। श्री रंगाचार्य का यह सम्पूर्ण शास्त्रार्थ 'सज्जन-मनोनुरंजनम्' नामक पुस्तक के आकार में प्रकाशित (लीथो) हो चुका है। इस प्रकार सम्प्रदायों के इस वाद-विवाद में अनेक विद्वानों को अपनी विद्वत्ता के आधार पर सम्मान प्राप्त हुआ था।[11]

उपर्युक्त विवेचन से महाराज सवाई रामसिंह द्वितीय का शिक्षा एवं संस्कृत से हार्दिक प्रेम स्पष्टतः परिलक्षित होता है। इनके द्वारा स्थापित परम्परा का निर्वाह करने में परवर्ती शासक महाराज सवाई माधवसिंह द्वितीय सफल रहे हैं, यह उल्लेख किया जा चुका है। अतः इन तीनों शासकों का नाम जयपुर के संस्कृत-साहित्य के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से उल्लेखनीय है।

[ख]

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् विभिन्न लोकतन्त्रीय सरकारों द्वारा संस्कृतोन्नति के प्रयास एवं स्थिति

(१९४७ ई० से १९६५ ई०)

जयपुर राज्य कतिपय शताब्दियों से संस्कृत शिक्षा का महत्त्वपूर्ण केन्द्र रहा है। यहां के शासकों ने मिर्जा राजा मानसिंह प्रथम, महाराजा भावसिंह, मिर्जा राजा जयसिंह प्रथम, मिर्जा राजा रामसिंह प्रथम, महाराज विष्णुसिंह, सवाई जयसिंह द्वितीय, सवाई रामसिंह द्वितीय, सवाई माधवसिंह द्वितीय और महाराज मानसिंह द्वितीय का नाम उल्लेखनीय है, जो अपने शासन काल में संस्कृत-संस्कृति के प्रबलतम समर्थक माने जाते रहे हैं। इन्होंने न केवल अपनी राजधानी में ही, अपितु अपने अधीनस्थ सम्पूर्ण राज्य में संस्कृत-संस्कृति की रक्षा, प्रचार व प्रसार आदि कार्यों में उल्लेखनीय कार्य किया है। भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् अनुमानतः ढाई वर्ष तक अर्थात् १९५० तक संस्कृत शिक्षा में कोई उल्लेखनीय प्रगति नहीं हुई। एकीकरण के पश्चात् १९५० से लेकर वृहद् राजस्थान की स्थापना होने तक विभिन्न समयों में अनेक मन्त्रि-मण्डल बने। इनमें सबसे अधिक समय तक नेतृत्व करने वाले कुशल प्रशासक श्री मोहनलाल सुखाड़िया, मुख्य मंत्री, राजस्थान सरकार का नाम विशेषतः परिगणनीय है। इन विगत १६ वर्षों के शासन को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—(१) **एकीकरण के पश्चात्** और (२) **श्री सुखाड़िया के शासन का प्रारम्भ।**

एकीकरण के बाद और सुखाड़िया शासन से पूर्व राजस्थान का प्रथम मन्त्रिमण्डल जयपुर राज्य के भूतपूर्व मन्त्री **श्री हीरालाल शास्त्री** के नेतृत्व में बना था। श्री शास्त्री जयपुर संस्कृत कालेज के स्नातक रह चुके हैं। ब्राह्मण परिवार के होने के कारण संस्कारों से संस्कृत श्री शास्त्री ने अपने कार्यकाल में संस्कृत की प्रगति के लिये एक संस्कृत-मण्डल की स्थापना की थी। यह सर्वाङ्गीण रूप से न्यूनताओं को समाप्त कर संस्कृत शिक्षा के विस्तार-प्रसार की दृष्टि से अनुभवी विद्वानों का प्रथम मण्डल था। तत्कालीन पाठशालाओं की समस्याओं के साथ ही पाठ्यक्रम के एकीकरण की दृष्टि से इसकी स्थापना अत्यावश्यक थी और सन् १९५१ में निर्मित इस मण्डल के निम्नलिखित सदस्य थे:—[12]

१. श्री मुनि जिनविजय, अध्यक्ष, पुरातत्व मन्दिर, राजस्थान, जयपुर।
२. श्री श्यामसुन्दर शर्मा, तत्कालीन उपसचिव, मुख्यमन्त्री राजस्थान।
३. श्री विष्णुदत्त शर्मा, तत्कालीन उपसचिव, शिक्षा-विभाग।
४. डा० श्री मथुरालाल शर्मा, तत्कालीन प्रिंसिपल, महाराजा कालेज, जयपुर।
५. श्री पट्टाभिराम शास्त्री, तत्कालीन प्रिंसिपल, महाराजा संस्कृत कालेज, जयपुर।
६. श्री शम्भुदत्त शर्मा, तत्कालीन प्रिंसिपल, गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज, अलवर।
७. श्री मार्कण्डेय मिश्र, तत्कालीन प्रिंसिपल, संस्कृत कालेज, उदयपुर।
८. डॉ. फतहसिंह, तत्कालीन प्रोफेसर, हरबर्ट कालेज, कोटा।
९. श्री के० माधवकृष्ण शर्मा, तत्कालीन निरीक्षक, संस्कृत-शिक्षा, राजस्थान।

इस मंडल को ६ विषयों पर विचार करने का अधिकार दिया गया, जिनमें (१) संस्कृत परीक्षाओं का पाठ्यक्रम (२) संस्कृत विद्यालयों में अध्ययन करने वाले छात्रों से ली जाने वाली फीस (३) उक्त विद्यालयों में प्रवेश के नियम (४) उक्त विद्यालयों के अध्यापकों की न्यूनतम योग्यता निर्धारण (५) विभिन्न राज्यों में चल रही पाठशालाओं का एकीकरण तथा (६) व्यक्तिगत संस्थाओं के सहायता नियम आदि मुख्य थे। समिति के निर्णय इसकी स्थापना के कुछ ही समय बाद राज्य सरकार ने कार्यान्वित कर दिये। मुख्य निर्णयों में प्रवेशिका से आचार्य तक का पाठ्यक्रम परिवर्तित नहीं किया गया, क्योंकि इन परीक्षाओं को मान्यता प्राप्त करने की दृष्टि से राजपूताना विश्वविद्यालय को

दिये जाने सम्बन्धी प्रस्ताव पर विचार किया जा रहा था। विद्यालयों में पढ़ने वाले संस्कृत छात्रों के लिये न्यूनतम प्रवेश फीस निर्धारित की गई। संस्कृत अध्ययन करने वाले संस्कृत विद्यालयीय छात्रों को छात्रवृत्तियाँ देने के सम्बन्ध में भी महत्त्वपूर्ण निर्णय लिये गये। प्रारम्भिक शिक्षा को सुदृढ बनाने के लिये प्रवेशिका तक के पाठ्यक्रम में परिवर्तन किया गया और इसमे नवीन विषयों का समावेश किया गया। अन्य कुछ प्रस्तावों को अनावश्यक समझ कर छोड दिया गया, जिसमें संस्कृत के लिये अलग से सुपरिन्टेन्डेन्ट का पद कायम करना और जिला स्तर पर मॉडल स्कूल स्थापित करना आदि थे। एकीकरण से पूर्व संस्कृत पाठशालायें सामान्यतः शिक्षा-विभाग की अन्य शिक्षण संस्थाओं की तरह जिला निरीक्षकों के नियन्त्रण में थी और इस प्रकार उनमें कोई भी विशेष परिवर्तन या परिवर्द्धन नहीं हो पा रहा था। एकीकरण के पश्चात् संस्कृत निरीक्षक का एक अलग पद स्थापित किया गया, जिसमें जयपुर तथा अलवर की संस्कृत शिक्षण संस्थाओं (कालेजों) को छोड कर समस्त राजकीय सहायता एवं मान्यता-प्राप्त शिक्षण संस्थाओं को इसी निरीक्षक, संस्कृत विभाग के अधीन रखा गया। इसका सीधा सम्बन्ध सामान्य शिक्षा संचालक से था। इस प्रकार स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् समूचे राजस्थान में संस्कृत शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति का सूत्रपात हुआ।

सन् १९५४ तक राजस्थान में तीन मुख्यमन्त्री निर्वाचित हुये—(१) श्री **हीरालाल शास्त्री**, (२) श्री **टीकाराम पालीवाल और** (३) श्री **जयनारायण व्यास**। इनके समय में भी श्री सुखाड़िया मन्त्रिमण्डल के सदस्य थे। १९५४ ई० में श्री सुखाड़िया शासक दल के नेता चुने गये और आज तक यह नेतृत्व इनके हाथों में है।[13]

सन् १९५५ में राजस्थान के समूचे शिक्षा-विभाग का पुनर्गठन हुआ और उसमें संस्कृत के लिये अलग से स्थापित निरीक्षणालय का अंग-भंग कर दिया गया। परन्तु राज्य के संस्कृत विद्वानों के शिष्टमंडल के प्रयास से इसकी पुनः स्थापना हुई। संस्कृत विद्वानों के शिष्टमंडल ने मुख्यमन्त्री श्री सुखाडिया के समक्ष कुछ आवश्यक सुझाव रखे, जो निम्नलिखित थे—

१. आयुर्वेद विभाग के समान संस्कृत विभाग भी स्वतन्त्र होना चाहिये, जिसका सीधा सम्बन्ध शिक्षा सचिव से हो, ताकि संस्कृत शिक्षणालयों को उचित और सही संरक्षण व प्रोत्साहन आदि प्राप्त होता रहे। यह स्वतन्त्र विभाग जयपुर नगर में ही स्थापित किया जाये, क्योंकि राजस्थान की सम्पूर्ण शिक्षण संस्थाओं (संस्कृत) का ८५ प्रतिशत भाग जयपुर राज्य में ही है।

२. संस्कृत कालेज एवं पाठशालाओं के अध्यापकों आदि के वेतनमान में वृद्धि की जाय।

३. संस्कृत कालेजों और पाठशालाओं की स्थिति को सुदृढ बनाने के लिये भवन-व्यवस्था एवं पाठन सामग्री की समुचित व्यवस्था के लिये अधिक से अधिक धनराशि दी जाय।

४. छात्रों को उचित छात्रवृत्तियाँ प्रदान की जायें, ताकि वे संस्कृत-अध्ययन के प्रति आकर्षित हों।

५. संस्कृत शिक्षणालयों के साथ छात्रावास की व्यवस्था भी की जाय।

६. संस्कृत में अनुसंधान कार्य के लिये कुछ विशेष छात्रवृत्तियां प्रदान की जांय।

७. संस्कृत भाषा पर मौलिक कार्य करने वाले विद्वानों को सम्मानित किया जाय।

८. संस्कृत विद्वानों को भी शासन के उच्च स्थानों पर पदासीन होने का अवसर दिया जाय।

९. हाईस्कूल तक संस्कृत अनिवार्य विषय हो।

१०. प्राइवेट शिक्षण संस्थाओं को कम से कम ८० प्रतिशत सहायता दी जाय।

११. संस्कृत की समस्त परीक्षाओं—प्रवेशिका, उपाध्याय, शास्त्री और आचार्य को क्रमशः मैट्रिक, इन्टर, बी० ए० व एम० ए० के समकक्ष मान्यता प्रदान की जाय और उन्हीं के समान उनका वेतनमान रखा जाये।

शिष्टमंडल की इन आवश्यकताओं पर महत्त्वपूर्ण निर्णय लेने के लिये और इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण प्रान्त में संस्कृत-शिक्षा की उन्नति के लिये ६ विद्वानों की एक समिति गठित की गई। इसके निम्नलिखित सदस्य थे—

१. श्री लक्ष्मीलाल जोशी	अध्यक्ष	४. श्री जुगलकिशोर शर्मा	सदस्य
२. श्री के० माधवकृष्ण शर्मा	सदस्य	५. भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री	सदस्य
३. श्री रामचन्द्र वामन कुम्भारे	सदस्य	६. श्री चन्द्रशेखर द्विवेदी	सदस्य

उक्त समिति ने ५६–५७ ई० में अपना प्रतिवेदन राज्य सरकार को प्रस्तुत कर दिया। राज्य सरकार ने अनेक महत्त्वपूर्ण निर्णयों को समय-समय पर कार्यान्वित कर सम्पूर्ण राजस्थान में संस्कृत शिक्षा का विकास किया। इस समिति की सिफारिशों को स्वीकार करने की घोषणा उदयपुर नगर में आयोजित राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन के सप्तम अधिवेशन पर सन् १९५८ में मुख्यमंत्री श्री मोहनलाल सुखाड़िया द्वारा की गई। इनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घोषणा थी—**संस्कृत शिक्षा के लिये एक अलग विभाग की स्थापना।** सम्पूर्ण देश में राजस्थान ही प्रथम व एकमात्र प्रान्त है, जहाँ संस्कृत शिक्षा की अभिवृद्धि के लिये यह पृथक् विभाग स्थापित किया गया है। राज्य सरकार ने संस्कृत शिक्षा की समस्याओं पर समाधान प्रस्तुत करने एवं विचार-विमर्श के लिये एक संस्कृत शिक्षा सलाहकार मंडल की स्थापना की और श्री सुखाड़िया ने अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन के चित्तोड़गढ़ अधिवेशन पर १९ जनवरी, १९५९ को उक्त सलाहकार मंडल के सदस्यों के नामों की घोषणा की। अब तक तीन चार बार इस मंडल का परिवर्तन-परिवर्द्धन किया जा चुका है। अब तक जो विद्वान् इस के सदस्य रहे हैं, उनके नाम यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

(१) श्री लक्ष्मीलाल जोशी-अध्यक्ष, (२) म० म० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी-उपाध्यक्ष, (३) श्री विष्णुदत्त शर्मा, (शिक्षा-सचिव) (४) डा० श्री मथुरालाल शर्मा, (५) मुनि श्री जिन विजय, (६) श्री जनार्दनराय नागर, (७) श्री देवीशंकर तिवाड़ी, (८) श्री विद्याधर शास्त्री, (९) श्री जसवन्तसिंह, एम०पी०, (१०) भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री, (११) श्री कन्हैयालाल न्यायाचार्य, (१२) श्री वृद्धिचन्द्र शास्त्री, (१३) श्री चैनसुखदास न्यायतीर्थ, (१४) श्री मोतीलाल शास्त्री, (१५) डा० मण्डन मिश्र शास्त्री, (१६) श्री नित्यानन्द शास्त्री, (१७) श्री चन्द्रशेखर शास्त्री, (१८) श्री आनन्दीलाल शास्त्री, (२०) श्री रामेश्वर ओझा, (२१) श्री खड्गनाथ मिश्र, (२२) संचालक, कालेज शिक्षा, (२३) संचालक प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा, (२४) श्री के० माधवकृष्ण शर्मा—सदस्य सचिव इत्यादि रहे हैं। इनमें से क्रमांक २, ३, ५, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १६ तथा २४ दिवंगत हो चुके हैं तथा क्रमांक १७ जगद्गुरु शंकराचार्य पुरी पीठ पर आसीन हैं। इस मण्डल की आवश्यक मीटिंग प्रायः राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन के विशिष्ट अधिवेशन के अवसर पर आयोजित होती रही है। यद्यपि यह मण्डल इस समय भी वर्तमान है, परन्तु अब उसका कोई उल्लेखनीय कार्य दृष्टिगोचर नहीं होता।

संक्षेप में एकीकरण के पश्चात् तथा श्री सुखाडिया के शासन काल (वर्तमान तक) की कुछ उल्लेखनीय उपलब्धियों को इस प्रकार संकेतित किया जा सकता है—

१- संस्कृत की प्रवेशिका तथा उपाध्याय परीक्षाओं का राजस्थान माध्यमिक बोर्ड से सम्बन्ध (सन् १९६२ ई० से)।

२. राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर की स्थापना एवं इसकी प्रान्त व्यापी विभिन्न सात शाखायें (१९५० ई०, १९५५ ई० में जोधपुर में स्थायी भवन)।

३. संस्कृत विद्यालयों का वर्गीकरण।

४. शास्त्री तथा आचार्य आदि परीक्षोत्तीर्ण अध्यापकों को राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा मान्यता।

५. सभी संस्कृत परीक्षाओं का अंग्रेजी परीक्षाओं के समकक्ष मान लिया जाना।

६. छात्रवृत्तियाँ-आचार्य २० रु०, शास्त्री १५ रु०, उपाध्याय १० रु०, प्रवेशिका ५ रु०।

७. वेतन स्तर में आशातीत वृद्धि।

८. संस्कृत शिक्षकों के प्रशिक्षण की सुविधा।

९. शिक्षा-शास्त्री को बी० एड० के समान मान्यता।

१०. विद्वानों को वृत्तियां—(क) जीवन निर्वाह वृत्ति — १०० रु० प्रति मास
(ख) योग्यता पारितोषिक— २००० रु० से ३००० रु० तक
(ग) अनुसंधान वृत्ति —१०० रु. से २००रु. मासिक। इनमें अब तक लगभग १५–२० व्यक्ति लाभान्वित हो चुके हैं।

११. संस्कृत पाठशालाओं एवं संस्कृत कालेजों की स्थापना, उनका स्तर-वर्द्धन एवं संख्या-वृद्धि।

१२. गैर सरकारी संस्थाओं एवं संगठनो को आर्थिक सहायता।

१३. संस्कृत विभाग [संस्कृत निदेशालय] की स्वतंत्र स्थापना।

१४. संस्कृत-शिक्षा-परामर्श मण्डल की स्थापना।

१५. संस्कृत परीक्षाओं के पाठ्यक्रम का आधुनिकीकरण।

१६. संस्कृत पाठशालाओं को उदार आर्थिक सहायता।

राजस्थान सरकार ने निम्नलिखित व्यक्तियों (संस्कृत विद्वानों) को पुरस्कृत किया है—**१. कविशिरोमणि भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री, २. श्री विद्याधर शास्त्री, ३. श्री नित्यानन्द शास्त्री, ४. श्री गिरिजा प्रसाद द्विवेदी, ५. श्री युधिष्ठर मीमांसक, ६. श्री गिरिधारीलाल व्यास, ७. श्री मल्लिनाथ चौमाल, ८. आशुकवि श्री हरि शास्त्री दाधीच, ९. श्री जगदीश शर्मा, इत्यादि।**

जीविका-निर्वाह के लिए १. श्री रामनिवास सौरभ, झालावाड़ को तथा २. श्री युधिष्ठर मीमांसक को अनुसंधान के लिए सहायता दी गई। विशेष योग्यता वेतन में संस्कृत के श्री (डा०) नाथूलाल पाठक, श्री के. माधवकृष्ण शर्मा व श्री डा० फतहसिंह के नाम उल्लेखनीय हैं।[१४] इस प्रकार स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् राजस्थान में संस्कृत शिक्षा पर बहुत व्यय किया गया है तथा आशातीत उन्नति हुई है।

जयपुर नगर में संस्कृत शिक्षा की स्थिति (१९४७-१९६५ ई०)

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर को विशेष हानि हुई है। जहाँ शासकों की दृष्टि उसे उन्नत करने के लिये एक ही स्थान पर केन्द्रित थी, वहां वह दृष्टि समूचे राजस्थान पर फैल गई। परिणामतः जो उसका स्वरूप था, उसमें क्रमशः ह्रास ही हुआ। म० म० श्री चतुर्वेदीजी ने अपने २० वर्ष के प्राचार्यत्व में जो उन्नति की थी, वह इस समय धूलि-धूसरित हो चुकी है। उन्होने जिन नवीन विषयों को यहाँ खोला था, उनमें से अधिकांश समाप्त हो चके हैं। जो भी विद्वान् सेवानिवृत्त हुए, अधिकांशतः उनके पद भी समाप्त हो गये। यों संस्कृत शिक्षा निदेशालय की स्थापना होने एवं राजस्थान पुरातत्व मन्दिर की शाखा स्थापित होने से जयपुर नगर में संस्कृत शिक्षा का महत्त्व बढा है, परन्तु फिर भी इस नगर में संस्कृत शिक्षा के लिये विकासात्मक कार्य नगण्य है। संस्कृत के एक स्वतन्त्र विश्वविद्यालय की स्थापना का मामला भी सुना गया था, परन्तु अब इसकी कोई आशा नहीं है। मेरी दृष्टि में जब तक संस्कृत शिक्षा को सही प्रोत्साहन नहीं प्राप्त होगा और संस्कृत विद्वानों को उचित सम्मान प्राप्त नहीं होगा, तब तक यह समस्या समाश्रित नहीं हो सकती। जयपुर नगर में संस्कृत शिक्षा के इस ह्रास का उत्तरदायित्व वर्तमान शिक्षाधिकारियों पर ठहराया जा सकता है, जिनने इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया।

———

परिचय--खण्ड

द्वितीयाध्याय के सन्दर्भ व उद्धरण

(References and Notes)

APPENDIX–3

"A BRIEF HISTORY OF JAIPUR"

(BY–THAKOOR FATEH SINGH CHANPAWAT)

(PUBLISHED IN 1899)

Abstracts From Pages 127–129

References of Chapter II of Part I.

"Maharaja Sawai Ram Singh Ji"

Ref. No. 3.

"Born on the night of Bhadoon Sudi 14th, st. 1890 (Friday) at 2 A. M. it being the month of August or September, 1832.

Installed on the **Rajgaddi** on the 8th. (Sudi) of Magh, st. 1891.

The Maharaja had nine Ranies, but had no son. He while still alive nominated and adopted **Kayam Singh** of Ishardah, as his successor, and the latter now rules the State under the name and title of **H. H. Shri Sawayee Madho Singh Bahadoor**, G. C. S. I.

Maharaja Sawayee Ram Singh was only six months old when he was installed on the Gaddi. **Maji Chandrawatiji** (mother of Maharaja Ram Singh) was now the regent dowager. **Jhoonta Ram**, the two slave girls and their favorites, viz. **Dewan Amar Chand, Hookam Chand, Munna Lal, Siriji Mahant, Thakoor Megh Singh of Diggi, Thakur Shyam Singh of Bisao**, some *Shekhawats*, **Rai Hanuwant Singh of Manoharpore**, and **Thakoor Chimman Singh of Saiwar**, all now rose into power and again occupied all the high and responsible posts in the state.

As **Maji Bhattianiji** favoured the Sunghi and his deeds and disliked and hated Rawalji, so did Maji Chandrawatiji too, but the Agent of the Governor General dismissed Jhoonta Ram and all his allies from all the posts occupied by them. Jhoonta Ram and his favorites and co-advisors were sent to Dosa Fort as State prisoners. Roopan the slave girl was imprisoned in Madho Rajpura Fort. Rawalji was now appointed as the sole Manager of the State."

Page No. 174-75.

"When the Maharaja was 12 or 13 years old one **Pandit Sheodin** of Agra College was appointed as English and Urdu tutor to the Maharaja and in a very short period. His Highness was able to read and speak English and Urdu tolerably well. He did not make Urdu or English speaking his daily practice, but rather liked to converse in his own Jeypore Language. Sanskrit was his favourite subject and he had been learning it from his sixth year, and now he had a knowledge of its sufficient to enable him to understand ordinary sanskrit books himself without the help of a teacher."

"In 1860 A. D. **Thakoor Lachhman Singh** died, and Pandit Sheo Din was formlly invested with the robe of honour of the Prime Minister. Pandit Sheodin exercised the full powers of Minister till 1863 A. D., while he was helped in his work by **Nawab Faiz Ali Khan** and **Purohit Rampershadji**. These two gentlemen sat with him while he passed judgement on the **Hazoori** papers. Pandit Sheodin died in 1864 A. D.

Page 127–29.

Ih Sumbat 1891 (1834 A.D.) on the Basant Day when there was a Public fair, His Highness the Maharaja drove in public on an elephant. The **Rao of Dooni** was in attendance. His Highness The Maharaja whispered something to the attending chief. The news of this whisper reached Sunghi through the elephant driver and he atonce began to fear and suspect that his fall was determined on so that the Maharaja might be independent. From what followed it was suspected that Jhoonta Ram committed an act of high treason and regicide, for he allowed not even the menials to see the Maharaja in his last moments.

There was no procession held on Bhanu Saptmi and on Asthmi, i.e., the next day, just three days after Basant, H. H. 's death was published. We have no eye witness to testify to the suspicion of Jhoonta Ram's murdering the Maharaja, and the sudden death, hasty funeral and cremating also do not go prove for certain that Jhoonta Ram was guilty of the heinous offence of regicide, but the public minds were so worked with the idea of regicide that at the cremation Gaitore grounds, there was actually a revoult. The sarrawagies. i. e. the caste-fellows of Jhoonta Ram, that were in the State Employee as Clerks, & c., and that had attended the funeral were pelted by stones and struck lathies (sticks) furiously. Gaitore cremation yard has a pucca wall allround it. The Brahmins climbed the walls, threw stones at the Sarrawagies. Some of these stones even reached the burning pile. Jhoonta Ram now with great humility begged the Brahmins to desist from their harsh conduct. but they heard him not. He then ordered the attending Sepoy to put down the rebels and use force if needed. Six or seven Brahmins got wounded in the bustle. The Brahmins then returned to the city.

In the city some vagabond beggars joined them and they attacked many Jain

Temples, plundered some seven of them, broken the images there in and installed the idols of Shiva in place thereof. private houses were also looted.

This violence on the part of the Brahmans towards the Saraogies and the Jains was based only on their belief (right or wrong), that Jhoonta Ram was the sole cause of the untimely death of the Maharaja.

Jhoonta Ram and his men (mostly saraogies) returned from Gaitore very privately and begin afraid of their own safety did not go to their respective homes, but took shelter in the palace; Jhoonta Ram having be taken himself to the Dewan Khana.

The Sunghi at last succeeded in dispersing the rioters and restoring peace in the city. Now there were the usual death ceremonies for twelve days. On the 12th. bay there was a general feasting of the Brahmins.

The Agent to the Governor General (then in Shekhawati) hearing this sad news came to Jepore atonce and found the Court and Darbarries all divided into two parties. The men siding Jhoonta Ram declared that H.H. the Maharaja had urinary disease and that he died of it, whilst men of the other party affirmed that Jhoonta Ram and Roopan Badtran had jointly murdered their master by poison or some weapon. We tried to trace the truth of all this but have been able to make out so much only as certain that the Maharaja was kept under close survilence by the Sunghi till his last moments, that there was no report abroad whatever of the Maharaja being unwell, and that no body was allowed to see the Maharaja even after his death.

All these facts create a strong suspicion against Jhoonta Ram. We cannot believe that version of the story, which declares that the Maharaja was murdered by some weapon; for had that been so, the Khavas and the Cheelas would have got some clue to it. but there is a strong likelihood of that such an all powerful minister may have faithlessly disloyally and cruelly disposed of his royal master by poison.

Ref. No. 7–A (i)

Page 191. A medical School was opened here at Jeypore in 1861 A.D. and it was put under the direct supervision of Dr. Burr, the Agency Surgeon.

Ref. No. 7–A (ii)

Page 199. This very year 1866 (S. 1923) there was a discussion as to the availability of abolishing the Medical School of Jeypore. Dr. Burr reported the matter to the Government and H. H. the Maharaj was requested to give his opinion on the Subject. Dr. Burr was of opinion that instead of giving the students medical training here at high cost of Rs. 500/– per student it would be better to send candidates to the Medical School of

Calcutta to be trained. The Maharaja after due consideration, adopted the suggestion of the British Government and resolved to send all medical students to the Agra Medical College.

Ref. No 7—A (iii)

Page 209. (1868 A. D.) His Highness the Maharaja's proposal to abolish the Medical School (Jeypore) having been confirmed by the Government & the Jeypore Medical School was abolished on March 1st, 1868 A. D., and the students of the school were sent to the Agra Medical School instead of Calcutta, the latter place being considered too far away for the Jeypore students besides the objection on the score of climate, strange language &c.

Ref. No. 7—B (i)

Page 192. This very year the Maharaja opened a School of Arts, which he was persuaded to do while at Calcutta by sir Charles Travelyan.

Ref. No. 7—B (ii)

Page 205. (1867 A.D.) At the suggestion of Dr. Hunter (Madras School of Arts) who came to Jeypore at the invitation of Dr. Velentine, H. H. the Maharaja founded the Jeypore School of Arts in June 1867 A. D. At first the school was started in the Badal Mahal (Cloud Palaces) but was very soon transferred to the building it now occupies. This spacious building was erected for the use of Pandit Sheo Din ji. At this time Dr. Defabick of the Harote Agency happened to come to Jeypore. He applied to be appointed Superintendent of the new School. His application was granted and the accordingly became the Superintendent of the School. Dr. Defabick shortly after left Jeypore on Leave. Later Baboo Opendra Nath Sen, son of Baboo Harimohan Sen was appointed principal of the School. During these years as the scarcity of timber was being felt the necessity for organishing forest preserves was seen and a forest preserving establishment was accordingly appointed.

Ref. No. 7—C

Page 197. (1866 A.D.) The college did not prosper and hence three Bengali Masters from Calcutta Bethone College were appointed as masters and the staff was increased. Very soon the college improved and students passed successfully Calcutta University Entrance and F. A. Examinations. Later on there was opened a survey and Leveling class. In the year 1966-67 there was opend a survey and Leveling class. In the year 1966-67 there was 11 English Teachers, 11 Molvies and 4 Pandits.

Ref. No. 7–D

Page 204. (1867 A. D.) Some years before this a school for Rajpoots had been established but it had made no progress. The number of students on the roll was only 13, out of which 8 were the sons of Rajputs. The Maharaja was very much dissatisfied with this state of things and issued strict orders to the several Rajput Chiefs to send their sons to the school for training. He appointed Baboo Sansar Chander Sen, (3rd. Master, Maharaja College) as Head Master of the School. This new arrangement proved successful and the number of the students was soon increased.

Ref. No. 7–E

Page 205. (1867 A.D.) A Girl's school was also established but it was not good and prosperous condition. The number of girls in the school was only 25, and all were only learning the letters of the Deo Nagri Characters. In May 1867 A. D., H. H. The Maharaja called one Mrs. Oogaltin from calcutta and appointed her as Head Mistress. This lady arranged the school in to three classes. The first and second classes had to learn Geography and sewing, whilest the 3rd (last) class was for beginners only. The school propspered under the new mistress.

Ref. No. 7–F

Page 205. (1867 A.D.) One hundred and seventy public schools were now opened throughout the State and the number of scholars in the schools gradually increased.

Ref. No. 7–G

Page 249–50. (1872 A.D.) The Maharaja's College had gone on prospering until this year, The cost of its maintenance came upto Rs. 17,226.6.0 or Rs. 29–4–6 per student. It was through the effort and the energy of Babu Kati Chandra Mukherji, the then Principal of the college, that the college prospered. Two students were sent out as Ataliques to the Sikar and Khetri chiefs respectively. Some students also were appointed as village School Masters.

Ref. No. 7–H

Page 250. (1872 A.D.) The School of Arts also improved in much in Drawing. In the beginning only sons of carpenters and masons joined the Drawing class but now there were students in the drawing class of casts and creeds.

Ref. No. 7–I

Page 257–58. (1873 A.D.) "Janter" or The Observatory"—The observatory is on the east side of the palace but within the palace ground. Mention of it has already

been made under Sawayee Jey Singh's rule. This building had long lain in ruins and wanted repairs. Many of the useful, apparatus were out of order and broken. These were all now repaired and put to rights.

The lines in the instruments (of stone and lime mortar) were filled with black lead to ensure that they would last long. Guards were also posted at the observatory gates.

Ref. No. 7–J

Page 293. (Reforms introduced and carried out in the State during the period intervenin betweeng 1876 A.D. to 1880)

(SURVEY SCHOOL FOR THE PUTWARIES)

Much inconvenience had been experienced and much money had been spent, the last time when the state lands were surveyed in consequence of the state having had to employ traind surveyors. It was resolved therefore to open a school to train the State Patwaries in survey work. Some hard working and intelligent men learned to survey by plain table and compass.

REFERENCE OF SECOND CHEPTAR

1. "नाथावतों का इतिहास" (जयपुर का इतिहास) पं. हनुमान् प्रसाद शर्मा चौमू पृष्ठ२५६, १५वां अध्याय। प्रथम संस्करण संवत् १९९४।
2. वही–पृष्ठ २६०–२६१।
3. 'ए ब्रीफ हिस्ट्री आफ जयपुर'–ठा० श्री फतहसिंह, पृष्ठ १२७–१२८, परिशिष्ट ३ (Appendix)।
4. शोधग्रन्थ-लेखन के समय ये जीवित थे, परन्तु १९७० ई० में उनका देहान्त हो गया और इनके ज्येष्ठ पुत्र सवाई भवानीसिह जयपुर के राजा बने, जो अभी वर्तमान में है।
5. राजस्थान अभिलेखागार, बीकानेर से प्राप्त रिकार्ड–पूर्ण प्रतिलिपि, परिशिष्ट ४ में देखिये।
6. "हितैषी" पत्रिका के 'जयपुर अंक' में प्रकाशित लेख। पृष्ठ संख्या–२१९।
7. "ब्रीफ हिस्ट्री आफ जयपुर"–ठा० फतहसिंह चांपावत। देखिये, परिशिष्ट–३।

7.—(a) उक्त इतिहास पृष्ठ १९१, १९६ और २०६ (ए–१, ए–२, ए–३)।
7.—(b) ,, ,, पृष्ठ १९२ और २०५ (बी–१, बी–२)।
7.—(c) ,, ,, पृष्ठ १९७।
7.—(d) "ए ब्रीफ हिस्ट्री आफ जयपुर" परिशिष्ट ३–पृष्ठ २०४।
7.—(e) ,, ,, ,, ,, परिशिष्ट ३–पृष्ठ २०५।
7.—(f) ,, ,, ,, ,, परिशिष्ट ३–पृष्ठ २०५।

7. —(g) ,, ,, ,, ,, परिशिष्ट ३–पृष्ठ २४९–५० ।
7. —(h) ,, ,, ,, ,, परिशिष्ट ३–पृष्ठ २५० ।
7. —(i) ,, ,, ,, ,, परिशिष्ट ३–पृष्ठ २५७–२५८ ।
7. —(j) ,, ,, ,, ,, परिशिष्ट ३–पृष्ठ २९३ ।
8. "हितैषी" जयपुर अंक, श्री ताराचन्द यादव का लेख–'जयपुर में शिक्षा', पृष्ठ २२९ ।
9. (क) संस्कृत कालेज के प्राध्यापक, इतिहास गवेषक, स्व० पं० श्री नन्दकिशोर शर्मा कथाभट्ट के व्यक्तिगत संग्रह से तथा राजगुरु कथाभट्ट पं० नन्दकुमार शर्मा के सौजन्य से प्राप्त इतिवृत्त के आधार पर ।
(ख) लेखक के पिता स्व० श्री वृद्धिचन्द्रजी शास्त्री, उपाध्यक्ष, मोद-मन्दिर जयपुर के निजी संग्रह के आधार पर ।
(ग) महामहोपाध्याय पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी–"आत्मकथा और संस्मरण ।"
10. म० म० पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी का लेख–"विद्या-वाचस्पति मधुसूदन ओझा" (पूर्वार्द्ध) सुधा पत्रिका वर्ष २ खण्ड १ संख्या १ श्रावण ३०६ तुलसी संवत्, पृष्ठ १११ ।
11. ए ब्रीफ हिस्ट्री आफ जयपुर–ठा० फतहसिंह चांपावत, पृष्ठ १९८ के आधार पर ।
This year–1866 A.D.–there was the bitter and lengthy dispute among the four Samperdas (Religious Sects)........)"
12. राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन के द्वादशाधिवेशन, भीलवाड़ा के अवसर पर प्रकाशित स्मारिका के विशेष लेख, पृष्ठ ९७ के आधार पर ।
13. ग्रन्थ-लेखन के समय के तथ्यों के अनुसार श्री सुखाड़िया ही राजस्थान के मुख्य मन्त्री थे । कालान्तर में श्री हरिदेव जोशी मुख्य मंत्री बने और १९७७ में जनता पार्टी के श्री भैरोंसिंह शेखावत, जो अभी वर्तमान हैं, मुख्यमंत्री हैं ।
14. कालान्तर में संस्कृत विषय में दो विद्वानों को 'योग्यता पुरस्कार' और दिया गया, जिनमें डॉ० श्री ब्रह्मानंद शर्मा व डॉ० प्रभाकर शर्मा (इन पंक्तियों के लेखक) का नाम भी स्मरणीय है ।

तृतीय-अध्याय

(क)

महाराज संस्कृत-कालेज, जयपुर की स्थापना का इतिहास
एवं
संस्कृत विद्वानों का सत्कार

राजस्थान-अभिलेखागार, बीकानेर से प्राप्त प्रमाणों के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि महाराज सवाई रामसिंह द्वितीय के बाल्यकाल से पूर्व भी संस्कृत का अध्ययन-अध्यापन होता रहा है । यों इससे भी पूर्व संस्कृत के विद्वानों की परम्परा का उल्लेख तो प्राप्त होता है, परन्तु उनके अध्यापक होने का विशेष उल्लेख नहीं मिलता[1] । वे राज सम्मानित पदों का उपभोग करते हुए या तो अपनी साधना में लगे रहे अथवा उन्होंने रचनात्मक कार्य द्वारा संस्कृत साहित्य को समृद्ध किया । जयपुर की स्थापना के वाद सर्वप्रथम **पं० बाल मुकुन्द शास्त्री** का नाम संस्कृत के अध्यापक के रूप में मिलता है । यह रिकार्ड फाल्गुन कृष्णा ५ सं. १९०४ अर्थात् ईसवी सन् १८४७ का है ।[2] इसके पश्चात् आषाढ कृष्णा १४ सं० १९०६ तदनुसार ईसवी सन् १८४९ के प्रमाण से ज्ञात होता है कि **पं० शिवदीनजी** के निरीक्षण में एक पाठशाला चलती थी, ' जिसमें हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी तथा फारसी के पढाने की व्यवस्था थी ।[4] यह पाठशाला महाराज सवाई रामसिंह द्वितीय के आदेश से कुछ समय तक सम्मिलित रूप में ही चलती रही, परन्तु संस्कृत व अंग्रेजी शिक्षा में उद्देश्य-भिन्नता होने के कारण इन दोनों के अलग-अलग शिक्षण की व्यवस्था की गई । कहा जाता है कि सन् १८५२ ई० में यह दोनों विद्यालय एकीकृत थे, परन्तु १८६५ ई० में इनका स्वतंत्र रूप दृष्टि-गोचर होता है । उनमें से संस्कृत विद्यालय (वर्तमान संस्कृत कालेज) श्री रामचन्द्रजी के मंदिर, सिरह ड्योढी बाजार में स्थापित किया गया, जहाँ यह आज भी विद्यमान है । संस्कृत-रत्नाकर के विशेषांक "शिक्षांक" में संस्कृत कालेज के संक्षिप्त इतिहास को प्रस्तुत करते हुए स्वर्गीय पण्डित श्री वृद्धिचन्द्रजी शास्त्री ने लिखा है:—[5] **"कलानां विद्यानां च प्रचाराय तेन देशेभ्यो विदेशेभ्यो विचक्षणा विद्वांसो महतादरेण समाहूय स्वराज्येऽस्मिन् रक्षिताः । किंच समयमनुरुन्धानेन महाराजेनानेन प्राच्य-प्रतीच्योभयविद्याविभागयुक्तस्यैकस्य महाविद्यालयस्य वप्रमप्यवस्थापितम् । किन्तु भिन्नलक्ष्ययोर्भिन्नसंस्तिप्रचारिकयोश्च प्राच्यप्रतीच्यविद्ययोरेकत्रासन-संस्थितिः प्रकाशान्धकारयोः स्थितिरिव दुःशकेति मत्वा ईशवीयस्य १८६५ संवत्सरस्याष्टममासस्य षड्विंश तारिकायां भिन्नतां नीतोऽसौ विद्यालयो (अ) नादिनिधनं ब्रह्म सृष्टिकाले प्रकृतिपुरुषयोरिव पार्थक्येनांग्ल विद्यालयस्य संस्कृत-विद्यालयस्य च रूपं जग्राह । तावेव विद्यालयौ संप्रति "महाराजांग्लकालेज" "महा-राज संस्कृत कालेज" नाम्ना प्रसिद्धौ जनतायाम् । तयोः संस्कृत-विद्यालयोऽयं विद्यालयवियोगावसरे जयपुरस्थसुप्रसिद्ध-राजभवने सुन्दरे श्री रामचन्द्र-मन्दिरे प्रतिष्ठापितोऽद्यावधि तत्रैव वर्तमानः समेधते ।"**

संस्कृत कालेज के भूतपूर्व प्रिंसिपल तथा भारत-विख्यात विद्वान् म. म. पं० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ने *"आत्मकथा और संस्मरण"* नामक पुस्तक में संस्कृत पाठशाला के सम्बन्ध में लिखा है[6]—*"यह संस्कृत पाठशाला विक्रम सं. १९२२ में जयपुर के महाराज श्री रार्मसिहजी ने स्थापित की थी। दूर से विद्वानों को एकत्र कर इसमें भिन्न-भिन्न शास्त्र पढाने को नियत किया था। आरम्भ में इस पाठशाला के अध्यक्ष* **श्री एकनाथजी मैथिल** *नियत किये* गये थे। किन्तु कुछ वर्षो के अनन्तर ही श्री महाराज रार्मसिहजी काशी से सुप्रसिद्ध श्री विभवरामजी भाष्यवृद्धचारी के पुत्र **श्री रामभजजी** और शिष्य **श्री शिवरामजी सारस्वत** को अपने साथ जयपुर लिवा ले गये और श्री रामभजजी को ही संस्कृत पाठशाला का अध्यक्ष नियत कर दिया। इस पाठशाला में व्याकरण, साहित्य, न्याय, ज्योतिष तथा आयुर्वेद का अध्यापन उन दिनों चलता था।"

राजस्थान के शिक्षा मंत्री श्री शिवचरण माथुर की अध्यक्षता में आयोजित उपाधिवितरणोत्सव पर प्रकाशित (१९६७-६८ ई०) कालेज के प्रतिवेदन में वर्तमान अध्यक्ष पण्डित गोविन्दनारायणजी *न्यायाचार्य* ने उपर्युक्त दोनों अवतरणों का समर्थन किया है। लिखा है कि–*"भारत के इस प्रतिष्ठित-शिक्षा संस्थान की स्थापना अब से ११५ वर्ष पूर्व* सन् १८५२ में जयपुर के महाराजाधिराज स्वनामधन्य श्री रार्मसिहजी ने विशुद्ध सांस्कृतिक केन्द्र के रूप में की थी।" ".....प्रारम्भ में यह संस्कृत महाविद्यालय तथा महाराजा कालेज दोनों साथ–साथ चलते रहे, किन्तु सन् १८६५ ई. में इस मंदिर को ही श्री सरस्वती मंदिर के रूप में स्थानान्तरित करवा दिया गया।"[7]

इस प्रकार यही स्वीकार किया जाना उचित लगता है कि इस संस्कृत महाविद्यालय का स्वतन्त्र रूप सन् १८६५ ई. में हुआ अर्थात् अब से १०४ वर्ष पूर्व।

अध्यक्ष-परम्परा

ऐसा माना जाता रहा है कि इस संस्कृत विद्यालय के पृथक्करण के समय पण्डित श्री एकनाथ झा (मैथिल) अध्यक्ष मनोनीत किये गये थे। संवत् १९०९ के रिकार्ड के अनुसार उस समय तक श्री झा उस सम्मिलित मदरसे में अध्यापक नहीं थे। उस समय केवल **श्री बालमुकुन्द शास्त्री, ओझा परमेश्वरदत्त, भट्ट हरिश्चन्द्र, भट्ट श्री लक्ष्मणराम** संस्कृत पढाने के लिये नियुक्त थे और **श्री जीवनराम वैद्य** आयुर्वेद तथा **आचार्य गोविन्दराम** वेद पढ़ाया करते थे।[8] श्री रार्मसिहजी ने श्री **एकनाथजी झा** को सर्वप्रथम इस विद्यालय का अध्यक्ष बनाया। परन्तु कहा जाता है कि अध्यक्ष का सारा कार्य आचार्य श्री गोविन्दरामजी को करना पड़ता था। श्री झा पर्याप्त वृद्ध हो चुके थे। अतः केवल व्याकरण शास्त्र ही पढाया करते थे। महाराज रार्मसिंह काशी से लौटते समय पं० **श्री रामभजजी सूरी** को लिवा लाये और फिर इन्हें अध्यक्ष बना दिया। संस्कृत कालेज में विद्यमान सब से प्राचीन उपस्थिति रजिस्टर सन् १८६९ का प्राप्त होता है, जिसमें माघ कृष्णा ३, १ जनवरी, १८६९ को ११ विद्वानों के नाम हैं।[9] इसमें श्री रामभजजी[10] का नाम है।। यद्यपि इनके साथ ही श्री एकनाथजी झा और आचारज श्री गोविन्दरामजी का नाम भी है, परन्तु उस समय अध्यक्ष का कार्य श्री रामभजजी ही किया करते थे। तत्कालीन विद्वानों के नाम इस प्रकार हैं :—

१. आचारज श्री गोविन्दरामजी
२. श्री रामभजजी
३. श्री ओझा एकनाथजी
४. पण्डित शिवरामजी
५. ओझा श्री जीवनाथजी
६. ओझा श्री भैयाजी
७. पण्डित बालमुकुन्द जी शास्त्री
८. पण्डित गंगावल्लभ जी
९. वैद्य श्री जीवन राम जी
१०. कथाभट्ट पण्डित वृन्दावन जी
११. पण्डित वेणीराम जी

राजस्थान अभिलेखागार, बीकानेर के रिकार्ड सन् १८७१ तथा १८७३ के अनुसार केवल एकनाथ जी को छोड़कर उपर्युक्त कुल १० अध्यापक संस्कृत कालेज में अध्यापन कार्य कर रहे थे। इसी वर्ष **पण्डित गंगावल्लभ जी** के एवज में उसके पुत्र श्री **कृष्णचन्द्रजी** की नियुक्ति हुई। पं. बालमुकुन्द जी के एवज में **पं० बदरीलाल** एवं ओझा एकनाथ जी के स्थान पर उनके पुत्र **ओझा नरहरिजी** को अध्यापक बनाया गया।[11]

संस्कृत कालेज जयपुर के प्राचीनतम रिकार्ड सन् १८६९ ई० की उपस्थिति पंजिका के जून मास में लिखा है कि ५ जून, १८६९ को मिति ज्येष्ठ बदी ११ संवत् १९२६ को ओझा एकनाथ जी फोत हुए। रिकार्ड को देखने के पश्चात् अध्यक्षों की परम्परा का दिग्दर्शन निम्नांकित रूप से चित्रित किया जा सकता है :—

क्रम सं०	नाम प्राचार्य	विषय	कार्यकाल
१.	**श्री एकनाथ झा मैथिल***	व्याकरण	१८६५ से १८६८ ई०
२.	**श्री रामभज सारस्वत**	व्याकरण	१ जनवरी, १८६९ से २७ अप्रैल, १८९३ ई०
३.	**श्री लक्ष्मीनाथ शास्त्री द्राविड़**	साहित्य	२ मई, १८९३ से १ फरवरी, १९०७ ई०
४.	**म० म० पं० दुर्गाप्रसाद द्विवेदी**	ज्योतिष	१ मई, १९११ से १२ अप्रैल, १९२६ ई०
५.	**म० म० पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी**	दर्शन	१ जुलाई, १९२६ से १३ मई, १९४४ ई०
६.	**पं० श्री घूटर झा**	दर्शन	१ मई, १९४४ से २१ जनवरी, १९४५ ई०
७.	**पं० पी० एन० पट्टाभिराम शास्त्री**	मीमांसा	३ अप्रैल, १९४५ से ४ फरवरी, १९५२ ई०
८.	**श्री के० माधवकृष्ण शर्मा**	व्याकरण	५ फरवरी, १९५२ से २३ फरवरी, १९५५ ई०
९.	**पं० श्री चन्द्रशेखर द्विवेदी**	व्याकरण	२४ फरवरी, १९५५ से ६ मई, १९६४ ई०
१०.	**पं० श्री गोविन्दनारायण शास्त्री**	न्याय	७ मई, १९६४ से ३० अक्टूबर, १९७३ ई०

एक अध्यक्ष के अवकाश प्राप्त करने पर तथा द्वितीय अध्यक्ष की नियुक्ति तक बीच-बीच में वरिष्ठतम प्राध्यापकों ने ही कार्यभार सम्भाला हो, यह पुष्ट नहीं होता। जिन विद्वानों ने अस्थायी रूप से कुछ समय तक अध्यक्ष का कार्य किया है, उन विद्वानों में श्री शिवराम शास्त्री, श्री हरदत्त ओझा मैथिल, श्री कृष्ण शास्त्री, पं. श्री नन्द किशोर वैद्य का नाम उल्लेखनीय है। श्री घूटर झा महामहोपाध्याय श्री चतुर्वेदीजी के अवकाश ग्रहण करने के पश्चात् स्थायी अध्यक्ष के रूप में आये थे, परन्तु दुर्भाग्यवश छः मास में ही अकस्मात् दिवंगत हो गये। स्थायी प्राचार्य के अल्पकालीन अवकाश पर रहने पर प्रायः वरिष्ठतम प्राध्यापक ही कार्य संचालन किया करते थे। इनमें श्री चन्द्रदत्त ओझा मैथिल, पं. शिवप्रताप वेदाचार्य तथा श्री वृद्धिचन्द्र शास्त्री, व्याकरण-धर्मशास्त्राचार्य का नाम उल्लेखनीय है।

इस प्रकार एक शताब्दी से अधिक समय में इस कालेज ने अनेक रूप धारण किये। भारत के अनेक विद्वान् इस विद्यालय में अध्यापक रहे और अनेक सुप्रसिद्ध विद्वान् इस विद्यालय के स्नातक। इन्हें तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—(१) प्राध्यापक-व्याख्याता, (२) स्नातक-व्याख्याता और (३) स्नातक मात्र। इनका वर्गीकरण इस प्रकार है—

१. प्राध्यापक—व्याख्याता

१. वेद विज्ञान के प्रख्यात गवेषक, विद्या-वाचस्पति पं. श्री मधुसूदन ओझा।
२. ज्योतिषशास्त्र मर्मज्ञ, तन्त्र-वारिधि, म. म. श्री दुर्गाप्रसाद द्विवेदी।

३. व्याकरण-महोदधि, शान्त उपासक पं. जानकीलाल चतुर्वेदी।
४. भारत विख्यात, व्याकरणशास्त्रज्ञ, पं. लक्ष्मीनाथ शास्त्री द्राविड।
५. वेद मर्मज्ञ व्याकरण केशरी पं. वीरेश्वर शास्त्री द्राविड।
६. श्रौतस्मार्त-यज्ञानुवेत्ता पं. श्री गणेश शास्त्री गोडसे।
७. न्यायशास्त्र-पारंगत पं. श्री वृन्दावन शास्त्री कथाभट्ट।
८. व्याकरण महोदधि पं. रामभज शास्त्री सारस्वत।
९. विद्वत्कुल-मण्डन पं. शिवराम शास्त्री गुलेरी।
१०. विद्यासागर मीमांसा-केशरी पं. पी. एन. पट्टाभिराम शास्त्री।

२. स्नातक–व्याख्याता

१. म. म. पं. शिवदत्त शास्त्री व्याकरणाचार्य, दाधिमथः (लाहौर)।
२. भारत के प्रथम वेदाचार्य पं. श्री विजयचन्द्र चतुर्वेदी, क्वीन्स कालेज, वाराणसी के सर्वप्रथम वेद विभागाध्यक्ष।
३. सुप्रसिद्ध विद्वान् चन्द्रधर गुलेरी के कनिष्ठ भ्राता श्री सोमदेव गुलेरी।
४. सनातन-धर्मरक्षक शास्त्रार्थ महारथी म. म. श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी।
५. प्राणाचार्य आयुर्वेद मार्तण्ड स्वामी श्री लक्ष्मीराम जी (जयपुर के प्रथम आयुर्वेदाचार्य)
६. कविशिरोमणि भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री।
७. व्याकरणशिरोमणि राजगुरु पं. श्री चन्द्रदत्त ओझा मैथिल।
८. राजवैद्य श्री कृष्णराम भट्ट, भट्ट मेवाड़ाजातीय, सुप्रसिद्ध लेखक।
९. पं. कविमल्ल श्री हरिवल्लभ शास्त्री, सुप्रसिद्ध लेखक।
१०. न्यायाचार्य पं. कन्हैयालाल शास्त्री दाधिमथः।
११. साहित्य-वेदान्ताचार्य विख्यातनामा पं. श्री बिहारीलाल जी शास्त्री दाधिमथः।
१२. आशुकवि पं. श्री हरि शास्त्री दाधीच, सुप्रसिद्ध लेखक।
१३. राजवैद्य पं. नन्दकिशोर आयुर्वेदाचार्य, प्रथम निदेशक, आयुर्वेद विभाग, राजस्थान।
१४. साहित्यार्णव व्याकरण-धर्मशास्त्राचार्य पं. श्री वृद्धिचन्द्रजी शास्त्री।
१५. ज्योतिषरत्न पं. श्री केदारनाथ शास्त्री, यन्त्रालय के अधिकारी विद्वान्।
१६. सुप्रसिद्ध गवेषक राजगुरु कथाभट्ट वंशज श्री नन्दकिशोर जी शास्त्री नामावाल।
१७. मीमांसाचार्य डा. मण्डनमिश्र शास्त्री, निदेशक, केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, दिल्ली।
१८. प्राणाचार्य वैद्यराज पं. जयरामदास स्वामी, भू. पूर्व प्रिंसिपल, आयुर्वेदिक कालेज, जयपुर।

३. स्नातक मात्र

१. लखनऊ विश्वविद्यालय के प्राच्य-विभागाध्यक्ष पं. श्री बदरीनाथ शास्त्री।
२. राजकीय महाविद्यालय, अजमेर के भू० पू० संस्कृत विभागाध्यक्ष श्री भवदत्त शास्त्री दाधीच।
३. पं श्री सूर्यनारायण जी व्याकरणाचार्य, प्राध्यापक संस्कृत, महाराजा कालेज, जयपुर।
४. राजस्थान के प्रथम मुख्य मन्त्री श्री हीरालाल शास्त्री।
५. व्याख्यानवाचस्पति पं. श्री मोतीलाल शास्त्री, वेद-पुराण विमर्शज्ञ, दुर्गापुरा।
६. म० म० पं० श्री विश्वेश्वरनाथ रेऊ, साहित्याचार्य, काश्मीरकः, दिल्ली।

संस्कृत-कालेज की स्थापना के सन्दर्भ में समागत सभी विद्वान् तत्कालीन शासकों द्वारा पूर्णतः सम्मानित हुए। इन्होंने इस विद्यालय में अध्ययन कर अपनी सेवाओं से इसे पुष्पित एवं पल्लवित किया तथा अन्यत्र भी अपनी योग्यता से सुरभित किया।

संस्कृत कालेज की विभिन्न कालीन स्थिति का दिग्दर्शन

राजस्थान अभिलेखागार, बीकानेर से प्राप्त रिकार्ड सन् १८४८ (संवत् १९०६) के अनुसार यह कहा जा सकता है कि जब उर्दू, फारसी तथा अंग्रेजी आदि विषयों के अध्यापन के लिए एक ही पाठशाला थी, तब उन्हीं के साथ संस्कृत भी पढ़ाई जाती थी। जितने अध्यापक उर्दू, फारसी के पढ़ाने के लिए नियत थे, उतने ही संस्कृत भी पढ़ाते थे। यहाँ तक कि अंग्रेजी पढ़ाने वालों की संख्या आधी थी। संस्कृत में भी वेद तथा आयुर्वेद की अलग से व्यवस्था थी। इस प्रकार संस्कृत भाषा के अध्ययन-अध्यापन के प्रति विशेष रुचि का पता चलता है। उस समय संस्कृत के चारों अध्यापकों के नाम थे—(१) **श्री बालमुकुन्द शास्त्री**, (२) **श्री ओझा परमेश्वरीदत्त (परमेसूरीदत्त) (३) भट्ट श्री हरिश्चन्द्र, (४) भट्ट श्री लक्ष्मणराम (लीछमणराम)। इनके साथ ही श्री जीवणराम (श्री कुन्दनराम) वैद्य थे, जो आयुर्वेद पढ़ाते थे और श्री आचारज गोविन्दराम वेद पढ़ाया करते थे।**[12]

कालान्तर में सन् १८६५ ई. में जब संस्कृत का अलग विद्यालय स्थापित किया गया, तब इन विद्वानों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हुई। यह संख्या ४ से बढ़कर ११ पहुँच गई। इन चार में से दो व्यक्ति (विद्वान्) श्री ओझा परमेश्वरीदत्त तथा भट्ट श्री हरिश्चन्द्र के नाम सन् १८६९ के संस्कृत कालेजीय उपस्थिति पंजिका में उपलब्ध नही होते। इनके सम्बन्ध में कुछ भी निर्णयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता कि इनका क्या हुआ। सम्भवतः ये दोनों विद्वान् महाराजा कालेज में संस्कृत के अध्यापक के रूप में रहे हों अथवा तब तक दिवंगत हो चुके हों। संस्कृत कालेज के अतिरिक्त उक्त महाराजा कालेज में भी अंग्रेजी के साथ-साथ संस्कृत विषय भी पढ़ाया जाता था। वहाँ का रिकार्ड उपलब्ध न होने से किसी भी निर्णय का उद्घोष नहीं किया जा सकता।

सन् १८६९ ई. में संस्कृत विद्यालय में जो ११ अध्यापक थे, उनके नाम उपस्थित किये जा चुके हैं। ये ११ व्यक्ति वास्तव में संस्कृत कालेज के मूलाधार थे। इनमें श्री एकनाथ जी ओझा तो इसी वर्ष दिवंगत हो गये, परन्तु शेष विद्वानों ने होनहार व अपने ही समान योग्यतम शिष्य तैयार किये, जिन्होंने संस्कृत-विद्यालय को उन्नत करने के साथ-साथ अपना तथा गुरुजनों का गौरव बढ़ाया।

विद्वान् पिता के निधन पर उनका योग्य पुत्र स्थानापन्न हो जाता था। यह सुन्दर परम्परा यहाँ अब तक चलती रही है। उदाहरण के लिए पं. गंगावल्लभजी के पुत्र श्री कृष्णचन्द्र जी उनके पश्चात् उन्हीं के स्थान पर नियुक्त हुये। इसी प्रकार पं. बालमुकुन्द जी शास्त्री के स्थान पर उन्ही के पुत्र पं. बदरीलाल जी की नियुक्ति की गई। इनके वंशजों का अब ज्ञान न होने से कालान्तर की परम्परा का उल्लेख नहीं किया जा सकता। हाँ, श्री एकनाथ जी ओझा के वंश का पूर्ण ज्ञान है, उससे भी उक्त कथन परिपुष्ट होता है। श्री एकनाथ जी के पश्चात् उनके पुत्र श्री नरहरि ओझा व्याकरण के अध्यापक बने। इनके पुत्र श्री हरदत्त जी (ज्येष्ठ) तथा श्रीचन्द्रदत्त जी (कनिष्ठ) क्रमशः व्याकरण के पद पर नियुक्त हुए। वर्तमान में श्री चन्द्रदत्त जी के मध्यम पुत्र पं. श्री दुर्गादत्त जी व्याकरण के प्राध्यापक हैं। यह परिवार प्रारम्भ से ही अपनी व्याकरण-धारा को अक्षुण्ण बनाये हुए है। इसी प्रकार वैद्य परिवार में श्री जीवणराम जी के पुत्र श्री कृष्णराम भट्ट, पौत्र श्री गंगाधर भट्ट, प्रपौत्र श्री नरहरि भट्ट, प्रप्रपौत्र श्री देवेन्द्र भट्ट क्रमशः अपनी योग्यता से आयुर्वेद का अध्यापन कराते रहे है। श्री देवेन्द्र भट्ट इस समय राजकीय आयुर्वेदिक कालेज जयपुर में व्याख्याता हैं। इसी प्रकार कथाभट्ट नामावाल परिवार में श्री वृन्दावन जी कथाभट्ट के पश्चात् उनके पुत्र श्री चन्द्रदत्त जी (चन्द्रेश्वर जी), भ्रातृज पं. जी नन्दकिशोर जी तथा पं. श्री नन्दकुमार जी संस्कृत के व्याख्याता रहे। इन्हीं (श्री चन्द्रेश्वरजी) के पौत्र पं. जगदीश चन्द्र साहित्याचार्य इस समय साहित्य के व्याख्याता हैं।

सन् १८९३ तक पं. श्री रामभज जी सारस्वत संस्कृत पाठशाला के अध्यक्ष रहे। इनका कार्यकाल १८६९ ई० से प्रारम्भ माना गया है, अर्थात् इनने २४ वर्ष कार्य किया। इस लम्बी अवधि में अध्यापकों की संख्या में केवल ४ की वृद्धि हुई। उस समय व्याकरण, वेद, साहित्य, न्याय, ज्योतिष तथा आयुर्वेद विषयों का अध्ययन होता था। शास्त्रों में प्रवेश प्राप्त करने की दृष्टि से एक प्रवेशिका परीक्षा नियत थी। प्रवेशिका के अध्यापक थे—पण्डित श्री कन्हैयालाल जी—व्याकरण के ज्ञाता। श्री रामचन्द्रजी गणित के अध्यापक थे। ये इसी पाठशाला के स्नातक थे,

जिनने ज्योतिष विषय से सर्वप्रथम शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की थी। ये म० म० श्री गिरिवर शर्मा चतुर्वेदी के प्रिंसिपल बन कर आने तक अर्थात् १९२६ तक यहाँ अध्यापक थे।[13] इनके पश्चात् श्री मदनलालजी तथा पं० जानकीलालजी चतुर्वेदी का नाम उल्लेखनीय है, जो संस्कृत कालेज में बहुत समये तक अध्यापन करते रहे।

१८९८ ईसवी तक प्रवेशिका विभाग में अध्यापकों की कुल संख्या ९ हो गई थी और कालेज विभाग में १२ प्राध्यापक थे। इनके नाम इस प्रकार हैं—**(१) पं० श्री लक्ष्मीनाथ शास्त्री द्राविड (प्रिंसिपल), (२) ओझा हरदत्त (मैथिल) (व्याकरण), (३) पं० शिवरामजी (वेदान्त) (४) पं० कृष्ण शास्त्री (साहित्य), (५) श्री गोपीनाथ शास्त्री दाधीच (साहित्य), (६) पं० जीवनाथ ओझा (न्याय), (७) पं० भाईनाथजी ओझा (न्याय), (८) पं० बदरीनाथजी (९) पं० दुर्गाप्रसादजी (ज्योतिष), (१०) पं० जगन्नाथजी (ज्योतिष), (११) पं० हरिलालजी (वेद), (१२) स्वामी लक्ष्मीरामजी (आयुर्वेद)।** प्रवेशिका विभाग में **(१) श्री काशीनाथ शास्त्री, (२) श्री जानकीलाल चतुर्वेदी, (३) पं० मगनीराम श्रीमाली, (४) श्री हनुमत् प्रसाद, (५) पं० सोनीलाल, (६) पं० कन्हैयालाल, (७) पं० रामचन्द्र, (८) पं० बालमुकुन्द शर्मा, (९) पं० मदनलालजी थे।**

यह संख्या १९११ ई० तक इतनी ही रही। कालेज विभाग में श्री लक्ष्मी नाथ जी शास्त्री द्राविड़ के पश्चात् ज्योतिष विभाग के ही श्री पं० दुर्गा प्रसादजी द्विवेदी (महामहोपाध्याय) इस कालेज के प्रिंसिपल बनाये गये। व्याकरण विभाग में ओझा हरदत्तजी के छोटे भाई पं० श्री चन्द्रदत्तजी और पं० मदनलालजी शर्मा प्रश्नवर की नियुक्ति हुई। कुछ समय तक पं० शिवरामजी गुलेरी के पुत्र और श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के कनिष्ठ भ्राता श्री सोमदेव गुलेरी भी व्याकरण के अध्यापक रहे थे।[14] साहित्य विभाग में पं० गोपीनाथ शास्त्री के स्थान पर पं०लक्ष्मीनाथ शास्त्री दाधीच नियुक्त हुये। मार्च, १९११ से इसी साहित्य विभाग में पं० श्री बिहारी लालजी शास्त्री अध्यापक बने, न्यायशास्त्र में पं० श्री कन्हैयालालजी और ओझा हरिवंशजी शर्मा कार्य कर रहे थे। ज्योतिष में प्रिंसिपल श्री दुर्गाप्रसादजी के अतिरिक्त श्री दुर्गादत्तजी कार्य कर रहे थे। वेद में पं० मांगीलालजी थे, जिनके स्थान पर १९१४ में प० जानकीलालजी शर्मा और उनके पश्चात् कुछ समय तक पं० मगनीरामजी ने काम किया। इनकी विद्वत्ता उल्लेखनीय है। २१ जुलाई, १९१४ से पं० रामकिशोरजी वेदिया (जयपुर निवासी) ने इस विभाग में कार्य प्रारम्भ किया। आयुर्वेद विभाग में श्री लक्ष्मीरामजी स्वामी के साथ राजवैद्य श्री गंगाधरजी भट्ट कार्य कर रहे थे। कालान्तर में १४ जुलाई, १९१८ से पं० गंगाधरजी के स्थान पर उनके पुत्र श्री नरहरि भट्ट ने अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया। म०म० पं० दुर्गाप्रसाद द्विवेदी का समय मई, १९११ से प्रारम्भ होता है। ये जुलाई,१९२६ तक अध्यक्ष रहे। इन १५ वर्षों में इस कालेज की स्थिति सामान्य थी। यद्यपि इस अवधि में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं हुआ, परन्तु कालेज का अध्ययन-अध्यापन कार्य सुचारु रूप से चलता रहा और संस्कृत के योग्यतम विद्वान् इस कालेज के स्नातक रहे। पं० श्री द्विवेदीजी शान्त और अत्यन्त गम्भीर व्यक्तित्व के पुरुष थे। इनका जीवन ऋषिकल्प था।

इसी कालेज के स्नातक म० म० पं० श्री गिरधरलालाचार्य[15] जो जयपुर राज्य के ही निवासी थे, इस कालेज के प्रिंसिपल बने। ये उस समय सनातन धर्म कालेज लाहौर में प्रिंसिपल थे और भारतवर्ष में सनातन धर्म के विशिष्ट व्याख्याता के रूप में प्रसिद्ध थे। पारिवारिक समस्याओं के कारण इन्हे जयपुर आना आवश्यक था। तत्कालीन शिक्षा विभाग के निदेशक पं० श्री श्यामसुन्दर शर्मा ने आपको संस्कृत कालेज के अध्यक्ष पद का भार ग्रहण करने के लिए प्रबल अनुरोध किया। उन्होंने आपके लिए दर्शन शास्त्र के व्याख्याता का स्थान भी बनाया। सर्वप्रथम आप इस पद पर रहे। आपकी इस पद पर नियुक्ति ३१ दिसम्बर, १९२४ को हुई।[16] करीब छः मास दर्शन के प्राध्यापक के रूप में कार्य करने के पश्चात् नवीन सत्र के प्रारम्भ में सन् १९२६ के जुलाई मास में श्री दुर्गाप्रसादजी के अवकाश लेने पर इन्हें विद्यालय के अध्यक्ष पद पर नियुक्त किया गया। नियुक्ति के पश्चात् भी आप दर्शन-शास्त्र का नियमित अध्यापन कराते रहे।[17]

२४ जुलाई, १९२६ से यह कार्य (अध्यक्षत्व) श्री चतुर्वेदीजी ने प्रारम्भ किया और सन् १९४३-४४ तक आप इस स्थान पर निरन्तर कार्य करते रहे। आपके कार्यकाल में इस कालेज ने अभूतपूर्व उन्नति की। यह समय इस कालेज के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से उल्लेखनीय है। इन्होंने इस विद्यालय का नाम परिवर्तित कर महाराज संस्कृत

कालेज रखा था। इनके इस १९-२० वर्ष के कार्यकाल में अध्यापकों व छात्रों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हुई। १९२४ में जहाँ कुल २५ अध्यापक, २ कर्मचारी और ४ सेवक थे, वहाँ ३६ अध्यापक, ४ कर्मचारी और १० सेवक हो गये। छात्रों की संख्या भी जहाँ कालेज विभाग में ९० व प्रवेशिका विभाग में १२४ थी, बढ़कर कालेज विभाग में १६५ और स्कूल विभाग में २८६ संख्या हो गयी। एक समय तो यह संख्या ५०० से भी अधिक हो गई थी।[18] इन्होंने शनैः शनैः अधिकारी वर्ग की सहायता से सर्वप्रथम अंग्रेजी अध्यापन की व्यवस्था करवाई। यद्यपि राजपूताना में संस्कृत का एकमात्र यही सबसे बड़ा विद्यालय था, परन्तु फिर भी उस समय तक यहाँ चारों वेदों के अध्यापन की कोई व्यवस्था नहीं थी। केवल शुक्ल यजुर्वेद का अध्यापन एक दाक्षिणात्य विद्वान् श्री गणेश शास्त्री गोड़से करा रहे थे।

सन् १९२८ में श्री चतुर्वेदीजी के प्रयत्नों से ऋग्वेद, सामवेद व अथर्ववेद के अध्यापनार्थ तीन वैदिक विद्वानों की नियुक्ति हुई। इन नियुक्त अध्यापकों के अवकाश ग्रहण करने के साथ ही अब उनके पद भी अवकाश ग्रहण कर चुके हैं। स्मरण रहे इन तीनों वेदों का अध्यापन इस कालेज के लिये महान् गौरव का विषय था, क्योंकि गवर्नमेंट संस्कृत कालेज वाराणसी में भी उक्त वेदों का अध्यापन स्वतन्त्र रूप से नहीं होता था। उसी समय हिन्दी भाषा का भी स्वतन्त्र अध्यापन प्रारम्भ हुआ और उपाध्याय व शास्त्री परीक्षा में अध्ययन करने वाले छात्रों के लिये हिन्दी विषय अनिवार्य कर दिया गया। कालेज विभाग में भी धर्मशास्त्र, दर्शन, वेदान्त, पौरोहित्य आदि विषयों के अध्ययनाध्यापन की व्यवस्था की गई। आयुर्वेद शास्त्र भी केवल सैद्धान्तिक दृष्टि से ही उन्नत था। इसके प्रायोगिक ज्ञान का अभाव होने से एक खटकने वाली बात थी, जिसे इन्होंने एक रसायनशाला की स्थापना करवा कर दूर कर दिया और सैद्धांतिक अध्यापकों में वृद्धि की। इसके पश्चात् शल्य चिकित्सा के प्रायोगिक ज्ञान के लिये भी एक सुयोग्य डाक्टर की नियुक्ति कराई गई। इसके लिये आवश्यक उपयोगी यन्त्र भी खरीदे गये। इस प्रकार उत्तीर्ण स्नातक प्रायोगिक शिक्षा से शिक्षित होकर कुशल वैद्य होने लगे। इसी के साथ उस समय चल रहे अन्य विषयों के अध्यापकों में भी पर्याप्त वृद्धि की गई। साहित्य विभाग में दो के स्थान पर चार अध्यापक हो गये और ज्योतिष विभाग में भी वाराणसी के एक विद्वान् प्राध्यापक पद पर नियुक्त किये गये। इसी के साथ-साथ तत्कालीन व्यवस्थाओं को देखते हुए क्रीड़ा-विशेष के प्रबन्धार्थ एक ड्रिल मास्टर की नियुक्ति हुई। संक्षेप में खेलों की व्यवस्था, छात्र-समिति, प्राध्यापक समिति, बालचर संघ, छात्रावास, उपाधिवितरणोत्सव आदि अनेक ऐसे कार्य थे, जिनकी स्थापना से इस कालेज ने आशातीत उन्नति की थी। सन् १९३५ में इस कालेज में निम्नलिखित अध्यापक थे :—

(१) म० म० प० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी (दर्शन) प्रिंसिपल, (२) पं० चंद्रदत्तजी ओझा (व्याकरण) (३) पं० कन्हैयालालजी शर्मा (न्याय), (४) भट्ट मथुरानाथ शास्त्री (साहित्य), (५) पं० मदनलालजी शर्मा (धर्मशास्त्र) (६) पं० दुर्गादत्तजी शर्मा (ज्योतिष), (७) पं० नंदकिशोर शर्मा (आयुर्वेद), (८) पं० शिवप्रताप वेदाचार्य (वेद), (९) पं० गिरिजाप्रसाद द्विवेदी (ज्योतिष),(१०) पं० लक्ष्मीनाथ शास्त्री (साहित्य), (११) पं० नंदकिशोर शर्मा (न्याय), (१२) पं० चंद्रशेखर शर्मा (व्याकरण), (१३) पं० माधवप्रसाद शर्मा (साहित्य), (१४) स्वामी जयरामदास (आयुर्वेद), (१५) पं० कल्याण प्रसाद शर्मा (आयुर्वेद), (१६) पं० नरहरि भट्ट (आयुर्वेद), (१७) पं० यशोधर शर्मा (अंग्रेजी अध्यापक), (१८) पं० जानकीलाल शर्मा (हिन्दी व संस्कृत), (१९) पं० श्याम सुन्दर शास्त्री (इतिहास व भूगोल), (२०) पं० गोपीनाथ शर्मा (व्याकरण), (२१) पं० नन्दकिशोर शर्मा (व्याकरण), (२२) पं० चुन्नीलाल शर्मा (अथर्ववेद), (२३) पं० जयचंद्र झा (सामवेद) (२४) पं० चिरंजीलाल शर्मा (ऋग्वेद), (२५) पं० वृद्धिचंद्र शर्मा (व्याकरण), (२६) पं० सूर्यनारायण शर्मा (आयुर्वेद), (२७) पं० हरकनारायण शर्मा (गणित), (२८) पं० सूर्यनारायण (ज्योतिषशास्त्री), (२९) कल्याणवल्लभ शास्त्री, (३०) पं० भौंरीलाल शर्मा, (३१) पं० गणेशनारायण शर्मा, (३२) ठा० कल्याणसिंह (ड्रिल मास्टर) इत्यादि।

इस नामावली में वेदान्त, पौरोहित्य तथा साहित्य के अतिरिक्त स्थापित पदों पर समागत विद्वानों के नाम तथा आयुर्वेद विभाग के डाक्टर का नाम अंकित नहीं है। उपर्युक्त नामावली में क्रमांक २ से ८ तक के विद्वान् अपने अपने विषयों में प्राध्यापक थे और क्रमांक ९ से १९ तक के विद्वान् 'व्याख्याता'।

जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है, श्री घूटर झा शास्त्री ने, जो दर्शनशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित थे,

श्री चतुर्वेदीजी के पश्चात् अध्यक्ष पद पर कार्य प्रारम्भ किया था। अचानक अस्वस्थ होने के कारण आप अवकाश पर रहे। दुर्भाग्यवश २१ जनवरी, १९४५ को आपका स्वर्गवास हो गया। आपका कार्यकाल १ मई, १९४४ से २१ जनवरी, १९४५ तक माना गया है। आपके पश्चात् २२ जनवरी, १९४५ से ३१ मार्च, १९४५ तक अस्थायी रूप से पं० नन्दकिशोरजी वैद्य ने प्रिंसिपल का कार्य किया।

श्री पी० एन० पट्टाभिराम शास्त्री ने ३ अप्रेल, १९४५ से प्रिंसिपल का कार्य प्रारम्भ किया। आप मीमांसा विषय के प्रकाण्ड पण्डित हैं। आपने सन् १९५२ तक अर्थात् ७ वर्ष कार्य किया और फिर कलकत्ता विश्वविद्यालय में व्याख्याता के पद पर चले गये। आपने यहां मीमांसा विषय का शुभारम्भ किया, जिनमें डा० मण्डन मिश्र शास्त्री तथा पं. रामनारायण चतुर्वेदी उल्लेखनीय छात्र रहे हैं। आपका कार्यकाल श्री चतुर्वेदीजी की परम्परा को विकसित करने की दृष्टि में उल्लेखनीय रहा है।

श्री पट्टाभिराम शास्त्री के प्राचार्यत्व संत्याग के पश्चात् अर्थात् १९५२ ईसवी से वर्तमान समय तक संस्कृत कालेज की अवस्था में क्रमशः ह्रास हुआ है। इसके अनेक कारण बतलाये जाते हैं, जिसमें कर्मठ विद्वान् अध्यापकों का अभाव; छात्रों की रुचि का अभाव, संस्कृतज्ञों को समुचित प्रोत्साहन का अभाव, संस्कृत-भाषा के अध्ययन का सामयिक लाभ दृष्टिगोचर न होना तथा स्थायी व सौमनस्यपूर्ण प्रशासन की न्यूनता ही मुख्य हैं। कुछ समालोचक विद्वानों का इस ह्रास के विषय में कथन स्थायी प्रिंसपल की नियुक्ति न होने के पक्ष में है। श्री शास्त्री के पद-परित्याग के पश्चात् अनुमानतः तीन वर्ष तक स्थायी प्रिंसिपल की नियुक्ति नहीं हो पाई। यह कार्यभार कालेजीय वरिष्ठतम तत्कालीन प्राध्यापक को न सौंपा जाकर तात्कालिक संस्कृत पाठशालाओं के निरीक्षक श्री के० माधवकृष्ण शर्मा को सौंपा गया, जो इस समय संस्कृत विभाग के निदेशक भी हैं। श्री शर्मा अपने त्रिवर्षीय प्रशासन काल में अपने स्थायी पद के कार्य में इतने अधिक व्यस्त रहते थे कि उक्त कालेज के सामान्य दैनन्दिन कार्य-सम्पादन के अतिरिक्त कालेज की उन्नति से सम्बद्ध विशेष कार्य नहीं कर पाते थे। उनका अस्थायीत्व भी इसकी उदासीनता का कारण बतलाया जाता है। उनकी स्वकार्य-व्यस्तता के कारण कालेज में अव्यवस्थित वातावरण पनपने लगा और परिणामतः उक्त तीन वर्षों में कोई उल्लेखनीय प्रगति न हो सकी।

सन् १९५५ ई० में श्री चन्द्रशेखर शास्त्री (द्विवेदी) राजस्थान लोक सेवा आयोग से चयनित होकर स्थायी रूप से अध्यक्ष पद पर आसीन हुए। ह्रासोन्मुख इस कालेज की स्थिति को उन्नति मार्ग पर लाने के लिए उनके द्वारा किये गये सारे प्रयास प्रायः निष्फल हो गए। इसका कारण कुछ भी हो रहा हो, छात्र संख्या तथा प्राध्यापक संख्या में निरन्तर ह्रास ही दृष्टिगत होने लगा। म० म० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी के 20 वर्षीय प्रशासन में इस विद्यालय की जो आशातीत उन्नति हुई थी, जो विद्यालय उनके हाथों पल्लवित व पुष्पित हुआ था, विद्वानों की अवस्थिति के कारण सुरभित था, वही विद्यालय सामयिक परिस्थितियों के कारण क्रमशः शोचनीय बनता गया। यद्यपि सरकार संस्कृत शिक्षा पर पर्याप्त धन व्यय करती रही है, परन्तु उसका उचित प्रयोग न होने से यह नगरी 'वाराणसी' की समता में पिछड़ने लगी। धुरन्धर विद्वानों का 'वाराणसीयतु मदा जयपत्तनं मे' घोष काव्य-साहित्य का विषय बन गया। अब तक अनेक नवीन विषय, जो श्री चतुर्वेदीजी के सत्प्रयास से खोले गये थे, अधिकारी विद्वानों की सेवा-निवृत्ति के साथ ही निवृत्त हो गये। कुछ पद सम्भवतः योग्य विद्वान् महापुरुषों की प्रतीक्षा में अभी तक रिक्त हैं।

सन् १९६४ ई० में तत्कालीन प्रिंसिपल श्री द्विवेदी श्री जगद्गुरु शंकराचार्य पुरी (मठ) के लिए मनोनीत किये गये और आप उस पद पर चले गये। लगभग ९ वर्ष तक आपने संस्कृत कालेज के प्राचार्य पद पर कार्य किया। आप इस समय स्वामी श्री निरंजन देवतीर्थ जगद्गुरु शंकराचार्य पुरी पीठ के नाम से विख्यात हैं। परम्परागत वरिष्ठतम प्राध्यापक को कार्यभार सौंपने की परम्परा में यहां भी व्युत्क्रम उपस्थित हुआ। आपने पं० श्री गोविन्द नारायण शास्त्री, तत्कालीन प्राध्यापक न्यायशास्त्र को अपना कार्यभार सौंपा। सन् १९६४ ई० से श्री शास्त्री कार्यवाहक अध्यक्ष रहे हैं, जो आज स्थायी रूप से प्राचार्य पद पर कार्य कर रहे है।

महाराज संस्कृत कालेज की वर्तमानकालीन स्थिति को देखते हुए यह आवश्यक है कि इसमें आवश्यक परिवर्तन किये जायें। इसकी स्वरूप रक्षा के लिये प्राच्य विद्या विशारद विद्वान् खोज कर पुनः ससम्मान लाये जायें और महाराज रामसिंहजी द्वारा मनोयोग से संस्थापित इस विद्यालय का पुनर्गठन किया जाय। यह सत्य है कि इस युग में संस्कृत भाषा को उतना महत्त्व नहीं प्राप्त हो रहा है, जितना होना चाहिये । परन्तु हिन्दी भाषी राष्ट्र में संस्कृत के ज्ञानाभाव से उन्नति कथमपि सम्भव नहीं हो सकती—यह न केवल मेरा ही, अपितु सभी गणमान्य चिन्तकों व समालोचकों का अभिमत है।

निष्कर्ष यह है कि संस्कृत की प्राचीन परम्पराओं की सुरक्षा करते हुए कुछ ऐसे परिवर्तन शिक्षा प्रणाली एवं पाठ्यक्रम में प्रस्तुत किये जायें, जिनसे छात्रों में संस्कृत अध्ययन के प्रति निष्ठा उत्पन्न हो तथा उनकी आजीविका भी सुरक्षित हो सके। मेरी दृष्टि में यह उचित होगा कि या तो उक्त कालेज को संस्कृत विश्वविद्यालय के रूप में अथवा स्वायत्त महाविद्यालय (Autonomous body College) के रूप में परिवर्तित कर दिया जाय, ताकि प्राचीन परम्परा सुरक्षित रह सके। यदि यह सम्भव न हो तो फिलहाल इसे राजस्थान विश्वविद्यालय से सम्बद्ध (Affiliate) कर दिया जाय।

1004o6

परिचय-खण्ड

तृतीय अध्याय (क) के सन्दर्भ व उद्धरण

(References & Notes)

APPENDIX–4 (A) परिशिष्ट–४ (अ)

Jaipur Government Secretariate Records–Year 1873/138 Committee Naqshejat.)
Major Head–General. Minor Head–4 Education. Record No. 612,
Subject–School Establishment of Education in JAIPUR CITY & Districts.

(Obtained from Rajasthan Archives Department, Bikaner)

"नकल याददासती पाठशाला संस्कृत के मूलाजीमो की"

आसामी	द्र माहे (दर माह)
पंडीत रामभज व्याकरण पढावै दर माहे ६०) सवारी खरच १०)	७०)
पडीत मीवराम व्याकरण पढावै	६०)
ओझा नरहर व्याकरण पढावै दर माहे ६०) सवारी खरच १०)	७०)
वेदीया हरीलाल वेद पढावै	२५)
भया ओझा जोनस पढावै	२५)
वेद जीवणराम वैदगी पढावै	३०)
पंडीन ब्रन्दावन हीनदी पढावै	२०)
पंडीन वेणीराम समुती कोगी पढावै	२०)
पंडीत किसनचन्द जोतीस पढावै	१५)
पंडीत बदरीलाल व्याकरण पढावै	१५)
पंडीत गोपीनाथ व्याकरण पढावै	१५)
पंडीत रामकंवार मदरसा चांदपोल व्याकरण पढावै	१०)
गोपाल (मिश्र) मीश्र वीद्यारथी	८)
दुरगाबक्स-मुतसदी जमा खरच नवीस	१०)
मनालाल हाजरी नवीस	५)
घनालाल हरकारो	४)
रामचन्दर जल पावे जलधारी	६)
रामनाथ फरास	४)
सायर खरच	१२)
वीद्यारथीयों का मा........	५०)
कुल योग	४७४) रु०

नोटः—इस पत्र में कोई भी तिथि अंकित नहीं है, अतः यहाँ प्रस्तुत नहीं की गई है।

APPENDIX–4 (A–1) [परिशिष्ट–४ अ (१)]

Jaipur Government Secre.a iate Records Year 1848/6 General 4/03/School Grant....
(Obtained from Director, Rajasthan Archives Department, Bikaner)

याददास्ति मदरसा खरच की सालीना की

२७७२) मा० सदा वंध खजाने से आवते हैं
१२००) पंडित स्योदीन के माहवारी के रु० १००) तीका मास १२ का
७२०) मुनसी किसनलाल के माहवारी के रु० ६०) तीका मास १२ का
७२०) मुनसी मखूलाल के माहवारी के रु० ६०) तीका मास १२ का
७२) पानी पिलाणे वाले के वा भरणे वाले के आसामी के रु० ६) तीका मास १२ का
६०) कागज कलम स्याही के दर रु० ५) तीका मास १२ का

मू० २७७२) २३१) रु० प्रति मास

२५०८) नवादा खरच मामजूरी हंजंमवाहदुर लाकलूसाव की मू० २०६)
१२००) किताव इनाम वगरहै माहवारी खरच के १००) तीका मास १२ का
३००) फारसी के अवल उसताज के रु० २५) तीका मास १२ का
३६०) फारसी के मदतगार आसामी २ त्याको दर माहो अ० १५) ३०)
३६०) संस्कृत के मदतगार आसामी २ त्याको दर माहो अ० १५) ३०)
९६) मगफज दफनर वाले के १ रु० ८) तीका मास १२ का
९६) हलकारा २ आसामी का द० आ० १ ला० तीका ८)
४८) फरास के महिना १ रुपया ४) ४८)
४८) धमावली के महिना १२ दर ४) गंगाप्रसाद

मू० २५०८)

APPENDIX 4–A (II) [परिशिष्ट ४ अ (II)]

Abstract from Rajasthan Archives Department Bikaner, Jaipur Government Secretariat Record Year 1848/6 General 4/03/School, Grant of villages for tne upkeep of and Hospitals.

"वालमुकुन्द शास्त्री मा (फिक) हुक्म लामर साव की मदरसा में पढाता है जिन कै तनखाह रु० १२००) की तालीका में गांव आगा सु है जिसकी रोकड़ी खजाना से मिलती है। गांव मजकूर खालसा के नकसे मे आगया है सो अलग कराने का उमेदवार है। "मिती फा० बु० ५ संवत् १९०४ का।"

APPENDIX 4–A [परिशिष्ट ४—आ]

Jaipur Government Secretariate Records Year 1853/12 Res. Dce. General 4/05P. School—Establishment of........and grant of villages for its maintenance.

ईजता हुई तारीख २७ सन् १८५० ईसवी

कैफियत पंडीत स्योदीन सूपरटंढंठं मद्रसे श्री—के वैनाम रावल स्यीवस्यंवजी व्रा० पंचसरदार राज सवाई जपूर के लीपी हूई तारीक ८ जौलाई सन् १८५० ईस्वी आरंच कैफियत राज की ईसखूला सै आई के मद्रसे का नकसा तय्यार कराये भी जावोगे सो माफीक लीखे राज के नकसा तनखादार मद्रसे का तय्यार कराये ईस कैफियत के सात भेजा है सौ मूलाहजे में गुजरेगा मिती आषाढ वदी १४ स० १९०६ द० पं० सिवदीन का

श्री गणेशशाये नमः श्री माहालखशमि राज राजैशूरीजी शदा सायै छ जी ।

नकसा मद्रसा खरच को

लंबर	नाम आसामी	जूमलै	तनखाह खजाने से एक महीने की	तनखाह आमदनी गावां मे से महीने एक की	तनखाह दिनी खजाने से माल महीना एक की	कैफियत
१	२	३	४	५	६	७
१	पंडीत स्योदीन जी	१००)	१००)	०००	....	सूपरटेटैंड
२	मुनसी कीसन सहाय जी	६०)	६०)	....	....	उसताद उलूम अंग्रेंजी
३	मुनसी कन्यालाल जी	६०)	६०)	....	....	उसताद अंगरेजी
४	बाल मुकुन्दजी सास्त्री	१३५)	६०)	....	७५)	अव्वल उसताद शंशक्रीत
५	औोजा परमेसूरी दत्तजी	७५)	....	....	७५)	दोयम उसताद येशा
६	जीवणराम वैद	३०)	३०)	....	....	उसताद वैदगी
७	भट्ट हरीसचन्द्र	१०)	....	१०)	....	सोयम उसताद शंशक्रीत
८	भट्ट लीछमणराम	१०)	....	१०)	....	चौथा उसताद संसंकीरत
९	आचारज गोवींदराम	१०)	१०)	....	....	उसताद वेद के पढाने वाले
१०	मुनसी कुंजलाल	२०)	....	२०)	....	अव्वल उसताद फारसी
११	मीर मूराद अली	२५)	....	....	२५)	दोयेम उसताद फारसी
१२	लाला बाल मुकुन्द	१५)	....	१५)	....	सोयेम उसताद फारसी
१३	अमिर अली	१२)	....	१२)	....	च्याहारमा उसताद फारसी
१४	सेख मीजाम बखस	१०)	....	१०)	....	उसताद मद्रसे चांदपोल
१५	मीर हवीवूला	१०)	....	१०)	....	उसताद मद्रसे गंगापोल
१६	गंगाप्रसाद	८)	....	८)	....	वकील
१७	स्यामलाल	६)	....	६)	....	म्हाफिज दफत्र
१८	मंगल बीरामण	४)	४)	....	....	पानी पिलाने वाला
१९	गोवींदराम	४)	....	४)	....	फरास
२०	राम सेवक	४)	....	४)	....	हलकारा
२१	कागज स्याही	३०)	....	३०)	....	....
२२	ईनाम लडके की	५०)	....	५०)	....	....
२३	मालीराम	२)	....	२)	....	पानी भरने वाला
२४	कीराये मद्रसे	२)	....	२)	....	....
	कुल मीजान	६९२)	३२६)	१९१)	१७५)	

परिशिष्ट–४ (इ)

(महाराज संस्कृत कालेज जयपुर के अध्यापक उपस्थिति पंजिका से उद्धृत पृष्ठ की प्रतिलिपि)

श्रीगणेशायनमः नकसों पंडितों की हाजरी का मीती म्हा बुदी ३ से महीना जनवरी का सरु हुआ सन् १८६६

नाम पंडितों के

१. ग्राच्यारज गोबींदराम जी
२. पंडित रामभजन जी
३. ओझा एकनाथ जी
४. पंडित शिवरामजी
५. ओझा जीवनाथजी
६. ओझा भैयोजी
७. पंडित बालमुकंदजी
८. पंडित गंगावलभजी
९. बैद जीवणरामजी
१०. पंडित बृदावनजी
११. पंडित बेणीरामजी

नोटः—यह पत्र म० संस्कृत कालेज, जयपुर के प्राचार्य द्वारा प्रेषित (पत्र क्रमांक १९८३ दिनांक १३–११–६८) (प्राचीन उपस्थिति पत्रक की प्रमाणित प्रतिलिपि है।

परिशिष्ट–४ (ई)

(महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर के अध्यापक उपस्थिति पंजिका से उद्धृत पृष्ठ की प्रतिलिपि)

म्हीना जनवरी का सरु हुवा, सन् १८८० ई० मीति पौस बुदी ४ का रोजस स० १९३६ का

नाम पण्डितों का

१. पण्डित रामभजजी
२. पण्डित शिवरामजी
३. ओजा नरहरजी
४. ओजा जीवनाथजी
५. ओझा माईनाथजी
६. वेदया हरीलालजी
७. भैयाजी ओजाजी
८. वैद श्रीकीसनजी
९. पण्डित व्रंदावनजी
१०. पण्डित कीसनचदजी
११. पण्डित शिवदत्तजी
१२. पण्डित गोपीनाथ जी
१३. पण्डित जगंनाथजी

नोटः—यह पत्र म० संस्कृत कालेज, जयपुर के प्राचार्य द्वारा प्रेषित (पत्र क्रमांक १९८३ दिनांक १३–११–६८) प्राचीन उपस्थिति पत्रक की प्रमाणित प्रतिलिपि है।

REFERENCES OF THIRD CHEPTR-(क)

1. केवल स० जयसिंह द्वितीय के संस्कृताध्यापन हेतु पं० माधव भट्ट पर्वणीकर की नियुक्ति का उल्लेख कच्छ-वंश व जयवंश में मिलता है।
2. श्री बाल मुकुन्द शास्त्री……………………१९०४ (परिशिष्ट संख्या ४–अ–(A)(ii)
3. कैफियत पं० श्योदीनजी……………………१९०६ (परिशिष्ट संख्या ४–आ)

4. पं० श्री जगदीश शर्मा भू० पू० साहित्यविभागाध्यक्ष, म० सं० कालेज, जयपुर ने राजस्थान संस्कृत संविद् जयपुर के इतिहासांक "वैजयन्ती" १९७८ में "महाराज संस्कृत कालेज-स्थापना विमर्श" शीर्षक लेख में लिखा है कि म० रामसिंह द्वितीय द्वारा स्थापित शिक्षा विभाग का संचालन त्रिसदस्यीय समिति करती थी, जिनके नाम थे—पं० शिवदीनजी, मुंशी कृष्ण स्वरूप तथा पं० वंशीधर शर्मा। इन्होंने १८४४ ई० में मदनमोहन मन्दिर में "मदरसा" स्थापित किया था। इससे पूर्व भी संस्कृत शिक्षा का प्रचार था, जहां ६ पण्डित छात्रों को पढ़ाते थे। संवत् १९०२ तदनुसार १८४४-४५ ई० में यह मदरसे प्रारम्भ हुआ था, जिसका उल्लेख वीरविनोद नामक इतिहास के द्वितीय भाग में मिलता है। "शहर में एक संस्कृत कालेज भी है जो विक्रमी १९०२ (हि० १२६१ ई० १८४५ में जारी हुआ, उसमें संस्कृत जुबान की तालीम बहुत अच्छी होती है और वहां से मुस्महर पंडित तैयार होकर निकलते हैं।" (वीर विनोद भाग-२ पृष्ठ सं० १३३०) वहाँ एक तालिका भी है, जो इस प्रकार है—

संस्था नाम	स्थान	आरंभ काल	हिन्दू	मुसलमान	ईसाई	योग	दैनिक प्रतिशत उपस्थिति	संस्कृत पढ़ने वाले	हिन्दी	आय	व्यय
महाराजा कालेज	जयपुर	१८४४	६८४	१३७	४	८२५	४९९	५	१८४	२३८१२	२२०३४
संस्कृत कालेज	,,	१८४५	२०८	×	×	२०८	१७८	१५४	५४	७४३०	७३८८
चांदपोल ब्राँचस्कूल	,,	१८४६	६०	१०	×	७०	५६	×	२०	२८३॥	२८३॥

5. "शिक्षांक" अ० भा० संस्कृत साहित्य सम्मेलन के प्रमुख पत्र संस्कृत रत्नाकर का विशेषांक, सन् १९४० में प्रकाशित लेख—"महाराज-संस्कृत-कालेजस्य संक्षिप्तमितिवृत्तम्"—पृ० १।
6. "आत्मकथा और संस्मरण"—म० म० पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, शरद् प्रकाशन, ८० असी, वाराणसी-५ ई० सन् १९६७ पृ० ४ 'जन्म और शिक्षा' के आधार पर।
7. सन् १९६७-६८ में आयोजित उपाधिवितरणोत्सव (महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर) पर प्रकाशित वार्षिक प्रतिवेदन के प्रथम व द्वितीय पृष्ठ से उद्धृत अंश।
8. कैफियत श्री ब्योदीनजी…………………१९०६ (परिशिष्ट संख्या ४-आ)।
9. संस्कृत कालेज के रिकार्ड की प्रतिलिपि (उपस्थिति पत्रक) (परिशिष्ट संख्या ४—इ)।
10. श्री रामभजजी के भ्रातुष्पुत्र श्री अनन्तराम शास्त्रीजी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी में थे जो गुरुजी के में नाम से विख्यात थे। ये भी संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे।
11. राजस्थान अभिलेखागार, बीकानेर से प्राप्त रिकार्ड, परिशिष्ट संख्या ४ तथा महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर अंकित विवरण के आधार पर।
*सन् १८४५ ई० में संस्थापित संस्कृत कालेज की स्थापना का भार त्रिसदस्यीय समिति पर था। ये सदस्य थे—पं० शिवदीन, मुंशी कृष्णस्वरूप तथा पं० वंशीधर। महाराजा कालेज भी उस समय ही स्थापित किया गया था। इसकी स्वतन्त्र स्थापना सन् १८६५ में हुई थी, जिसके प्रथम आचार्य थे—श्री एकनाथ झा।
12. राजस्थान अभिलेखागार, बीकानेर रिकार्ड सन् १८४८, परिशिष्ट संख्या ४-अ तथा ४ आ।

13. म० म० पं० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी—"आत्मकथा और संस्मरण"-पृ० ५ ।
14. उक्त कालेज के सन् १९११ के उपस्थिति-पत्रक में मार्च, १९११ से श्री सोमदेव गुलेरी का नाम अंकित है ।
15. संस्कृत कालेज जयपुर के प्राचीन रिकार्ड उपस्थिति पत्रकों में १९२७ से ३१ मार्च, १९३० तक इनका नाम पं० गिरिवरलालाचार्य मिलता है । इसके उपरान्त केवल गिरिधर शर्मा ।
16. लिस्ट आफ एजूकेशनल आफिसर्स, जयपुर स्टेट करेक्टेड, अप्टू १ सितम्बर, १९३५ के अनुसार ।
17. "आत्मकथा और संस्मरण"-"जयपुर में २० वर्ष" पृष्ठ १६२ के आधार पर ।
18. (क) "संस्कृत रत्नाकर-दर्शनांक" (विशेषांक) "मान्यानाम् काले कालेजोन्नतिः"-पं० श्री वृद्धिचन्द्रजी शास्त्री, प्राध्यापक, संस्कृत कालेज, पृ० १०५ ।
(ख) "आत्मकथा और संस्मरण"-पृ० १७४ ।

तृतीय अध्याय

(ख)

संस्कृत-संस्कृति के पोषक तथा वर्द्धक अन्यान्य विद्यालय एवं उनका संक्षिप्त इतिवृत्त

महाराज संस्कृत कालेज के अतिरिक्त अन्य कई विद्यालयों द्वारा की गई संस्कृत-संस्कृति की सेवा उल्लेखनीय है। इन विद्यालयों ने संस्कृत भाषा के अध्ययन को प्रारम्भ कर अनेक संस्कृत वेत्ताओं को आजीविका के साथ-साथ सम्मान भी प्रदान किया है। इन विद्यालयों के नाम निम्नांकित हैं—

१. महाराजा कालेज (आंग्ल कालेज)।
२. दिगम्बर जैन संस्कृत कालेज।
३. श्री दादू महाविद्यालय।
४. श्री खाण्डल महाविद्यालय।
५. श्री गौड़ विप्र विद्यालय।
६. श्री सनातनधर्म संस्कृत विद्यापीठ।
७. श्रीवर संस्कृत विद्यालय (ब्रह्मपुरी)।
८. श्री माधव संस्कृत विद्यालय।
९. श्री वेदवेदांग विद्यालय।
१०. अन्यान्य विद्यालय।

१. महाराजा कालेज (आंग्ल कालेज)

महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर की स्थापना के पूर्व अंग्रेजी, फारसी व उर्दू भाषा का अध्ययन–अध्यापन भी एक साथ होता था। मुगलों के शासन की समाप्ति पर भारत में अंग्रेजों का शासन बढ़ता जा रहा था और सामयिक दृष्टि से अंग्रेजी भाषा का शिक्षण व अध्ययन आवश्यक सा हो गया था। इसीलिए उर्दू तथा फारसी का अध्ययन अपेक्षाकृत न्यून होता जा रहा था और अंग्रेजी का पठन–पाठन निरन्तर प्रगति पथ पर अग्रसर था। उधर संस्कृत के प्रति जन्मतः प्रेम होने के कारण महाराज सवाई रामसिंहजी ने संस्कृत-संस्कृति की सुरक्षा के लिए एक संस्कृत विद्यालय को भी अक्षुण्ण रूप में स्वतन्त्रतः स्थापित कर दिया था। इस संस्कृत पाठशाला में संस्कृत का पारस्परिक शास्त्रीय अध्ययन होता था। उसके कारण शास्त्री तथा आचार्य उपाधियां प्राप्त होती थीं। उद्देश्य भिन्नता के कारण अंग्रेजी भाषा के अध्ययन-अध्यापन के लिए महाराज रामसिंह ने उक्त संस्कृत कालेज के साथ ही महाराज आंग्ल कालेज की स्थापना की थी, जिसका उल्लेख इसी अध्याय के "क" अनुभाग में किया जा चुका है। इस विद्यालय के छात्र बी०ए० तथा एम०ए० की उपाधियां प्राप्त करते थे। अपनी सूझ-बूझ के द्वारा महाराज ने इस कालेज में भी

संस्कृत की शिक्षा नवीन प्रणाली से दी जाती थी। **महामहोपाध्याय पं० श्री गोपीनाथ कविराज** (वाराणसी) इसी महाविद्यालय के संस्कृत विषय लेकर बी० ए० परीक्षोत्तीर्ण स्नातक थे। इसी प्रकार अन्यान्य कई विद्वान् उल्लेखनीय हैं।

प्रारम्भ में इस कालेज में संस्कृत के शिक्षक पदों पर प्रायः बंगाली विद्वान् रहे हैं, जिनमें **श्री कालीपद तर्काचार्य, श्री हरिदास शास्त्री** के नाम उल्लेखनीय हैं। प्रसिद्ध विद्वान् **श्री वीरेश्वर शास्त्री द्राविड़** को भी इस कालेज में संस्कृत के प्राध्यापक पद पर नियुक्त किया गया था। म० म० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ने अपनी "आत्म-कथा और संस्मरण" नामक पुस्तक में कर्तव्य-निष्ठा का एक उदाहरण देते हुए लिखा है, जिससे इस कालेज में संस्कृत अध्ययन का उल्लेख परिपुष्ट होता है—"इस प्रसंग में अपने कर्त्तव्य-पालन की एक घटना लिखने से रह गई है कि एक बार जब मैं जयपुर आया था तो **श्री बदरीनाथजी शास्त्री**, जो कि अंग्रेजी कालेज जयपुर में संस्कृत के अध्यापक थे, वहाँ से उन्नत पद पर नियुक्त होकर लखनऊ चले गये थे। उनके स्थान पर मुझे नियुक्त करने का तात्कालिक डाइरेक्टर **श्री मक्खनलालजी** ने स्वयं मुझ से कहा और उसका उत्तर **श्री वीरेश्वर शास्त्रीजी** को देने के लिए भी कहा। उस स्थान पर मेरे मित्र **पं० सूर्यनारायणजी** का अधिकार था। इसलिए मैंने श्री वीरेश्वर शास्त्रीजी से मिल कर यही उत्तर दिया कि सूर्यनारायणजी की और मेरी परस्पर घनिष्ठ मित्रता है। इसलिए उनको प्राप्त होने वाले स्थान में मैं बाधक होना नहीं चाहता। यद्यपि पिताजी के वृद्ध हो जाने के कारण मुझे जयपुर आने की आवश्यकता है, तथापि अपने मित्र के अधिकार में बाधा पहुंचा कर इस स्थान को मैं स्वीकार नहीं करूंगा.......।"[1]

श्री सूर्यनारायणजी शास्त्री व्याकरणाचार्य, महाराजा कालेज में संस्कृत के प्राध्यापक रहे।[2] आप महाराजा संस्कृत कालेज के स्नातक थे। महाराजा कालेज में २८ नवम्बर १९०७ से कार्य कर रहे थे और १८ जुलाई, १९२१ को प्राध्यापक बनाये गये। उस समय ९, १०, ११, १२, अर्थात् इन्टर तक की कक्षाओं का अध्यापन **पं० श्री मदन लालजी प्रश्नवर** किया करते थे, जो कालान्तर में संस्कृत कालेज जयपुर में व्याख्याता और धर्मशास्त्र के अध्यक्ष पद पर रहे। **भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री** ने भी सन् १९२५ से १९३१ तक सहायक प्राध्यापक के रूप म काय किया। इनके पश्चात् **पं० श्री रामकृष्ण शर्मा शुक्ल** (शिलीमुख) असिस्टेन्ट प्रोफेसर हिन्दी तथा संस्कृत ने शिक्षण कार्य किया। श्री शुक्ल इस पद पर २३ फरवरी, १९३१ से कार्य करते रहें हैं। कुछ समय तक इनने भट्ट श्री मथुरानाथजी के साथ भी कार्य किया था।

सन् १९४३ ई० से संस्कृत के प्राध्यापक पद पर **श्री प्रवीणचन्द्रजी जैन** की नियुक्ति हुई। आपकी प्रथम नियुक्ति १९ जुलाई, १९४३ को हुई थी।[3] आपके साथ **पं० श्री इन्दुशेखर शास्त्री** कार्य करते थे। इनकी प्रथम नियुक्ति १५ दिसम्बर, १९४४ को हुई थी। आजकल आप नेपाल में संस्कृत के प्राध्यापक हैं।[4] १९४७ तक श्री जैन संस्कृत विभागाध्यक्ष रहे और इस के पश्चात् श्री इन्दुशेखर शास्त्री। १९५० से १९५३ तक पुनः श्री जैन को प्राध्यापक के रूप में यहाँ स्थानान्तरित किया गया। श्री जैन के पश्चात् **डॉ. पुरुषोत्तमलाल भार्गव** ने इस पद पर कार्य किया। इसी कालेज के स्नातक **स्वामी सुरजनदासजी** ने भार्गव साहब के पश्चात् कुछ वर्ष अध्यापन किया। आपके पश्चात् **श्री प्रेमनिधि शास्त्री** ने १९६० ई० तक संस्कृत शिक्षण कार्य किया। तदनन्तर यह कालेज राजस्थान विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के रूप में परिवर्तित हो गया। इसका उल्लेखनीय विवरण अग्रिम अनुभाग "ग" में विवेचित है।[5]

२. दिगम्बर जैन संस्कृत कालेज

जयपुरीय शिक्षण संस्थानों में प्राचीनतम विद्यालय के रूप में इस विद्यालय का नाम उल्लेखनीय है। जयपुर के इतिहास में महाराज जगतसिंह (१८०३ से १८१८ ई०) के समय से जैन सम्प्रदाय का प्रभुत्व देखा गया है। राजकीय उन्नत पदों पर अनेक जैन प्रतिष्ठित रहे हैं। इस प्रकार इनके एक एकीकृत संघ दिगम्बर जैन समाज ने आषाढ कृष्णा ५ सम्वत् १९४२ तदनुसार १८८५ ई० में "दिगम्बर जैन संस्कृत पाठशाला" नामक संस्था की स्थापना की थी।[6] स्वर्गीय महाराज सवाई माधवसिंहजी के शासन काल में तत्कालीन प्रधानमन्त्री तथा महाराज के विद्यागुरु रायबहादुर

बाबू कान्तिचन्द्र मुखर्जी सी० आई० ई० के सत्प्रयास से उन्हीं के करकमलों से उक्त संस्था का शुभारम्भ हुआ था। प्रथम तो २० नवम्बर, १६४२ तक यह संस्था श्री दिगम्बर जैन महापाठशाला के नाम से विख्यात हुई, परन्तु प्रबन्धकारिणी की इच्छानुसार इसका नाम परिवर्तित किया गया और २१ नवम्बर, १६४२ से यह संस्था श्री दिगम्बर जैन संस्कृत कालेज के नाम से ख्याति प्राप्त करने लगी। इसकी पूर्व परम्पराओं में भी आवश्यक परिवर्तन किये गये। यहाँ अष्टमी तथा प्रतिपदा का साप्ताहिक अवकाश हुआ करता था, जैसा कि संस्कृत कालेज का भी नियम था, परन्तु सरकार के अनुरोध से रविवार का अवकाश किया जाने लगा। प्रारम्भ में इसे ५० रुपये मासिक सहायता प्राप्त होती थी तथा इसे धर्मार्थ विभाग से अब २८१७ रुपये के लगभग मासिक सहायता प्राप्त होती है। इसकी अध्यक्ष–परम्परा का सांकेतिक उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता हैं...

१. पं० श्री काशीनाथ शास्त्री	१ जुलाई, १८८५ से २८ फरवरी, १८६३ (७ वर्ष ८ मास)
२. पं० श्री माधोलाल शास्त्री	१ मार्च, १८६३ से २८ फरवरी, १६०० (७ वर्ष)
३. पं० श्री दुर्गाप्रसाद दाधीच	१ मार्च, १६०० से २३ अगस्त, १६२४ (२४ वर्ष ६ मास)
४. पं० श्री हरिनारायण शास्त्री	२४ अगस्त, १६२४ से २६ फरवरी, १६२७ (२ वर्ष ७ मास)
५. पं० श्री इन्द्रलाल शास्त्री (जैन)	२७ फरवरी, १६२७ से २८ फरवरी, १६२६ (२ वर्ष)
६. पं० श्री जवाहरलाल शास्त्री	१ मार्च, १६२६ से २३ अगस्त, १६२६ (५ मास २३ दिन)
७. पं० श्री फूलचन्द न्यायतीर्थ	२४ अगस्त, १६२६ से २३ अक्टूबर, १६३१ (२ वर्ष २ मास)
८. पं० श्री चैनसुखदास न्यायतीर्थ	२४ अक्टूबर, १६३१ से २५ जनवरी, १६६६ (३७ वर्ष ३ मास)

इन प्राचार्यों में सबसे अधिक सेवा करने एवं इस विद्यालय को सुव्यवस्थित करने का श्रेय स्व० पण्डित श्री चैनसुखदास न्यायतीर्थ को है।

इस संस्था के दो विभाग हैं—कालेज विभाग और स्कूल विभाग। कालेज विभाग में उपाध्याय, शास्त्री एवं आचार्य कक्षाओं का अध्यापन करवाया जाता है। इस समय यह कालेज साहित्य, सामान्यदर्शन तथा जैन दर्शन विषयों के अध्यापन के लिए स्वीकृत है। स्कूल विभाग में प्रथमादि प्रवेशिकान्त कक्षाओं का अध्यापन होता है। छात्रों से अध्ययन शुल्क नहीं लिया जाता। कालेज का अपना निजी भवन है। इसी के साथ एक स्वतन्त्र छात्रावास (७ कमरों वाला) बड़े दीवानजी के मन्दिर में है। यहां बाहर से अध्ययनार्थ आने वाले छात्र निवास करते हैं। इस समय दोनों विभागों में ४०० से अधिक छात्र हैं।

इस विद्यालय के उल्लेखनीय स्नातकों में— (१) स्व० श्री गणेशप्रसादजी वर्णी, (२) श्री माणकचन्द्रजी न्यायाचार्य, (३) श्री प्रवीणचन्द्रजी शास्त्री, (४) डा० श्री कस्तूरचन्द कासलीवाल, (५)श्री सेवकराम जैन, प्राध्यापक, आयु० कालेज, उदयपुर, (६) पं० भंवरलालजी न्यायतीर्थ, (७) श्री मिलापचन्द्र जैन, (८) श्री प्रभुदयाल भिषगाचार्य, (६) श्री मुरारिलाल, (१०) श्री कैलाशचन्द्र शास्त्री, मैनेजर राजश्री पिक्चर्स, जयपुर प्रमुख हैं।

वर्तमान में कुल १६ अध्यापक तथा कतिपय कर्मचारी हैं। जिनके सहयोग से यह संस्था निरन्तर प्रगति-पथ पर है। इनमें अवकाश प्राप्त पं० श्री दामोदराचार्यजी का नाम विशेषतः उल्लेखनीय है।

इस संस्था ने सन् १६४२ में आयुर्वेद विभाग भी खोला था, जो २० वर्ष तक चला। अनुमानतः १०० आयुर्वेदाचार्य और भिषग्वर स्नातक निकले, जिनने देश के विभिन्न भागों में अपने कौशल से जनता को लाभान्वित किया है और कर रहें हैं।

राजस्थान से ८० प्रतिशत सहायता प्राप्त यह कालेज योग्यतम छात्रों के निर्माण में विशेष सहायक रहा है। भारतीय संस्कृति और राष्ट्रीयता की भावनाओं से परिपूर्ण यहां के छात्र अध्ययन समाप्त कर यत्र तत्र अपने कार्य को निष्ठा से पूर्ण करते हैं। यह प्रसन्नता का विषय है कि इसका वर्तमान स्वरूप स्व० श्री चैनसुखदासजी न्यायतीर्थ द्वारा निर्मित है। जिनने इस संस्था के जीवनकाल में सबसे अधिक वर्षों तक इसकी सेवा की है। इसका संचालन एक प्रबन्धकारिणी समिति करती है, जिसका विधान राजस्थान सरकार द्वारा पंजीकृत है। इस संस्था ने संस्कृत के विकास क्षेत्र में बहुत ही श्लाघनीय व महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

३. श्री दादू महाविद्यालय

संवत् १९७६ तदनुसार सन् १९१९ ई० को स्वामी श्री दयारामजी द्वारा आयोजित 'बडे मेले' के अवसर पर सम्प्रदाय के साधुओं के सम्मिलित प्रयास से स्वर्गीय स्वामी श्री लक्ष्मीरामजी महाराज के प्रस्ताव पर संस्थापित 'श्री दादूदयाल महासभा' द्वारा उक्त विद्यालय की स्थापना की गई ।[8] नरेना में सम्पन्न त्रिदिवसीय सम्मेलन में पारित उक्त प्रस्ताव का मूर्त रूप ज्येष्ठ शुक्ला १० (गंगादशमी) संवत् १९७७ को हुआ । इस कार्य का शुभारंभ महामना **स्वामी श्री नारायण मुनिजी** महाराज के पावन करकमलों से हुआ । नवलगढ निवासी श्री हीरालालजी इस विद्यालय के प्रथम अध्यापक थे । स्थापना के समय विद्यालय के पास १४ हजार का कोष था । इस प्रकार साधना-प्रधान इस सम्प्रदाय का रूप शिक्षा-प्रधान भी हो गया । कार्यकारिणी समिति के सदस्य एवं विशिष्ट नागरिक श्री स्वामी रतिरामजी की परम्परा के उत्तराधिकारी स्वामी श्री केशवदासजी ने उक्त विद्यालय को स्थान प्रदान किया । यह संस्था रामनिवास बाग के एलबर्टहाल (म्यूजियम) के पीछे विद्यमान "स्वामी रतिरामजी के बाग' में सर्वप्रथम प्रारम्भ हुई । प्रथम वर्ष में ही छात्र संख्या १३ से १८ हो गई द्वितीय वर्ष में ३० छात्र थे । ५वें वर्ष तक यह संख्या ४० से भी अधिक हो गई थी । इस संस्था के प्रारम्भिक विकास में संस्था के अन्यतम सहायक श्री सेवारामजी स्वामी, स्वनामधन्य बिड़ला श्री जुगलकिशोरजी तथा श्री घनश्यामदासजी, महन्त श्री चैनसुखदासजी (डीडवाना निवासी) आदि कतिपय महापुरुषों के नाम उल्लेखनीय हैं, जिनने अर्थ-व्यवस्था के साथ अन्य सहयोग भी किये । संस्था का शैशवकाल बहुत ही कष्टमय था । १९ वर्ष तक तन मन, व धन से सेवा कर संस्था के प्रमुख संस्थापक व सहायक स्वामी श्री लक्ष्मीरामजी दिवंगत हो गये । कुछ कठिनाइयां पुनः उपस्थित हुईं । छात्रों की संख्या में भी ह्रास हुआ । संख्या ६० से घट कर ५० ही रह गई । आर्थिक कठिनाइयों के कारण यह समय संकटकालीन रहा । अपने ३० वर्ष पूर्ण करने की स्थिति तक इस विद्यालय में अक्षराभ्यास से प्रारम्भ कर आचार्य पर्यन्त शिक्षा की व्यवस्था रही है । आचार्य में भी व्याकरण, साहित्य, वेदान्त, दर्शन तथा आयुर्वेद के अध्ययन का पूर्ण प्रवन्ध रहा है । आयुर्वेद को छोडकर शेष सभी विषयों की परीक्षायें वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, तथा राजस्थान शिक्षा विभागीय परीक्षा विभाग से दिलवाई जाती हैं । शिक्षा प्राप्त करने के लिए छात्रों को प्रवेश की अनुमति है । आयुर्वेद की परीक्षा राजकीय कालेज जयपुर के अनुसार दिलवाई जाती रही है । पठन-पाठन के लिए किसी भी प्रकार की फीस नहीं ली जाती है । छात्रावास में रहने वाले छात्रों का पूर्ण व्यय भी संस्था ही वहन करती है । परीक्षाओं का परिणाम ८०-९० प्रतिशत रहता रहा है । इसके संस्थापन का एकमात्र उद्देश्य था—संस्कृत वाङ्मय की ज्ञान रक्षार्थ साधुओं का संस्कृत पढ़ना । बौद्धिक विकास के साथ ही शारीरिक विकास पर भी पूर्ण बल दिया जाता रहा है । प्रसिद्ध व्यायाम शिक्षक श्री गोपालजी स्वामी का इस संस्था को विशेष योगदान है । संस्कृत शिक्षण के साथ ही व्यायाम, अंग्रेजी तथा संगीत का शिक्षण भी प्रारम्भ किया गया था । परन्तु आर्थिक कठिनाइयों के कारण इनका निरन्तर प्रचलन नहीं हो सका ।

सरकार से अनुदान, स्थायी कोष का व्याज, दिल्ली के मकान का किराया तथा कुछ महापुरुषों, जैसे स्वामी श्री सुरजनदासजी सदृश व्यक्तियों के सहयोग से इस संस्था का आर्थिक व्यय सम्यक् रूपेण चल रहा है । इसका वार्षिक व्यय १५ हजार रुपये से अधिक माना जाता है । आर्थिक समस्याओं के समाधानकर्ता के रूप में स्वामी श्री सेवारामजी का नाम विशेषतः उल्लेखनीय है, जिननें स्थायी आय का चौथाई भाग स्वयं ने करके दिया है । विद्यालय का नवीन भवन मोती डूंगरी के पास श्री सेवारामजी की सहायता से ही निर्मित हो सका था जो संस्था की स्थापना के १८ वर्ष बाद बनना प्रारम्भ हुआ था । संवत् १९९५ में वर्तमान भवन का निर्माण हो चुका था । इस विद्यालय में अनेक उत्सवों का आयोजन होता रहता है, जिसमें रजत जयन्ती के समय तक पांच बड़े उल्लेखनीय उत्सव थे ।

संस्था के विशेष सहायक—विशेष सहायकों में स्वामी श्री लक्ष्मीरामजी प्रभृति महापुरुषों का उल्लेख किया जा चुका है । श्री स्वामीजी इस संस्था के आश्रय थे और यह विद्यालय उनकी मानसिक संतति के रूप में विख्यात है । आर्थिक सहायता देने वालों में बिड़ला परिवार के सदस्यों (उक्त) का योगदान उल्लेखनीय है, जिनने स्वामी सेवारामजी के अनुरोध पर पांच वर्ष तक २०० रुपया मासिक तथा १५ वर्ष तक १०० रुपया मासिक सहायता प्रदान की थी । विद्यालय में एक कूप और दो बडे कमरे आपने बनवाये हैं ।

स्वामी श्री लक्ष्मीरामजी के दिवंगत होने पर उनके उत्तराधिकारी स्वामी श्री जयरामदासजी ने इस संस्था को अपने गुरुजी का मानसिक पुत्र मानकर ही संरक्षण व पोषण किया। आप अपने जीवनकाल में इसकी उन्नति के लिए सर्वदा प्रयत्नशील रहे हैं। राजगुरु महन्त (स्वर्गीय) श्री गंगादासजी महाराज जयपुर के ११ राजगुरुओं में से एक थे, जो दादू पन्थी महन्त श्री जुगलदासजी की परम्परा में थे। संवत् १९९५ के पश्चात् अर्थात् स्वामी श्री लक्ष्मी-रामजी के सभापति पद परित्याग के पश्चात् आप इसके सभापति रहे। इस पद पर रहते हुए आपने संस्था की उन्नति के लिए उल्लेखनीय कार्य किया। अन्य सहायक व्यक्तियों में निवाई के महन्त स्वर्गीय श्री मन्नादासजी व वर्तमान श्री रामप्रसादजी का नाम स्मरणीय है। रोहतक व भिवानी के बीच विद्यमान कलानोर ग्राम के महन्त महाराज मणिरामजी विद्याप्रेमी तथा दादू सम्प्रदाय के हितैषी होने के कारण इस संस्था की उन्नति में साधक रहे हैं। आप भी कार्यकारिणी के सदस्य रहे हैं। इस संस्था के विशेष अन्य सहायकों का पूर्ण उल्लेख रजत जयन्ती ग्रन्थ में चुका है। आर्थिक सहयोग के अतिरिक्त मानसिक सहयोग देने वाले व्यक्तियों में सर्वश्री (स्वर्गीय) पं० वृद्धिचन्द्रजी शास्त्री, व्याकरण-धर्मशास्त्रा-चार्य का नाम विशेषतः उल्लेखनीय है। आप इस संस्था के बहुत समय तक सदस्य (कार्यकारिणी) रहे हैं। इन्हीं के साथ श्री गोपाललालजी पुरोहित, प्रिंसिपल पारीक कालेज, जयपुर, श्री मुकुन्ददेवजी भिषगाचार्य, श्री जुगलकिशोरजी शर्मा (भूतपूर्व रजिस्ट्रार, शिक्षा विभागीय परीक्षायें) का नाम उल्लेखनीय हैं।

अध्यक्ष परम्परा—इस विद्यालय में सन् १९७० तक निम्नलिखित व्यक्ति अध्यक्ष के रूप में कार्य कर चुके हैं:—

(१) श्री सिद्धगोपालजी शास्त्री (२) पं० श्री रामचन्द्रजी शास्त्री, मेरठ (३) स्वामी श्री सुरजनदासजी (४) स्वामी श्री वालकरामजी आचार्य (५) पं श्री दयारामजी साहित्याचार्य (अब दिवंगत हो चुके है)।

उल्लेखनीय अध्यापक व कार्यकर्त्ता—अध्यापकों के दो वर्ग हैं, जिनमें अल्पकालीन अध्यापकों में श्री हीरा-लालजी शर्मा, नवलगढ निवासी, श्री माधवप्रसाद जी शास्त्री, श्री भंवरलालजी शर्मा, ज्योतिषी पं. श्री लक्ष्मीनारायण-जी, विचून के श्री छीतरमलजी, मण्डलीश्वर बालूरामजी के गुरुभाई पं० श्री हरिनन्दनजी, विहार के श्री गंगेश झा और पं० श्री यशोधर झा का नाम उल्लेखनीय है। इन विद्वानों ने बडी लगन से इस संस्था में अध्यापन किया था।

दीर्घकालीन अध्यापकों में सर्वश्री **सिद्धगोपाल शास्त्री** का नाम उल्लेखनीय है, जिनकी नियुक्ति महामहो-पाध्याय पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदीजी की सम्मति से हुई थी। आप उनके ऋषिकुल हरिद्वार के शिष्य थे। आपने ६ वर्ष तक अध्यापन किया। आप संस्कृत की सहायक शिक्षा, अंग्रेजी तथा गणित पढाते थे। आप बूंदी के उच्च प्रतिष्ठित परिवार के सदस्य थे। हिन्दी के क्षेत्र में श्री **गौरीलालजी शर्मा** तथा श्री **गोविन्दरावजी तेलंग** प्रसिद्ध रहे हैं। श्री हीरालालजी के पश्चात् श्री गौरीलालजी ने एक युग तक इस विद्यालय की सेवा की। आपके पश्चात् राज-स्थान के प्रसिद्ध कवि श्री पद्माकर के वंशज श्री गोविन्दराव तेलंग रहे। आपके पुत्र श्री कमलाकरजी ने भी कुछ दिन अध्यापन कार्य किया। संस्कृताध्यापकों में पण्डित **श्री रामचन्द्रजी शास्त्री** (भटियाना-मेरठ) जो साहित्य, न्याय, दर्शन, वेदान्त तथा मीमांसा के विख्यात विद्वान् थे, १६ वर्ष तक इस संस्था में रहे हैं। आप इस संस्था के प्रधान अध्यापक थे। **स्वामी श्री सुरजनदासजी** व्याकरण, साहित्य, वेदान्त, सांख्ययोगाचार्य, एम० ए० ने इस विद्यालय की तन, मन धन से सहायता की है तथा वर्तमान में भी कर रहे हैं। आप यहां के स्नातक हैं तथा प्रधानाध्यापक भी। इस समय आप जोधपुर विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के अध्यक्ष हैं। आप इस विद्यालय के प्रथम स्नातक हैं, जिन पर विद्या-लय को गर्व है। **स्वामी श्री वालकरामजी** व्याकरणायुर्वेदाचार्य ने स्वामीजी के पश्चात् प्रधानाध्यापक के रूप में कार्य किया। सन् १९१५ से लेकर आप इस संस्था की अवैतनिक सेवा कर रहे हैं। संस्था के शिक्षक वर्ग में **पण्डित दयारामजी** शास्त्री का नाम उल्लेखनीय है जो डूंडलोद निवासी स्वर्गीय पं० श्री रामधारी शास्त्री के भ्रातृज हैं। आप करनाल जिला संगरौली के निवासी हैं तथा सन् १९२८ से अब तक निरन्तर अध्यापन कर रहे हैं। इस समय आप इस संस्था के अध्यक्ष हैं। **स्वामी श्री मंगलदासजी महाराज** इस संस्था के प्राणभूत हैं। अध्यापक होने के साथ ही आप इसके संचालनकर्त्ता, इसकी प्राण-प्रतिष्ठा करने वाले तथा प्रबन्धक हैं। आपने अपना पूरा जीवन संस्था के हितार्थ लगा दिया है।

कार्यकर्त्ताओं में महन्त श्री **चैनसुखदासजी**, श्री **कृपारामजी**, श्री **रघुनाथजी**, (जयपुर) स्वामी श्री **रामभजनजी** (उदयपुरवाटी), श्री **चेतनानन्दजी** (रतनगढ़), **स्वामी श्री हरदयालजी** (निवाई) **स्वामी श्री केशवदासजी, स्वामी श्री बलरामजी** आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

उल्लेखनीय योगदान—इस संस्था ने सम्प्रदाय के अनेक विद्वानों को संस्कृत भाषाविज्ञ बना कर तथा अन्यान्य अनेक व्यक्तियों को शिक्षित किया है। एतदर्थ इसका नाम जयपुर के संस्कृत साहित्य के इतिहास में उल्लेखनीय है। पूर्ण विवेचन रजत जयन्ती ग्रन्थ में द्रष्टव्य है।

४. श्री खाण्डल महाविद्यालय

उक्त संस्था की स्थापना माघ शुक्ला ५ संवत् १९७१ (सन् १९१४) को हुई थी।[७] **महन्त श्री भजनदासजी** *ने पण्डित महादेवजी मंगलिया*रा को अपना सहयोगी बनाकर इस कार्य को अपने निवास स्थान, गोविन्द राजियों के रास्ते में स्थित करूंदा के मन्दिर में प्रारम्भ किया था। अवैतनिक रूप से समाज-सेवा की कामना को दृष्टिगत कर आप लोगों ने संस्था के विकास में अपना जीवन लगा दिया। यहाँ के कुछ उल्लेखनीय स्नातकों में सर्वश्री चन्द्रशेखर शास्त्री प्रश्नवर, पं० मोतीलाल शास्त्री, पं० श्री मनोहर शुक्ल आदि के नाम स्मरणीय हैं। इन विद्वानों का प्रारम्भिक *शिक्षण यहाँ हुआ था। सन् १९२५ ई०* में यह संस्था सीतारामजी के मन्दिर, जड़ियों के रास्ते में स्थानान्तरित की *गई और वहाँ खाण्डल ब्राह्मण समाज के सहयोग से छात्र-संख्या में भी आशातीत* वृद्धि हुई। उस समय के व्यवस्थापकों में श्री ओंकार शास्त्री का नाम स्मरणीय है। इसके पश्चात् यह संस्था ७ जुलाई, १९५५ को वर्तमान भवन मान कायथ की गली, चांदपोल बाजार में सेठ चुन्नीलाल कल्याणबक्स के मकान में स्थानान्तरित की गई, जहां अब भी कार्यरत हैं।

इसकी अध्यक्ष-परम्परा में क्रमशः (१) **श्री चन्द्रशेखर शास्त्री**, (२) **श्री मनोहर शास्त्री शुक्ल**, (३) **श्री रामगोपालजी पारीक**, (४) **श्री रामप्रसाद शास्त्री प्रश्नवर**, (५) **श्री दीनानाथ शास्त्री**, (६) **पं० रामजीलाल शास्त्री** (७) **पं० श्री भवदत्त शास्त्री मैथिल**, (८) **पं० श्री हनुमत्प्रसादजी शास्त्री** एवं (९) **वर्तमान श्री रामप्रसाद शास्त्री** के नाम उल्लेखनीय हैं। श्री रामप्रसाद शास्त्री तीन अगस्त, १९५० से इस संस्था के प्रधानाध्यापक पद पर कार्य कर रहे हैं। इस संस्था की स्थापना संस्कृत भाषा के अध्ययन-अध्यापन की दृष्टि से हुई थी, परन्तु सामयिक स्थिति के अनुसार अब इसमें अन्य विषयों का अध्यापन भी प्रारम्भ हो गया है। यह संस्था शिक्षा विभागीय परीक्षाओं के अन्तर्गत प्रवेशिका तथा उपाध्याय की परीक्षाओं के लिये मान्यता प्राप्त है। पहले यहाँ के छात्र वाराणसी की प्रथमा व मध्यमा आदि परीक्षायें भी दिया करते थे। छात्र संख्या में संस्कृत के अध्यापन की दृष्टि से क्रमशः ह्रास हो रहा है। राजस्थान सरकार द्वारा इस विद्यालय को इस समय ७० प्रतिशत सहायता प्राप्त हो रही है। वर्तमान में २५१ छात्र हैं तथा ११ अध्यापक व तीन अन्य कर्मचारी हैं।

५. श्री गौड़ विप्र विद्यालय

इस संस्था की स्थापना भी जयपुरीय गौड़ ब्राह्मण समाज ने की थी, *जिसका उद्देश्य संस्कृत भाषा के* अध्ययन-अध्यापन के द्वारा संस्कृति की रक्षा करना था। यह संस्था अभी विद्यमान है। उक्त संस्था का इस समय कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं है। यह जब स्थापित की गई थी, उस समय यहाँ केवल संस्कृत का ही अध्ययन होता था, परन्तु इस समय अन्य विषयों का अध्ययन होता है। यह संस्था राज्य सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त है और प्रवेशिका तक यहाँ अध्ययन होता है। संस्था का एक निजी भवन है, जो विधायकपुरी के समीप विद्यमान है।

६. श्री सनातनधर्म संस्कृत विद्यापीठ

यह संस्था भी संस्कृत के अध्ययन-अध्यापन के विस्तार की दृष्टि से संस्थापित की गई है। यह संस्कृत निदेशालय द्वारा सहायता प्राप्त है और मान्यता प्राप्त भी। छोटी कक्षाओं से लेकर प्रवेशिका स्तर तक यहाँ अध्ययन यह नाहरगढ़ के रास्ते में विद्यमान लाल हाथियों के मन्दिर में चलती है।

७. श्रीधर संस्कृत विद्यालय, ब्रह्मपुरी

ऐसा प्रसिद्ध है कि जयपुर संस्थापक महाराज सवाई जयसिंह द्वितीय ने अश्वमेध याग करने की दृष्टि से अनेक योग्य विद्वान् ब्राह्मणों को जयपुर लाकर बसाया था। विद्वानों की इस बसती का नाम ही ब्रह्मपुरी रखा गया था। एक समय था, जब यहाँ ८० अग्निहोत्र निरन्तर चला करते थे। यहाँ महाराष्ट्रीय और गुजराती ब्राह्मणों का आधिक्य था। इनमें श्री कालेजी महाराज का नाम विख्यात है। ये मन्त्रशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित थे। इन्होंने संस्कृत अध्यापन के द्वारा संस्कृति की रक्षा में अपना जीवन लगा दिया था। इनकी यह अध्यापन प्रणाली आश्रम-परम्परा पर आश्रित थी।

गत २२५ वर्ष से यह संस्था कार्य कर रही है, परन्तु ऐसी मान्यता है कि इस आश्रम परिपाटी के रूप में प्रचलित इस संस्था का व्यवस्थित रूप श्री शिवराजजी तथा काले श्री गणपतिजी के समय हुआ। इस समय इस संस्था ने उल्लेखनीय प्रगति की। सामयिक परीक्षा प्रणाली को देखकर श्री गणपति शास्त्री के कनिष्ठ भ्राता स्व० **गोपीनाथ शास्त्री** धर्माधिकारी ने इसे विद्यालय के रूप में परिवर्तित किया। इस प्रकार आश्रम-परिपाटी के रूप में चले आ रहे इस विद्यालय का पुनः संस्थापन या रूप–परिवर्तन १ जनवरी, १९२३ को हुआ। इसका नामकरण श्रीधर संस्कृत विद्यालय, भी उसी दिन रखा गया। इसका श्रेय श्री गोपीनाथ शास्त्री को है। इनके ही प्रयास से सर्व-प्रथम यहाँ के छात्र वाराणसी की परीक्षाओं में प्रविष्ट होते थे। अनेक छात्रों ने प्रथमा व मध्यमा की परीक्षायें उत्तीर्ण की थी। एक समय यह विद्यालय शास्त्री पर्यन्त मान्यता प्राप्त था। सन् १९४६ में तत्कालीन शिक्षा विभाग ने इसे सहायता प्रदान करना प्रारम्भ कर दिया था। उस समय छात्र संख्या के साथ-साथ अध्यापकों की संख्या में भी वृद्धि हुई थी। यहां निःशुल्क पठन तथा निःशुल्क ही पाठन होता रहा है। जब से राजकीय सहायता प्राप्त होने लगी है, सभी कर्मचारी सवैतनिक रूप में कार्य कर रहे हैं। सर्वप्रथम ४० प्रतिशत अनुदान प्राप्त होता था और शेष ६० प्रतिशत श्री गणपति शास्त्री काले की जीविकावृत्ति (जागीर) से पूर्ण किया जाता था। छात्रों की सुविधा की दृष्टि से यह विद्यालय रात्रि को चला करता था। राजस्थान के जागीर उन्मूलन कार्यक्रम से इस विद्यालय को अपार क्षति का सामना करना पड़ा, क्योंकि जो ६० प्रतिशत भाग श्री कालेजी की जागीर से प्राप्त होता था, अब बन्द हो गया था। इन्हीं आर्थिक कठिनाइयों के कारण इस संस्था ने अपना कालेजीय विभाग समाप्त कर दिया और इस समय यह प्रवेशिकान्त परीक्षा के लिये मान्यता एवं सहायता प्राप्त है।

इसकी एक प्रबन्धकारिणी समिति है, जिसके सभापति राजगुरु पं० श्री विद्यानाथजी ओझा हैं। मन्त्री पद पर श्री काशीनाथजी धर्माधिकारी, हैं जो श्री गोपीनाथ शास्त्री के पुत्र हैं, कार्य कर रहे हैं। श्री शास्त्रीजी की धर्मपत्नी श्रीमती रुक्मिणी बाई धर्माधिकारी इसकी संचालिका हैं। १९५१ तक इस विद्यालय को आचार्य पर्यन्त मान्यता प्राप्त थी। विद्यालय के उल्लेखनीय स्नातकों में—(१) श्री **रामनारायण चतुर्वेदी**, प्रिंसिपल, संस्कृत कालेज, जोधपुर (२) श्री **दुर्गादत्त शर्मा**, प्राध्यापक, संस्कृत कालेज, जयपुर, (३) श्री **गुलाबचन्द्र चतुर्वेदी**, प्रिंसिपल, संस्कृत कालेज, महापुरा (४) श्री रङ्गनाथजी, व्याख्याता, आयुर्वेद कालेज जयपुर, (५) श्री **रामप्रसादजी महन्त**, प्रधानाध्यापक, खाण्डल विप्र विद्यालय, जयपुर, (६) श्री **वेणी माधव** धर्माधिकारी, गवेषक, राज० प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, अलवर तथा (७) श्री **नारायण कांकर**, व्याख्याता, आयुर्वेद कालेज, जयपुर के नाम स्मरणीय हैं। मान्यता प्राप्ति के पश्चात् विद्यालय के प्रधानाध्यापकों के नाम हैं-—(१) पं० श्री **गोपीनाथ शास्त्री**, धर्माधिकारी, (२) श्री **वेणी माधव शास्त्री**, (३) श्री **बृज-नन्दन त्रिपाठी** (४) श्री **शिवराम शुक्ल**, (५) श्री **शिवराम पर्वणीकर**, (६) श्री **रविकिरणदास शास्त्री**, (७) श्री **गोविन्द-कर पौण्डरीक**. (८) श्री **जयकृष्ण शर्मा** तथा (९) श्री **नवलकिशोर त्रिपाठी**। संस्था की स्थापना के समय, जब यह विद्यालय शास्त्री पर्यन्त परीक्षाओं के लिये मान्यता प्राप्त था अर्थात् १९४६ में यहा ५ अध्यापक तथा ३३ छात्र थे। इस समय छात्रों की संख्या १३२ और अध्यापक ९ हैं। इस समय इस संस्था को ७० प्रतिशत सहायता प्राप्त हो रही है। इस संस्था का जयपुर के इतिहास में उल्लेखनीय योगदान है।[10]

८. श्री माधव संस्कृत विद्यालय

जयपुर संस्थापक सवाई जयसिंह द्वितीय के विद्यागुरु श्री माधव भट्ट शर्मा पर्वणीकर के नाम पर इस संस्था का नामकरण किया गया था। आप जयपुरस्थ पर्वणीकर परिवार के मूल पुरुष माने जाते हैं। इसकी स्थापना १ जुलाई १९४४ को **श्री मुकुन्दराम भट्ट पर्वणीकर ने की।**[11] भट्टों की गली, सिरह ड्योढी बाजार, जयपुर में स्थित अपने निवास स्थान पर्वणीकर भवन में इसका शुभारम्भ हुआ। पहले तो यहाँ केवल ज्ञानार्जन हेतु छात्र उपस्थित होते थे, परन्तु कालान्तर में परीक्षाओं में भी सम्मिलित होने लगे। संस्कृत भाषा की अवैतनिक निरन्तर सेवा करना ही संस्था-संस्थापन का उद्देश्य था। इस संस्था के प्रथम प्रधानाध्यापक **श्रीभवदत्त शास्त्री मैथिल** रहे हैं, जिन्होंने १९५० तक तक यहाँ कार्य किया था। इनके पश्चात् **श्री नारायण त्रिपाठी** ने प्रधानाध्यापक के रूप में कार्य किया। उल्लेखनीय अध्यापकों में उक्त दोनों प्रधानाध्यापकों के अतिरिक्त **श्री लक्ष्मीनारायण शास्त्री, श्री गोपालकृष्ण शर्मा, श्री चन्द्रिका प्रसाद शर्मा श्री दिवाकर शर्मा, श्री प्राणनाथ धर्माधिकारी** तथा **श्री माधवराम भट्ट पर्वणीकर** के नाम उल्लेखनीय है। उल्लेखनीय छात्रों में श्री शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी, श्री उमाशंकर शुक्ल तथा श्री माधवराम भट्ट स्मरणीय हैं। इस विद्यालय की छात्र संख्या स्थापना के समय २४ थी। प्रवेशिका में अध्ययन करने वाले छात्रों की संख्या १७ तक रही है। किन्हीं कारणों से यह संस्था अधिक समय तक सेवा न कर सकी और १९५२ में बन्द हो गई। ८ वर्षों के अल्प समय में सम्पन्न इसका अध्यापन कार्य उल्लेखनीय है।

९. श्री वेदवेदांग विद्यालय

श्री वैदिक संस्कृति प्रचारक संघ के तत्त्वावधान में संचालित श्री वेदवेदांग विद्यालय निःशुल्क रात्रि-कालेज के रूप में चल रहा है। इसकी स्थापना १३ नवम्बर, १९६३ को ब्रह्मश्री पट्टाभिरामजी शास्त्री, भूतपूर्व प्रिंसिपल, संस्कृत कालेज की प्रेरणा से संघ की प्रसार-समिति के निर्देशानुसार की गई। इसका उद्घाटन लोकसभा की माननीय सदस्या तथा जयपुर की महारानी श्रीमती गायत्री देवी के करकमलों से हुआ। महारानी जी ने नगर के बच्चों को वेद-वेदांगों का अध्ययन कर राष्ट्र की संस्कृति को सुदृढ़ करने के लिए प्रेरणा देते हुए संघ को वैदिक संस्कृति के प्रचार-प्रसार व पोषण के लिए पांच हजार का आर्थिक अनुदान भी प्रदान किया। प्रारम्भ में इसका कार्य सामान्य रूप से चलता रहा। एक वर्ष पश्चात् ११ नवम्बर, १९६४ को गालवाश्रम के महन्त श्री रामोदराचार्य की समुपस्थिति में विद्यालय में वेद-शिक्षा का श्रीगणेश हुआ और साथ ही ज्योतिष, कर्मकाण्ड, आयुर्वेद तथा सामान्य संस्कृत-शिक्षा की अध्यापन व्यवस्था की गई। विद्यालय में ६४ विद्यार्थियों ने प्रवेश लेकर वेदाध्ययन प्रारम्भ किया। कालान्तर में बालकों तथा प्रौढों की शिक्षा प्राप्ति के साथ-साथ प्रमाणपत्रों की उपलब्धि के लक्ष्य से अखिल भारतीय संस्कृत प्रचार परीक्षाओं, स्वाध्याय मण्डल पारडी द्वारा संचालित वेद एवं संस्कृत परीक्षाओं तथा भारतीय विद्या भवन, बम्बई की परीक्षाओं के केन्द्र स्थापित किये गये। विद्यालय परिवार में दो वेद अध्यापक, १ संस्कृताध्यापक, १ ज्योतिष अध्यापक तथा अन्य आवश्यक कर्मचारियों की नियुक्तियां की गई।[12] यहां मालवीय वैदिक पुस्तकालय भी है, जहां वेद के प्राचीन ग्रन्थों का संकलन है। छात्रों के निवासार्थ एक छात्रावास भी है। यह विद्यालय श्री व्रजनिधि का मन्दिर, सिटी पैलेस के पास स्थित है। इसके निदेशक जयपुर के उत्साही व कर्मठ कार्यकर्ता **पं० श्री शिवदत्तजी जोशी (वैदिक)** है। इनके प्रयास से ही यह विद्यालय निरन्तर उन्नति के पथ पर अग्रसर है।

१०. अन्यान्य विद्यालय

उपर्युक्त विद्यालयों के अतिरिक्त श्री **महिला संस्कृत पाठशाला** का नाम विशेषतः उल्लेखनीय है, जिसे स्वर्गीय **पं० माधवप्रसादजी शास्त्री गौड़** ने जन्म दिया था। श्री शास्त्रीजी ने महिला समाज में संस्कृत प्रचार का संकल्प लेकर इसकी पूर्ति के लिए अपना जीवन लगा दिया था। आपकी अनेक शिष्याओं ने संस्कृत की सेवायें की हैं, जिनमें विदुषी श्री मंसादेवी (मननादेवी) का नाम विशेष उल्लेखनीय है। ये इस समय राज० उच्च मा० कन्या विद्यालय, बनीपार्क में बालिकाओं को संस्कृत पढाती हैं। आपकी भी कतिपय संस्कृत रचनाये मालवमयूर आदि मासिक पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई है। शास्त्रीजी की यह योजना थी कि जब तक महिलाओ मे संस्कृत का प्रचार नही किया जायेगा, तब तक संस्कृत

और हम उन्नत नहीं हो सकेंगे। होने वाली मातायें ही इसके प्रति रुचि से प्रसार में अधिक योग दे सकती हैं। आपने इसी तथ्य को क्रियान्वित करने के लिए संस्कृत कालेज से विश्राम प्राप्त कर वसन्त पंचमी सम्वत् २००० को इस पाठशाला का शुभारम्भ किया। पं० श्री लादूराम जी संगीताचार्य की पुत्री श्रीमती ललितादेवी शर्मा इसकी प्रयोजिका थीं। महाराजा संस्कृत कालेज जयपुर की शास्त्रप्रवेशिका परीक्षा में सर्वप्रथम महिला परीक्षार्थिनी के रूप में प्रविष्ट होकर इनने अन्य बालिकाओं के लिए मार्ग प्रशस्त किया था। सम्वत् २००३ के क्रमांक ५३ से इनने शास्त्रप्रवेशिका परीक्षा द्वितीय श्रेणी से उत्तीर्ण की थी। इसके अतिरिक्त कलकत्ता की काव्य प्रथमा, प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रवेशिका व विद्या-विनोदिनी (संस्कृत विषय लेकर) आदि अनेक परीक्षायें उत्तीर्ण की थी। खेद है कि इनका अत्यन्त अल्पावस्था में ही स्वर्गवास हो गया। इनके पश्चात् श्रीमती रामदुलारीदेवी शर्मा, श्री राधादेवी आदि अनेक महिलाओं ने यहां से अध्ययन कर के संस्कृत की विभिन्न परीक्षायें उत्तीर्ण की हैं।

श्री शास्त्रीजी का इस संस्था को जन्म देने से पूर्व विचार था कि वे महिलाओं को समुन्नत देखें। इसी उद्देश्य से उनने इसे स्थापित किया था। इसके तीन उद्देश्य थे-(१) महिला समाज में संस्कृत भाषा का प्रचार-प्रसार करना, (२) प्राचीन आर्य संस्कृति के गौरव का ज्ञान कराना तथा आर्य नारी-धर्म का प्रचार करना एवं (३) गृहकार्यों में कुशलता प्राप्त कराना। श्री शास्त्रीजी के उपरान्त इसका संचालन सन् १९६०-६१ तक श्री रामगोपालजी शास्त्री वरिष्ठ अध्यापक, संस्कृत कालेज, जयपुर ने किया। इसकी अनेक शाखायें स्थापित की गईं। यहां अध्यापन व्यवस्था निःशुल्क थी। दीन तथा असहाय छात्रों को परीक्षा शुल्क व पुस्तकों की सुविधा विद्यालय की ओर से दी जाती थी। अनेक विद्वानों व विदुषी महिलाओं ने इस संस्था को उल्लेखनीय सहयोग प्रदान किया, जिनमें श्री जानकीलालजी शास्त्री, श्री गोविन्दनारायणजी शास्त्री (ब्रह्मपुरी), श्री मनसादेवी शास्त्री तथा श्री रामदुलारीदेवी के अतिरिक्त श्री रामगोपाल जी शास्त्री का नाम स्मरणीय है। इस समय यह संस्था शिथिल रूप में कार्य कर रही है।

राजस्थान संस्कृत संसद जयपुर के तत्त्वावधान में संचालित राजस्थान संकृत कालेज नामक रात्रि पाठशाला का नाम भी इसलिए उल्लेखनीय है कि यहां शिक्षा-शास्त्री के परीक्षार्थी अध्ययन कर रहे हैं। यह संस्था अभी कुछ ही समय पूर्व स्थापित हुई है। संस्कृत-शिक्षा के प्रशिक्षण के लिए प्रशिक्षित अध्यापकों को प्रस्तुत करना ही इस संस्था का उद्देश्य है।

संस्कृत निदेशालय, राजस्थान सरकार द्वारा मान्यता एवं सहायता प्राप्त कुछ विद्यालय इस प्रकार के हैं जो जयपुर नगर की परिधि में चलते हैं तथा जिनका प्रमुख उद्देश्य संस्कृताध्यापन करना है। ये संस्थायें तीसरी कक्षा से संस्कृत का पाठ्यक्रम प्रारम्भ कर देती हैं, जब कि अन्याय संस्थाओं में संस्कृत का अनिवार्य पठन छठी कक्षा से प्रारम्भ होता है। इन विद्यालयों में पूर्व प्रवेशिका के लिए मान्यता प्राप्त सोलह विद्यालय हैं, जिनमें (१) राजश्री विद्यालय, (२) भारतीय विद्यालय, (३) सरस्वती विद्यापीठ, (४) मित्रज्ञान विद्यालय, (५) आदर्श ज्ञान विद्यालय, (६) साहित्य सदावर्त, (७) भारतीय बाल मन्दिर, (८) शारदा शिक्षा निकेतन आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

इस प्रकार जयपुर नगर में राजस्थान विश्वविद्यालय के अन्तर्गत एक संस्कृत विभाग (पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली पर आधारित), एक राजकीय स्नातकोत्तर कालेज (महाराजा संस्कृत कालेज) तथा दो सहायता प्राप्त स्नातकोत्तर कालेज (श्री दिगम्बर जैन संस्कृत कालेज तथा श्री दादू महाविद्यालय) संस्कृत की सेवा में संलग्न है। शास्त्री स्तर का कोई भी स्वतन्त्र कालेज नहीं है। उपाध्यायान्त कालेज एक (खाण्डल विप्र विद्यालय) तथा दो प्रवेशिकान्त विद्यालय (श्री सनातन धर्म संस्कृत विद्यापीठ तथा श्रीधर संस्कृत विद्यालय)। शेष १६ विद्यालय पूर्व प्रवेशिका अर्थात् अष्टम श्रेणी तक का अध्यापन कराते हैं। अन्य संस्थाओं में श्री गौड़ विप्र विद्यालय तथा वेदवेदांग विद्यालय भी संस्कृताध्यापन के द्वारा इसकी सुरक्षा में संलग्न हैं। विद्यालयों को अनुदान देने की दृष्टि से राजस्थान सरकार का कार्य प्रशंसनीय है।[13]

———

परिचय--खण्ड

तृतीय अध्याय (ख) के संदर्भ व उद्धरण

(Referance and Notes)

1. "आत्मकथा और संस्मरण"—हरिद्वार के ऋषिकुल में-पृष्ठ ६१ ।
2. लिस्ट आफ एजूकेशन आफिसर्स–करेक्टेड अप्टू १ सितम्बर, १६३५, एजूकेशन डिपार्टमेन्ट, जयपुर स्टेट–पेज ५ व ६ । अब इन पर शोध प्रबन्ध प्रस्तुत हो चुका है । प्रबन्ध का शीर्षक है-"सूर्यनारायण व्याकरणाचार्य : व्यक्तित्व एवं कृतित्व"–प्रस्तोत्री–श्रीमती शशि गुप्ता, बीकानेर ।
3. दी सिविल लिस्ट, पार्ट प्रथम, करेक्टेड अप्टू ३१ जुलाई, १६४७–पेज ५३ व ५५ । इस समय श्री जैन "उच्चस्तरीय अध्ययन अनुसंधान संस्थान" के का० अध्यक्ष हैं तथा सारस्वत-साधना में लीन हैं ।
4. सेवानिवृत्त होने पर आजकल डॉ० इन्दुशेखर जयपुर में ही हैं ।
5. तृतीय अध्याय, परिचय खण्ड,'ग' अनुभाग–राजस्थान विश्वविद्यालय संस्कृत-विभाग का इतिवृत्त एवं उसका जयपुर नगर को योगदान ।
6. यह विवरण उक्त कालेज के दिवगंत अन्तिम अध्यक्ष से प्राप्त सूचना पर आधारित है ।
7. 'बड़ा मेला' इस सम्प्रदाय में तभी होता है जब एक आचार्य गोलोकवासी हो जाता है तथा उस पीठ पर अन्य उत्तराधिकारी पदासीन होता है । स्वामी दयारामजी ने यह कार्य अपनी जीवितावस्था में ही सम्पन्न किया था । (श्री दादू महाविद्यालय, रजत जयन्ती ग्रन्थ, संवत् २००६ में प्रकाशित, पृष्ठ १०१ के आधार पर-विद्यालय का सं० परिचय ।
8. वही–रजत जयन्ती ग्रन्थ, पृष्ठ १०२ व १०३ के अनुसार ।
9. उक्त विवरण वर्तमान प्रधानाध्यापक श्री रामप्रसाद शास्त्री खाण्डल के द्वारा प्रेषित सामग्री पर आधारित है।
10. श्रीधर संस्कृत विद्यालय, ब्रह्मपुरी का संक्षिप्त परिचय, १ जुलाई, १६६५ को प्रकाशित प्रति के अनुसार तथा उक्त संस्था के प्रधानाध्यापक द्वारा प्रेषित सामग्री पर आधारित है ।
11. उक्त विद्यालय के उपलब्ध प्राचीन रिकार्ड के अनुसार यह विवेचन प्रस्तुत किया गया है ।
12. श्री वैदिक संस्कृति प्रचारक संघ, जयपुर द्वारा प्रकाशित विवरण पत्रिका (संघ की विभिन्न प्रवृत्तियों का संक्षिप्त परिचयात्मक ग्रन्थ) संवत् २०२२ के अनुसार ।
13. उपर्युक्त विवरण (१) महिला संस्कृत विद्यालय सम्बन्धी विवेचन श्री रामगोपालजी शास्त्री के सौजन्य से तथा (२) अन्य विद्यालयों का सहायता सम्बन्धी उल्लेख निदेशक, संस्कृत निदेशालय, राजस्थान सरकार जयपुर से प्राप्त सूचना पर आधारित है ।

तृतीय-अध्याय

[ग]

राजस्थान विश्वविद्यालयीय संस्कृत-विभाग का इतिहास एवं उसका जयपुर नगर को योगदान

राजस्थान-विश्वविद्यालय की स्थापना सन् १९४७ ई० में हुई थी। उस समय इसका नाम राजपूताना विश्वविद्यालय (University of Rajputana) था। सन् १९५८ में यह नाम परिवर्तित किया गया है। तब तक यह केवल परीक्षा-संचालन मात्र किया करता था। सन् १९६० से इस विश्वविद्यालय का विस्तार हुआ तथा जयपुर नगर के राजकीय कालेज विश्वविद्यालय के अधीन किये जाने का प्रस्ताव आया। सन् १९६१ ई० में स्नातकोत्तर कक्षायें विश्वविद्यालय के आधीन बना दी गई। ये कक्षायें इससे पूर्व महाराजा कालेज तथा महारानी कालेज में चला करती थीं। उस समय तक इस विश्वविद्यालय के पास स्थान का अभाव था, अतः संस्कृत-विभाग राजस्थान कालेज के भवन में प्रारम्भ हुआ। महाराजा कालेज में ही संस्कृत की स्नातकोत्तर कक्षायें थीं और श्री प्रेमनिधि शास्त्री संस्कृत के विभागाध्यक्ष थे। राजस्थान कालेज में संस्कृत के विभागाध्यक्ष डा० श्री पुरुषोत्तमलाल भार्गव थे, जो विश्वविद्यालय समिति द्वारा उक्त विभाग के वरिष्ठ प्रवाचक (Senior Reader) के रूप में नियुक्त किये गये। श्री शास्त्री का स्थानान्तरण गवर्नमेंट कालेज, कोटा में संस्कृत विभागाध्यक्ष के रूप में हुआ था। उसी समय डा० श्री सुधीरकुमार गुप्त, जो गोरखपुर विश्वविद्यालय में कार्य कर रहे थे, यहाँ प्रवाचक के रूप में चयनित किये गये। इनके अतिरिक्त दूसरी चयन समिति मे सनातनधर्म कालेज, अलीगढ के प्राध्यापक श्री रमाशंकर जैतली तथा राजकीय महाविद्यालय कोटा के प्राध्यापक श्री मणिशंकर शुक्ल व्याख्याता पद पर नियुक्त हुए। इन चार व्यक्तियों से सन् १९६१ ई० में इस विभाग का शुभारम्भ हुआ। जुलाई, १९६२ ई० में जब विश्वविद्यालय ने अन्य स्नातक कक्षायें भी ले लीं, तब अध्यापकों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि की गई। यह संख्या ४ से बढ़कर ९ हो गई। श्री मदन मोहन शर्मा, डा० श्री गंगाधर भट्ट, श्री शिवसागर त्रिपाठी के साथ ही श्री हरिराम आचार्य का राज्य सरकार से वरिष्ठता व योग्यता के आधार पर चयन किया गया। श्रीमती कृष्णा ब्रूम जो, महारानी कालेज में संस्कृत की प्राध्यापिका थीं और उच्च शिक्षा के लिये जर्मनी गई थी, लौटने के पश्चात् कुछ समय इस विभाग के अधीन रह कर सेवामुक्त होगई। इसके पश्चात् महारानी कालेज में अस्थायी नियुक्तियां चलती रहीं, जिस पर डा० ज्ञान साहनी तथा डा० निर्मला भार्गव ने कुछ दिन कार्य किया। सन् १९६४ ई० में इस पद पर श्रीमती शशिबाला गुप्ता की नियुक्ति की गई। श्रीमती गुप्ता इस समय स्थायी रूप से कार्य कर रही हैं।

इस समय (सन् १६७० ई० में) विभाग में निम्नलिखित ६ विद्वान् शिक्षक रूप में कार्य कर रहे हैं—

क्रम	नाम व योग्यता	पद	अध्यापन — स्नातक	अनुभव स्नातकोत्तर	(जुलाई ६८ तक) योग
१.	**डॉ० पुरुषोत्तमलाल भार्गव** एम. ए. (हिन्दी, संस्कृत व इतिहास) पी-एच.डी., शास्त्री,	प्रोफेसर व विभागाध्यक्ष	२७	१६	३१ वर्ष
२.	**डॉ० श्री सुधीरकुमार गुप्त** एम. ए. (संस्कृत) शास्त्री, पी-एच.डी., प्रभाकर, बी. ए. (आनर्स)	रीडर (प्रवाचक)	२१	१३	२४ वर्ष
३.	**डॉ० श्री रमाशंकर जैतली** एम. ए. (हिन्दी–संस्कृत), साहित्याचार्य, काव्यतीर्थ, शास्त्री (वेदान्त व व्याकरण), पी-एच.डी.	व्याख्याता	२३	१३	२६ वर्ष
४.	**श्री मणिशंकर शुक्ल** एम. ए. (हिन्दी-संस्कृत), साहित्याचार्य	व्याख्याता	१२	१२	१२ वर्ष
५.	**डॉ० श्री गंगाधर भट्ट** एम. ए. (हिन्दी-संस्कृत), पी-एच.डी.	व्याख्याता	८	१४	१७ वर्ष
६.	**श्री मदनमोहन शर्मा** एम. ए. (संस्कृत), एल-एल. बी.	व्याख्याता	१२	१२	१२ वर्ष
७.	**श्री शिवसागर त्रिपाठी** एम. ए. (हिन्दी-संस्कृत) साहित्याचार्य, साहित्यरत्न	व्याख्याता	७	११	१८ वर्ष
८.	**श्री हरिराम आचार्य** एम. ए. (संस्कृत)	व्याख्याता	१०	१०	१० वर्ष
९.	**श्रीमती शशिबाला गुप्ता**	व्याख्याता	४	४	६ वर्ष

सन् १६६१ ई० में जब संस्कृत-विभाग की स्थापना हुई थी, उस समय महाराजा कालेज में स्नातकोत्तर कक्षाओं में केवल ८ विद्यार्थी थे। पूर्वार्द्ध में ५ छात्रों ने प्रवेश लिया और इस प्रकार १३ छात्रों से इसका शुभारम्भ हुआ। उसके पश्चात् छात्रों की संख्या इस प्रकार रही है—

सत्र	छात्र संख्या योग (पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध)
१९६१–६२	१३
१९६२–६३	१५
१९६३–६४	१३
१९६४–६५	१४
१९६५–६६	१७
१९६६–६७	१३
१९६७–६८	१४
१९६८–६९	२५

इससे स्पष्ट है कि छात्र संख्या में न अधिक वृद्धि हुई है और न ह्रास ही। इस छात्र संख्या की स्थिति का श्रेय विभागाध्यक्ष के साथ ही अन्य सहयोगी प्राध्यापकों को दिया जाना चाहिये।

इस समय स्नातकोत्तर कक्षाओं में दो ग्रुप चल रहे हैं— (१) साहित्य ग्रुप और (२) **वैदिक ग्रुप**। साहित्य ग्रुप तो बहुत पहले से चलता आ रहा है और वैदिक ग्रुप सन् १९६२–६३ से प्रारम्भ किया गया था।

सन् १९६३–६४ के सत्र में प्रौढ शिक्षा योजना के अन्तर्गत इस विभाग का सहयोग श्लाघनीय माना गया है। प्रौढ व्यक्तियों को संस्कृत का प्रारम्भिक ज्ञान कराने के लिये कक्षायें चलाई गई और इस प्रकार इस विभाग ने एक राष्ट्रीय कार्य सफलता पूर्वक सम्पन्न किया।

शोध–प्रगति

संपूर्ण राजस्थान में (उक्त विश्वविद्यालय के अधीनस्थ महाविद्यालयों सहित)[1] कुल ८ शोध निर्देशकों में से ३ शोध निर्देशक इस विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग मे शोध निर्देशक के रूप में कार्य कर रहे हैं। विश्वविद्यालय में संस्कृत–विभाग की स्थापना से पूर्व संपूर्ण राजस्थान में केवल ४ विद्वान् शोध निर्देशक थे— (१) सर्वश्री प्रवीणचन्द्र जैन, (२) डा० श्री फतहसिंह, (३) प्रो. श्री विद्याधर शास्त्री, (४) पं० पी० एन० पट्टाभिराम शास्त्री। श्री पट्टाभि–रामजी शास्त्री को "वाचस्पति" के लिए शोध निर्देशक माना गया था, जिनके अधीन केवल श्री मदनलाल शर्मा (डा० मण्डन मिश्र) ने पी– एच० डी० की उपाधि प्राप्त की है। यह भी इस विश्वविद्यालय में खोले गये प्राच्य विद्या विभाग संकाय (Faculty of Oriental Learning) के स्थायी न होने के कारण सर्वोच्च समिति (Syndicate) द्वारा प्रदान की गई थी।

विश्वविद्यालय में संस्कृत विभाग की स्थापना से पूर्व केवल ६ छात्रों को पी–एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई थी। इस विश्वविद्यालय के संस्कृत विषय से सर्वप्रथम पी– एच० डी० प्राप्तकर्ता डा० श्री सुधीरकुमार गुप्त हैं जिनने १९५७ में यह उपाधि प्राप्त की थी। सौभाग्यवश आप आजकल इसी विभाग में प्रवाचक पद पर कार्य कर रहे हैं तथा शोध निर्देशक भी हैं। विभागीय स्थापना से पूर्व निम्नलिखित व्यक्तियों को पी–एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई है—

क्रम	शोधकर्त्ता	शोध निदेशक	शोध विषय	प्राप्तिवर्ष
१.	श्री सुधीरकुमार गुप्त	डा० फतहसिंह	वेद-भाष्य पद्धति को दयानन्द सरस्वती की देन	१९५७
२.	श्री ब्रह्मानन्द शर्मा	श्री विद्याधर शास्त्री	संस्कृत साहित्य में सादृश्यमूलक अलंकारों का विकास	१९५८
३.	श्रीमती कृष्णाकुमारी मेहता	श्री विद्याधर शास्त्री	Diplomacy in Sanskrit Literature.	१९५८
४.	श्री मनमोहन जगन्नाथ शर्मा	श्री प्रवीणचन्द्र जैन	Magh- his life & works	१९५८
५.	श्री मदनलाल शर्मा (मंडन मिश्र)	श्री पी० एन० पट्टाभिराम शास्त्री	मीमांसा दर्शन का समालोचनात्मक इतिहास	१९५८
६.	श्रीमती ज्ञान साहनी	डा० फतहसिंह	Godesses in Rigveda	१९६१

उपर्युक्त शोध छात्रों में से इस समय डा० सुधीरकुमार गुप्त तथा डा० श्री ब्रह्मानन्द शर्मा शोध निर्देशक के रूप में कार्य कर रहे है।

विभागीय स्थापना के पश्चात् विभागीय शोध निर्देशकों के निर्देशन में कार्य करते हुए पी-एच०डी० की उपाधि प्राप्त करने वाले व्यक्तियों के नाम तथा शोध कर रहे छात्रों के नाम विषय सहित यहां प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

१. शोध निर्देशक–डा० श्री पुरुषोत्तमलाल भार्गव, प्रोफेसर व विभागाध्यक्ष

(क) उपाधिप्राप्त शोध छात्र

शोध छात्र	शोध विषय	वर्ष	
१. श्री प्रभाकर शर्मा (शास्त्री) कल्याण कालेज, सीकर	जयपुर की संस्कृत साहित्य को देन (१६९९-१८३४ ई०)	१९६४	सेवारत
२. श्री विजयशंकर शर्मा राज० महा०, बारां	A critical study of the Puranic Myths	१९६४	स्वतन्त्र
३. श्री श्रीकृष्ण ओझा राज० महा०, भीनमाल	Ramayan of Valmiki	१९६६	स्वतन्त्र
४. सुश्री चित्रा शर्मा	भास, कालिदास और शूद्रक के नाटकों में समाज-चित्रण	१९६७	स्वतन्त्र
५. सुश्री अशोकलता जैन	Karun Ras in Sanskrit Litt.	१९६७	स्वतन्त्र
६. श्री श्यामलाल शर्मा	Historical Dramas in Skt. Litt.	१९६९	सेवारत
७. श्री सुभाषचन्द्र तनेजा	कल्हण की राजतरंगिणी में चित्रित भारतीय संस्कृति	१९६९	स्वतन्त्र

(ख) शोध संलग्न छात्र-छात्राएं

शोध छात्र	शोध विषय	
१. श्रीमती उर्मिला देवी	शतपथ ब्राह्मण: एक सांस्कृतिक अध्ययन	स्वतन्त्र
२. श्री शंकरसिंह झाला	The State of Indian Society as depicted in the ancient Purans	स्वतन्त्र
३. श्री रामदत्त शर्मा	Birds & beasts in Kalidas & post Kalidas Kal	स्वतन्त्र

४. सुश्री सुशीला सोलंकी	महाकवि बिल्हण: जीवन व रचनायें	स्वतन्त्र
५. श्री मदनमोहन शर्मा	The evolution of Puranic Pantheon	सेवारत
६. श्रीमती राजेश्वरी भट्ट	कादम्बरी का काव्यशास्त्रीय अध्ययन	सेवारत
७. सुश्री सुदर्शन बजाज	महाभारत शान्तिपर्व का एक अध्ययन	स्वतन्त्र
८. श्री वसन्त जैतली	A critical & Analytical study of of Bhawa (Emotions)	स्वतन्त्र
९. श्री रामचन्द्र वामन कुम्भारे	ऋग्वेद में प्रकृति वर्णन	सेवारत

२. शोध निर्देशक— डा० श्री सुधीरकुमार गुप्त
प्रवाचक-संस्कृत विभाग, राजस्थान-विश्वविद्यालय,

(क) उपाधि प्राप्त शोध छात्र

१. श्री नाथूलाल पाठक गवर्न० कालेज, कोटा	एतरेय ब्राह्मण का एक अध्ययन	१९६४	सेवारत
२. श्री बद्रीप्रसाद पंचोली गवर्न० कालेज अजमेर	Conception of Cow in Rigveda	१९६५	सेवारत
३. सुश्री वेदकुमारी गवर्न० गर्ल्स कालेज , अलवर	मैत्रायणी संहिता का एक अध्ययन	१९६६	सेवारत

(ख) शोध संलग्न छात्र-छात्राएं

१. सुश्री शारदा गंडा	Symbolism of Ashva in vedic Literature special reference to Rigveda	स्वतन्त्र
२. श्री नारायणलाल शर्मा	तैत्तिरीय संहिता का एक अध्ययन	सेवारत
३. श्रीमती जया गोस्वामी	वैदिक सौर देवता	स्वतन्त्र
४. सुश्री कृष्णा बोस	काठक संहिता का एक अध्ययन (धर्म, दर्शन, पुराण तथा कथाशास्त्र)	स्वतन्त्र
५. सुश्री सुकेशीरानी गुप्ता	शतपथ ब्राह्मण की वेद भाष्य पद्धति (पर्याययोजना)	स्वतन्त्र
६. श्री सत्यव्रत श्रीगंगानगर ·	जैन संस्कृत महाकाव्य (१५ से १७वीं शताब्दी)	सेवारत

३. शोध निर्देशक—डा० श्री रमाशंकर जैतली, (व्याख्याता), राज० विश्वविद्यालय, जयपुर.

क) उपाधि प्राप्त शोध छात्र　　　कोई नहीं

ख) शोध संलग्न छात्र-छात्राएं

१. सुश्री आशा देवलिया	संस्कृत नाटकों के नायकों का तुलनात्मक अध्ययन	स्वतन्त्र
२. सुश्री वीना जे० सिंह	Dravidian influence in Sanskrit	स्वतन्त्र

विभागीय स्थापना से पूर्व उपर्युक्त ३ निर्देशकों में से डा० श्री सुधीरकुमार गुप्त के पास गोरखपुर विश्वविद्यालय में २ छात्र शोध कर रहे थे, जिनमें प्रथम सुश्री कमला श्रीवास्तव (गोरखपुर विश्वविद्यालय में पंजीकृत थी) तथा श्री रमाशंकर पाण्डेय (आगरा विश्वविद्यालय से पंजीकरण के प्रत्याशी थे)।

विश्वविद्यालय के इस विभाग को संस्थापित हुए आज ७ वर्ष हो चुके हैं। इस अवधि में यहां के छात्र-छात्राओं ने जो पुरस्कार या विश्वविद्यालय में, स्थान प्राप्त किये हैं उनका उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है—

शैक्षणिक—(१) श्रीमती शशिबाला गुप्ता	प्रथम श्रेणि	द्वितीय स्थान	१९६२
(२) श्री सुभाषचन्द्र तनेजा	प्रथम श्रेणि	तृतीय स्थान	१९६३

(३) सुश्री सुकेशीरानी गुप्ता	प्रथम श्रेणि	तृतीय स्थान	१९६६
(४) सुश्री सुदर्शन वजाज	प्रथम श्रेणि	प्रथम स्थान	१९६७

राजस्थान तथा राजस्थान स बाहर आयोजित विभिन्न प्रतियोगिताओं में भाग लेने वाले छात्र–छात्राओं के नाम उल्लेखनीय हैं, जिन्हें पुरस्कार प्राप्त हुआ है–

१, सुश्री वेदकुमारी	नवम्बर, १९६२	अखिल भारतीय संस्कृत वाद-विवाद प्रतियोगिता जयपुर– **प्रथम**
२. श्रीमती गायत्री पंवार	दिसम्बर, १९६३	अखिल भारतीय संस्कृत वाद–विवाद प्रतियोगिता जयपुर– **प्रथम**
३. सुश्री सुकेशीरानी गुप्ता	१९६२–६३	अखिल राजस्थान प्रान्तीय संस्कृत वाद–विवाद प्रतियोगिता मे **प्रथम** (संपूर्णानन्द पुरस्कार)
४. श्री सुभाषचन्द्र तनेजा	दिसम्बर, १९६३	अखिल राजस्थान संस्कृत प्रतियोगिता (निबन्ध) (राजस्थान कालेज जयपुर) **प्रथम**
५. सुश्री श्रद्धा चौहान	१९६४–६५	अन्त:विश्वविद्यालय युवक समारोह हिन्दी वाद–विवाद प्रतियोगिता **प्रथम**
६. सुश्री सुकेशीरानी गुप्ता	१९६४–६५	अखिल भारतीय संस्कृत वाद–विवाद प्रतियोगिता (राजस्थान कालेज, जयपुर द्वारा आयोजित)— **तृतीय**
७. सुश्री प्रमिला मानिक	१९६४–६५	रामकृष्ण मिशन कलकत्ता द्वारा आयोजित निबन्ध प्रतियोगिता– 'The Message of Swami Vivekananda' (विजय) **प्रथम**
८, सुश्री सुकेशीरानी गुप्ता	१९६४–६५	वरेली कालेज, वरेली द्वारा आयोजित निबन्ध प्रतियोगिता 'काषि-दाससम्मतो राष्ट्रधर्मः' विषय पर–**द्वितीय**
९. सुश्री सुकेशीरानी गुप्ता	१९६४–६५	विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन के तत्वावधान में आयोजित कालि–दास जयन्ती पर निबन्ध 'रघुवंशे राजधर्माणामादर्शः' द्वितीय वर्ग (स्नातकोत्तर) में **प्रथम**
१०.श्री सुभाषचन्द्र तनेजा	१९६५–६६	दरभंगा विश्वविद्यालय में केन्द्रीय सरकार द्वारा आयोजित परि–चर्चाओं में भाग लेकर ३ पुरस्कार प्राप्त किये।
११.सुश्री शकुन्तला जैन	१९६६–६७	अखिल भारतीय संस्कृत वाद-विवाद प्रतियोगिता (महारानी कालेज द्वारा आयोजित) जयपुर में **प्रथम व चल विजयोपहार**
१२.श्रीमती उर्मिलादेवी शर्मा	१९६७–६८	कालिदाप जयन्ती समारोह उज्जैन में 'कुमार संभव के उत्तर भाग का प्रामाण्य' पर **प्रथम** पुरस्कार, प्रथम वर्ष (शोध छात्र)

इसके अतिरिक्त विभागीय, छात्रा सुश्री सुकेशीरानी गुप्ता ने अखिल भारतीय प्राच्य विद्या सम्मेलन अलीगढ (२३वे अधिवेशन, अक्टूबर १९६६ ई०) में २ शोध पत्र पढ़े, जिनमें 'शतपथ ब्राह्मण मे गायत्री' विषयक लेख सभी की प्रशंसा का विपय था।

इस प्रकार उक्त विभाग जयपुर के संस्कृत साहित्य के इतिहास में उल्लेखनीय कार्य कर रहा है तथा विभाग की स्थापना के पश्चात् शोध कार्य इतनी तीव्रता से हो रहा है कि अग्रिम दशाब्दी में इसका उल्लेख भारतवर्ष के ख्याति प्राप्त विश्वविद्यालयों में होने लगेगा।

विभाग के अध्यक्ष एवं प्राध्यापक डा० श्री पुरुषोत्तमलाल भार्गव के अनुदेशन में विभाग का प्रत्येक व्यक्ति सक्रिय है तथा विभाग निरन्तर उन्नति कर रहा है। प्रसंगवश यहाँ विभाग के अध्यक्ष एवं प्रवाचक महोदयों का परिचय प्रस्तुत किया जाना चाहिये था, परन्तु अग्रिम अध्याय "कृतिकार खण्ड" में अन्य विद्वानों के साथ (अकारादि क्रम से प्रस्तुत) इनका भी परिचय प्रस्तुत किया जायेगा।

उपर्युक्त जानकारी संस्कृत विभाग के सहयोग से उपलब्ध हुई है। संस्कृत साहित्य के इतिहास में जयपुर के क्षेत्र में की जाने वाली इस विभाग की संस्कृत-सेवा उल्लेखनीय है और इस विभाग का योगदान चिरस्मरणीय है।[2]

परिचय--खण्ड

तृतीय अध्याय (ग) के सन्दर्भ व उद्धरण
(References and Notes)

---

1. इन आठों शोध निर्देशकों के नाम इस प्रकार है—(१) श्री प्रवीणचन्द्र जैन, प्राचार्य व अध्यक्ष, वनस्थली ज्ञान विज्ञान महाविद्यालय, वनस्थली, (२) डा० श्री फतहसिंह, निदेशक, राज० प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, (३) डा० श्री पुरुषोत्तमलाल भार्गव, अध्यक्ष, संस्कृत विभाग विश्वविद्यालय, जयपुर, (४) डा० श्री सुधीरकुमार गुप्त, रीडर (५) डा० श्री ब्रह्मानन्द शर्मा, अध्यक्ष, गवर्न० कालेज, अजमेर, (६) डा० श्री नाथूलाल पाठक, गवर्न० कालेज, कोटा, (७) डा० श्री रमाशंकर जैतली, व्याख्याता, विश्वविद्यालय जयपुर (८) डा० रामकुमार आचार्य, गवर्न० कालेज, अजमेर।

2. राजस्थान विश्वविद्यालय में विभाग की स्थापना के बाद १७ वर्ष पश्चात् रिक्त पदों को पूर्ण करने के लिए निर्वाचन सम्पन्न हुए। ये रिक्त पद डॉ. पी. एल. भार्गव, डॉ. सुधीरकुमार गुप्त तथा डॉ. रमाशंकर जैतली के सेवा निवृत्त होने से बने थे। सेवानिवृत्ति के समय डॉ० गुप्त प्रोफेसर तथा डॉ० जैतली रीडर थे। निर्वाचन में उदयपुर विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डॉ० रामचन्द्र द्विवेदी को 'प्रोफेर' के पद पर आह्वान किया गया तथा डॉ० प्रभाकर शास्त्री (शोधप्रबन्ध लेखक) व डॉ० हरिराम आचार्य को रीडर बनाया गया। इस समय डॉ० हरिराम आचार्य इस विभाग के अध्यक्ष है तथा डॉ० शास्त्री महारानी कालेज के स्थानीय विभागाध्यक्ष।

   शोध के क्षेत्र में भी पर्याप्त उन्नति हुई है। महाविद्यालयों में कार्यरत प्राध्यापकों में डॉ. पुष्करदत्त शर्मा के निदेशन में एक छात्रा को उपाधि प्राप्त हो चुकी है तथा ५ छात्र-छात्रायें शोध कर रहे है। अन्य शोध निर्देशन में इन पंक्तियों के लेखक के अधीन तीन छात्र-छात्राओं को पी-एच.डी उपाधि प्राप्त हो चुकी है तथा ६ कार्यरत हैं। अजमेर से डॉ. अभयदेव शर्मा, अध्यक्ष संस्कृत विभाग, बीकानेर से डॉ० दिवाकर शर्मा, व्याख्याता डूंगर कालेज, कोटा से डॉ० शंकरसिंह झाला, व्याख्याता तथा ब्यावर से डॉ० नरेन्द्र पाठक शोध निर्देशक के रूप में मान्यता प्राप्त हैं तथा शोध करवा रहे हैं। विश्वविद्यालय विभाग में डॉ० गंगाधर भट्ट, श्री शिवसागर त्रिपाठी, डॉ० हरिराम आचार्य व डॉ० विश्वनाथ शर्मा शोध निदेशक के रूप में मान्यता प्राप्त हैं तथा शोध करवा रहे हैं।

   इन वर्षों में विभाग के छात्रों की संख्या में भी पर्याप्त वृद्धि हुई है। एम. फिल्. का तीसरा वर्ग परीक्षा के लिए सन्नद्ध है। इस वर्ष से 'दर्शन वर्ग 'व' विशेष कवि' कालिदास का अध्ययन प्रारम्भ किया है। नवीन प्राध्यापकों में श्रीमती डॉ० उर्मिला शर्मा डॉ० विश्वनाथ शर्मा, श्रीमती पुष्पा गुप्ता, सुश्री सुनीता चतुर्वेदी श्री श्रीकृष्ण शर्मा व बसन्त जैतली, के नाम उल्लेखनीय हैं।

   वर्तमान में डॉ० सुधीरकुमार गुप्त तथा श्री गंगाधर द्विवेदी विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की योजना के अन्तर्गत प्राध्यापक हैं।

तृतीय—अध्याय

(घ)

जयपुर नगरस्थ संस्कृत-संस्कृति की प्रचारक संस्थायें एवं उनका इतिवृत्त

महाराज संस्कृत कालेज एवं अन्यान्य संस्कृत अध्यापन कराने वाले विद्यालयों के अतिरिक्त जयपुर में अनेक ऐसी संस्थाओं ने जन्म लिया है जिनने संस्कृत भाषा के विकास में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। यहां इन संस्कृत-सेवी संस्थाओं का उल्लेख किया जा रहा है। उन संस्थाओं में प्रमुख कुछ संस्थायें निम्नलिखित हैं—

(१) अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन (२) राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन
(३) संस्कृत वाग् विवर्द्धिनी परिषद् (४) वैदिक संस्कृति प्रचारक संघ
(५) श्री कर्मकाण्डि मंडल एवं वैदिक साहित्य संसद (६) राजस्थान संस्कृत संसद्, इत्यादि

१. अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन

यद्यपि यह संस्था संपूर्ण भारतवर्ष के प्रख्यात पण्डितों का ही एक सम्मिलित रूप है, परन्तु इसके संस्थापक थे जयपुर नगर के मूर्धन्य विद्वान् महामहोपाध्याय स्वर्गीय श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी। श्री चतुर्वेदीजी जयपुर के ही निवासी थे और यह संस्था उन पर ही पूर्णतः आश्रित थी। इसका प्रधान कार्यालय इन्हीं के साथ रहा और इसीलिये जयपुर नगर के संस्कृत साहित्य के इतिहास में इसका उल्लेख अत्यावश्यक है। श्री चतुर्वेदीजी ने अपने "आत्मकथा और संस्मरण" नामक ग्रन्थ में इसका उल्लेख किया है।[1]

संस्कृत के हितों की रक्षा, उसके प्रचार-प्रसार एवं संस्कृत पण्डितों में संगठन की भावना जागृत करने की दृष्टि से म० म० पण्डित श्री शिवकुमारजी शास्त्री, पं० बुलाकीरामजी शास्त्री, व्याख्यानवाचस्पति श्री दीनदयालुजी, इनके सुपुत्र श्री हरिहरस्वरूपजी शास्त्री एवं म० म० पं० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदीजी के सम्मिलित प्रयास से विक्रम संवत् १९७० तदनुसार सन् १९१३ ई० में हरिद्वार में इस सम्मेलन की स्थापना हुई। श्री चतुर्वेदीजी उस समय ऋषि कुल ब्रह्मचर्याश्रम, हरिद्वार में प्रधानाध्यापक के रूप में कार्य कर रहे थे।

सम्मेलन के प्रथम सभापति थे काशी के विख्यात वैयाकरण विद्वान् म० म० पण्डित श्री शिवकुमारजी शास्त्री। प्रधानमन्त्री थे पं० श्री बुलाकीरामजी तथा उपमन्त्री म० म० पं० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी और जयपुर के ही श्री सूर्यनारायणजी शास्त्री व्याकरणाचार्य। संवत् १९७१ के ज्येष्ठ मास में गंगा दशहरा के पुण्य पर्व पर ब्रह्मचर्याश्रम के वार्षिकोत्सव पर इस सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन हरिद्वार में हुआ। कुछ मास पश्चात् श्री बुलाकीरामजी ने अपना पद परित्याग कर दिया और श्री चतुर्वेदीजी को ही १० वर्ष तक यह कार्य करना पड़ा। श्री चतुर्वेदीजी जहां जहां भी गये, सम्मेलन का कार्यालय भी उन्हीं के साथ घूमता रहा। इस प्रकार यह सम्मेलन कार्यालय कुछ वर्ष जयपुर रहा और कुछ वर्ष लाहौर भी। इसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार उपस्थित किया जा सकता है—

अधिवेशन संकेत	अधिवेशन स्थान	वर्ष	सभापति नाम	प्रधान मन्त्री
प्रथम	हरिद्वार	(१९१४ ई० १९७१ सं०)	म० म० श्री सतीशचन्द्रजी विद्याभूषण, प्रिंसिपल संस्कृत कालेज, कलकत्ता	पं. श्री बुलाकीरामजी धर्मशिक्षक, मेयो कालेज अजमेर
द्वितीय	हरिद्वार	(१९१५ ई. १९७२ सं.)	गोवर्द्धनपीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य श्री मधुसूदन तीर्थ महाराज, जगदीशपुरी	म, म. पं. श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम, हरिद्वार
तृतीय	मथुरा	(१९१६ ई, १९७३ सं.)	म. म. श्री हरिप्रसादजी शास्त्री, प्रसिद्ध ऐतिहासिक गवेषक, एशियाटिक सोसायटी कलकत्ता	,, ,, ,,
चतुर्थ	लाहोर	(१९१७ ई. १९७४ सं.)	महाराज श्री रमेश्वरसिंह दरभंगा नरेश (विहार)	,, ,, ,,
पंचम	प्रयाग	(१९१८ ई, १९७४ सं,)	म. म. पं. श्री टी० गणपति शास्त्री, ट्रावन्कोर (दक्षिण)	म. म. पं. श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम, हरिद्वार
षष्ठ	कोडियालम् (त्रिचनापल्ली)	(१९१९ ई. १९७५ सं.)	म. म. श्री हाथीभाई शास्त्री राजपण्डित, जामनगर (गुजरात)	,, ,, ,,
सप्तम	आगरा	(१९२० ई. १९७७ सं.)	म. म. श्री हरनारायण शास्त्री देहली	,, ,, ,,
अष्टम	काशी	(१९२३ ई. १९८० सं.)	म. म. श्री प्रमथनाथ तर्कभूषण, हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी	,, ,, ,,
नवम	कानपुर	(१९२५ ई. १९८२ सं.)	म. म. श्री जयदेव मिश्र, मिथिला	,, ,, ,,
दशम	कलकत्ता	(१९२६ ई. १९८३ सं.)	म. म. श्री कुप्पुस्वामी शास्त्री, मद्रास	पं. गोप्पतिराय चौधरी प्रधान सदस्य, संस्कृत सा. परिषद, कलकत्ता
एकादश	हरिद्वार	(१९२७ ई, १९८४ सं.)	श्री दुर्गाचरण शास्त्री सांख्यवेदान्ततीर्थ, हरिद्वार	,, ,, ,,
द्वादश	वाराणसी	(१९२९ ई. १९८६ सं.)	म. म. डा. श्री गंगानाथ झा वाराणसी	श्री केदारनाथ सारस्वत वाराणसी
त्रयोदश	हरिद्वार	(१९३३ ई. १९९० सं.)	जगद्गुरु शंकराचार्य श्री गोवर्द्धन पीठाधीश्वर स्वामी श्री भारती कृष्णतीर्थ महाराज पुरी	,, ,, ,,

अधिवेशन संकेत	अधिवेशन स्थान	वर्ष	सभापति नाम	प्रधानमन्त्री
चतुर्दश	हरिद्वार	(१९३५ ई. १९९२ सं.)	पं. श्री बुलाकीरामजी शास्त्री विद्यासागर, पंजाबमार्तण्ड	श्री केदारनाथ सारस्वत वाराणसी
पंचदश	जयपुर	(१९३६ ई. १९९३ सं.)	श्री गोकुलनाथजी गोस्वामी बम्बई	पं. श्री विद्याधरजी शास्त्री, बीकानेर
षोडश	अमृतसर	(१९३७ ई. १९९४ सं.)	म० म० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, प्रिंसिपल, संस्कृत कालेज, जयपुर.	पं० श्री प्रभुदत्तजी शास्त्री दिल्ली
सप्तदश	देहली	(१९४१ ई. १९९८ सं.)	पं. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी	पं. प्रभुदत्त शास्त्री दिल्ली
अष्टादश	जयपुर	(१९४५ ई. २००२ सं.)	म० म० श्री चिन्नस्वामी शास्त्री अध्यक्ष, मीमांसा,विभाग, हिन्दू विश्व० वाराणसी	पं० श्री केदारनाथजी सारस्वत, वाराणसी
ऊनविंश	वाराणसी	(१९४७ ई. २००४ सं.)	म. म. श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी	पं. श्री देवनायकाचार्य वाराणसी
विशिष्ट	इलाहबाद	(१९५३ ई. २०१० सं.)	काशीनरेश श्री विभूति नारायणसिंह, काशी	श्री केदारनाथ सारस्वत वाराणसी
विंशति	ऋषिकेश (कालीकमली)	(१९५३ ई. २०१० सं.)	सर श्री हरगोविन्द मिश्र कानपुर	,, ,,
एकविंशति	जालन्धर	(१९५४ ई. २०११ सं.)	श्री नरहरि विष्णु गाडगिल, पूना	श्री केदारनाथ सारस्वत दिल्ली
द्वाविंशति	देहली	(१९५५ ई. २०१२ सं.)	श्री चिन्तामणि द्वारकानाथ देशमुख, वित्तमन्त्री, (भूतपूर्व) भारत सरकार, दिल्ली	,, ,,
त्रयोविंशति	बम्बई	(१९५६ ई. २०१३ सं.)	जगद्गुरु श्री भारतीकृष्ण तीर्थ शंकराचार्य पीठाधीश्वर, पुरी	,, ,,
चतुर्विंशति	पटना	(१९५७ ई. २०१४ सं.)	डा० श्री सम्पूर्णानन्द मुख्यमन्त्री, उत्तरप्रदेश	,, ,,
पंचविंशतितमः	चित्तौड	(१९५८ ई. २०१५ सं.)	श्री बलवन्त नागेश दातार गृहकार्यमन्त्री, भारतसरकार दिल्ली	डा. मण्डन मिश्र शास्त्री जयपुर

अधिवेशन संकेत	अधिवेशन स्थान	वर्ष	सभापति नाम	प्रधानमन्त्री
षड्विंशतितमः	कलकत्ता	(१६६१ ई. २०१८ सं.)	श्री बलवन्त नागेश दातार गृहकार्यमन्त्री, भारत सरकार, दिल्ली	डा० मण्डन मिश्र शास्त्री जयपुर
सप्तविंशतितमः	गाजियाबाद	(१६६४ ई. २०२१ सं.)	श्री लालबहादुर शास्त्री प्रधानमन्त्री, भारत सरकार, दिल्ली	,, ,,
स्वर्णजयन्ती	दिल्ली	(१६६६ ई. २०२३ सं.)	श्रीमती इन्दिरा गांधी प्रधानमन्त्री, भारत सरकार, दिल्ली	,, ,,

इस सम्मेलन की महासमिति के कुछ अधिवेशन जयपुर और दिल्ली में आयोजित होते रहे हैं। यह सम्मेलन वार्षिक सम्मेलनों से न्यून नहीं कहे जा सकते। इस समय इसका प्रधान कार्यालय दिल्ली में है और इसके स्थायी भवन का निर्माण शीघ्र सम्भावित है।

१. जयपुर का योगदान

१, अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन की स्थापना का विचार उपस्थित करने के साथ ही उसे क्रियान्वित करने वाले म० म० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी जयपुर के ही निवासी थे और जयपुर ही उनकी जन्मभूमि थी।

२. प्रथम सम्मेलन के उपरान्त ही श्री बुलाकीरामजी शास्त्री द्वारा प्रधानमन्त्री पद परित्याग के पश्चात् दस वर्ष तक इस पद पर नियमित रूप से कार्य करते हुए प्रति वर्ष विभिन्न स्थानों पर सम्मेलनों का सफल आयोजन करते हुए संस्कृत भाषा का प्रचार–प्रसार करना म० म० श्री चतुर्वेदीजी का उल्लेखनीय एवं श्लाघनीय कार्य रहा है।

३. स्थानीय विद्वज्जनों के सम्मिलित प्रयास से उपर्युक्त संस्कृत साहित्य सम्मेलन के दो अधिवेशन, जो सन् १६३६ (पन्द्रहवां अधिवेशन) तथा सन् १६४५ (अठारहवां अधिवेशन) में जयपुर में आयोजित किये गये थे, सफल अधिवेशन माने गये हैं। इन दोनों अधिवेशनों के अतिरिक्त सप्तम अधिवेशन जो कलकत्ते में सम्पन्न होना था, किन्हीं कारणों से वहां नहीं हो सका था। श्री चतुर्वेदीजी ने, जो उस समय इस सम्मेलन के प्रधानमन्त्री थे, पूर्ण प्रयास किया था कि यह सम्मेलन जयपुर में सम्पन्न हो जाय, परन्तु यह भी सम्भव न हो सका और अन्त में इसे आगरा में सम्पन्न कराना पड़ा। श्री चतुर्वेदीजी ने इस घटना को उल्लेखनीय रूप में स्थान दिया है।[2]

४. डा० मण्डन मिश्र शास्त्री गत ८–६ वर्षों से संस्कृत सम्मेलन के महामन्त्री हैं। आप जयपुर नगर के ही विद्वान् है। आपके प्रयास से संस्कृत सम्मेलन में आशातीत उन्नति हुई है। आपने इसी सम्मेलन के अन्तर्गत श्री लालबहादुर शास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ की स्थापना कर संस्कृत भाषा के अध्ययनाध्यापन व संरक्षण को प्रोत्साहित किया है। इस सम्मेलन के कतिपय प्रकाशन भी हैं, जो महत्त्वपूर्ण हैं।

५. म० म० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ने इस सम्मेलन के उत्थान व संस्कृत–संस्कृति के प्रचार–प्रसार के लिए अपना संपूर्ण जीवन ही लगा दिया था। उनके जीवनकाल में शायद ही कोई ऐसा अधिवेशन हुआ हो, जिसमें वे उपस्थित न रहे हों। वे इस सम्मेलन के मूलाधार तथा संरक्षक व पोषक थे।

६. इसके अतिरिक्त स्वर्गीय श्री सूर्यनारायणजी व्याकरणाचार्य तथा भट्ट श्री मथुरानाथजी शास्त्री का संस्कृत रत्नाकर के प्रकाशन के रूप में सहयोग उल्लेखनीय हैं। ये भी जयपुर के ही थे।

७. इस सम्मेलन की महासमिति के निम्नलिखित सदस्य उल्लेखनीय हैं—१. श्री मथुरानाथ शास्त्री, २. श्री वृद्धिचन्द्रजी शास्त्री, ३. स्वामी जयरामदासजी वैद्य।

इस प्रकार सम्मेलन के इतिहास में जयपुर का नाम और योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। जयपुर के विद्वानों ने इसके प्रचार-प्रसार व संस्थापन में प्राण-पण से सहयोग दिया है, जो स्वर्णाक्षरों से लिखने योग्य है।

२. राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन

अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मलन के संस्थापक कहिये या प्रबल संरक्षक, स्व० म० म० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ने भारत के स्वतन्त्र हो जाने के पश्चात् यह अनुभव किया कि संस्कृत भाषा तथा संस्कृतज्ञों का एक संगठन राजस्थान प्रान्त में भी होना चाहिये, जो प्रान्तीय विद्वानों का संरक्षण कर सके तथा राजस्थान में संस्कृत-संस्कृति की परम्परा को सुदृढ बना सके। उनने प्रान्त के उद्भट एवं कार्यकर्त्ता विद्वानों के समक्ष अपने विचार प्रस्तुत किये और फलस्वरूप राजस्थान राज्य की राजधानी जयपुर में ही इसकी स्थापना की गई। यह घटना सन् १९४८ की है। सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन जयपुर में ही सम्पन्न हुआ, जिसके प्रथम सभापति थे पं० श्री रामधारी शास्त्री, डूंडलोद और उद्घाटक थे श्री चतुर्वेदीजी। इसके पश्चात् इसके विधान में इस सम्मेलन के कार्यालय को तथा प्रधान-मन्त्री को जयपुर में ही रहने का प्रावधान किया गया। अब तक हुए सम्मेलनों का विवरण इस प्रकार है—

अधिवेशन संकेत	अधिवेशन स्थान	वर्ष	१. सभापति २. उद्घाटक	प्रधानमन्त्री
प्रथम	जयपुर	(नवम्बर, ४८ संवत् २००५)	१. श्री रामधारी शास्त्री, डूंडलोद २. म. म. श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, जयपुर	
द्वितीय	बीकानेर	(जनवरी, ५० संवत् २००७)	१. भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री, जयपुर, २. श्रीमार्कण्डेय मिश्र, उदयपुर	स्वामी सुरजनदास जी
तृतीय	जोधपुर	(दिसम्बर, ५२ संवत् २००९)	१. डा. मथुरालाल शर्मा, जयपुर २. डा. जी. एस. महाजनी, जयपुर	,, ,,
चतुर्थ	अलवर	(दिसम्बर, ५३ संवत् २०१०)	१. श्री नरोत्तमलाल जोशी, झुंझुनू २. श्री कैलाशनाथ काटजू, मुख्यमन्त्री, मध्यप्रदेश	,, ,,
पंचम	कोटा	(दिसम्बर,५४ संवत् २०११)	१. श्री विद्याधर शास्त्री, बीकानेर २. श्री भीमसिंह, कोटानरेश	,, ,,
षष्ठ	सीकर	(फरवरी, ५६ संवत् २०१३)	१. श्री देवीशंकर तिवाड़ी, जयपुर २. श्री हरिभाऊ उपाध्याय, अजमेर	स्वामी श्री सुरजनदास
सप्तम	उदयपुर	(दिसम्बर, ५७ संवत् २०१४)	१. श्री देवीशंकर तिवाड़ी, जयपुर २. श्री मोहनलाल सुखाड़िया, मुख्यमन्त्री	श्री रामचन्द्र वामन-कुम्भारे
अष्टम	भीलवाड़ा	(फरवरी, ६० संवत् २०१७)	१. म. म. श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी २. श्री बलवन्तनागेश दातार, दिल्ली	पं. वृद्धिचन्द्रजी शास्त्री
नवम	अजमेर	(मई, ६१ संवत् २०१८)	१. श्री लक्ष्मीलाल जोशी, उदयपुर २. श्री कालूलाल श्रीमाली, दिल्ली	,, ,,
दशम	रतनगढ़	(जुलाई, ६२ संवत् २०१९)	१. श्री लक्ष्मीलाल जोशी, उदयपुर २. श्री देवीशंकर तिवाड़ी, जयपुर	

अधिवेशन संकेत	अधिवेशन स्थान	वर्ष	१. सभापति २. उद्घाटक	प्रधानमन्त्री
एकादश	सरदारशहर	(फरवरी, ६४ संवत् २०२१)	१. पं० श्री स्वरूपनारायणजी, जयपुर २. डा. सम्पूर्णानन्द, राज्यपाल	पं० श्री वृद्धिचन्द्रजी शर्मा
द्वादश	भीलवाड़ा	(फरवरी, ६५ संवत् २०२२)	१. पु. श्री स्वरूपनारायणजी, जयपुर २. श्री मोहनलाल सुखाड़िया, मुख्यमन्त्री	श्री मोतीलाल जोशी
त्रयोदश	मनोहरपुर	(दिसम्बर ६६ संवत् २०२३)	१. श्री मोहनलाल सुखाड़िया, मुख्यमन्त्री २. डा. कर्णसिंह, काश्मीर	,, ,,

इस सम्मेलन के इतिहास में अब तक दो प्रधान मन्त्रियों का कार्यकाल अधिक तथा सर्व प्रशंसनीय रहा है— (१) स्वामी श्री सुरजनदासजी का तथा (२) स्व. श्री वृद्धिचन्द्रजी शास्त्री का। इन दोनों विद्वानों ने सम्मेलन के माध्यम से संस्कृत भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए अथक प्रयास किया है।। इनके समय में रचनात्मक कार्य अधिक हुआ है। जैसे— (१) संस्कृत को षष्ठ कक्षा से अष्टम कक्षा तक अनिवार्य किया जाना, (२) नवम तथा दशम कक्षा में संस्कृत का पाठन (३) शिक्षा सलाहकार मण्डल की स्थापना, (४) संस्कृत विद्वानों के वेतनमान में औचित्य, (५) कालेज व माध्यमिक विद्यालयों में संस्कृताध्यापकों की नियुक्तियां तथा नये कालेजों में संस्कृत खुलवाना, (६) आचार्य परीक्षोत्तीर्ण व्यक्ति को एम. ए. के समकक्ष मान्यता प्रदान किया जाना, (७) उपाध्याय तथा प्रवेशिका परीक्षा का बोर्ड द्वारा लिया जाना आदि कतिपय उल्लेखनीय हैं। यद्यपि इस प्रगति में सम्मेलन के तत्कालीन सभापति श्री लक्ष्मीलाल जोशी का कार्य विशेषतः प्रशंसनीय है, तथापि तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्री शास्त्रीजी का परिश्रम भी विस्मृत नहीं किया जा सकता। विगत इन १३ अधिवेशनों में जयपुर के विद्वानों का योग उल्लेखनीय रहा है, जिनने न केवल जयपुर के ही, अपितु समूचे राजस्थान के संस्कृत विद्वानों तथा संस्कृत भाषा के संरक्षण के लिये निरन्तर प्रयास किया है। जयपुर के इतिहास में इसका नाम इसीलिये उल्लेखनीय है।

३. संस्कृत वाग् विवर्द्धिनी परिषद्

जयपुर नगर में ही १३ अगस्त, १९४६ को इस परिषद् की स्थापना हुई, जिसका उद्देश्य संस्कृत भाषा के पूर्ण प्रचार व प्रसार के साथ ही सामान्य जनता को इसके साहित्य से परिचित कराना था। २२ वर्षों से प्रचलित इस परिषद् के विविध कार्यकलापों ने प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में जनता को संस्कृत भाषा के वास्तविक महत्त्व से परिचित कराया है। यही एक मात्र संस्था है, जिसके आभ्यन्तर एवं बाह्य सभी कार्य संस्कृत भाषा में सफलता के साथ सम्पन्न होते रहे हैं। इस परिषद् के द्वारा अभिनव संस्कृत साहित्य के निर्माण के उद्देश्य से समय-समय पर अखिल भारतीय संस्कृत लघु कथा, प्रहसन प्रतियोगितायें एवं अनेक संस्कृत कवि सम्मेलनों का आयोजन किया गया है। स्थानीय विद्वानों के अतिरिक्त वेटपालेम, पुंगनुरु, अमृतसर, कोटा, उदयपुर, खुर्जा, रामनगर, जोधपुर, बीकानेर आदि नगरों के विद्वानों का सहयोग प्राप्त होता रहा है। समय-समय पर बाहर के विद्वानों के भाषण सम्पन्न हुए हैं, जिनमें (१) श्री राजेश्वर शास्त्री द्राविड़, वाराणसी, (२) श्री सुधाकर शास्त्री, सम्पादक, साकेत (अयोध्या) (३) श्री अखिलानन्द कविरत्न, अनूप शहर, श्री पुरुषोत्तम चतुर्वेदी, वाराणसी के नाम उल्लेखनीय हैं। इस संस्था द्वारा सम्मानित विद्वानों में डा० श्री मथुरालाल शर्मा, भूतपूर्व उपकुलपति, जयपुर, श्री पट्टाभिराम शास्त्री, प्रिंसिपल, संस्कृत कालेज, म० म० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, श्री चन्द्रशेखर शास्त्री (जगद्गुरु श्री निरंजनदेव तीर्थ,पुरी) श्री राजेश्वर शास्त्री द्राविड आदि स्मरणीय हैं।

राजस्थान में संस्कृत शिक्षा के प्रसार के लिए ६, ७, ८वीं कक्षाओं में संस्कृत पाठन की अनिवार्यता हेतु इस संस्था ने भी राजस्थान व्यापी आन्दोलन किया था। दृश्य तथा श्रव्य साधनों के अन्तर्गत इस परिषद् ने संस्कृत भाषा के प्रसार के लिये संस्कृत में मुद्राराक्षस, दूतवाक्यम्, दूतघटोत्कचम्, चतुर्वेदिचपकः आदि नाटक एवं प्रहसनों का अभिनय किया था। जन सम्पर्क संस्कृत सप्ताहों का आयोजन, नियतकालिक संस्कृत शिक्षण-शिविरों की स्थापना, मासिक-

साप्ताहिक अधिवेशनों का आयोजन, विज्ञानवर्द्धिनी व्याख्यानमालाओं का संचालन आदि इस संस्था की महत्वपूर्ण प्रवृत्तियाँ हैं। इस परिषद् ने संस्कृत भाषा का निःशुल्क शिक्षण देने के लिए एक रात्रि संस्कृत विद्यालय की स्थापना कर रखी है। यहाँ भारतीय विद्या भवन, बम्बई, अखिल भारतीय संस्कृत भाषा परीक्षा समिति, स्वाध्याय मण्डल पारडी एवं संस्कृत भाषा प्रचारिणी सभा नागपुर की समस्त संस्कृत परीक्षाओं के अध्ययन की व्यवस्था एवं केन्द्र है। छात्रों को अपने महापुरुषों से परिचित कराने हेतु व्यासपूर्णिमा, कालिदास जयन्ती, स्वतन्त्रता दिवस, वाल्मीकि जयन्ती गीता जयन्ती आदि समारोहों का आयोजन किया जाता है। इसके उल्लेखनीय पदाधिकारियों का उल्लेख इस प्रकार है—

(१) डा० श्री मथुरालाल शर्मा,—अध्यक्ष, (२) पं. श्री इन्द्रलाल शास्त्री,—उपाध्यक्ष, (३) नारायण शास्त्री कांकर—मन्त्री, (४) श्री रामपाल शास्त्री—संयुक्तमन्त्री, (५) श्री रामदयालु शास्त्री वैद्य—कोषाध्यक्ष, (५) श्री दामोदर शास्त्री, साहित्याचार्य—सदस्य, (७) श्री सत्यानन्द मिश्र—सदस्य आदि। परिषद के संरक्षकों में स्व. म. म. श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, श्री पट्टाभिराम शास्त्री, स्वामी श्री जयरामदास जी भिषगाचार्य, राजगुरु श्री गोपीनाथ द्रविड़, पं. जुगल किशोर शर्मा, व्याकरण-धर्मशास्त्राचार्य स्वर्गीय श्री वृद्धिचन्द्र जी शास्त्री (उपाध्यक्ष), आशुकवि श्री हरि शास्त्री, स्वर्गीय पं. भवदत्त शर्मा, पं. श्री दीनानाथ त्रिवेदी आदि उल्लेखनीय हैं।

यह संस्था (परिषद्) अब भी अपने उद्देश्य की पूर्ति में संलग्न है।

४. वैदिक संस्कृति प्रचारक संघ

वैदिक संस्कृति की प्रचार-प्रसार कामना से उक्त संस्था का जन्म भाद्रपद कृष्णा १० रविवार संवत् २०२१ को जयपुर नगर में हुआ। इस विचार को जन्म देने वाले थे स्वर्गीय पं० रामेश्वर प्रसाद जी दाधिमथः, व्याख्याता, व्याकरण विभाग, संस्कृत कालेज, जयपुर। प्रख्यात कर्मकाण्डी, श्रौतभूषण, पं० रामकृष्ण शर्मा चतुर्वेदी की अध्यक्षता में आयोजित इस संघ की तात्कालिक समिति के आयोजक थे पं० श्री शिवदत्तजी वैदिक, जो जयपुर नगर के विख्यात कर्मकाण्डी होने के साथ ही उत्साही युवक कार्यकर्ता हैं। इनके अन्य उत्साही सहयोगियों में पं० श्री प्रभुलाल शर्मा अथर्ववेदाचार्य, महन्त श्री रामप्रसाद जी शास्त्री, प्रसिद्ध कथाव्यास श्री रामसहायजी शर्मा, विशिष्ट व्याख्याता पं० गौरीलाल पाठक आदि उल्लेखनीय हैं। वैदिक संस्कृति के जागरण, संवर्द्धन तथा प्रस्तार संबंधी महत्त्वपूर्ण प्रयासों के क्रियान्वयन की प्रेरणा देने वाले महानुभाव थे स्वर्गीय पं. श्री वृद्धिचन्द्रजी शास्त्री। आपका योगदान केवल प्रेरणा या परामर्श देना ही नहीं था, आपने अनेकों महत्त्वपूर्ण आयोजनों में सक्रिय होकर अपने प्रवचनों से प्रत्येक सदस्य को मार्ग दर्शन भी किया था। विगत १५ वर्षों में इस संघ द्वारा विभिन्न समारोहों, पर्वों एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन कर वैदिक संस्कृति को पुनरुज्जीवित करने में अथक प्रयास किया गया है। अनुष्ठित अनेक कार्यक्रमों में कुछ उल्लेखनीय प्रवृत्तियां इस प्रकार है—

(१) **ऋषि पंचमी समारोह**—सन् १९५६ से लेकर अब तक प्रतिवर्ष यह कार्यक्रम विभिन्न तीर्थस्थलों में आयोजित होता है। इसे संघ के वार्षिकोत्सव की संज्ञा दी जाती है। इसमें मुख्य अतिथि के रूप में स्वर्गीय डा. सम्पूर्णानन्द, श्री हरिभाऊ उपाध्याय, श्री रामप्रसाद लड्ढा, डा० फतहसिंह, डा० मण्डन मिश्र शास्त्री, श्री किशोरीलाल गुप्त प्राचार्य आदि उल्लेखनीय रहे है।

(२) **गायत्री एवं अन्यान्य महायज्ञ**—राज्य के प्रमुख धर्म शास्त्रज्ञ, ज्योतिर्विद् स्वर्गीय पं. वृद्धिचन्द्रजी शास्त्री के निदेशन में संघ ने 'गायत्री महायज्ञ' का शुभारम्भ किया। जुलाई, १९६१ में म. म. श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी के करकमलों से इसका उद्घाटन हुआ। अब भी यह पावन पर्व ज्येष्ठ मास में सोत्साह सम्पन्न होता है। इसके अतिरिक्त दामोदर महायज्ञ, रुद्रयाग, विष्णुयाग आदि अनेक स्मार्तयज्ञों का भी आयोजन किया जाता है।

(३) **अनुपनीत द्विजों का सामूहिक यज्ञोपवीत संस्कार**—स्वामी श्री कृष्णानन्द जी महाराज एवं श्री युगलकिशोर जी शर्मा के निर्देशानुसार अनेकों बालकों का सामूहिक यज्ञोपवीत कर उन्हें वेदाध्ययन व गायत्री जप का परिज्ञान कराया गया।

(४) **वैदिक प्रदर्शनी**—वैदिक संस्कृति के प्रचार-प्रसार की दृष्टि से वैदिक मण्डलों, पात्रों तथा प्रक्रियाओं की एक प्रदर्शनी का आयोजन किया गया। इसका उद्घाटन सन् १९६१ ई. में प्रसिद्ध याज्ञिक सार्वभौम श्री भगवत्प्रसाद जी वेदाचार्य, वेद विभागाध्यक्ष, संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी (जयपुर निवासी) ने किया था। इसके पश्चात् यह प्रदर्शनी राजस्थान के विभिन्न नगरों में आयोजित की गई। इसके प्रशंसकों में डा. श्री सम्पूर्णानन्द, डा. कर्णसिंह, श्री हरिभाऊ उपाध्याय, जयपुर नरेश महाराज मानसिंह, श्री भक्तदर्शनम्, श्री अनन्तशयनम् आयंगर, श्री सत्यनारायण सिन्हा, श्री नरहरि विष्णु गाडगिल, श्री लालबहादुर शास्त्री, श्री बलवन्त नागेश दातार, श्री विद्याधर शास्त्री, श्री देवी-शंकर तिवाड़ी, डा. मथुरालाल शर्मा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

(५) **वैदिक संस्कृति सम्पोषक जयन्ती समारोह एवं राष्ट्रीय पर्व**—सन् १९६० से भगवान् परशुराम जयन्ती, महाकवि कालिदास जयन्ती, महाकवि माघ जयन्ती, गीता जयन्ती, विद्यावाचस्पति पं. मधुसूदन ओझा जयन्ती, जगद्गुरु शंकराचार्य जयन्ती आदि अनेक महत्त्वपूर्ण जयन्तियों का आयोजन किया जाता रहा है जिसमें अनेक विद्वान् सोत्साह भाग लेते रहे हैं।

(६) **शिक्षा प्रचार समिति**—वैदिक साहित्य की प्रायोगिक परम्परा को स्थिर रखने के लिए ३ नवम्बर, १९६२ को राजगुरु श्री विद्यानाथ जी ओझा की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया। ब्रह्मश्री पी० एन० पट्टाभिराम शास्त्री की प्रेरणा से संघ की शिक्षा प्रचार समिति ने 'वेदवेदांग महाविद्यालय' नामक संस्था की स्थापना की। १३ नवम्बर, १९६३ को महारानी गायत्री देवी ने इस संस्था का उद्घाटन किया, जो आज भी निरन्तर कार्यरत है।

इसके अतिरिक्त विभिन्न समयों में वैदिक संस्कृति प्रसारण अभिनन्दन समारोह के अन्तर्गत सेठ मनमुखराय मोर अभिनन्दन, आराधक अभिनन्दन, जगद्गुरु शंकराचार्य अभिनन्दन, म. म. पं. श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी अभिनन्दन आदि कार्यक्रम आयोजित किये गये। इस संघ के प्रयासों में संस्कृत नाट्य समारोह उल्लेखनीय है। यह द्वि-दिवसीय कार्यक्रम स्वामी विवेकानन्द तथा भक्त मीरां नामक दो संस्कृत नाटकों के प्रदर्शन के साथ सम्पन्न हुआ। इसका अभिनय कलकत्ता के प्रसिद्ध अभिनय संस्थान 'प्राच्यवाणी' के कलाकारों के द्वारा किया गया। संक्षेप में राजस्थान प्रान्त में जयपुर के विद्वानों का वैदिक संस्कृति की सुरक्षा के लिए सबसे प्राचीन एवं सक्रिय संगठन है।

५. श्री कर्मकाण्डि मण्डल एवं वैदिक साहित्य संसद्

वैदिक साहित्य एवं संस्कृति की सुरक्षा तथा मानव समाज को इसके समाजोपयोगी तत्त्वों व उनकी वैज्ञानिकता प्रदर्शित करने की दृष्टि से उक्त मण्डल की स्थापना की गई। इसकी तिथि वसन्तपंचमी संवत् २००३ (२७ जनवरी, १९४७) है। इसके प्रथम अध्यक्ष श्री रामकृष्ण चतुर्वेदी थे। ये २७ जनवरी, १९४७ से २८ दिसम्बर, १९५५ तक अध्यक्ष रहे। इनके पश्चात् श्री वासुदेव जी सहल २९ दिसम्बर, १९५५ से ३ अक्टूबर, १९६२ तक तथा श्री हरि शास्त्री दाधीच ४ अक्टूबर, १९६२ से वर्तमान तक अध्यक्ष हैं। श्री गंगाशंकर जी भावन २७ जनवरी, १९४७ से २५ दिसम्बर, १९५० तक इसके प्रथम मन्त्री रहे। इनके पश्चात् श्री प्रभुलाल जी अथर्ववेदाचार्य ने २६ दिसम्बर, १९५० से २८ दिसम्बर, १९५५ तक कार्य किया। श्री राधेश्यामजी कर्मठरत्न (नेवटावाले) ने २९ दिसम्बर, १९५५ से ३ अक्टूबर, १९६२ तक कार्य किया। वर्तमान में श्री रामगोपाल शास्त्री, साहित्य-धर्मशास्त्राचार्य दिनांक ४ अक्टूबर, १९६२ से इस पद पर कार्य कर रहे हैं।

इस संस्था का बौद्धिक कार्य तो बहुत है, जिनमें विचार-विमर्श व शास्त्रीय समीक्षा होती है, परन्तु रचनात्मक कार्य की दृष्टि से केवल 'आवाहन-प्रदीप' नामक एक लघुकाय पुस्तक है, जो प्रकाशित है। इसमें सामान्य रूप से गणेशपूजन, षोडशमातृका, सप्तमातृका, नवग्रहपूजन, पंचलोकपाल आदि की पूजन का मुद्रलित पद्यों में वर्णन है। इस संस्था का प्रयास भी स्तुत्य है।

६ राजस्थान संस्कृत संसद्

जयपुर नगर में ही संस्थापित इस संस्था का जीवनकाल अभी स्वल्प ही है। राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन की गतिविधियों में शैथिल्य उत्पन्न होने के कारण स्थानीय युवक कार्यकर्ता श्री रामजीलाल शास्त्री ने कतिपय विद्वानों की प्रेरणा से उक्त संस्था को जन्म दिया। श्री चन्द्रशेखर शास्त्री, जो इस समय श्री निरंजनदेव तीर्थ जगद्गुरु शंकराचार्य पुरी पीठ के नाम से विख्यात हैं, इसके संस्थापकों में से एक हैं। श्री देवीशंकर तिवाड़ी, डा. श्री सम्पूर्णानन्द, श्री विष्णुदत्त शर्मा, श्री हरिभाऊ उपाध्याय, श्री निरंजननाथ आचार्य आदि विशिष्ट व्यक्तियों ने इस संस्था को समय-समय पर संरक्षण दिया है। इस संसद् ने जयपुर नगर में अनेक महत्त्वपूर्ण आयोजनों के द्वारा संस्कृत भाषा के विकास में उल्लेखनीय कार्य किया है। इस समय यह संसद् संस्कृत अध्यापकों के प्रशिक्षण हेतु एक प्रशिक्षण विद्यालय का संचालन भी कर रहा है, जो इससे पूर्व रात्रि संस्कृत कालेज के रूप में प्रसिद्ध था। इस संस्था का उद्देश्य संस्कृत भाषा की सुरक्षा करने के साथ-साथ उसके साहित्य की रक्षा करना भी है। इस प्रकार श्री रामजीलाल शास्त्री का यह प्रयास स्तुत्य है।

इन संस्थाओं के अतिरिक्त अन्य इस प्रकार की अनेक संस्थायें हैं, जो अपने कार्यकलापों के द्वारा संस्कृत-संस्कृति की रक्षा में निरत है। इनमें भागवत संघ, संस्कृत विद्वत् परिषद् आदि के नाम उल्लेखनीय है। ये संस्थायें सामान्यतया अपने उद्देश्यों की पूर्ति में निरन्तर कार्यरत हैं, परन्तु इनका कोई उल्लेखनीय कार्य न होने से यहाँ परिचय प्रस्तुत नहीं किया जा रहा है।

उपर्युक्त संस्कृत-संस्कृति की प्रचारक संस्थाओं के उल्लेखनीय कार्य का जयपुर के संस्कृत साहित्य के इतिहास में उल्लेख अपने उद्देश्यों की पूर्ति के दृष्टिकोण से स्मरणीय है।

————

परिचय-खण्ड

तृतीय अध्याय (घ) के सन्दर्भ व उद्धरण
(References & Notes)

---

1. "आत्मकथा और संस्मरण"—श्री चतुर्वेदी-'हरिद्वार के ऋषिकुल में'—संस्कृत साहित्य सम्मेलन की स्थापना—पृष्ठ ५७ तथा श्री चतुर्वेदीजी का संस्कृत भाषाबद्ध लेख 'संस्कृत रत्नाकर' कलकत्ताधिवेशन विशेषांक, पृष्ठ संख्या ५५-६२, सन् १६६१ में प्रकाशित ।
2. (क) म० म० श्री चतुर्वेदीजी ने "आत्मकथा और संस्मरण" में लिखा है—"सम्मेलन का षष्ठ अधिवेशन कोडियाल (त्रिचनापल्ली) में हुआ था, वहां श्री अनन्तकृष्ण शास्त्री के द्वारा भेजे गए तार से अग्रिम सप्तम अधिवेशन कलकत्ते में होना था, परन्तु सभापति के नाम पर वाद-विवाद होगया था । कलकत्ता वाले वहीं का सभापति चाहते थे, जब कि म० म० श्री हरनारायण शास्त्री (दिल्ली) बहुमत से सभापति निर्वाचित हो चुके थे ।" म० म० श्री चतुर्वेदीजी ने यह अधिवेशन जयपुर में करने का निर्णय किया था और विद्यावाचस्पति श्री मधुसूदनजी झा को स्वागताध्यक्ष बना दिया था परन्तु जयपुर के तत्कालीन प्रिंसिपल म० म० श्री दुर्गाप्रसादजी द्विवेदी ने पं० कन्हैयालालजी के द्वारा श्री पुरोहित गोपीनाथजी से निषेध करवा दिया । इसलिए यह अधिवेशन जयपुर में न होकर आगरा में हुआ' । पृष्ठ १६१ के आधार पर ।

   (ख) अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन-स्वर्ण जयन्ती समारोह-स्मारिका, संक्षिप्त परिचय प्रो० महेन्द्र दवे, संयुक्त मन्त्री, सम्मेलन दिल्ली के लेख पृष्ठ८-६ के आधार पर ।

   (ग) संस्कृत रत्नाकर (कलकत्ता अधिवेशन विशिष्टांक) "अ० भा० सं० सा० सम्मेलनस्येतिहासः" —म० म० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदः—पृष्ठ ५७ ।
3. शोध के क्षेत्र में प्रो० श्री प्रवीणचन्द्र जैन ने अध्यापन सेवा से निवृत्त होकर जयपुर में ही "उच्च-स्तरीय अध्ययन अनुसंधान संस्थान" की २ अक्टूबर सन् १६७० को स्थापना की । इसके प्रथम अध्यक्ष थे डॉ० प्रभुलाल भटनागर, कुलपति राजस्थान विश्वविद्यालय तथा दूसरे अध्यक्ष के रूप में राजस्थान सरकार के मन्त्री श्री हीरालाल देवपुरा ने कार्य किया । इस समय माननीय श्री वेदपालजी त्यागी इसके अध्यक्ष हैं । प्रो० जैन प्रारम्भ से ही कार्यवाहक अध्यक्ष हैं । इस संस्था ने "पुरुष सूक्त का विवेचन" एक शोध प्रकाशन भी किया है तथा इसकी एक शोध पत्रिका भी प्रकाशित होती है, जिसके ७ अंक प्रकाशित हो चुके हैं । इसका एक वृहद् पुस्तकालय है जो कार्यालय के साथ ही बी-२० गणेशमार्ग बापू नगर में अवस्थित है । इस समय १५ शोध छात्र विभिन्न परियोजनाओं में कार्यरत हैं । आचार्य रमेशचन्द्र शास्त्री के बाद इस समय श्री कलानाथ शास्त्री इसके महामन्त्री हैं । विद्वत्परिषद् में अनेक ख्याति प्राप्त विद्वान् सहयोगी के रूप में कार्यरत हैं ।

तृतीय-अध्याय

(ङ)

संस्कृत भाषात्मक पत्र-पत्रिकाओं का इतिवृत्त एवं उनका जयपुर को योगदान

एक समय था, जबकि भारत के विभिन्न स्थानों से दैनिक, साप्ताहिक, मासिक तथा त्रैमासिक रूप में अनेक संस्कृत भाषात्मक पत्र निकलते थे। इन पत्रों में से कतिपय के नाम थे—विद्योदय, संस्कृतचन्द्रिका, सूनृतवादिनी, मित्रगोष्ठीपत्रिका, सूक्तिसुधा, सद्धर्म, सहृदया, आर्यप्रभा, शारदा आदि। इनमें संस्कृतचन्द्रिका नामक मासिक पत्रिका के सम्पादक थे श्री राशिवडेकर अप्पाशास्त्री, जो दक्षिण भारत से इसे प्रकाशित करते थे। कालान्तर में बाई क्षेत्र से इनने सूनृतवादिनी नामक संस्कृत की साप्ताहिक पत्रिका प्रकाशित करना प्रारम्भ किया था। इसी प्रकार कलकत्ते से विद्योदय नामक पत्र निकलता था, जिसमें संस्कृत के प्राचीनतम ग्रन्थ प्रकाशित होते थे, परन्तु कालान्तर में उनमें भी सामान्य लेख प्रकाशित होने लगे।

संस्कृत पत्रकारिता के अन्तर्गत जयपुर का भी महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। जयपुर के विद्वानों ने इस क्षेत्र में भी महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। इस शताब्दी की देन में जयपुर नगर से प्रकाशित होने वाले दो प्रमुख मासिक पत्रों का योग वास्तव में उल्लेखनीय है। ये दो पत्र हैं—'संस्कृत रत्नाकर' और 'भारती'। इनका संक्षिप्त इतिवृत्त यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

(१) संस्कृत रत्नाकर

म. म. श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ने अपनी आत्मकथा और संस्मरण 'नामक पुस्तक में इसके प्रकाशन का इतिहास प्रस्तुत किया है। इसी लेख का रूपान्तर संस्कृत रत्नाकर के जनवरी, १९३३ के अंक में प्राप्त होता है। यह रूपान्तर इन्हीं चतुर्वेदी जी द्वारा प्रस्तुत किया गया है, जो इसके प्रकाशक थे। इन सभी का संक्षिप्त एवं सारगर्भित इतिहास १९६० में स्व. पं. श्री वृद्धिचन्द्र जी शास्त्री व्याकरण-धर्मशास्त्राचार्य ने रत्नाकर में प्रकाशित किया है, जबकि यह पत्रिका भारत के अनेक नगरों में घूमकर पुनः जयपुर में आ गई थी और श्री शास्त्री जी को पुनः प्रधान सम्पादक बनाया गया था।[1]

स्व. श्री चतुर्वेदी जी ने आत्मकथा में लिखा है—'आचार्य परीक्षोत्तीर्ण होते ही हमारी मित्रमण्डली का विचार हुआ कि एक संस्कृत का मासिक पत्र प्रकाशित किया जाय। उस समय केवल एक संस्कृत चन्द्रिका नाम की ही

मासिक पत्रिका संस्कृत की दक्षिण प्रान्त से निकलती थी, जिसके सम्पादक श्री राशिवडेकर अप्पाशास्त्री महोदय थे। अप्पाशास्त्री जी ने आगे चल कर बाई क्षेत्र से एक सूनृतवादिनी नामकी संस्कृत में साप्ताहिक पत्रिका भी निकालना आम्रभ किया था जो कि बहुत दिनों तक चली। ये संस्कृत के बड़े प्रौढ व देश के विख्यात लेखक थे। पूर्व भारत में भी कलकत्ता से एक विद्योदय नामक मासिक पत्र प्रकाशित होता था। पहिले तो उसमें प्राचीन ग्रन्थों का ही प्रकाशन आरम्भ हुआ किन्तु आगे चलकर नवीन निबन्ध तथा लेख भी उसमें छपने लगे। इन्हीं के आदर्श पर **हमने भी जयपुर से संस्कृत मासिक पत्र निकालने का आयोजन किया।** हमने अपना विचार जब गुरुवर श्री मधुसूदन जी के समक्ष रखा, तो उन्होंने हमें बड़े हर्ष से प्रोत्साहित किया। अब पत्रिका निकालने के लिए प्रारम्भिक द्रव्य कहाँ से प्राप्त हो, इस समस्या को हल करने के लिए **श्री बालचन्द्रजी शास्त्री** से जो कि सुविख्यात मोतीलाल जी के पिता थे और जिन्होंने जयपुर में उन दिनों ही एक नये प्रेस की स्थापना की थी, मिलने पर उन्होंने एक वर्ष तक अपने प्रेस की ओर से इस पत्रिका का प्रकाशन स्वीकार किया। इस प्रकार **'संस्कृत-रत्नाकर'** नाम के मासिक पत्र का **विक्रम सं० १९६१ में जयपुर में** जन्म हुआ। इसके सम्पादन में प्रमुख भाग में और मेरे मित्र **पं. सूर्यनारायण जी व्याकरणाचार्य** और तैलंग भट्ट श्री **मथुरानाथ जी शास्त्री** जो कि उस समय आचार्य श्रेणी के विद्यार्थी ही थे, ये ही तीनों लेते थे। हमारे घनिष्ट मित्र श्री **चन्द्रदत्तजी मैथिल** ने भी आरम्भ में कुछ कविता आदि देने की सहायता की थी किन्तु लेख-निबन्ध आदि लिखने में इनकी प्रवृत्ति कभी नहीं हुई। यद्यपि लेख लिखने और कविता रचने में ये बड़े ही प्रौढ थे, किन्तु आलस्यवश उधर प्रवृत्ति नहीं रखते थे। इस प्रकार यह पत्र सम्पादक का कार्य भी पंजाब विश्व-विद्यालय परीक्षा की तैयारी के साथ ही चलता रहा।[11]

श्री चतुर्वेदीजी ने लिखा है कि प्लेग के प्रथम प्रकोप के पश्चात् जब वे जयपुर लौटकर आये तो उस समय संस्कृत-रत्नाकर के जयपुर से प्रकाशित होते ही संस्कृत मासिक पत्रों की बाढ़ सी आ गई।[2] "इस प्रकार संस्कृत पत्रों में बहुलता प्राप्त होने पर ग्राहकों की संख्या न्यून होना स्वाभाविक थी। इसलिए आर्थिक हानि समझ कर एक वर्ष जिन्होंने संस्कृत-रत्नाकर निकाला था, उन बालचन्द्र शास्त्री ने आगे पत्र चलाने का प्रतिषेध कर दिया। तब पत्रिका इतनी जल्दी समाप्त करना अनुचित समझ कर हमारी (चतुर्वेदी जी की) मित्रमण्डली ने ही उसका प्रकाशन भार अपने ऊपर ले लिया और परस्पर चन्दे से एक दो वर्षों का रुपया इकट्ठा कर पत्र निकालने लगे। इसका कार्यालय मेरे ही स्थान पर रखा गया था और प्रकाशन का कार्यसत्र मित्रमण्डली एकत्रित होकर करती थी। इसी अवसर में हमारे परम मित्र श्री सूर्य नारायण शास्त्री इधर-उधर की कुछ प्राइवेट सर्विस प्राप्त कर बाहर चले गये। आर्थिक चिन्ताओं ने इधर-उधर कहीं स्थान प्राप्त करने की दृष्टि फैलाने को मुझे भी बाध्य किया।" इस प्रकार इसका इतिहास प्रस्तुत करते हुए श्री चतुर्वेदी जी ने अपनी आत्मकथा में इसके प्रकाशन में उपस्थित गत्यवरोध का उल्लेख किया है।

अनेक कठिनाइयों एवं परिस्थितियों के उपरान्त भी येन-केन प्रकारेण इसका प्रकाशन होता रहा। सर्वप्रथम यह मासिक पत्र के रूप में **जयपुर-निवासिविद्वन्मण्डल द्वारा**[3] सम्पादित होकर वैशाख शुक्ल १५ शाके १८२६ तदनुसार संवत् १९६१ में प्रकाशित हुआ। इसका वार्षिक मूल्य डेढ रुपया था। यह प्रथम वर्ष तो पूरे बारह रत्नों में प्रकाशित हुआ, परन्तु द्वितीय वर्ष (आकर) में प्रथम अंक के प्रश्चात् चार अंक एक साथ प्रकाशित हुए और फिर चार अंक मासिक रूप में तथा १०-११ संयुक्तांक के रूप में, १२ वां स्वतन्त्र रुप में। संवत् १९६६ तक यह कभी मासिक रुप में तो कभी त्रैमासिक रूप में प्रकाशित हुआ। सन् १९०८ व १९०९ (संवत् १९६५ व १९६६) में प्रकाशित अंक द्वैमासिक थे। सप्तम वर्ष के प्रारम्भिक ९ अंक मासिक रूप में प्रकाशित हुए, परन्तु फिर १०-११ संयुक्तांक निकला। सन् १९०९ में इतना आक्रान्त हुआ कि ३ वर्ष तक मूर्च्छित रहा। पुनः सम्मिलित प्रयासोपचार से चैत्र १९६९ सन् १९१२ में पुनः प्रकाशित हो सका। संवत् १९७० में संस्कृत साहित्य सम्मेलन की स्थापना हो जाने पर इस पत्र को उसका अंग बना दिया गया। संवत् १९७१ में प्रकाश्यमान अंक का पुनः मुद्रणभार श्री बालचन्द्र जी शास्त्री ने स्वीकार कर लिया और यह पत्र संस्कृत सम्मेलन के प्रमुख पत्र के रूप में मासिक निकलता रहा। तीन वर्ष तक इसने सम्मेलन के प्रमुख पत्र के रूप में अपने आपको प्रस्तुत किया और फिर प्रगाढ निद्रा में सो गया।[4] १५ वर्ष पश्चात् म. म. श्री चतुर्वेदी जी के सत्प्रयत्नों ने इसे उद्बुद्ध किया। इसकी आत्मकथा प्रस्तुत करते हुए उनने लिखा है

कि यह देशदेशान्तरों में भ्रमण करता हुआ दस वर्ष पश्चात् परिश्रान्त हो चुका था। स्मृत्यवशेष इस रत्नाकर का १५ वर्ष पश्चात् भी विद्वान् स्मरण करते है—यह एक महत्त्वपूर्ण बात है।[5]

वास्तव में जयपुर के विद्वान् ने प्रतिज्ञापूर्वक प्रकाशित करने का निर्णय कर भी आर्थिक हानि को जान कर इसे वन्द करदिया था। सम्भवतः ये विद्वान् पं. वालचन्द्र शास्त्री ही हो सकते है।[6] श्री चतुर्वेदीजी ने इसका अवरोधन सकारण प्रस्तुत किया है—

"अयं रत्नाकरस्तु द्वित्राणि वर्षाणि सम्मेलनस्य मुखपत्रतां वहन्नपि "सुपरिष्कृत्य आर्थिकीं दृष्टिमालम्ब्योन्नतं पत्रं प्रकाशयेय" इति प्रतिज्ञायैकेन व्यापारदृष्टिप्रवणेन जयपुराभिजनेनैव विद्वन्महोदयेन गृहीतस्वत्वाधिकारः सुपरिष्कृता द्वित्राः संचिकाः प्रकाश्यार्थिकीं हानिमनुमाय सहसैव न्यरोधि। यैरयं पूर्व परिचालितः, ते च वृत्तिवशात्तस्मिन् काल इतस्ततो निवसन्तः परस्परं वियुक्ता आसन्निति न तेऽपि समालभयितुमपारयन्। एतद्वियोगेन विह्वलत्स्वपि प्रणयिषु आर्थिक–व्यवस्थाया असुसाधत्वान्नासीत् झटिति कोप्युपायः परिरक्षणस्य। परं मुखपत्राभावादान्दोलनस्य गतिं ह्रासमुखीमालोक्य संस्कृतसाहित्यसम्मेलनेन स्वीयेऽष्टमेऽधिवेशने काशीपुर्याः शारदासम्पादकाय श्री चन्द्रशेखर शास्त्रिणः एतत्संपादनप्रकाशनाधिकारः प्रत्तः। तेनापि महाशयेन सम्मेलनद्रव्येण द्वित्राः संचिकाः प्रकाश्य कार्यान्तरव्यग्रेण शरीरस्वास्थ्य परंपराभूतेन च न्यरुध्यतैवायम्।

अथ प्रायेण वर्षत्रितयात्पूर्वं यः श्री केदारनाथ सारस्वत प्रभृतिभिः कैश्चन महोत्साहैः संस्कृत-साहित्य सम्मेलनमुज्जीवयितुं पुनः प्रयत्न आरब्धः। तदापि तत्र समवेतैः सर्वैरपि विवेचकैर्विद्वद्भिः सम्मेलनसंघटनाय मुखपत्रस्यावश्यकत्वं सम्यङ् निर्धारितम्। सुप्रभाताभिधस्य पत्रस्य श्री केदारनाथ सारस्वत सम्पादकत्वं एव सम्मेलनमुखपत्ररूपेण प्रकाशनं च निश्चितम्। हन्त। तदिदमपि सम्मेलन द्रव्येण कियतीश्चित् संचिका आत्मनः प्रकाश्य विरतमित्यहो दुर्दैवम्।

(रत्नाकरस्यात्मकथा–जनवरी, १९३३ वर्ष १ अंक १ से उद्धृत)

जनवरी, १९३३ को इसका पुनः प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। इसे प्रथम वर्ष का प्रथम अंक माना गया। जून सन् १९४९ तक यह नियमित रूप से प्रकाशित होता रहा। इन १६ वर्ष ६ मास में इसके ४ विशेषांक भी प्रकाशित हुए। इनका विवरण इस प्रकार है—

वर्ष	संचिका	तिथि	सम्पादक
१	१–१२	जनवरी, १९३३ से दिसम्बर, १९३३	१. श्री सूर्यनारायण शास्त्री २. भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री
२	१–११	जनवरी, १९३४ से नवम्बर, १९३४	,, ,,
२.	१२	दिसम्बर, १९३४ (आयुर्वेदांक)	१. राजवैद्य नन्दकिशोर शर्मा (विशेषांक) २. श्री सूर्यनारायण शास्त्री ३. भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री
३.	१–७	मई, १९३५ से नवम्बर, १९३५	१. श्री सूर्यनारायण शास्त्री २. भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री

वर्ष	संचिका	तिथि	सम्पादक
३.	८–११	दिसम्बर, १९३५, जनवरी से मार्च, १९३६	भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री (संयुक्तांक)
३.	१२	अप्रेल, १९३६ (चैत्र, १९९३) (वेदांक)	१, म० म० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी २. भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री ३. श्री सूर्यनारायण ,, ,, ४. श्री मोतीलाल शर्मा ,, ,,
४.	१–१२	जनवरी, १९३७ से दिसम्बर, १९३७	१. श्री सूर्यनारायण ,, ,,
५.	१–१२	जनवरी, १९३८ से दिसम्बर, १९३८	१. श्री सूर्यनारायण ,, ,,
६.	१–११	जनवरी, १९३९ से नवम्बर, १९३९	१. श्री सूर्यनारायण ,, ,,
६.	१२	दिसम्बर, १९३९ (चैत्र, १९९७) (शिक्षांक)	१. भट्ट श्री मथुरानाथ ,, ,, २. पं० श्री वृद्धिचन्द्र ,, ,,
७.	१–१२	अगस्त, १९४० से जुलाई, १९४१	१. श्री सूर्यनारायण ,, ,,
८.	१–१२	अगस्त, १९४१ से जुलाई, १९४२	१. भट्ट श्री मथुरानाथ ,, ,,
९.	१–१२	अगस्त, १९४२ से जुलाई, १९४३	१. भट्ट श्री मथुरानाथ ,, ,,
१०.	१–४	जनवरी, १९४४ से अप्रेल, १९४४	१. भट्ट श्री मथुरानाथ ,, ,,
१०.	५	अगस्त, १९४४	१. भट्ट श्री मथुरानाथ ,, ,,
१०.	६–९	अक्टूबर, १९४४ से जनवरी, १९४५	१. भट्ट श्री मथुरानाथ ,, ,,
१०.	१०–११	फरवरी, १९४५ से मार्च, १९४५	१. भट्ट श्री मथुरानाथ ,, ,, संयुक्तांक
१०.	१२	अप्रेल, १९४५ (दर्शनांक)	१. भट्ट श्री मथुरानाथ ,, ,, विशेषांक २. चतुर्वेदी अभिनन्दन समिति
११.	१	जुलाई, १९४६	१. भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री
११.	२–३	अगस्त, १९४६ से सितम्बर, १९४६	१. भट्ट श्री मथुरानाथ ,, ,, (संयुक्तांक)
११.	४–१२	अक्टूबर, १९४६ से जून १९४७	१. भट्ट श्री मथुरानाथ ,, ,,
१२.	१–९	जुलाई, १९४७ से मार्च, १९४८	१. भट्ट श्री मथुरानाथ ,, ,, २. पं० श्री वृद्धिचन्द्र शास्त्री सह सम्पादक
१२.	१०–११	अप्रेल, १९४८ से मई, १९४८	,, ,, ,, (संयुक्तांक)
१२.	१२	जून, १९४८	,, ,, ,,
१३.	१–१२	जुलाई, १९४८ से जून, १९४९	,, ,, ,,

सन् १९३३ से मार्च, १९४५ तक प्रकाशित दस वर्षों के प्रकाशक थे म० म० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी और जुलाई, १९४६ से जून, १९४९ तक (तीन वर्ष) पं० वृद्धिचन्द शास्त्री प्रकाशक रहे।

सन् १९४९ में अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन का १९वां वार्षिक अधिवेशन वाराणसी में आयोजित हुआ, जिनके सभापति थे म० म० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी। इस अधिवेशन में नवनिर्वाचित महामन्त्री श्री देवनायकाचार्य ने संस्कृत रत्नाकर को भी वाराणसी में प्रकाशित करने का निर्णय कर दिया और इस प्रकार पुनः इसके प्रकाशन में अनियमितता आ गई। वहां जाने पर इसके वर्ष संख्या आदि में भी परिवर्तन कर दिया गया। वहां के प्रकाशित अंकों का विवरण इस प्रकार है—

वर्ष	संख्या-समय	तिथि	स्थान	प्रधान सम्पादक	सहायक सम्पादक
१	१ (एक मास)	सौर वैशाख ३०, सं० २००८	काशी	पं० महादेव पाण्डेय	पं० त्रिनाथ शर्मा शास्त्री
१६	२ (एक मास)	सौर ज्येष्ठ ३०, सं० २००८	काशी	,, ,,	,, ,,
१६	३ (२ मास)	सौर श्रावण १५, सं० २००८	काशी	,, ,,	आचार्य रघुराज मिश्र
१६	४ (एक मास)	सौर भाद्रपद १५, सं० २००८	काशी	,, ,,	,, ,,
१६	५ (एक मास)	शरत्पूर्णा सं० २००८	काशी	,, ,,	,, ,,
१६	६ (२ मास)	मार्ग पूर्णा सं० २००८	काशी	,, ,,	,, ,, पं० रामगोविन्द शुक्ल
१६	७ (२ मास)	माघ पूर्णा सं० २००८	काशी	,, ,,	आचार्य रघुराज मिश्र
१६	८ (८ मास)	शरत् पूर्णा सं० २००९	काशी	,, ,,	,, ,,
१६	९ (एक मास)	कार्तिक पूर्णा सं० २००९	काशी	आचार्य रघुराज मिश्र	– –
१६	१०-११ (२ मास)	मार्गशीर्ष पौष पूर्णा सं० २००९	काशी	पं० महादेव पाण्डेय	– –
१६	१२ (एक मास)	माघी पूर्णा सं० २००९	दिल्ली	श्री केदारनाथ सारस्वत	– –

श्री नागेश उपाध्याय काशी से प्रकाशित होने वाले इस पत्रिका के अंकों के व्यवस्थापक रहे हैं। काशी के विद्वानों के परस्पर संघर्ष से संस्कृत रत्नाकर के प्रकाशन की व्यवस्था विगड़ उठी। श्री केदारनाथ शास्त्री सारस्वत उसे वलात् दिल्ली ले आये। पहले तो जयपुर के क्रम में २ वर्ष का व्यत्यय कर १६ वें वर्ष में इसका प्रकाशन प्रारम्भ किया गया था। १९४९ के जून तक इसके १३ वर्ष के अंकों का प्रकाशन जयपुर से हो चुका था, फिर १९५१ में यह काशी से प्रकाशित हुआ। यहाँ से २२ मास के समय में केवल १२ अंक प्रकाशित हुए। सम्मेलन के निर्णयानुसार इस पत्र का स्थानान्तरण कानपुर कर दिया गया। सम्मेलन का कार्यालय दिल्ली रहा और यह पत्र कानपुर से प्रकाशित होता रहा। इसका विवरण इस प्रकार है—

वर्ष	संख्या-समय	तिथि	स्थान	प्रधान सम्पादक	व्यवस्थापक प्रकाशक
१६	१–१२ (प्रति मास)	चैत्र, सं० २०११ से फाल्गुन, २०११	कानपुर	श्री केदारनाथ सारस्वत श्री बलराम शास्त्री (सह–संपा०)	सर हरगोविन्द मिश्र
१७	१	चैत्र, सं० २०१२	,,	श्री केदारनाथ सारस्वत	,, ,,
१७	२–३ (संयुक्त)	वैशाख–ज्येष्ठ, २०१२	,,	,, ,,	,, ,,
१७	४–१२ (प्रति मास)	आषाढ़, सं० २०१२ से फाल्गुन, २०१२	,,	,, ,,	,, ,,
१८	१–२ (संयुक्त)	चैत्र–वैशाख, २०१३	दिल्ली	,, ,,	श्री लीलाधर पाण्डेय
१८	३–४ (संयुक्त)	ज्येष्ठ–आषाढ, २०१३	,,	,, ,,	,, ,,
१८	५	श्रावण, सं० २०१३	,,	,, ,,	,, ,,
१८	६	भाद्रपद, सं० २०१३	,,	,, ,,	,, ,,
१८	७–८ (संयुक्त)	आश्विन–कार्तिक, सं० २०१३	,,	,, ,,	,, ,,
१८	९–१० (संयुक्त)	मार्गशीर्ष–पौष, सं० २०१३	,,	,, ,,	,, ,,
१८	११–१२ (संयुक्त)	माघ-फाल्गुन, सं० २०१३	,,	,, ,,	,, ,,

इसके पश्चात् कुछ अंक त्रैमासिक अंकों के रूप में भी प्रकाशित हुए, परन्तु यह वहां दिल्ली में भी स्थायी रूप से प्रकाशित नहीं हो सका और अनेक समस्याओं के कारण फिर इसका स्थगन होगया।[४] पुनः कुछ समय के पश्चात् १६, २० व २१ जनवरी, १९५९ को सम्पन्न अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन के चित्तौड़गढ़ अधिवेशन में सर्व-सम्मति से यह निर्णय किया गया कि रत्नाकर का पुनः प्रकाशन मासिक अंक के रूप में प्रारम्भ होना चाहिये। किसी भी संस्था के प्रचार-प्रसार के लिए स्वतन्त्र पत्र का होना परमावश्यक है। यह भी निश्चय हुआ कि पत्र के जन्मतः सहयोगी भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री तथा चिर सहयोगी पण्डित श्री वृद्धिचन्द्रजी शास्त्री जयपुर से ही इसका सम्पादन-प्रकाशन करें। दिल्ली से प्रकाशित करने पर व्यय भी अधिक होता है। इस प्रकार निर्णय के अनुसार इसके अंक जयपुर से निकलने की व्यवस्था हो गई। भट्ट श्री मथुरानाथजी ने उक्त कार्य के प्रति अपनी असमर्थता प्रकट कर दी। वे उस समय जयपुर से ही प्रकाशित होने वाले 'भारती' पत्र के सम्पादन का कार्य करने में व्यस्त थे। अतः श्री वृद्धिचन्द्र जी शास्त्री के प्रधान सम्पादकत्व और श्री दुर्गादत्त मैथिल, व्याकरणाचार्य के सहायक सम्पादकत्व में इनका प्रकाशन होने लगा। चित्तौड़गढांक निकलने से पूर्व ही भीलवाड़ांक नाम से प्रकाशित एक अंक १३ फरवरी, १९६० को प्रकाशित किया गया, जिसमें सम्पादकीयम् महत्त्वपूर्ण है। इसमें राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन के अष्टम अधिवेशन का संक्षिप्त इतिवृत्त प्रकाशित हुआ है। यद्यपि जयपुर से प्रकाशन का निर्णय हो चुका था और सम्पादकों ने इसके नियमित प्रकाशन के लिए स्वीकृति भी प्रदान कर दी थी, कुछ अंक भी प्रकाशित होने लगे थे, परन्तु आर्थिक अव्यवस्था के कारण सन्तोष न होने से सम्पादकों ने इस पर आपत्ति की।

येन केन प्रकारेण केवल ४ ही अंक जयपुर से प्रकाशित हुए । इनका विवरण इस प्रकार है—

१. भीलवाडांक—फाल्गुन कृष्णा प्रतिपद् सं० २०१६, १३ फरवरी, १९६०
२. चित्तौड़गढांक-अप्रेल-मई, १९६०-विशेषांक
३. स्व० पं० केदारनाथ सारस्वत स्मृत्यंक-जून-जुलाई, १९६०-विशेषाङ्क (२८।३)
४. सामान्य अंक-नवम्बर-दिसम्बर, १९६० (२८।४-५)

इसके पश्चात् महामन्त्री डॉ० श्री मण्डन मिश्र शास्त्री के प्रस्तावानुसार इसका प्रकाशन दिल्ली से ही होने लगा। दिल्ली पहुंचकर कुछ समय के लिए यह पुनः अव्यवस्थित हो गया । यदा कदा कभी विशेषांक के रूप इसके दर्शन होने लगे। इसका रूप परिवर्तन भी हो गया । बीच-बीच में प्रकाशित अंकों में हिन्दी के लेख भी स्थान प्राप्त करने लगे। बीच में एक वर्ष तक यह प्रकाशित भी न हो सका। इसका महत्त्व भी क्रमशः घटने लगा। यद्यपि इसके दो तीन विशेषांक भी दिल्ली से प्रकाशित है, परन्तु जयपुर से प्रकाशित वेदांक आदि विशेषांकों से समता नहीं रखते । दिल्ली से प्रकाशित २४वें वर्ष से अंकों का उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है—

१. मालवीयशती विशेषांक-जनवरी-फरवरी, १९६२—म०म० श्री परमेश्वरानन्दजी (सम्पादक)
२. कुम्भपर्व विशेषांक—मार्च-अप्रेल १९६२ ,, ,, ,,
३. सामान्य अंक—मई—जून, १९६२ ,, ,, ,,
४. सामान्य अंक—जुलाई, १९६२ ,, ,, ,,
५. स्वतन्त्रता दिवसांक—अगस्त, १९६२ श्री प्रभुदत्त शास्त्री विद्यावाचस्पति (सं०)
म० म० श्री परमेश्वरानन्दजी (सं०)
६. सामान्य अंक—सितम्बर, १९६२ म० म० श्री परमेश्वरानन्दजी (सं०)
७. सामान्य अंक—अक्टूबर, १९६२ ,, ,, ,,
८. सामान्य अंक—नवम्बर, १९६२ ,, ,, ,,
९. श्री जवाहरलाल नेहरू श्रद्धाञ्जल्यङ्कः—जून-जुलाई-अगस्त, १९६४ श्री अमीरचन्द्र शास्त्री (सं)०
(विशेषांक) २६/६-७-८) श्री रमेशचन्द्र चतुर्वेदी (सं०)
१०. श्री लालबहादुरशास्त्रिसम्मानांक :—सितम्बर-अक्टूबर- नवम्बर-दिसम्बर, १९६४ (२६/९-१०-११-१२) श्री के० एस० रामस्वामी शास्त्री (सं०)
(विशेषांक)

यह अभी तक येन केन प्रकारेण दिल्ली से प्रकाशित हो रहा है । इसके लिए सम्मेलन के प्रधान मन्त्री डा० श्री मण्डन मिश्र शास्त्री धन्यवाद के पात्र हैं, जो इसे अनेक कठिनाइयों के उपरान्त भी प्रकाशित कर रहे हैं ।

जयपुर का योग—संस्कृत-रत्नाकर का जन्म जयपुर में ही हुआ । प्रारम्भ में १९०४ ई० से १९१४ तक १० वर्ष तक प्रकाशित होने के पश्चात् पुनः १९३३ में यह जयपुर से ही प्रकाशित होने लगा, जो जून, १९४९ तक निरन्तर प्रकाशित होता रहा । इन १६ वर्षों में इसने संस्कृत और संस्कृत विद्वानों की पर्याप्त सेवा की । इसके पश्चात् काशी, दिल्ली, कानपुर और दिल्ली से परिश्रान्त हो कर पुनः अपनी जन्मभूमि जयपुर में लौटा । भ्रमणशील होने के कारण दिल्ली की चकाचौंध ने इसे पुनः आकर्षित कर लिया और अब सम्भवतः स्थायी रूप से दिल्ली का ही निवासी हो गया है । इसके नियमित प्रकाशन में जयपुर और जयपुर के विद्वानों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है—यह सर्वाविदित ही है । इसका शैशव और यौवन जयपुर में ही बीता है ।

(२) भारती

संस्कृत रत्नाकर के जयपुर से वाराणसी प्रस्थान करने के पश्चात् स्थानीय संस्कृत-संस्कृति प्रेमी विद्वानों ने संस्कृत भाषा में सरल व सुबोधगम्य एक मासिक पत्र निकालने का विचार किया। संस्कृत रत्नाकर की भाषा कुछ क्लिष्ट हो चली थी। उसमें भारत के दिग्गज वैयाकरणों व प्रकाण्ड विद्वानों के लेख प्रकाशित होते थे, और वे लेख भी उच्चस्तरीय होते थे। इस पत्रिका के पाठक तथा ग्राहक भी विद्वान् ही थे। अतः विद्वानों की दृष्टि सरल व सुबोध पत्रिका निकालने की ओर प्रवृत्त हुई और बालकों के लिए सुगम पत्र प्रकाशित करने की योजना बनी। यद्यपि इसका प्रकाशन विजयादशमी से कराना चाहते थे, परन्तु राजकीय आज्ञा आदि की प्रतीक्षा में विलम्ब हो गया और प्रथम अंक दीपावली संवत् २००७ सन् १९५० को प्रकाशित किया जा सका।[9]

इसका प्रकाशन श्री जयबहादुरसिंह ने करवाना प्रारम्भ किया, जो खाचरियावास (जिला सीकर) के निवासी हैं और संस्कृत-संस्कृति के परम उपासक भी हैं। इस पत्रिका के प्रकाशन स्थल को 'भारती-भवन' की संज्ञा दी गई तथा जयपुर के प्रसिद्ध कर्मठ कार्यकर्त्ता पण्डित श्री गिरिराज प्रसाद शर्मा शास्त्री ने इसका प्रबन्धकत्व संभाला। बड़ी लगन के साथ आपने इस कार्य का संचालन किया। परिणामस्वरूप आज तक यह पत्रिका नियमित रूप से जयपुर से ही प्रकाशित हो रही है और संस्कृत-संस्कृति की सेवा में संलग्न है। इसके कतिपय विशेषांक भी समय-समय पर प्रकाशित हुए हैं। यह एक सचित्र मासिक पत्र है और भारत वर्ष के अनेकों मूर्धन्य विद्वान् अपनी रचनायें इसमें प्रकाशित होने हेतु भेजते हैं। इसमें अनेक काव्य धारावाहिक रूप में भी प्रकाशित हुए हैं, जिनमें (१) वेदस्य सर्वविद्यानिधानत्वम्—पं. मोतीलाल शास्त्री, दुर्गापुरा, (२) जीवनस्य पृष्ठद्वयं—श्री कलानाथ शास्त्री, जयपुर, (३) शिवराज्योदयं महाकाव्यम् श्री (डा.) श्रीधर भास्कर वर्णेकर, नागपुर के नाम उल्लेखनीय हैं। इसमें प्रकाशित विभिन्न विषयक लेखों में भारतीय संस्कृति के संरक्षक विद्वानों तथा ऐतिहासिक महापुरुषों की जीवनियों के साथ ही सामयिक प्रश्नों पर भी विचार-विमर्श उपलब्ध होता है। इस प्रकार यह एक उच्चस्तरीय पत्रिका कही जा सकती है, जो छात्रोपयोगी भी है।

भारती पत्रिका का पूर्ण संक्षिप्त विवरण इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

क्रम	वर्ष । अंक	प्रकाशन तिथि से तक	सम्पादक	सह-सम्पादक
१.	प्रथम । १२	दीपावली २००७ से आश्विन २००८	श्री सुरजनदास स्वामी	—
२.	द्वितीय । ९	दीपावली २००८ से आषाढ २००९	श्री सुरजनदास स्वामी	—
३.	द्वितीय । ३	श्रावण २००९ से आश्विन २००९	श्री वृद्धिचन्द्र शास्त्री	—
४.	तृतीय । १२	कार्तिक २००९ से आश्विन २०१०	श्री वृद्धिचन्द्र शास्त्री	—
५.	चतुर्थ । १२	कार्तिक २०१० से आश्विन २०११	भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री	—
६.	पंचम । १२	कार्तिक २०११ से आश्विन २०१२	भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री	—
७.	षष्ठ । १२	कार्तिक २०१२ से आश्विन २०१३	भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री	देवर्षि कलानाथ शास्त्री
८.	सप्तम । १२	कार्तिक २०१३ से आश्विन २०१४	भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री	,,
९.	अष्टम । १२	कार्तिक २०१४ से आश्विन २०१५	भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री	,,
१०.	नवम । १२	कार्तिक २०१५ से आश्विन २०१६	भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री	,,
११.	दशम । १२	कार्तिक २०१६ से आश्विन २०१७	भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री	,,

क्रम	वर्ष अंक	प्रकाशन तिथि से तक	सम्पादक	सह-सम्पादक
१२.	एकादश १२–१०	कार्तिक २०१७ से भाद्रपद २०१८	भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री	देवर्षि कलानाथ शास्त्री
१३.	द्वादश ।१२	कार्तिक २०१८ से आश्विन २०१९	,, ,, ,,	,, ,, ,,
१४.	त्रयोदश।१२	कार्तिक २०१९ से आश्विन २०२०	,, ,, ,,	,, ,, ,,
१५.	चतुर्दश ।५	कार्तिक २०२० से फाल्गुन २०२०	,, ,, ,,	,, ,, ,,
१६.	चतुर्दश ६–७	चैत्र–वैशाख २०२१	,, ,, ,,	,, ,, ,,
		विशेषांक—आयुर्वेदांक	वैद्य सुदेवचन्द्र पाराशरी	श्री दीनानाथ त्रिवेदी
१७.	चतुर्दश ।८	ज्येष्ठ २०२१	आशुकवि श्री हरि शास्त्री	,, ,, ,,
		श्री चन्द्रशेखर द्विवेदाभिनन्दनांकः		
१८.	चतुर्दश ।९	आषाढ २०२१	आशुकवि श्री हरि शास्त्री	,, ,, ,,
		अभिनवपट्टाभिषेकविवरणांकः		
१९.	चतुर्दश ।१०–११	श्रावण-भाद्रपद, २०२१	आशुकवि श्री हरि शास्त्री	,, ,, ,,
		(११वाँ) भट्ट श्री मथुरानाथश्रद्धांजल्यंकः		
२०.	चतुर्दश ।१२	आश्विन, २०२१	आशुकवि श्री हरि शास्त्री	,, ,, ,,
२१	पंचदश ।१–५	कार्तिक-फाल्गुन, २१	आशुकवि श्री हरि शास्त्री	,, ,, ,,
२२.	पंचदश ।६	चैत्र, २०२२	आशुकवि श्री हरि शास्त्री	,, ,, ,,
		भीलवाड़ा-राज़० सं० सा० सम्मेलन स्मारिका		
२३.	पंचदश ।७–१२	वैशाख से आश्विन २०२२	आशुकवि श्री हरि शास्त्री	,, ,, ,,

यह पत्रिका अभी निरन्तर रूप से प्रकाशित हो रही है। जयपुर से प्रकाशित इस पत्रिका के नियमित प्रकाशन का श्रेय इसके प्रबन्ध सम्पादक श्री गिरिराज शास्त्री तथा प्रकाशक श्री जयबहादुरसिंह को दिया जा सकता है। इसके अनेक महत्त्वपूर्ण विशेषांक अपने में उल्लेखनीय सामग्री निधि के रूप में सुरक्षित किये हुए हैं। जयपुर के अनेक उदीयमान संस्कृत लेखकों को इसमें लिखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, जिसका विवरण द्वितीय 'कृतिकार-खण्ड' का विषय है।

पत्रिकाओं का योगदान

संस्कृत रत्नाकर तथा भारती पत्रिका के प्रकाशन से जयपुर के संस्कृत साहित्य के इतिहास को बहुत अधिक संबल प्राप्त हुआ है। सन् १९०४ ई० से प्रकाशित होने वाला संस्कृत रत्नाकर यद्यपि अनेक बाधाओं के कारण अनेक वार शिथिल, भी हुआ परन्तु फिर भी यह स्थानीय विद्वानों द्वारा उज्जीवित होता रहा। अनेक पत्र इसके सहचर के रूप में प्रकाशित हुये थे, परन्तु आज इनका नाम भी नहीं सुना जाता। यह रत्नाकर आज भी दिल्ली से प्रकाशित हो रहा है। यद्यपि १९५० के पश्चात् इसका प्रकाशन अनियमित हो गया, परन्तु फिर भी इसके नियमित प्रकाशन के लिए जयपुर के विद्वानों का पूर्ण प्रयास रहा है, जिनमें महामहोपाध्याय पं० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, श्री वृद्धिचन्द्रजी शास्त्री, डॉ. मण्डन मिश्र शास्त्री के नाम विशेषतः उल्लेखनीय हैं।

१९४९ ई० के पश्चात् संस्कृत रत्नाकर के काशीवास के लिये प्रस्थान करने पर जयपुर के विद्वान् उसका वियोग सहन न कर सके। वियोग की इस अनुभूति में ही भारती पत्रिका का जन्म हुआ। यह पत्रिका विद्वान् सम्पादकों की सम्पादन प्रवीणता तथा योग्य प्रबन्धक की कुशलता से निरन्तर और नियमित रूप में प्रकाशित होकर न केवल जयपुर की ही, अपितु समूचे राजस्थान की अथवा यो कहिये सम्पूर्ण भारतवर्ष की सेवा कर रही है। इसके निरन्तर व नियमित प्रकाशन पर जयपुर को अत्यधिक हर्ष एवं गर्व है। ईश्वर से कामना है कि यह पत्रिका निरन्तर प्रकाशित होकर संस्कृत भाषा एवं विद्वानों की सेवा करती रहे।[11]

———

परिचय--खण्ड

तृतीय अध्याय (ङ) के सन्दर्भ व उद्धरण
(References and Notes)

1. (क) आत्म कथा और संस्मरण—पृष्ठ २२ (ख) 'रत्नाकरस्यात्मकथा' वर्ष १ अंक १ जनवरी, १९३३ प्रकाशकीय—म० म० श्री चतुर्वेदीजी, (ग) सम्पादकीयम् चित्तौड़गढांकः अप्रैल–मई, १९६० प्रधान सम्पादक–श्री वृद्धिचन्द्र शर्मा शास्त्री, पृष्ठ ३–४।

2. आत्मकथा और संस्मरण—पृष्ठ २२–२३।

3. इस रत्नाकर के सर्वप्रथम प्रकाशित दो वर्षो के अंक श्री कलानाथ शास्त्री, जयपुर से उपलब्ध हुए हैं, इन्हें देखने से ज्ञात होता है कि सर्वप्रथम इसका प्रकाशन विद्वानों के मण्डल द्वारा हुआ है।

4. "रत्नाकरोऽयं त्रीणि वर्षाणि सम्मेलनस्य मुखपत्रतां वहन्नपि आर्थिक-व्यवस्थाया असुसाधत्वात् कारणान्तरैश्च मध्य एवावरुद्धः। एवमयं दशाब्दान् निखिले भारते प्रतिकोणं परिभ्रम्य चिराय विश्रान्तम्।" सम्पादकीयम्-चित्तौड़गढांकः पृष्ठ ३, श्री वृद्धिचन्द्रः शास्त्री।

5. "पूर्वमयं दशाब्दान् निखिले भारते परिवभ्राम। आनयपालकाश्मीरम्, आसिंहलद्वीपम्, आसिन्धुसौवीरम्, आपूर्ववंगोत्कलम् चासन्नस्यानुग्राहकाः। सहृचरेषु सबहूमानमस्य नाम कीर्त्यतेस्म। वाक् च श्रूयतेस्म। किं बहुना, नास्य जीवनमुपेक्षाकोणे निक्षिप्तमासीत्। परं संस्कृतप्रणयिनां संख्याया एव दुर्दैवसमाक्रान्तेऽ (अ) त्र देशेऽ (अ)ल्पतया बहुवारमार्थिककष्टमनेन स्वजीवनेऽ (अ) नुभूतमेव। कदाचिदयं सम्पादकमण्डलाधिकारे, कदाचिच्च यन्त्रालयाध्यक्ष–श्री वालचन्द्रशास्त्रिणोऽ (अ) धिकारे जीवनयात्रां निर्व्यूढवान्। कदाचिच्च वेलामनतिक्रामन् "इति स्वशीर्षवृतां प्रतिज्ञामप्यतिक्रम्य वहुतरकालविलम्बकलंकमात्यन्यारोपयन्नुग्राहकाणां रोषभाजनमप्यभूत्। परं यत् सारभूतं स्थायि, किंचिदनेन संस्कृतवाङ्मयाय समर्पितन् तेनाद्यापि संस्कृतप्रणयिनः स्मरन्त्येवैनम्। अतीतेष्वपि गुहायां निलीनस्यास्य पंचदशाधिकेषु संवत्सरेषु अथाप्येतद् ग्रहणाय पत्राणि प्राप्यन्ते प्रकाशकैः।"
(रत्नाकरस्यात्मकथा"—प्रकाशकीयम् तथा सम्पादकीयम् म० म० श्री चतुर्वेदी, जनवरी, ३३, १।१)

6. "मधुरमपरमिमं वृत्तान्तं श्रीमत्सेवायामावेदयामो यद् रत्नाकरस्य संजातो नूतनः प्रबन्धः सुदृढः खलु संघटितः प्रवन्धो यन्नियतसमये प्रकाशेत रत्नाकर इति। पूर्वं ही रत्नाकरस्य मुद्रणादेः सर्वो (अ) ऽपि भारः सम्पादकवर्गस्यैवायत्तोभूत् परमधुना परमसंस्कृतविद्यानुरागिभिर्जयपुरीय वालचन्द्र-यन्त्राध्यक्षैः रत्नाकरस्य मुद्रणभारः कृपयांगीकृत इति परमसन्तोषावसरः। अस्मिन् हि विषये यन्त्रालयाध्यक्षाणां श्रीमतां वालचन्द्रशास्त्रिणां निःसीममुपकारं मन्यामहे।"
(संस्कृत–रत्नाकरः, अभिनवमावेदनम्–अभिनवप्रबन्धः आकर ७ रत्न १ पृष्ठ २–३, चैत्र ९९)।

7. वम्बई के स्थान पर वाराणसी में सम्पन्न इस अधिवेशन का उल्लेख म० म० श्री चतुर्वेदीजी ने अपने एक भाषण में किया था। यों अ० भा० सं० सा० सम्मेलन की स्वर्णजयन्ती पर प्रकाशित

स्मारिका पृष्ठ १२ पर सं० मंत्री श्री महेन्द्र दवे का लेख इसके प्रमाण रूप में उद्धृत हो सकता है।

8. "यथासमयं शुद्धरूपेण प्रकाशनस्य न साधीयसी व्यवस्था समभूत्। स्थगितं पुनरपि तत् कार्यम्। ततो देहलीत एव महामन्त्रिमहोदयेनास्य प्रकाशनं प्रारब्धं, किन्तु अस्मिन्नवधावनुल्लंघतया सम्मेलनस्यान्येषु कार्येषु व्यस्ततया च तदपि न नियतं प्रचलितम्। ततस्त्रैमासिक-रूपेणास्य प्रकाशनमारब्धं तदपि द्वित्रानंकान्निसार्य चिराय स्थगितम्"—सम्पादकीयम्, चित्तौडगढांक-पृष्ठ ३-४।

9. भारती—१ वर्ष प्रथम अंक—सम्पादकीयम्—"यद्यपि आसीदस्माकं विचारः विजयदशमीत एव प्रकाशयितुमिदं पत्रं, तथापि राजकीयानुमतेः कतिपयानामन्येषां साधनानां च अभावेन न शक्ता वयं तदवसरे तथा कर्तुम्। अतः सम्प्राप्ते-दीपावलीमहोत्सवावसरे वयमस्य पत्रस्य प्रथम-अंकमुपहार-रूपेण समर्पयामः संस्कृतसेविनां करकमलयोः।" पृष्ठ २।

10. एकादश वर्ष का आरोग्यांक विशेषतः उल्लेखनीय है, जो एक विशेषांक था और दो मास में संयुक्तांक के रूप में प्रकाशित हुआ था। इस विशेषांक के दो विद्वान् विशेष सम्पादक के रूप में उल्लेखनीय है—(१) श्री जयरामदास स्वामी और (२) श्री सुदेवचन्द्र पाराशरी। इसी वर्ष का छठा अंक परिशिष्टांक था।

11. संस्कृत पत्रपत्रिकाओं के इतिहास में संस्कृत-रत्नाकर व भारती के अतिरिक्त श्री गोविन्द प्रसाद दाधीच ने "कल्याणी" नामक मासिक पत्रिका का सम्पादन प्रकाशन किया था, जो कुछ अंकों के प्रकाशन के बाद बन्द हो गयी। इसी प्रकार "संस्कृत सुधा" नामक पत्रिका का प्रकाशन श्री उमेशचन्द्र शास्त्री ने प्रारम्भ किया था, परन्तु वह भी अधिक न चल सकी।

राजस्थान साहित्य अकादमी के तत्त्वावधान में आजकल "स्वरमंगला" नामक त्रैमासिक पत्रिका का नियमित प्रकाशन हो रहा है, जिसके सम्पादन के लिए में जयपुर के अनेक विद्वानों को अवसर प्राप्त होता रहा है।

'संस्कृत रत्नाकर' का प्रकाशन तो अब बन्द सा है, परन्तु 'भारती' पत्रिका निरन्तर प्रकाशित हो रही है तथा २९वें वर्ष में प्रवेश कर चुकी है।

अन्यान्य शोध पत्रिकाओं में उच्चस्तरीय अध्ययन अनुसंधान संस्थान की पत्रिका वास्तव में उच्चस्तर की पत्रिका है, जिसके सुन्दर प्रकाशन का श्रेय संस्थान के का० अध्यक्ष श्री प्रवीणचन्द्रजी जैन को दिया जाना चाहिए। यह पत्रिका १९७१-७२ से प्रकाशित हो रही है तथा ७ अंकों में प्रकाशित हो चुकी है। इसमें शोध सामग्री का प्राचुर्य होता है।

तृतीय अध्याय

(च)

संस्कृत-संस्कृति के संरक्षक उल्लेखनीय पुस्तकालय तथा संग्रहालय एवं उनका इतिवृत्त

राजस्थान का सुविशाल प्रदेश, अनेकानेक शताब्दियों से भारत का हृदय स्वरूप स्थान माने जाने के कारण विभिन्न जनपदीय संस्कृतियों का यह एक केन्द्रीय एवं समन्वय भूमि बना हुआ है। प्राचीनतम आदिकालीन वनवासी भिल्लादि जातियों के साथ इतिहासयुगीन आर्य जाति के भिन्न-भिन्न जन–समूहों का यह प्रिय देश रहा है। वैदिक, जैन, बौद्ध, शैव, भागवत एवं शाक्त आदि नाना धर्मो तथा दार्शनिक सम्प्रदायों के अनुयायी जनों का यहां स्वस्थ एवं सहिष्णुता पूर्ण सन्निवेश हुआ है। कालक्रमानुसार मौर्य, शक, क्षत्रप, गुप्त, हूण, प्रतिहार, गुहलोत, परमार, चालुक्य चाहमान (चौहान), राष्ट्रकूट आदि विभिन्न राजवंशों की राज्य सत्ताएं इसी प्रदेश में स्थापित होती गई तथा उनके शासन काल में आश्रय प्राप्त कर अनेक विद्वानों ने रचनायें की। ये रचनाएं विभिन्न विषयक रही हैं। इस प्रकार यहां जन-संस्कृति और राष्ट्र सम्पत्ति यथेष्ट रूप से विकसित होती रही है। परिणाम स्वरूप समय के साथ-साथ संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश तथा जन भाषाओं (राजस्थानी, हाडोती, मेवाडी, मारवाडी, ढूंढारी इत्यादि) में भी साहित्य की पर्याप्त सर्जना हुई है। राजस्थान प्रान्त ने केवल दो ही रस चुने थे--शृंगार और वीर। रसिकता में तथा वीरत्व-शौर्यत्व में ये लोग सर्वाग्रणी रहे हैं।

राजस्थान के विशाल प्रान्त में जयपुर का योगदान भी इस दृष्टि से पर्याप्त समुन्नत रहा है। यहां के शासकों ने अनेक विद्वानों को ससम्मान आश्रय प्रदान कर साहित्य के परिवर्द्धन में पर्याप्त सहयोग दिया है। यद्यपि बहुत कुछ साहित्य कालवश नष्ट भी हो चुका है, तथापि अनेक भाण्डार, पुस्तकालय, संग्रहालय अब भी अपने अंक में अनेक बहुमूल्य ग्रंथों को छिपाये हुए है। इन संग्रहालयों में से कतिपय व्यक्तिगत हैं तथा कतिपय राज्याश्रित। इनमें हस्त-लिखित ग्रन्थों के साथ-साथ प्रकाशित परन्तु अब दुर्लभ अनेक ग्रंथ हैं (प्रिन्टेड रेयर बुक्स)। यहाँ इन्हीं का उल्लेख किया जा रहा है, जो वास्तव में इस संरक्षण के द्वारा जयपुर के संस्कृत साहित्य के इतिहास निर्माण में सहायक रहे हैं। राजकीय संग्रहालयों में केवल दो का नाम उल्लेखनीय है—**(१) राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मन्दिर (राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान) तथा (२) सार्वजनिक पुस्तकालय (पब्लिक लाइब्रेरी)। व्यक्तिगत संग्रहालयों में (१) पोथी-खाना (महाराज सवाई मानसिंह द्वितीय का निजी पुस्तकालय), (२) पर्वणीकर संग्रहालय, (३) स्वर्गीय श्री वृद्धिचन्द्र शास्त्री पुस्तकालय, (४) श्री मञ्जुनाथ पुस्तकालय, (५) श्रीकृष्णराम भट्ट पुस्तकालय, (६) श्री जैन साहित्य शोध संस्थान (७) श्री वीरेश्वर पुस्तकालय और (८) आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार के नाम उल्लेखनीय है।**

(१) राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मन्दिर (जयपुर शाखा)

इस संस्थान की स्थापना का श्रेय राजस्थान के प्रथम मुख्य मन्त्री श्री हीरालाल शास्त्री को दिया जाता है, जिनने सर्वप्रथम एक संस्कृत मण्डल की स्थापना की थी। इस मण्डल के आवेदन प्रस्तुत करने पर श्री श्याम सुन्दर शर्मा (भूतपूर्व रजिस्ट्रार, आगरा विश्वविद्यालय तथा सचिव, राजस्थान लोक सेवा आयोग) के निरन्तर प्रयास से १९५० ई० में इस संस्थान को मूर्तरूप दिया गया। मई सन् १९५० से इसका कार्य प्रारम्भ हुआ तथा राजस्थान के पुरातत्वाचार्य मुनि श्री जिन विजय के सुझाव के अनुसार इसकी योजना बनाई गई। वर्तमान संस्कृत कालेज के भवन के एक भाग में इसका कार्य प्रारम्भ किया गया। सन् १९५१ ई० में अन्तरिम मन्त्रिमण्डल के गृहमन्त्री श्री भोलानाथ झा (श्री वी० एन० झा) के सत्प्रयास से पुरातत्व मन्दिर को राजकीय शोध संस्थान के रूप में रखने का निर्णय हुआ। मुनि श्री जिन विजय को इसका सम्मान्य संचालक नियुक्त किया गया। क्रमशः इस संस्थान का विकास तथा विस्तार हुआ। सन् १९५६ में कुछ नये पद स्वीकृत हुए तथा इसका बजट भी बढ़ाया गया। अब तक इसका कार्यालय जयपुर में ही था, परन्तु राजकीय नीति के अनुसार १ अप्रेल, १९५५ को भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति स्व० श्री राजेन्द्रप्रसाद ने जोधपुर में इसके स्थायी भवन का शिलान्यास किया। ३ वर्ष पश्चात् दिसम्बर, १९५८ में यह संस्थान जोधपुर में स्थानान्तरित किया गया। उस समय तक इसकी कोई शाखा नहीं थी। इस प्रकार यह ८ वर्ष तक जयपुर की श्री वृद्धि करता रहा तथा इस काल में इसके द्वारा अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का सम्पादन व प्रकाशन हुआ।

राजस्थान के जाने पहचाने शोध विद्वान् परन्तु जयपुर के इतिहास के मर्मज्ञ स्वर्गीय श्री विद्याभूषण हरिनारायणजी के बहुमूल्य संग्रह को उनके सुपुत्र श्री रामगोपालजी (फोजदार) इस संस्थान को सौंप रहे थे। इसी बीच जब इस संस्थान का स्थानान्तरण जोधपुर हो गया तो उनने यह शर्त रखी कि यह संग्रह जयपुर में ही रहे, तो संस्थान को सौंपा जा सकता है। बहुमूल्य एवं अलभ्य पुस्तकों के इस संग्रह को हाथ से जाने देना कोई बुद्धिमानी नही थी। इस पर विचार कर मुनि श्री जिन विजय ने प्रयास कर राजकीय सहायता की व्यवस्था कर राजस्थान के सात स्थानों पर इसकी शाखायें खोलने का निर्णय किया, जिनमें (१) जयपुर, (२) अलवर (३) टोंक, (४) कोटा, (५) उदयपुर, (६) चित्तौड़गढ और (७) बीकानेर मुख्य हैं। जयपुर की शाखा सबसे पहले खोली गई। सर्व प्रथम इसमें श्रीविद्याभूषण संग्रहालय ही था। इसमें ८३० पुस्तकें हैं, जिनमें हिन्दी, संस्कृत व राजस्थानी के अतिरिक्त अनेक महत्त्वपूर्ण पत्र हैं जो जयपुर के इतिहास से सम्बद्ध हैं। इस समय तक ७ विभिन्न संग्रह हैं, जिनमें ६ संग्रह तो दान रूप में प्राप्त हुए हैं और एक स्थानीय सार्वजनिक पुस्तकालय से हस्तान्तरित किया गया है। इसमें ४४६ पुस्तकें हैं। ये पुस्तकें हस्तलिखित ग्रन्थों के रूप में सार्वजनिक पुस्तकालय में विद्यमान थी, जो सब इस शाखा कार्यालय में उपलब्ध हैं। इस समय विद्यमान विभिन्न संग्रहों की रूपरेखा इस प्रकार प्रस्तुत की जा सकती है—

क्रम	संग्रह का नाम	ग्रन्थ संख्या	विवरण
१.	स्व० हरिनारायण विद्याभूषण ग्रंथ-संग्रह	८३०	जयपुर का इतिहास, सन्तों की वाणियां, संस्कृत, हिन्दी तथा राजस्थानी के अलभ्य ग्रंथ।
२.	स्व० श्री लक्ष्मीनाथ शास्त्री दाधीच संग्रहालय	५५२	संस्कृत तथा हिन्दी।
३.	श्री विश्वनाथ शारदानन्दन संग्रहालय	३३६	संस्कृत ग्रन्थ।
४.	पब्लिक लाइब्रेरी से हस्तान्तरित	४४६	हस्तलिखित ग्रंथ।
५.	श्री बदरीनारायण गुप्ता संग्रहालय	१९०६	हस्तलिखित व प्रकाशित।
६.	श्री रामकृपालु संग्रहालय	१५०१	,, ,,
७.	श्री जिन धर्मेन्द्र सूरीजी संग्रह (बड़ा उपासरा)	२५९२	जैन ग्रन्थाविषय।
	कुल संख्या	८२०४	

श्री विद्याभूषण हरिनारायणजी मध्यकालीन भक्त व सन्त कवियों के विशेषज्ञ माने जाते थे। उनने अनेक दुर्लभ व अलभ्य पदों की खोज की थी। "सुन्दर ग्रन्थावली" तथा "व्रजनिधि ग्रन्थावली" आदि अनेक रचनायें इनके द्वारा सम्पादित व प्रकाशित हैं। इनके पुस्तकालय का नाम "हरि मन्दिर पुस्तकालय" था। इसका सूचीपत्र इस पुरा-तत्त्व मन्दिर द्वारा प्रकाशित हो चुका है।

दूसरे संग्रह में पं० श्री लक्ष्मीनाथ शास्त्री दाधीच की दो पुत्रवधुओं, श्रीमती सुभद्रादेवी तथा श्रीमती सौभाग्य-देवी का सहयोग प्रशंसनीय है, जिनने विख्यात विद्वान् पं० श्री गोपीनाथ शास्त्री दाधीच (नांगल्या) के महत्त्वपूर्ण हस्त-लिखित ग्रन्थों की रक्षा हेतु उनका संग्रह उक्त प्रतिष्ठान को सौंपा। इसका श्रेय पं० छत्रधर शास्त्री दाधीच को दिया जाता है।

श्री विश्वनाथ शारदानन्दन महाराष्ट्रीय परिवार के एक विद्वान् व्यक्ति थे, जो महादेव दीक्षित के परिवार में थे और काशी से यहां आये थे। श्री विश्वेश्वर पौण्डरीक ने श्री महादेव दीक्षित को उनकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर "शारदानन्दन" का खिताब दिया था। श्री वेणीमाधव शास्त्री के प्रयास से यह संग्रह प्रतिष्ठान में पहुंचा।

शेष संग्रह भी विभिन्न व्यक्तियों ने विभिन्न समयों में बहुमूल्य साहित्य की सुरक्षा हेतु इस प्रतिष्ठान को सहर्ष प्रदान किये हैं। इसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं।

(२) पब्लिक लाईब्रेरी (सार्वजनिक पुस्तकालय)

महाराजा सार्वजनिक पुस्तकालय जयपुर की स्थापना १८६६ ई० में महाराजा सवाई रामसिंह द्वितीय ने की थी प्रारम्भ में यह महाराजा के व्यक्तिगत संग्रहालय "पोथीखाना" का एक खण्ड था, जिसे कालान्तर में महाराज ने सार्व-जनीन हित के दृष्टिकोण से उक्त संस्था के वर्तमान भवन में स्थापित किया। इसमें नवीन प्रकाशित पुस्तकें भी खरीदी जाने लगीं। इसके सर्वप्रथम पुस्तकालयाध्यक्ष पाश्चात्य विद्वान् मि० फ्रेन्क एलक्जेन्डर थे तथा प्रसिद्ध बंगाली विद्वान् महिमचन्द्र सेन प्रभृति अनेक सुरभारतीसमुपासक इसके पुस्तकालयाध्यक्ष के रूप में कार्य कर चुके हैं। वर्तमान में श्री दीपसिंह एम० ए०, डिप्लोमा इन लाईब्रेरी साइंस, १९६० से कार्य कर रहे हैं। इस समय इस पुस्तकालय में १२ तक-नीकी सलाहकार तथा ३१ अन्य कर्मचारी है लगभग एक लाख रुपये का वार्षिक बजट है जिसमें से६५०० रुपये पुस्तकों की खरीद के लिये तथा ६९०० रुपये पत्र-पत्रिकाओं के लिये निर्धारित हैं। औसतन ५०० व्यक्ति प्रतिदिन यहां अध्ययनार्थ आते हैं।

पुस्तकालय की सदस्यता निःशुल्क है। केवल पुस्तकें प्राप्त करने के लिये ५ रु० व १० रु० की राशि सुरक्षित की जाती है। वर्तमान में ३७३२ सदस्य हैं। पुस्तकालय सेवा का विस्तार जयपुर नगरपालिका क्षेत्र में हैं। इस पुस्तका-लय के अतिरिक्त इसी के अधीनस्थ १३ अन्य वाचनालय जयपुर नगर के विभिन्न स्थानों में सेवारत हैं। इसकी चल पुस्तकालय शाखा के ११५ धरोहर केन्द्र हैं, जो जयपुर जिले के विभिन्न गांवों में ग्रामीण जनता का हित करते हैं। पुस्तकालय का एक बाल विभाग भी है, जिसकी सदस्यता भी निःशुल्क है। शोध छात्रों की सुविधा के लिए एक 'सन्दर्भ पुस्तकालय" का खण्ड भी अलग से सुव्यवस्थित है, जहां प्रायः सभी सन्दर्भ ग्रन्थ सरलता से उपलब्ध किये जा सकते हैं। पुस्तकें वितरण का औसत ३०० पुस्तकें प्रतिदिन हैं। पुस्तकालय में अंग्रेजी, हिन्दी, उर्दू, अरबी, फारसी तथा संस्कृत के लगभग ८८००० ग्रन्थ हैं। अनेक ग्रन्थ अलभ्य तथा दुर्लभ हैं। संस्कृत भाषा के विभिन्न विषयों के ग्रन्थ उपलब्ध हैं जिनकी संख्या २६३६ है। इसका विवरण इस प्रकार अंकित किया जा सकता है—

१)	सामान्य संस्कृत	१७९
२)	दर्शन शास्त्र (षड्दर्शन)	४७९
३)	धर्मशास्त्र तथा संस्कृति	५३१
४)	समाजशास्त्र	३९
५)	भाषा व व्याकरण	२३६
६)	विज्ञान तथा ज्योतिष	१२८

७)	आयुर्वेद (औषध विज्ञान)	९९
८)	कला	१०
९)	साहित्य (काव्य नाटकादि)	७२७
१०)	जीवनियां व इतिहास	२०८
	कुलयोग	२९३९

व्यक्तिगत संग्रहालय

जयपुर के शिक्षा–प्रस्तार क्षेत्र में इस पुस्तकालय का महत्त्वपूर्ण योगदान हैं। अनेक विद्याप्रेमी तथा स्थानीय विद्वानों ने व्यक्तिगत संग्रहालयों द्वारा जयपुर में शिक्षा का प्रस्तार करने में बहुत सहायता की हैं। इनमें अनेक अलभ्य तथा दुर्लभ ग्रन्थ हैं। हस्तलिखित ग्रन्थों के साथ ही प्रकाशित ग्रन्थों का संग्रह भी उल्लेखनीय है। इनका संक्षिप्त परिचय (क्रमशः) यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

(१) पोथीखाना

जब मुगल दरबार में कुतुब खाना कायम हुआ और उसमें देशी विदेशी आलिमों, खुश्खत नवीसों और चित्र–कारों को प्रश्रय मिला तो जयपुर राज्य में भी ऐसी संस्था का संस्थापन आवश्यक समझा गया। परिणामस्वरूप मिर्जा राजा मानसिंह प्रथम ने ही (संभवतः) पोथीखाने की स्थापना की। इसकी आवश्यकता का एक कारण और भी था। तत्कालीन शास्त्रज्ञों व पारदेशिक विद्वानों को प्रश्रय देकर प्राचीन साहित्य की सुरक्षा और नवीन अनुसंधान पर आधा–रित ग्रन्थों की रचना करना आवश्यक समझा गया। यहाँ भी चारु–चित्र–चित्रय–चतुर चित्रकारों की नियुक्तियां की गई। भारत के विभिन्न भागों से विद्वानों को यहाँ ससम्मान लाया गया और उन्हें भूसम्पत्ति व सुख–सुविधायें दी गई। इन विद्वानों की सम्मान परम्परा से प्राचीन हिन्दू संस्कृति की रक्षा हुई—यह निर्विवाद विषय है।

यद्यपि पोथीखाने की स्थापना का निश्चित समय नहीं बतलाया जा सकता, परन्तु इतना अनुमान लगाया जाता रहा है कि हस्तलिखित ग्रन्थों का संग्रह मिर्जा राजा मानसिंह प्रथम के समय से होने लगा था, जिनने १५९२ ई. के लगभग आमेर में महल बनवाने प्रारम्भ किये थे।[1] इनके पश्चात् उत्तरोत्तर पुस्तकों की संख्या में वृद्धि होती रही। मिर्जा राजा जयसिंह प्रथम तथा मिर्जा राजा रामसिंह प्रथम के समय अनेक विद्वान् इनके आश्रय में थे, यह तथ्य है। महाराजा सवाई जयसिंह द्वितीय का विद्याप्रेम विख्यात ही है। इनके समय अनेक विद्वान् जयपुर आये हैं, जिनकी रचनाओं ने पोथीखाने का कलेवर बढाया है। जयपुर नगर की स्थापना पर यह पोथीखाना "जलेबी चौक" में स्थापित किया गया, जहाँ से कालान्तर में मुबारक महल में स्थानान्तरित किया गया। पूर्वजों की परम्परा में प्राप्त इस बहुमूल्य संग्रहालय के विस्तार की दृष्टि से सवाई जयसिंह द्वितीय ने अनेक दुर्लभ ग्रन्थ खरीदकर इसमें सुरक्षित किये। प्रो० श्री जे० एम० घोष की सर्वे रिपोर्ट के अनुसार १७०४ ई० में ७९ पुस्तकें, १७११ में ४२० तथा १७१६ में ३३६, इस प्रकार कुल ८३२ पुस्तकें खरीदी गई थी।

महाराजा सवाई जयसिंह द्वारा अनुष्ठित वाजपेय, अश्वमेध आदि अनेक महत्त्वपूर्ण यज्ञों में भाग लेने के लिये अनेक महाराष्ट्रीय, गुजराती, दाक्षिणात्य तथा मिथिला के विद्वान् आये थे। इसके अतिरिक्त ज्योतिष यन्त्रशालाओं के निर्माणार्थ अनेक ज्योतिषियों को ससम्मान आश्रय दिया गया गया था। इन सभी विद्वानों का प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से जयपुर के पोथीखाने की ग्रन्थ–सम्पदा को अपनी अपनी कृतियों से समपचीयमान करने का श्रेय प्राप्त है। यह परम्परा महाराज माधवसिंह द्वितीय के शासनकाल तक चलती रही। लगभग ५० वर्ष पूर्व तक इस परम्परा ने पोथी–खाने के अंचल में अनेक ग्रन्थ रत्न उंडेल दिये। किन्हीं विशेष कारणों से इस समय यह पोथीखाना वर्तमान महाराज की खास मोहर में बंद है। केवल कुछ ग्रंथ प्रदर्शनी कक्ष में रखे हुए हैं, परन्तु निकट भविष्य में इनके पुनः उपलब्ध होने की संभावना है। वर्तमान में पोथीखाने की सामग्री को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है— (१) वह ग्रन्थ समूह, जो प्रारम्भ से अब तक महाराज की खास मोहर में रहा है। इसकी सूची नहीं बन सकी है। (२) वे ग्रन्थ जिनकी वर्गीकृत विषयानुसार सूची स्व० पं० मधुसूदनजी झा की देखरेख में, उनके अध्यक्ष काल में बनी थी। (३) महाराज सवाई जयसिंह द्वितीय के गुरु पौण्डरीक रत्नाकर महाशब्दे के घराने से प्राप्त ग्रन्थ जिनकी संख्या ३००० से

अधिक मानी जाती है और जिसमें सभी विषयों के ग्रन्थ हैं। खास मोहर के अतिरिक्त ग्रन्थों की संख्या १०००० मानी जाती है और कुल १८००० के लगभग।

प्रो० श्री जे० एम० घोष के सर्वेक्षण की रिपोर्ट के अनुसार कहा जा सकता है कि इसमें संस्कृत, हिन्दी तथा पर्शियन के अनेक ग्रन्थ हैं, जो विभिन्न विषयों से सम्बद्ध हैं। प्रमुख विषयों में से वेद, पुराण, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, पुराकथाशास्त्र, काव्यसाहित्य, व्याकरण, कोश, छन्दःशास्त्र, संगीत, इतिहास, दर्शनशास्त्र, ज्योतिष, नक्षत्र-विज्ञान, हस्तरेखा विज्ञान, सामुद्रिक शास्त्र, सदाचार–धर्म, राजनीति, आयुर्वेद, जैनदर्शन, तथा बौद्ध दर्शन का नाम विशेषतः उल्लेखनीय है।

महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों में से—"रज्मनामा" तथा रामायण का पर्शियन अनुवाद उल्लेखनीय हैं। रज्मनामा महा–भारत का संक्षिप्त रूप है। अकबर सम्राट् के आदेश से १५८२ ई० में अब्दुल कादिर बदायूनी, नाकिबखान, मुल्ला–शेरी तथा सुलतान हाजी थानेश्वरी आदि पर्शियन विद्वानों ने महाभारत का पर्शियन अनुवाद किया था। अनुवाद के गद्य रूपान्तरकार थे शैख फैजी। अबुलफजल ने इसका प्राक्कथन लिखा है। यह पुस्तक ६९ पूरे पृष्ठों की सचित्र है, जिस पर कलाकार के हस्ताक्षर भी अंकित है। इस पर एक सील है, जिससे ज्ञात होता हैं कि यह पुस्तक इम्पीरियल लाइब्रेरी (शाही किताबखाना) दिल्ली में थी, जब शाह आलम बादशाह थे। इसके अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की जानकारी परिशिष्ट २ के लेख से प्राप्त की जा सकती है।[४]

(२) पर्वणीकर संग्रहालय

जयपुर नगर के संस्थापन से पूर्व ही आमेर में महाराज विष्णुसिंह (१७४५–१७५६ संवत्) के आश्रय में एक महाराष्ट्रीय विद्वान् रहते थे, जिनका नाम श्री माधव भट्ट शर्मा था। ये महाराष्ट्र प्रान्त के पाथरी–परभनी नामक ग्राम के निवासी होने के कारण पर्वणीकर कहलाते थे। महाराज विष्णुसिंह ने इन्हें सवाई जयसिंह द्वितीय का अध्यापक नियुक्त किया था और तब से लेकर वर्तमान तक इनका वंश राजगुरु तथा विद्यागुरु का पद प्राप्त किये हुये है। इस वंश के विद्वानों का विद्या–व्यसन ही उक्त संग्रहालय का मूल कारण है। श्री सखाराम भट्ट पर्वणीकर, श्री सीताराम भट्ट पर्वणीकर, श्री नारायण भट्ट पर्वणीकर एवं श्री मुकुन्दराम भट्ट पर्वणीकर आदि ऐसे उल्लेखनीय विद्वान् हुए हैं, जिनने पुस्तकों की सुवाच्य तथा सुललित रूप में प्रतिलिपियाँ कर या करवा कर उक्त संग्रहालय की श्रीवृद्धि की है। श्री सखाराम भट्ट, श्री सीताराम भट्ट तथा श्री नारायण भट्ट स्वयं उच्च श्रेणी के विद्वान् और लेखक भी रहे हैं, जिनका हस्तलिखित साहित्य एकमात्र इसी संग्रहालय की निधि है। इसके अतिरिक्त इस संग्रहालय में अनेक दुर्लभ तथा अलभ्य ग्रन्थ भी विद्यमान हैं। इस शोध प्रबन्ध के अतिरिक्त इससे पूर्व लिये गये शोध प्रबन्ध में (पी–एच०डी० के लिये प्रस्तुत) इस संग्रहालय का पर्याप्त उपयोग किया गया है। यह भट्टों की गली, विधान सभा भवन के सामने विद्यमान पर्वणीकरजी की हवेली में स्थित है और श्री माधवराम भट्ट पर्वणीकर के सहयोग से देखा जा सकता है। इस संग्रहा–लय की संस्कृत पुस्तकों की संख्या इस प्रकार है—

क्रम	विषय	हस्तलिखित	प्रकाशित	विवरण
१.	वेद	५३	१०	ऋग् ५, यजु ४, अथर्व १
२.	व्याकरण	१६४	४७	व्याकरण ४५, शिक्षा २
३.	कोश	२७	७	कोश ०, निरुक्त ७
४.	ज्योतिष	६४	३	—
५.	धर्मशास्त्र	४६४	२१	—
६.	पुराण	६३	७	—
७.	न्याय	१५६	६६	पूर्व न्याय ३०, उत्तर न्याय ३६

क्रम	विषय	हस्तलिखित	प्रकाशित	विवरण		
८,	मीमांसा	५२	१४	—		
९.	आयुर्वेद	१७	६	—		
१०.	वेदान्त	८६	६	—		
११.	उपनिषद्	६२	–	—		
१२.	दर्शनशास्त्र	२३	१६	सांख्य	योग	शांकर
				५	७	४
१३.	साहित्यशास्त्र (श्रव्य)	२३५	३४३	–		
१४.	साहित्यशास्त्र (दृश्य)	४६	६२	–		
१५.	काव्यशास्त्र	१०२	३४	–		
१६.	कामशास्त्र, चम्पू, संगीत, नीति	४१	१०	चम्पू	संगीत	अर्थ
				८	१	१
१७.	मन्त्रशास्त्र	२००	१३	—		
		योग १८८८	७३८	कुल योग २६२६		

यह संख्या १० फरवरी, १९६१ को बनाई गई सूची के आधार पर दी गई है। अनेक प्राचीनतम ग्रन्थों में संवत् १४११ का नलोदय काव्य इस संग्रहालय की उल्लेखनीय निधि है। इस संग्रहालय का जयपुर की संस्कृत साहित्य की उन्नति में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

(३) श्री वृद्धिचन्द्र शास्त्री संग्रहालय.

जयपुर महाराज द्वारा सम्मानित श्रीमाली ब्राह्मण परिवार अपने ज्योतिष विषयक ज्ञान के लिए विशेष प्रसिद्ध रहे हैं। इन परिवारों में से एक परिवार में लब्धजन्मा श्री शास्त्रीजी के पूर्वज ज्योतिष तथा सामान्य देवार्चन परम्परा का निर्वाह करते रहे हैं। इस संग्रहालय को श्रीवृद्धि का जो भी अवसर प्राप्त हुआ है, वह स्वर्गीय श्री शास्त्रीजी का ही प्रयास था। इस संग्रहालय में हस्तलिखित ग्रन्थों की इतनी अधिकता नहीं है, जितनी प्रकाशित पुस्तकों की है। पुस्तक संग्रह उनका एक व्यसन रहा है और उसी का यह परिणाम है कि इस संग्रहालय में अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। हस्तलिखित ग्रन्थों की संख्या अनुमानतः ६०० है। प्रकाशित पुस्तकों का विवरण इन प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

क्रम	विषय	पुस्तक संख्या
१.	धर्मशास्त्र	५०+३०=८०
२,	साहित्य	१२०+२८०=४००
३.	व्याकरण	८०+२०=१००
४.	ज्योतिष	४५+२५=७०
५.	वेदान्त मीमांसा न्याय	५५+३५=९०
६.	तन्त्रमन्त्र	२०+१०=३०
७.	आयुर्वेद	६+१४=२०
८.	कोश	८+ ४=१२
९.	पुराण	३६+४०=७६

१०.	सामान्य संस्कृत		३५४+६००=९५४
११.	हिन्दी		२१८+३३२=५५०
१२.	अन्य पुस्तकें		१५०+३००=४५०
		योग ११४२	२८३०
	पत्र–पत्रिकाओं की संख्या	१६०	२५०
	हस्तलिखित ग्रन्थ	३००	३००
		१६०२	३३८२

पत्र–पत्रिकाओं में संस्कृत रत्नाकर की प्रायः सभी संचिकाएं (सन् १९६४ तक प्रकाशित) उपलब्ध हैं, जो सुव्यवस्थित जिल्द में आबद्ध हैं। इसी पत्रिका के १९०६, १९०७, १९०९ तथा १९१० में प्रकाशित ४ महत्त्वपूर्ण अंक भी उपलब्ध हैं। इसी प्रकार भारती पत्रिका की २५ वर्ष की संचिकाएं एकत्र व्यवस्थित हैं। राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन की विवरणिकाएं, सिद्धान्त, मानवधर्म आदि पत्र–पत्रिकाओं की अलभ्य संचिकाएं भी विद्यमान हैं। हस्तलिखित ग्रन्थों में "काव्यामृत" नामक काव्य–प्रकाश का खण्डनात्मक ग्रन्थ, जो अन्यत्र दुर्लभ है तथा श्रीवत्स लांछन द्वारा रचित है, यहाँ उपलब्ध है।

(४) श्री मंजुनाथ पुस्तकालय

इस ग्रन्थ संग्रहालय में देवर्षि परिवार के सभी परम्परागत विद्वानों की रचनाएं ही अधिकांश रूप में संगृहीत हैं। साथ ही उनकी अभिरुचि के वैदुष्यपूर्ण अन्यान्य ग्रन्थों का भी संग्रह है। अनेक भाषाओं के ग्रन्थागार इस पुस्तकालय में संस्कृत तथा व्रज भाषा के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। ग्रन्थों के साथ इसमें विभिन्न भाषाओं की पत्र-पत्रिकाएं भी उपलब्ध है। सूचीपत्र के व्यवस्थित न होने के कारण आनुमानिक रूप से कहा जा सकता है कि संस्कृत भाषा के १६००, हिन्दी भाषा के ७०० तथा बंगला गुजराती आदि प्रादेशिक भाषाओं के २०० ग्रन्थ इस प्रकार कुल २५०० ग्रन्थ इसकी निधि हैं।

संस्कृत भाषात्मक ग्रन्थों में प्रायः सभी विषयों के ग्रन्थ हैं, जिनमें भी काव्य साहित्य के ग्रन्थ सर्वाधिक है। अनेक दुर्लभ तथा अलभ्य ग्रन्थ भी यहाँ विद्यमान हैं। उदाहरणार्थ—शब्दार्थचिन्तामणि कोष, श्री भागवत् अष्टटीका, व्याख्या सुधा ग्रन्थ आदि। ऐसे ग्रंथ लगभग १६० हैं। हस्तलिखित ग्रंथों में "त्रिपुरसुन्दरीस्तवराज" (कविकलानिधि श्रीकृष्ण भट्ट कृत) "शृंगारतरंगिणी" (श्रीहरिदत्त कृत रसग्रंथ), । "भारतवैभवम्" (कथा संग्रहः) (भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री कृत), "धातु प्रयोग पारिजात" (धातुकोष—भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री), कथाकुंजम् (भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री की कहानियाँ) आदि उल्लेखनीय हैं।

चूंकि इसके वर्द्धक व संरक्षक स्वर्गीय श्री मथुरानाथ शास्त्री संस्कृत रत्नाकर तथा भारती पत्रिका के सम्पादक रहे हैं, अतः उनके पास अनेक दुर्लभ पत्र–पत्रिकाओं का भी संग्रह है। बंगला की सुविख्यात मासिक पत्रिका "प्रवासी" "जन्मभूमि" तथा बंग साहित्य परिषद् की पत्रिका आदि के कुछ सैट यहां सुरक्षित हैं। संस्कृत की प्राचीनतम पत्रिकाओं में (१) संस्कृत चन्द्रिका, (२) वल्लरी, (३) सुप्रभातम्, (४) सूर्योदय, (५) संस्कृत रत्नाकर, (६) भारती आदि पत्रिकाओं के कुछ अप्राप्य अंक तथा हिन्दी में (१) समन्वय, (२) सिद्धान्त, (३) हिन्दू, (४) सुकवि, (५) साधु, (६) श्रेय, (७) माधुरी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं, जो यहां उपलब्ध है। शोध पत्रिकाओं में ब्रह्मविद्या, दिव्यादर्श आदि के कुछ प्राचीन अंक यहां विद्यमान हैं। इस समय श्री कलानाथ शास्त्री, एम० ए० (अंग्रेजी), साहित्याचार्य इस पुस्तकालय के अधीक्षक हैं। यह 'सी स्कीम' स्थित उनके निवास स्थान मंजु निकुञ्ज में सुरक्षित है। जयपुर में विद्यमान संग्रहालयों व पुस्तकालयों में इस पुस्तकालय का उल्लेखनीय स्थान है, विशेष कर संस्कृत पुस्तकालयों के क्षेत्र में। इन शोध ग्रन्थ के लेखन में यह सहायक रहा है।

(५) वैद्य श्री कृष्णराम भट्ट पुस्तकालय

भट्टमेवाड़ा जातीय वैद्य परिवार के इस संग्रहालय की स्थानना का समय निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, परन्तु फिर भी इतना अवश्य है कि श्री लक्ष्मीरामजी वैद्य महाराज सवाई प्रतापसिंह के समय अहमदाबाद से जयपुर आये थे। अतः उस समय अथवा उसके पश्चात् ही इसका अस्तित्व होना माना जाता है। इनके पुत्र थे श्री लल्लूराम जी। श्री लल्लूरामजी के पुत्र जीवनरामजी, जो श्री कुन्दनराम के नाम से विख्यात थे, संस्कृत कालेज में आयुर्वेद के अध्यापक थे। इनके दोनों पुत्र श्री श्रीकृष्णराम भट्ट तथा श्री हरिवल्लभ भट्ट परम्परागत आयुर्वेद विज्ञान में निष्णात होने के साथ ही काव्य मर्मज्ञ और कवि भी थे। श्री कृष्णरामजी ने इस पुस्तकालय को सुव्यवस्थित किया था। इसीलिये यह उनके नाम से आज भी अपना अस्तित्व बनाये हुये है। इनका स्वयं निर्मित (हस्तलिखित) एक सूचीपत्र उपलब्ध होता हैं, जिसमें वैद्यक के अनेक दुर्लभ तथा अलभ्य ग्रन्थ हैं। अकारादि क्रम से निर्मित इस सूचीपत्र में सभी ग्रन्थ हस्तलिखित हैं, जिनकी संख्या ८३८ है। इनमें २३४ आयुर्वेद–वैद्यक के ग्रन्थ तथा ६०४ काव्य साहित्य दर्शन आदि के हैं। इसमें ईश्वरविलास महाकाव्य ग्रन्थ का भी उल्लेख है, जो अब पुरातत्व मन्दिर, जोधपुर (जयपुर) से प्रकाशित हो चुका है। इस पुस्तकालय में हस्तलिखित ग्रन्थ अधिक है। प्रकाशित ग्रन्थों की संख्या तो नगण्य सी है। इनकी संख्या का अनुमान १०० के लगभग माना जाता हैं। इस समय इस पुस्तकालय के संरक्षक वैद्य श्री देवेन्द्र भट्ट हैं, जो श्रीकृष्णराम भट्ट के प्रपौत्र हैं।

(६) श्री जैन साहित्य शोध संस्थान

उक्त संस्थान की स्थापना अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी के अन्तर्गत सवाई मानसिंह हाईवे, जयपुर में विद्यमान महावीर भवन में जनवरी, १९४७ में हुई थी। इसके संस्थापक थे श्री रामचन्द्रजी खिन्दूका। आप अतिशय क्षेत्र के तत्कालीन मंत्री थे। इस संस्थान की स्थापना करने की प्रेरणा स्व० पं० श्री चैनसुखदासजी न्यायतीर्थ ने दी थी। जयपुर में जैन विषयक ग्रंथों का उल्लेखनीय एवं व्यवस्थित शोध संस्थान है।

यहां विद्यमान अलभ्य ग्रंथों में से किरातार्जुनीयम् (महाकवि भारवि कृत) की एक टीका जिसके टीकाकार श्री प्रकाशवर्ष है, उल्लेखनीय है। यह २१९ पृष्ठात्मक हस्तलिखित ग्रंथ संस्थान के सूचीपत्र क्रमांक २१० पर उपलब्ध है। सबसे प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथ "उत्तर पुराण" है, जो श्री पुष्पदत्त रचित है, संवत् १३१९ का लिपिकृत है और ग्रन्थाक ८९५ पर उपलब्ध है। हस्तलिखित ग्रंथों के अतिरिक्त यहां प्रकाशित ग्रंथों का भी संग्रह है। २६ दिसम्बर, १९६८ तक इन संगृहीत ग्रंथों की संख्या ११३३ थी। इसका बजट ग्यारह हजार रुपये वार्षिक हैं। यहाँ विशेषतः जैन विषयों पर ही शोध कार्य किया जाता है। अब तक ४० के लगभग छात्र यहां शोध कर इस संस्थान के संग्रह से लाभान्वित हो चुके है।

इस संस्थान में हिन्दी, राजस्थानी, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश तथा संस्कृत के अलभ्य व दुर्लभ ग्रन्थों का संग्रह है कुल ग्रन्थों की संख्या (हस्तलिखित) ३०५३ हैं।[3] इन ग्रन्थों में संस्कृत भाषात्मक ग्रन्थ सर्वाधिक हैं। अनुमानतः संस्कृत ग्रन्थों की संख्या १५००, राजस्थानी तथा हिन्दी ७०० तथा पाली, प्राकृत, अपभ्रंश आदि की संख्या ८०० है। इनमें भी जैन ग्रन्थ अधिक हैं।

इसके प्रबन्धकों में श्री ज्ञानचन्दजी खिन्दूका इस समय मंत्री है और श्री केशरलाल अजमेरा संयोजक है। डा. श्री कस्तूरचन्द्र कासलीवाल इनके निदेशक है तथा श्री अनूपचन्द्र न्यायतीर्थ व श्री प्रेमचन्द्र रांवका शोध सहायक है।

इस संस्थान में अब तक १३ ग्रन्थों का प्रकाशन कर दिया है जो शोध क्षेत्र में बहुत महत्त्वपूर्ण। इनमें से कुछ के नाम इस प्रकार है— (१) राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारों की ग्रंथ सूची—चार भाग—सम्पादक डा० कस्तूरचन्द्र कासलीवाल तथा श्री अनूपचन्द्र, (२) प्रशस्ति संग्रह—सं. डा. कासलीवाल, (३) तामिल भाषा का जैन साहित्य, (४) सर्वार्थसिद्धि सार—सं. श्री चैनसुखदासजी, (५) जैनिज्म– ए की टू ट्रयू हैपीनैस—ब्र० शीतलाप्रसाद, (६) प्रद्यम्नचरित सधारु कृत–सं. श्री चैनसुखदासजी, (७) हिन्दी पद संग्रह–डा० कासलीवाल, (८) जिणदत्तचरित (राजसिंह विरचित)

सं० डा. माताप्रसाद गुप्त व डा. कासलीवाल, (९) जैन ग्रंथ भण्डारस् इन राजस्थान—शोध प्रबन्ध—डा. कासलीवाल, (१०) राजस्थान जैन सन्तों की साहित्य साधना—डा. कासलीवाल, (११) चम्पाशतक—सं. डा. कासलीवाल। प्रकाश्य मान ग्रंथों में महावीर वर्धन—जीवन और उपदेश उल्लेखनीय है।

इस संस्थान के निदेशक डा. कस्तूरचन्द्र कासलीवाल ग्रंथ प्रकाशन योजना पर विशेष परिश्रम से कार्य कर रहे हैं। शोध के क्षेत्र में उनका यह प्रयास महत्त्वपूर्ण एवं प्रशंसनीय है।

(७) श्री वीरेश्वर पुस्तकालय

जयपुर में सुप्रसिद्ध दाक्षिणात्य विद्वान् स्वर्गीय श्री वीरेश्वर शास्त्री द्राविड़ ने अपने जीवनकाल में संगृहीत पुस्तकों को पुस्तकालयाकार में व्यवस्थित कर एक आदर्श परम्परा का निर्वाह किया है। कहा जाता है इनने ऐसा ही एक पुस्तकालय वाराणसी में स्थापित किया है। यह पुस्तकालय गणगौरी बाजार में संस्थापित है। इसका एक ट्रस्ट है, जिसके सचिव (वर्तमान) पं० श्री जगदीश शर्मा अवकाश प्राप्त प्राध्यापक, साहित्य विभाग, संस्कृत कालेज, जयपुर हैं। इस पुस्तकालय के साथ ही वाचनालय भी चलता है। इसमें संस्कृत की अप्रकाशित पुस्तकों का संग्रह अधिक हैं। बम्बई से प्रकाशित होने वाली काव्यमाला सीरीज के दुर्लभ अंक यहां सुरक्षित रूप में उपलब्ध हैं। संस्कृत ग्रन्थों में विशेषतः साहित्य और व्याकरण के ग्रन्थ अधिक हैं। अनुमानतः संगृहीत ग्रन्थों की संख्या ३००० है। जयपुर के संस्कृत साहित्य-संरक्षण में इस पुस्तकालय का भी सहयोग उल्लेखनीय है।

(८) आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञान भंडार

उक्त भण्डार का इतिहास अधिक पुराना नहीं है। संवत् २०१६ में स्वर्गीय श्री अमरचन्दजी म० सा० की लम्बी अस्वस्थता के कारण आचार्य श्री हस्तीमलजी म० सा० को जयपुर में कुछ अधिक समय के लिये रुकना पड़ा था। इस समय सवाई मानसिंह हाईवे स्थित लाल भवन के तहखाने में सुरक्षित कतिपय हस्तलिखित ग्रन्थों को बाहर निकाला गया और इन्हें सुरक्षित करने का निर्णय किया गया। इस प्रकार श्री सोहनलालजी कोठारी के प्रयास से तथा श्री हस्तीमलजी की प्रेरणा से पौष शुक्ला १४ संवत् २०१६ को यह ज्ञान भण्डार अस्तित्व में आया। सम्प्रति इस ज्ञान भण्डार ने संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, राजस्थानी, हिन्दी आदि भाषाओं के प्राचीन जैन-जैनेतर हस्तलिखित ग्रन्थों का विशाल संग्रह एवं संरक्षण करने का दायित्व उठाया है। अब तक भंडार में ग्यारह हजार पूर्ण, चार हजार अपूर्ण एवं सौ गुटके (जिनमें अनुमानतः तीन हजार फुटकर रचनायें लिपिबद्ध है, हस्तलिखित ग्रन्थों के रूप में संगृहीत हो चुके हैं। प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ-संग्रह के साथ-साथ शोध कार्य को वैज्ञानिक एवं तुलनात्मक दृष्टिकोण से आगे बढ़ाने के लिये स्तरीय एवं बहुमूल्य मुद्रित पुस्तकों तथा शोध सम्बन्धी पत्र-पत्रिकाओं को भी संगृहीत किया जा रहा है। इस संग्रह में इस बात का विशेष ध्यान रखा जा रहा है कि यहां विश्व के समस्त धर्म एवं दर्शन की प्रामाणिक पुस्तकें उपलब्ध हो सकें। प्राचीन हस्तलिखित एवं आधुनिक मुद्रित ग्रन्थ संग्रह के साथ-साथ प्राचीन जैन-जैनेतर चित्रों एवं नक्शों के विविध नमूनों का महत्त्वपूर्ण संकलन कार्य भी प्रगति पर है। इसका विषयानुसार वर्गीकृत सूचीपत्र विशिष्ट विवरणिका रूप में मुद्रित होने वाला है। यहाँ के संचालकों का विचार है कि इस भण्डार को केन्द्रीय शोध संस्थान का रूप दिया जाय और इसी दृष्टिकोण से यहां कार्य हो रहा है। सूचीपत्र के प्रथम भाग में भण्डार के सामान्य सूचीपत्र के लगभग २५०० ग्रन्थों का ही विवरण दिया जा चुका है। जिसमें ३७१० रचनायें हैं। इसमें १५ विभिन्न विषयों के ग्रन्थों का विवरण है।

राजस्थान विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के प्राध्यापक डा० नरेन्द्र भानावत इस संस्थान के मानद निदेशक के रूप में कार्य कर रहे हैं। संवत् २०१६ से अब तक (२०२५) दिल्ली, आगरा, इलाहबाद, गुजरात, राजस्थान, गोरखपुर आदि विश्वविद्यालयों के कई शोध छात्र अपने शोध ग्रन्थ की सहायतार्थ इस भण्डार का उपयोग कर चुके हैं। यह भण्डार निरन्तर प्रगति कर रहा है।

उपर्युक्त कतिपय पुस्तकालयों एवं संग्रहालयों के अतिरिक्त अनेक व्यक्तिगत संग्रहालय ऐसे हैं, जिनमें भी महत्त्वपूर्ण ग्रन्य विद्यमान हैं। इनमें स्वामी श्री लक्ष्मीराम वैद्य पुस्तकालय, राजगुरु पं० विद्यानाथ ओझा पुस्तकालय म० म० पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी पुस्तकालय, विद्यावाचस्पति श्री मधुसूदन झा संग्रहालय, सरस्वती भण्डार (म० म० पं० श्री दुर्गा प्रसाद द्विवेदी पुस्तकालय), महाराज संस्कृत कालेज पुस्तकालय आदि के नाम उल्लेखनीय है। इनमें हस्तलिखित एवं प्रकाशित संस्कृत भाषात्मक ग्रन्थों का बाहुल्य है। विस्तार की दृष्टि से इनका विस्तृत परिचय उपस्थित नहीं किया जा रहा है।[1]

पुस्तकालयों एवं संग्रहालयों का सहयोग किसी भी भाषा के साहित्यिक विकास के लिये महत्त्वपूर्ण होता है—यह निर्विवाद विषय है। इसीलिये जयपुर में विद्यमान उक्त पुस्तकालयों एवं संग्रहालयों का योगदान भी अविस्मरणीय है।

निवेदन—

मेरी दृष्टि में कम से कम शोध संस्थानों के साथ तो सन्दर्भ ग्रन्थालयों एवं पुस्तकालय का होना नितान्त आवश्यक है। इसी दिशा में यह सुझाव है कि जहां भी शोध संस्थान स्थापित किये जांय, सदर्भ ग्रन्थ व पुस्तकालय अवश्य स्थापित हों। आवश्यकता एक बात की ओर भी है और वह है उन हस्तलिखित ग्रन्थों की सुरक्षा की जाय, जो पण्डितों के निजी संग्रहालय में हैं, क्योंकि उनके वंशज संस्कृतज्ञ न होने के कारण उन्हें रद्दी के भाव बेचकर अमूल्य निधि को नष्ट कर रहे हैं। एतदर्थ व्यक्तिगत एवं सामूहिक प्रयास अत्यन्त अवश्यक है। जो ग्रन्थ राजकीय संग्रहालयों में है अथवा विद्वानों की देखरेख में स्थापित हैं, उनका भी मूल्यांकन करवाया जाकर प्रकाश में लाने की महती आवश्यकता है। इसी से हम भारतीय संस्कृति की धरोहर की सुरक्षा कर सकेंगे। राजकीय शोध संस्थानों को भी आधुनिक उपकरणों के युक्त कर उन्हें व्यवस्थित किया जाना चाहिए। राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान की वर्तमान दशा शोचनीय होती जा रही है, क्योंकि उस ओर सरकार का ध्यान नहीं है। सरकार से पुरजोर निवेदन है कि वहाँ शोध कर्मदक्ष किसी विद्वान् को निदेशक के रूप में नियुक्त करे, ताकि प्रतिष्ठान सुव्यवस्थित रूप में संस्कृत-संस्कृति की सेवा कर सके तथा अलभ्य दुर्लभ महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित कर सके।

परिचय--खण्ड

तृतीय अध्याय (च) के संदर्भ व उद्धरण

(Referance and Notes)

---

1. "दी पोथीखाना'—श्री जे० एस० घोष का लेख, परिशिष्ट २।

2. जयपुर का पोथीखाना—पं० श्री गोपालनारायण बोहरा का लेख, 'सरस्वती' पत्रिका काशी—सन् १९६६ में प्रकाशित से जाना जा सकता है। अब तो इसका एक सूची पत्र भी प्रकाशित होगया है।

※ अभी जो सूचीपत्र प्रकाशित हुआ है, वह जयपुर महाराज की 'खास मोहर' पुस्तकों का है। 'पोथीखाने' का असली सूचीपत्र अभी निर्माणाधीन है तथा इसी के साथ श्री रत्नाकर भट्ट पौण्डरीक के पुस्तक संग्रह का भी सूचीपत्र तैयार हो रहा है। उसमें धर्मशास्त्र के ग्रंथों का प्राचुर्य है। प्रकाशित सूचीपत्र में अनेक सूचनायें नवीन एवं महत्त्वपूर्ण हैं। जयपुर के कछवाह-वंशीय राजाओं के इतिहास के साथ उनके समय में हुई सारस्वत-साधना का महत्त्वपूर्ण उल्लेख कर इसे व्यवस्थित बनाया गया है। इसके लिए सूचीपत्र सम्पादक श्री गोपाल नारायण जी बहुरा प्रशंसा के पात्र हैं।

यहां से श्री विश्वनाथ महादेव रानाडे की कृति "रामविलास" काव्य का सम्पादन कर प्रकाशन किया गया है, जो एक महत्त्वपूर्ण कृति है।

3. २९ दिसम्बर, १९६८ को प्राप्त सूचनाओं के आधार पर इस संस्थान का परिचय प्रस्तुत किया गया है। यहां प्रतिदिन (प्रायः) ग्रन्थों की संख्या में वृद्धि होती रहती है।

४. संग्रालयों में 'द्विवेदी संग्रहालय' का एक ट्रस्ट बनाकर उसे 'शोध संस्थान' का रूप दिये जाने की योजना इस संग्रहालय के वर्तमान अधीक्षक पं. श्री गंगाधरजी द्विवेदी के विचाराधीन है। इस संग्रहालय के अलभ्य ग्रन्थों जानकारी भी तभी सुलभ हो सकेगी।

इसी प्रकार राजस्थान विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में भी एक हस्तलिखित ग्रन्थ संग्रह की स्थापना का विचार चल रहा है। इसकी स्थापना से विभागीय शोधकार्य को महत्त्वपूर्ण दिशा निर्देश प्राप्त होगा।

चतुर्थ—अध्याय

उपसंहार

प्रस्तुत "परिचय खण्ड" के विगत तीन अध्यायों में विवेचित विषय से शोध प्रबन्ध के मूल विषय "जयपुर की संस्कृत साहित्य को देन १८३५–१९६५ ई०" का महत्त्व स्वतः ही स्पष्ट हैं। संस्कृत साहित्य के परिवर्द्धन व संरक्षण की दृष्टि से इस शताब्दी में भी कितना कार्य होता रहा है, यह इस विवेचन से सिद्ध हैं। जो लोग "संस्कृत को मृत भाषा" मानते हैं, उनको इस विवेचन के अध्ययन से अपना मत पूर्णतः परिवर्तित करना होगा तथा यह स्वीकारना होगा कि केवल जयपुर नगर में "संस्कृत" भाषा की प्रगति आश्चर्योत्पादक है। जयपुर नगर की यह स्थिति है तो जयपुर राज्य अथवा राजस्थान प्रान्त की स्थिति तो इस क्षेत्र में और भी दृढ होगी। उन समालोचकों को यह नहीं भूलना चाहिये कि वर्तमान राष्ट्रभाषा अथवा राजस्थान के अधिकांश निवासियों की कार्य-भाषा हिन्दी ही है, जो संस्कृत के बिना एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकती। अतः उनका संस्कृत को मृत भाषा कहना सर्वथा निर्मूल है।

इस परिचय खण्ड के प्रथमाध्याय में प्रथम शोध प्रबन्ध का, जो राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर से ही पी–एच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत है, सारांश प्रस्तुत किया गया है। चाहे मुगलों का शासन रहा हो या अंग्रेजों की दासता में रहना पड़ा हो, संस्कृत साहित्य के विद्वानों ने साहित्य सर्जन में तनिक भी लापरवाही नहीं की। वे न केवल शृंगार साहित्य की रचना के प्रति आकृष्ट थे, उन ने सभी रसों एवं सभी विषयों पर श्रम व मनोयोगपूर्वक ग्रन्थ सर्जन किया। उनकी इस "सारस्वत साधना" के हम ऋणी हैं और इससे भी अधिक उन आश्रयदाताओं के, जिन जिन शासकों ने मुगलों के अधीन रह कर भी अपनी माता संस्कृत भाषा को अधिक आदर व सम्मान दिया तथा उसकी सेवा में तल्लीन उसके वरद पुत्रों को यथोचित सम्मान प्रदान कर भगवती सरस्वती रूपा माता की उपासना के लिए उचित वातावरण भी तैयार किया। अनेक दिग्गज व विषय-निष्णात विद्वानों का यहाँ आगमन तथा स्थायी रूप से निवास शासकों की संस्कृत-संस्कृति भक्ति का ही निदर्शन है। इस दृष्टि से जयपुर नगर की स्थापना से पूर्व तथा परवर्ती समय के अनेक शासकों का नामोल्लेखन किया जाय, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। ये शासक थे—महाराज पृथ्वीराज, मिर्जा राजा मानसिंह प्रथम, मिर्जा राजा भावसिंह, मिर्जा राजा जयसिंह प्रथम, मिर्जा राजा रामसिंह प्रथम, महाराज विष्णुसिंह, जयपुर संस्थापक सवाई जयसिंह द्वितीय, उनके पुत्र सवाई माधवसिंह प्रथम, महाराज प्रतापसिंह, महाराज रामसिंह द्वितीय, महाराज माधवसिंह द्वितीय तथा वर्तमान महाराज मानसिंह द्वितीय। इन विद्वत्तानुरागी शासकों को वस्तुतः तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—(१) आमेर के शासक, (२) जयपुर के शासक १६९९ ई. से १८३४ ई., (३) जयपुर के शासक १८३५ ई. से १९६५ ई.। इनमें प्रथम दो विभागीय शासकों (१८३४ ई. तक) के आश्रय में सम्पन्न रचनात्मक कार्य की रूपरेखा व उसका विवेचन विगत शोध प्रबन्ध में प्रस्तुत किया जा चुका है। उसके सारांश-अध्ययन से विद्वान् पाठक संस्कृत भाषा के रचनात्मक कार्य का मूल्यांकन स्वयं कर सकते हैं।

सन १८३५ ई० से सवाई रामसिंह द्वितीय का शासन काल प्रारम्भ होता है जो सन् १८८० तक अवाध गति से चलता है। इन दिनों ब्रिटिश सरकार का शासन था। जयपुर के इतिहास का पर्यवेक्षण करने से यह ज्ञात होता है कि इन दिनों आन्तरिक कलह पराकाष्ठा पर था, महाराज सवाई जयसिंह तृतीय की मृत्यु भी इसी कुचक्र से हुई

थी। संघी झूंथालाल के संघ के काले कारनामों से राजपरिवार तथा प्रजा सन्त्रस्त थी। ब्रिटिश सरकार ने राज्य में शान्ति स्थापित करने में राजघराने का पूर्ण सहयोग दिया और संबल प्राप्त कर श्री रामसिंह ने पूर्ण शान्ति का वातावरण उपस्थित कर दिया। आपके शासन काल में संस्कृत के अतिरिक्त अन्य सभी अंग्रेजी, उर्दू, फारसी आदि के शिक्षण की भी पूर्ण व्यवस्था थी। आपके शासन काल में शैक्षणिक उन्नति हुई, उक्त शोध प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय में विवेचित है। आपके पश्चात् उत्तराधिकारी बने महाराज माधवसिंह द्वितीय (कायमसिंह), जो दत्तक पुत्र के रूप में स्वीकार गिये गये थे। आपने भी सन्तानाभाव के कारण ईशरदा के कुंवर श्री मोरमुकुटसिंह को, जो वर्तमान में सवाई मानसिंह द्वितीय के नाम से विख्यात हैं, दत्तक पुत्र के रूप में स्वीकारा, जिन्होंने एकीकरण से पूर्व तक जयपुर का शासन किया। सन् १९५० से लोकतन्त्रीय सरकार ने शासन सम्भाला और शिक्षा का विकास बड़ी ही तीव्र गति से हुआ। परन्तु अन्य शिक्षा की वृद्धि के साथ ही संस्कृत भाषा में ह्रास उपस्थित हुआ। यद्यपि लोकतन्त्रीय सरकार ने संस्कृत भाषा के पठन-पाठन के प्रति उल्लेखनीय कार्य किया, परन्तु यह कार्य सम्पूर्ण राजस्थान व्यापी था। राजस्थान के विकास में जयपुर नगर राजधानी होते हुए भी उपेक्षित ही रहा, अपेक्षाकृत अन्य नगरों के। जो आश्रय राज्यतन्त्र में प्राप्त होता था, समाप्त हो गया और परिणामतः परम्परा प्राप्त संस्कृत विद्वानों की निर्भीकता पूर्वक सम्पाद्यमान मनोयोगजन्य साहित्य-सर्जन-प्रवृत्ति मन्द होते होते समाप्त ही हो गई। इसका सप्रमाण विवेचन इस खण्ड के द्वितीय अध्याय में प्रस्तुत किया गया है, जो निम्नलिखित दो भागों में विभक्त है—(क) जयपुर नगर के विगत तीन शासकों का शिक्षा, संस्कृत एवं संस्कृति से प्रेम (१८३५ से १९४७ ई०), (ख) स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् विभिन्न लोकतन्त्रीय सरकारों द्वारा संस्कृतोन्नति के प्रयास एवं स्थिति (१९४७ से १९६५ ई०)।

तृतीय अध्याय को ६ अनुभागों में विभक्त किया गया है—

(१) क– महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर की स्थापना का इतिहास एवं संस्कृत विद्वानों का सत्कार।

(१) ख– संस्कृत-संस्कृति के पोषक तथा वर्द्धक अन्यान्य विद्यालय एवं उनका संक्षिप्त इतिवृत्त।

(३) ग– राजस्थान विश्वविद्यालयीय संस्कृत विभाग का इतिवृत एवं उसका जयपुर नगर को योगदान।

(४) घ–जयपुर नगरस्थ संस्कृत-संस्कृति की प्रचारक संस्थायें एवं उनका इतिवृत्त।

(५) ङ– संस्कृत भाषात्मक पत्र-पत्रिकाओं का इतिवृत्त एवं उनका जयपुर को योगदान।

(६) च– संस्कृत-संस्कृति के संरक्षक उल्लेखनीय पुस्तकालय तथा संग्रहालय एवं उनका इतिवृत्त।

इनके विश्लेषण से स्पष्ट है कि संस्कृत कालेज की स्थापना से जयपुर नगर में संस्कृत भाषा का पठन-पाठन इतना अधिक विकसित हुआ कि यह नगरी "वाराणसी" के समकक्ष विख्यात हुई और इसीलिए "वाराणसीं वा जयपत्तनं वा" का घोष गगनमण्डल में व्याप्त हो गया। न केवल संस्कृत कालेज का ही संस्कृत भाषा के विकास में योग रहा है, अन्य संस्कृत विद्यालयों में जिनमें—दिगम्बर जैन संस्कृत कालेज, दादू महाविद्यालय, खाण्डल-विप्र-विद्यालय, गौड़ विप्र विद्यालय, सनातन धर्म संस्कृत विद्यापीठ, श्रीधर संस्कृत पाठशाला, माधव विप्र विद्यालय, आदि के नाम स्मरणीय हैं। इनका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा चुका है।

संस्कृत भाषा के पठन-पाठन व विकास में राजस्थान विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग का योग भी स्मरणीय है। इस विभाग ने कतिपय छात्रों को एम० ए० की परीक्षायें दिलवाकर संस्कृत भाषा का विकास किया। शोध कार्य में संलग्न कर अनेक छात्रों को पी-एच. डी. की उपाधि से सम्मानित करवाना इस विभाग का उल्लेखनीय योगदान है। संस्कृत के क्षेत्र में शोध प्रवर्तमान काल के महत्त्वपूर्ण कार्यकलापों में परिगणनीय है।

संस्कृत रत्नाकर तथा भारती सदृश मासिक पत्रों के सम्पादन प्रकाशन से जयपुर नगर गौरवान्वित है। अनेक पत्रपत्रिकाओं ने जन्म लिया तथा अकाल या अल्प काल में ही कालकवलित हो गई। यद्यपि संस्कृत रत्नाकर भी इस

परिस्थिति का शिकार हुआ पर समाप्त न होकर मूर्च्छित ही हुआ। कुछ वर्षों के पश्चात् आर्थिक उपचार से सजीव हो उठा और फिर तो कालान्तर में जयपुर से प्रवास ही कर गया। उसका प्रवासगमन जयपुर नगरस्थ विद्वन्मण्डल द्वारा सह्य न हो सका और उनने भारती को जन्म दिया, जो अब भी सेवा संलग्न है—यह बात जयपुर नगर के लिए एक गौरव का विषय है।

इसी प्रकार संस्कृत-संस्कृति की विकासिका अनेक संस्थाओं ने इस भूमि पर जन्म लिया तथा अपनी उद्देश्य-पूर्ति में संलग्न रही यह उनके इतिवृत्त से स्पष्ट है। इसी दिशा में प्राचीन ग्रन्थों को जो आज भी अप्रकाशित होकर दुर्लभ हैं, अनेक पुस्तकालयों ने अपने में संग्रह कर उनकी सुरक्षा की तथा आज उनके मूल्यांकन का अवसर प्रदान किया। हमें उन संग्रहालयों के संग्रहकारों का ऋणी होना चाहिए, जिनने संस्कृत-संस्कृति के संरक्षण के रूप में उनकी सुरक्षा की।

अन्त में योगदान के सभी प्रकारों का संक्षेप में पुनर्मूल्यांकन करते हुए उन-उन योगदाताओं के प्रति अपनी सच्ची श्रद्धांजलि अर्पित करना अपना पुनीत कर्तव्य समझते हैं, जिनने इस प्रवर्तमान शताब्दी में भी संस्कृत भाषा को जीवित रखने में अपना महत्त्वपूर्ण योग प्रदान किया है। उन विद्वानों में से कतिपय उल्लेखनीय रहे हैं; जिनका यावच्छक्य उपलब्ध परिचय (रचनात्मक कार्य सहित) अग्रिम खण्ड में प्रस्तुत कर उनके योगदान के साथ सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया जायेगा।

कृतिकार-खण्ड

"जयपुर की संस्कृत-साहित्य को देन"

(१८३४—१९६५ ई.)

किसी भी देश या राष्ट्र, प्रान्त या जनपद, नगर अथवा राज्य की संस्कृति का स्थायित्व तत्कालीन साहित्य पर निर्भर करता है। साहित्यकार तत्कालीन संस्कृति के प्रभाव से आबद्ध रहता है और कहीं न कहीं उसकी रचनाओं में समाज-चित्रण के साथ ही संस्कृति चित्रण भी हो जाता है। किसी भी स्थान-विशेष की भाषा तथा साहित्य उस स्थान के निवासियों की रुचि पर विशेषतः निर्भर रहता है। उसका विकास अथवा ह्रास उनकी क्रियाओं अथवा निष्क्रियताओं के परिणामस्वरूप हो जाता है।

'जयपुर की संस्कृत-साहित्य को देन' विषय पर चिन्तन करते हुए निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि जयपुर नगर के निवासियों ने संस्कृत साहित्य के विकास-प्रकाश में बहुत योग दिया है। यह सत्य है कि पुरातन काल में यह प्रदेश असभ्य एवं बर्बर जाति के लोगों की निवास भूमि रहा है, परन्तु कछवाहा शासकों के प्रयास से यह प्रदेश कुछ ही समय में महत्त्वपूर्ण बन गया था और इतिहास प्रसिद्ध हो गया। यहाँ समूचे भारतवर्ष से अनेकानेक विद्वान् स्वतः ही आये और सम्मानित हुए। कुछ-एक विशिष्ट विद्वान् ससम्मान लाये गये और उचित प्रश्रय प्राप्त कर सके। इन सब विषयों में कछवाहावंशीय शासकों की गुणग्राहिता ही सर्वोपरि मानी जानी चाहिये। यद्यपि यहां के मूल निवासी विद्वानों की संख्या नगण्य ही रही है, परन्तु फिर भी आगन्तुक विद्वान् भी वंशपरम्परा से यहां के निवासी बन गये और इस प्रकार उन्हें 'जयपुर नगर' का निवासी कहने में कोई आपत्ति नहीं दिखाई देती। इस शोध प्रबन्ध का समय महाराज सवाई रामसिंह द्वितीय (१८३५-१८८० ई०) से प्रारम्भ होता है। इनके समय में कुछ परिवार जो परम्परागत रूप में चले आ रहे थे, नामतः विद्वान् थे, केवल राज्याश्रय में रह कर पूर्व-पुरुषोपार्जित संपत्ति का उपभोग मात्र करना ही इनका काम रह गया था। कुछ एक विशिष्ट व्यक्तियों को, जिन्हें म० श्री रामसिंहजी ने आमन्त्रित किया था, वे निश्चय ही उच्च कोटि के विद्वान् थे। अतः उन्हें उचित पद व सम्मान दिया गया। ये अधिकांशतः महाराज संस्कृत कालेज तथा महाराजा कालेज में संस्कृत अध्यापन कार्य करते थे। कुछ एक विद्वान् भ्रमण करते हुए स्वतः ही आगए। इनकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर महाराज ने इन्हें अध्यापन कार्य के अतिरिक्त उचित सम्मान प्रदान किया। आगन्तुक विद्वानों में मैथिल, बंगाली तथा बिहारी विद्वान् अधिक थे। स्थानीय विद्वानों में दधिमथी देवी के उपासक 'दाधिमथ' या दाधीच (दाहिमा) ब्राह्मण पर्याप्त मात्रा में सुर-भारती के समुपासक रहे हैं, जिनकी उपासना ने संस्कृत-भाषा व साहित्य का उत्कर्ष किया है।

किसी भी साहित्य व भाषा को स्थायित्व प्रदान करने के लिये अनेक प्रकार हो सकते है। साहित्य का निर्माण कर, निर्माण करने की शिक्षा देकर, लेखकों को प्रोत्साहित कर, पुस्तकादि की लिपि कर, सम्पादन कर, उन्हें सुव्यवस्थित रूप में प्रकाशित कर, पत्रपत्रिकाओं का प्रकाशन कर, पुस्तकालय की सुरक्षा कर, किसी संस्था को जन्म देकर, इत्यादि अनेकानेक प्रकारों से उसका विकास किया जा सकता है। योगदान के इन प्रकारों का इस शोध-प्रबन्ध में इस प्रकार उल्लेख किया गया है—

(क) वे विद्वान्, जिनका साहित्य (संस्कृत भाषात्मक) प्रकाशित है, उपलब्ध है या सरलता से उपलब्ध हो सकता है। इनकी सूची 'क' वर्ग से संकेतित है।

(ख) वे विद्वान्, जिन्होंने संस्कृत भाषात्मक साहित्य की सर्जना की थी और वह प्रकाशित भी हुआ था, परन्तु इस समय उपलब्ध नहीं है या दुर्लभ है। इनकी सूची 'ख' वर्ण से संकेतित है।

(ग) वे विद्वान्, जिन्होंने संस्कृत भाषात्मक साहित्य की रचना तो की, परन्तु वह प्रकाशित न हो सका अर्थात् अप्रकाशित है, परन्तु इस समय भी उनके वंशधरों के पास सुरक्षित है तथा उनके सहयोग से उपलब्ध किया जा सकता है। इनकी सूची 'ग' वर्ण से चिह्नित है।

(घ) वे विद्वान्, जिन्होंने संस्कृत साहित्य की सर्जना तो की थी, परन्तु वह प्रकाशित न हो सका अर्थात् अप्रकाशित ही रहा और अब उपलब्ध भी नहीं है। केवल यत्र तत्र इसका उल्लेख मिलता है, जिसके आधार पर कहा जा सकता है कि उन विद्वानों का रचनात्मक कार्य भी था। इस प्रकार के विद्वानों की सूची 'घ' वर्ण से चिह्नित है।

(ङ) सभी विद्वान् महाकाव्य या खण्डकाव्य लिखकर या अन्य महत्त्वपूर्ण रचनाओं द्वारा योगदान करें, यह आवश्यक नहीं। अपनी विचार-धारा को वे लेखबद्ध कर भी प्रस्तुत कर सकते हैं। वास्तव में लेख आदि (संस्कृत भाषात्मक) या समस्यापूर्ति अथवा पद्यरचना के माध्यम से संस्कृत-साहित्य का विकास अधिक हुआ है। इस प्रकार सेवा करने या योगदान करने वाले विद्वानों की संख्या अधिक है। इस प्रबन्ध में भी ऐसे विद्वानों की नामावली 'ङ' वर्ण से चिह्नित है।

(च) पुस्तकाकार रचना या विकीर्ण लेखादि के अतिरिक्त जो योगदान के प्रकार है, वे सभी 'च' वर्ण से चिह्नित है। इसके ५ अवान्तर भेद हैं, जिनमें (अ) किसी संस्कृत विद्यालय के प्राचार्य रहे हों या उसके संस्थापक रहे हों, (आ) संस्कृत पत्रिका के सम्पादक रहे हों या प्रकाशक, (इ) किसी भी संस्कृत संस्कृति-विकासिका संस्था के प्रवर्तक रहे हों या अध्यक्ष, (ई) पुस्तकालय के संरक्षण रूप ने योग दिया हो तथा (उ) प्राचीन पुस्तकों के सम्पादक अथवा लिपिकार रहे हों, को विभक्त किया जा सकता है।

(अ) किसी भी विद्यालय के प्राचार्य का कार्य होता है कि वह अपने प्रशासन से उक्त विद्यालय को सुव्यवस्थित रखे तथा इस प्रकार शिक्षित करे कि चरित्र-निर्माण के साथ ही वह संसार को स्थायी ज्ञान प्रदान कर सके। एक विद्यालय के संस्थापक का भी इसीलिए महत्त्वपूर्ण उल्लेख किया जाता है कि वह किसी न किसी उद्देश्य से प्रेरित होकर विद्यालय की स्थापना करता है। योग्य व्यक्तियों के विद्यास्नातक होने पर वह विद्यालय भी ख्याति प्राप्त करता है। (परिचय खण्ड—तृतीय अध्याय 'क' तथा 'ख' अनुभाग)।

(आ) पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन या सम्पादन का कार्य भी साहित्य को स्थायित्व प्रदान करता है तथा विद्वत् समाज को अपनी ज्ञानराशि उडेलने का शुभ अवसर भी। यह सौभाग्य का विषय रहा है कि जयपुर ने संस्कृत-रत्नाकर तथा 'भारती' नामक संस्कृत के दो मासिक पत्रों का प्रकाशन तथा सम्पादन किया है। इससे साहित्य को जो योगदान मिला है, वास्तव में सराहनीय है। (परिचय खण्ड—तृतीय अध्याय 'ङ' अनुभाग)।

(इ) इसी प्रकार संस्कृत-संस्कृति विकासिका संस्थाओं की भी जयपुर में कमी नहीं रही है। इन विभिन्न संस्थाओं का योगदान अविस्मरणीय है, जिनकी सहायता से संस्कृत-संस्कृति सुरक्षित रह सकी है। ओजस्वी भाषणों, सम्मेलनों तथा ठोस प्रयत्नों के कारण संस्थायें तत्कालीन परिस्थितियों में सेवा करने में पूर्णतः सफल रही है। इनका उल्लेख किया जाना अनिवार्य है। (परिचय खण्ड—तृतीय अध्याय 'घ' अनुभाग)।

(ई) पुस्तकालय के संरक्षण द्वारा किया गया योग वास्तव में इसलिए प्रशंसनीय है कि उसके अभाव में आज पुरातन विद्वानों का हस्तलिखित साहित्य उपलब्ध नहीं हो सकता था। प्रत्येक विद्वान् की

सम्पूर्ण रचनायें प्रकाशित हो जाय, यह सम्भव नहीं है। उन अप्रकाशित रचनाओं की सुरक्षा कर उन्हें स्थायित्व प्रदान करना साहित्य की वास्तविक सेवा है। न केवल हस्तलिखित ग्रन्थ ही, प्रकाशित परन्तु दुर्लभ ग्रन्थों का संग्रह भी समय पर महत्त्वपूर्ण सिद्ध होता है। (परिचय खण्ड-तृतीय अध्याय 'च' अनुभाग)।

(ज) इसी प्रकार प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों की लिपियां कर उन्हें सुरक्षित करना तथा समय पर उनका सम्पादन कर प्रकाशित करना या करवाना, योगदान का श्लाघनीय प्रकार माना जाता है।

(छ) सभी विद्वान् लेखक नहीं होते और न कवि ही। वे उपदेशक या कुशल अध्यापक भी हो सकते हैं। इनके अलावा अनेक विद्वान् अपने समय में उल्लेखनीय होते हैं, जिनका योगदान साहित्य के लिये प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से होता है। ऐसे विद्वानों का उल्लेख भी आवश्यक होता है। इनको 'छ' वर्ण से अंकित किया गया है।

एक विद्वान् का नाम अनेक विभागों तथा अनुभागों में उल्लिखित किया जा सकता है, क्योंकि उसका योगदान विभिन्न प्रकारात्मक हो सकता है। यहां उपर्युक्त विभागों एवं अनुभागों के अनुसार वर्गीकृत सूचियां प्रस्तुत की जा रही हैं। इन विद्वानों के अतिरिक्त अन्य कतिपय विद्वान् भी हो सकते हैं, जिनका परिज्ञान न होने से वे यहां उल्लिखित न हो सके हों। विभिन्न वर्णों में वर्गीकृत इन विद्वानों की विस्तृत जानकारी (संकेतात्मक) इसी खण्ड के परिशिष्ट १ में (ग्रन्थान्त में) प्रस्तुत की गई है।

उपर्युक्त योगदान के प्रकारों को, जिन्हें 'क' वर्ण से 'च' वर्ण के अन्तर्गत अंकित किया है, जयपुरीय विद्वानों की सूची तदनुसार यहां प्रस्तुत है।

'क'—साहित्यकार : प्रकाशित व उपलब्ध साहित्य

क्रम सं०	नाम—विद्वान्	परिचय क्रमांक	विवरण
१.	राजवैद्य श्री कृष्णराम भट्ट	११	प्रसिद्ध विद्वान्
२.	म०म० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी	२०	,, ,,
३.	श्री गोपीनाथ शास्त्री दाधीच	२४	,, ,,
४.	श्री चैनसुखदास न्यायतीर्थ	४३	जैन विद्वान्
५.	श्री जानकीलाल चतुर्वेदी	५२	—
६.	म०म० श्री दुर्गाप्रसाद द्विवेदी	६२	प्रसिद्ध विद्वान्
७.	श्री नन्दकिशोर नामावल	६८	कथाभट्ट परिवार
८.	श्री नारायण भट्ट पर्वणीकर	७४	राजगुरु
९.	श्री पी० एन० पट्टाभिराम शास्त्री	७६	सं० कालेज के प्राचार्य
१०.	श्री मगनी राम श्रीमाली	८६	सं० का० व्याख्याता
११.	भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री	९१	प्रसिद्ध विद्वान्
१२.	वि० वा० श्री मधुसूदन ओझा	९४	,, ,,
१३.	श्री लक्ष्मीनाथ शास्त्री द्राविड़	११८	सं० कालेज के प्राचार्य
१४.	म०म० श्री शिवदत्त शास्त्री	१३१	प्रसिद्ध विद्वान्
१५.	श्री सरयूप्रसाद द्विवेदी	१४०	प्रसिद्ध विद्वान्
१६.	आशुकवि श्री हरि शास्त्री	१४९	प्रसिद्ध विद्वान्
१७.	कविमल्ल श्री हरिवल्लभ भट्ट	१५१	प्रसिद्ध विद्वान्

'ख'–साहित्यकार : प्रकाशित व अनुपलब्ध साहित्य

क्रम सं०	नाम–विद्वान्	परिचय क्रमांक	विवरण
१.	राजवैद्य श्री कृष्णराम भट्ट	११	प्रसिद्ध विद्वान्
२.	म०म० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी	२०	प्रसिद्ध विद्वान्
३.	म०म० श्री दुर्गाप्रसाद द्विवेदी	६२	प्रसिद्ध विद्वान्
४.	भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री	९१	प्रसिद्ध विद्वान्
५.	वि० वा० श्री मधुसूदन ओझा	९४	प्रसिद्ध विद्वान्
६.	म०म० श्री शिवदत्त शास्त्री	१३१	प्रसिद्ध विद्वान्
७.	श्री सदानन्द स्वामी	१३८	शैव सुधाकर के लेखक
८.	श्री सदाशिव शास्त्री	१३९	दाक्षिणात्य विद्वान्
९.	श्री सरयूप्रसाद द्विवेदी	१४०	प्रसिद्ध विद्वान्
१०.	कविमल्ल श्री हरिवल्लभ भट्ट	१५१	प्रसिद्ध विद्वान्

'ग'–साहित्यकार : अप्रकाशित उपलब्ध साहित्य

क्रम सं०	नाम–विद्वान्	परिचय क्रमांक	विवरण
१.	राजवैद्य श्री कुन्दनराम भट्ट	१०	प्रसिद्ध विद्वान्
२.	राजवैद्य श्री कृष्णराम भट्ट	११	प्रसिद्ध विद्वान्
३.	म०म० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी	२०	प्रसिद्ध विद्वान्
४.	श्री गोपीनाथ शास्त्री दाधीच	२४	प्रसिद्ध विद्वान्
५.	राजवैद्य श्री जीवणराम भट्ट	५४	क्र० १० से अभिन्न
६.	म०म० श्री दुर्गाप्रसाद द्विवेदी	६२	प्रसिद्ध विद्वान्
७.	श्री नन्दकिशोर नामावल	६८	प्रसिद्ध विद्वान्
८.	श्री नारायण भट्ट पर्वणीकर	७४	प्रसिद्ध विद्वान्
९.	श्री परमसुख शास्त्री	७८	उल्लेखनीय विद्वान्
१०.	डॉ. प्रभाकर शास्त्री	७९	—
११.	भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री	९१	प्रसिद्ध विद्वान्
१२.	वि० वा० श्री मधुसूदन ओझा	९४	प्रसिद्ध विद्वान्
१३.	श्री रामकिशोर शर्मा	१०५	नाटककार
१४.	श्री रामचन्द्र भट्ट	१११	मुक्तक साहित्यकार
१५.	श्री विहारीलाल दाधीच	१२७	प्रसिद्ध विद्वान्
१६.	श्री सरयूप्रसाद द्विवेदी	१४०	प्रसिद्ध विद्वान्
१७.	श्री हरिनारायण शास्त्री	१४९	आशुकवि, प्र० विद्वान्
१८.	श्री हरेकृष्ण गोस्वामी	१५३	प्रसिद्ध विद्वान्

'घ'–साहित्यकार : अप्रकाशित अनुपलब्ध साहित्य

क्रम सं०	नाम–विद्वान्	परिचय क्रमांक	विवरण
१.	श्री जानकीलाल चतुर्वेदी	५२	प्रसिद्ध विद्वान्
२.	श्री जीवनाथ ओझा	५३	प्रसिद्ध विद्वान्
३.	श्री परमसुख शास्त्री	७८	प्रसिद्ध विद्वान्

क्रम सं०	नाम विद्वान्	परिचय क्रमांक	विवरण
४.	वि०वा० श्री मधुसूदन ओझा	९४	प्रसिद्ध विद्वान्
५.	श्री राजीवलोचन ओझा	१०६	प्रसिद्ध विद्वान्
६.	श्री वीरेश्वर शास्त्री द्राविड़	१२८	प्रसिद्ध विद्वान्
७.	श्री सदाशिव शास्त्री	१३९	दाक्षिणात्य विद्वान्
८.	कविसरल श्री हरिवल्लभ भट्ट	१५१	प्रसिद्ध विद्वान्

'ङ'-साहित्यकार : पत्रपत्रिकाओं में प्रकाशित-पद्य-रचना, लेख आदि

क्रम सं०	नाम विद्वान्	परिचय क्रमांक	विवरण
१.	श्री इन्द्रलाल शास्त्री जैन	१	जैन विद्वान्
२.	श्री कन्हैयालाल न्यायाचार्य	४	प्रसिद्ध विद्वान्
३.	श्री कन्हैयालाल दाधीच	५	कथाव्यास
४.	श्री कलानाथ शास्त्री	६	देवर्षि भट्ट परिवार
५.	श्री कल्याणवल्लभ शर्मा	८	प्रसिद्ध विद्वान्
६.	श्री काशीनाथ द्राविड़	९	प्रसिद्ध विद्वान्
७.	श्री कृष्णराम भट्ट	११	प्रसिद्ध विद्वान्
८.	श्री कृष्ण शास्त्री	१२	प्रसिद्ध विद्वान्
९.	श्री कृष्णलाल शास्त्री	१३	कान्हजी नाम से प्रसिद्ध
१०.	श्री केदारनाथ ज्योतिर्विद्	१४	प्रसिद्ध ज्योतिषी
११.	श्री केदारनाथ ओझा	१५	प्रसिद्ध विद्वान्
१२.	श्री गिरिजाप्रसाद द्विवेदी	१९	प्रसिद्ध विद्वान्
१३.	म०म० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी	२०	प्रसिद्ध विद्वान्
१४	श्री गिरिराज शास्त्री	२१	भारती के व्यवस्थापक
१५.	श्री गोपालनारायण बहुरा	२३	पुरातत्व विद्वान्
१६.	श्री गोपीनाथ शास्त्री दाधीच	२४	प्रसिद्ध विद्वान्
१७.	श्री गोपीनाथ शास्त्री द्राविड़	२५	दाक्षिणात्य विद्वान्
१८.	श्री गोपीनाथ शास्त्री धर्माधिकारी	२६	महाराष्ट्रीय विद्वान्
१९.	श्री गोविन्दनारायण शास्त्री	२९	सं० का० आचार्य
२०.	श्री गोविन्दप्रसाद दाधीच	३०	कल्याणी के सम्पादक
२१.	श्री गंगाधर द्विवेदी	३१	द्विवेदी परिवार
२२.	श्री गंगाधर भट्ट	३२	राजवैद्य
२३.	श्री चूटर झा	३४	सं कालेज के आचार्य
२४.	श्री चन्द्रदत्त ओझा	३६	राजगुरु
२५.	श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी	३८	प्रसिद्ध कहानीकार
२६.	श्री चन्द्रशेखर द्विवेदी	४०	जगद्गुरु शंकराचार्य
२७.	श्री जगदीशचन्द्र कथाभट्ट	४७	राजगुरु
२८.	श्री जयचन्द्र झा	४९	सामवेदीय विद्वान्

क्रम सं०	नाम विद्वान्	परिचय क्रमांक	विवरण
२९.	श्री दयाराम शास्त्री	५५	प्रसिद्ध विद्वान्
३०.	श्री दामोदर शास्त्री	५६	प्रसिद्ध विद्वान्
३१.	श्री दीनानाथ त्रिवेदी	५७	प्रसिद्ध विद्वान्
३२.	श्री दुर्गादत्त झा मैथिल	५९	राजगुरु वंश
३३.	श्री दुर्गादत्त शर्मा	६०	———
३४.	म०म० श्री दुर्गाप्रसाद द्विवेदी	६२	प्रसिद्ध विद्वान्
३५.	श्रीः धन्नालाल कथाभट्ट	६६	स्वरोदय वेत्ता
३६.	श्री नन्दकिशोर खाण्डल	६७	आयुर्वेद-निदेशक
३७.	श्री नन्दकिशोर नामावल	६८	कथाभट्ट परिवार
३८.	श्री नन्दकुमार नामावल	७०	कथाभट्ट परिवार
३९.	श्री नवलकिशोर कांकर	७३	प्रसिद्ध विद्वान्
४०.	श्री नारायण भट्ट पर्वणीकर	७४	प्रसिद्ध विद्वान्
४१.	श्री नारायण शास्त्री कांकर	७५	प्रसिद्ध विद्वान्
४२.	पी० एन० पट्टाभिराम शास्त्री	७६	प्रसिद्ध विद्वान्
४३.	श्री परमानन्द शास्त्री	७७	प्रसिद्ध विद्वान्
४४.	डॉ. प्रभाकर शास्त्री	७९	———
४५.	डा० पुरुषोत्तमलाल भार्गव	८१	संस्कृत विभागाध्यक्ष
४६.	श्री बदरीनाथ शास्त्री	८२	लखनऊ विश्वविद्यालय
४७.	श्री भवदत्त शास्त्री	८५	राजगुरु
४८.	डा० मण्डन मिश्र शास्त्री	९०	प्रसिद्ध विद्वान्
४९.	भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री	९१	प्रसिद्ध विद्वान्
५०.	श्री मदनलाल प्रश्नवर	९३	प्रसिद्ध विद्वान्
५१.	वि० वा० श्री मधुसूदन ओझा	९४	प्रसिद्ध विद्वान्
५२.	श्री माधवकृष्ण शर्मा	९६	संस्कृत-शिक्षा निदेशक
५३.	श्री माधवप्रसाद शास्त्री	९७	प्रसिद्ध विद्वान्
५४.	श्री मुकुन्दराम भट्ट पर्वणीकर	१००	राजगुरु
५५.	श्री मोतीलाल शास्त्री	१०२	वेद-विज्ञान प्रवक्ता
५६.	श्री रामगोपाल शास्त्री	१०८	प्रसिद्ध विद्वान्
५७.	श्री रामनारायण चतुर्वेदी	११२	प्रसिद्ध विद्वान्
५८.	श्री रामभद्र मैथिल	११४	प्रसिद्ध विद्वान्
५९.	श्री रामप्रपन्न शर्मा	११५	प्रसिद्ध विद्वान्
६०.	श्री रामेश्वर शास्त्री दाधिमथः	११६	प्रसिद्ध विद्वान्
६१.	श्री स्वामी लक्ष्मीराम वैद्य	११९	प्रसिद्ध वैद्यमार्तण्ड
६२.	श्री विजयचन्द्र पण्डित	१२२	प्रसिद्ध विद्वान्
६३.	श्री विजयचन्द्र चतुर्वेदी	१२३	प्रसिद्ध वेद विद्वान्

क्रम सं०	नाम विद्वान्	परिचय क्रमांक	विवरण
६४.	श्री विहारीलाल शास्त्री दाधीच	१२७	प्रसिद्ध विद्वान्
६५.	श्री वृद्धिचन्द्र शास्त्री	१२६	प्रसिद्ध विद्वान्
६६.	श्री शिवदत्त शास्त्री	१३१	प्रसिद्ध विद्वान्
६७.	डा० सुधीरकुमार गुप्ता	१४१	रीडर, संस्कृत विभाग
६८.	श्री सुरजनदास स्वामी	१४२	प्रसिद्ध विद्वान्
६९.	श्री सूर्यनारायण शास्त्री	१४३	प्रसिद्ध विद्वान्
७०.	श्री हरिनारायण शास्त्री	१४६	प्रसिद्ध विद्वान्
७१.	श्री हरिवल्लभ भट्ट	१५१	प्रसिद्ध विद्वान्
७२.	श्री हरेकृष्ण गोस्वामी	१५३	,, ,,

'च' (अ)–विद्यालय या महाविद्यालय के प्राचार्य, अध्यक्ष या संस्थापक

क्रम	नाम विद्वान्	परिचय क्रमांक	विद्यालय का नाम व पद
१.	श्री एकनाथ ओझा	२	म० संस्कृत कालेज, प्राचार्य
२.	श्री काशीनाथ द्राविड़	९	दि० जैन सं० कालेज, प्राचार्य
३.	म०म० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी	२०	म० संस्कृत कालेज, प्राचार्य
४.	श्री गोविन्दनारायण शास्त्री	२६	म० संस्कृत कालेज, प्राचार्य
५.	श्री घूटर झा	३४	म० संस्कृत कालेज, प्राचार्य
६.	श्री चन्द्रशेखर द्विवेदी	४०	म० संस्कृत कालेज, प्राचार्य
७.	श्री चैनसुखदास न्यायतीर्थ	४३	दि० जैन सं० कालेज, प्राचार्य
८.	श्री जयरामदास स्वामी	५०	आयुर्वेदिक कालेज, प्राचार्य
९.	श्री दयाराम शास्त्री	५५	दादू महाविद्यालय, प्राचार्य
१०.	श्री दीनानाथ त्रिवेदी	५७	खाण्डल विप्र विद्यालय, प्राचार्य
११.	म०म० श्री दुर्गाप्रसाद द्विवेदी	६२	म० संस्कृत कालेज, प्राचार्य
१२.	श्री दुर्गाप्रसाद नांगल्या	६३	दि० जैन सं० कालेज, प्राचार्य
१३.	श्री नन्दकिशोर खाण्डल	६७	आयुर्वेदिक कालेज, प्राचार्य
१४.	श्री पी० एन० पट्टाभिराम शास्त्री	७६	म० संस्कृत कालेज, प्राचार्य
१५.	श्री प्रवीणचन्द्र जैन	८०	महाराजा कालेज, अध्यक्ष संस्कृत
१६.	डा० पुरुषोत्तमलाल भार्गव	८१	महाराजा कालेज, राज० वि. अध्यक्ष
१७.	श्री भवदत्त शास्त्री	८५	माधव सं० विद्यालय, प्राचार्य
१८.	श्री माधवकृष्ण शर्मा	९६	म० संस्कृत कालेज, प्राचार्य
१९.	श्री माधवप्रसाद शास्त्री	९७	महिला संस्कृत विद्यालय, संस्थापक
२०.	श्री मुकुन्दराम भट्ट पर्वणीकर	१००	माधव संस्कृत विद्यालय, संस्थापक
२१.	श्री रामभज सारस्वत	११३	म० संस्कृत कालेज, प्राचार्य
२२.	श्री लक्ष्मीनाथ शास्त्री द्राविड़	११८	म० संस्कृत कालेज, प्राचार्य
२३.	श्री सुरजनदास स्वामी	१४२	दादू महाविद्यालय, प्राचार्य
२४.	श्री सूर्यनारायण शास्त्री	१४३	महाराजा कालेज, अध्यक्ष संस्कृत
२५.	श्री हरिदास बाबू	१४८	निदेशक, प्राचार्य, महाराजा कालेज

च–(आ) पत्र-पत्रिका के सम्पादक, सह सम्पादक या प्रकाशक

क्रम	नाम विद्वान्	परिचय क्रमांक	पत्रिका	पद
१.	श्री कलानाथ शास्त्री	६	भारती	सह सम्पादक
२.	म.म. श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी	२०	संस्कृत रत्नाकर	प्रकाशक
३.	श्री गोविन्दप्रसाद दाधीच	३०	कल्याणी	सम्पादक
४.	श्री दीनानाथ त्रिवेदी	५७	भारती	सह-सम्पादक
५.	श्री दुर्गादत्त झा	५९	संस्कृत रत्नाकर	सह-सम्पादक
६.	डा० मण्डन मिश्र शास्त्री	९०	संस्कृत रत्नाकर	प्रकाशक
७.	श्री मथुरानाथ शास्त्री	९१	संस्कृत रत्नाकर	सम्पादक
			भारती	सम्पादक
८.	श्री वृद्धिचन्द्र शास्त्री	१२९	संस्कृत रत्नाकर	सम्पादक
			भारती	सम्पादक
९.	श्री सुरजनदास स्वामी	१४२	भारती	सम्पादक
१०.	श्री सूर्यनारायण शास्त्री	१४३	संस्कृत रत्नाकर	सम्पादक
११.	श्री हरिनारायण शास्त्री दाधीच	१४९	भारती	सम्पादक

'च' (इ)–संस्थाओं के संस्थापक या अध्यक्ष

क्रम	नाम विद्वान्	परिचय क्रमांक	संस्था का नाम	पद
१.	म.म. श्री गिरधर शर्मा चतुर्वेदी	२०	अ. भा. संस्कृत सा. सम्मेलन	संस्थापक
			राज. संस्कृत सा. सम्मेलन	संस्थापक
२.	भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री	९१	राज० संस्कृत सा० सम्मेलन	अध्यक्ष
३.	श्री विद्यानाथ ओझा	१२५	वैदिक संस्कृति प्रचारक संघ,	अध्यक्ष
४.	श्री वृद्धिचन्द्र शास्त्री	१२९	वैदिक संस्कृति प्रचारक संघ, का.	अध्यक्ष
५.	श्री शिवदत्त वैदिक	१३२	वैदिक संस्कृति प्रचारक संघ,	संस्थापक
६.	श्री हरिनारायण शास्त्री दाधीच	१४९	वैदिक कर्मकाण्डी मण्डल	अध्यक्ष

'च' (ई)–पुस्तकालय के संरक्षक

क्रम	नाम विद्वान्	परिचय क्रमांक	पुस्तकालय
१.	श्री कलानाथ शास्त्री	६	मंजुनाथ पुस्तकालय
२.	श्री कृष्णराम भट्ट	११	श्री कृष्णराम भट्ट पुस्तकालय
३.	श्री केदारनाथ ज्योतिर्विद्	१४	निजी संग्रहालय
४.	म. म. श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी	२०	निजी संग्रहालय
५.	श्री गंगाधर द्विवेदी	३१	निजी संग्रहालय
६.	श्री गंगाधर भट्ट	३२	श्री कृष्णराम भट्ट पुस्तकालय
७.	श्री जयरामदास स्वामी	५०	निजी संग्रहालय
८.	म. म. श्री दुर्गाप्रसाद द्विवेदी	६२	निजी संग्रहालय
९.	श्री देवेन्द्र भट्ट	६५	श्री कृष्णराम भट्ट पुस्तकालय

क्रम	नाम विद्वान्	परिचय क्रमांक	पुस्तकालय
१०.	श्री नारायण भट्ट पर्वणीकर	७४	पर्वणीकर संग्रहालय
११.	डॉ. प्रभाकर शास्त्री	७६	श्रीवृद्धिचन्द्र शास्त्री पुस्तकालय
१२.	मधुसूदन ओझा	६४	निजी संग्रहालय
१३.	श्री माधवराम भट्ट पर्वणीकर	६८	पर्वणीकर संग्रहालय
१४.	श्री विद्यानाथ ओझा	१२५	निजी संग्रहालय
१५.	श्री वीरेश्वर शास्त्री द्राविड़	१२८	वीरेश्वर संस्कृत पुस्तकालय

'च' (उ)-पुस्तकों के लिपिकार या सम्पादक

क्रम	नाम विद्वान्	परिचय क्रमांक	विवरण
१.	श्री कन्हैयालाल प्रश्नवर	३	अनेक ग्रन्थों के लिपिकार
२.	श्री कल्याणवल्लभ शर्मा	८	अनेक ग्रन्थों के लिपिकार
३.	श्री केदारनाथ ज्योतिर्विद्	१४	काव्यमाला के सम्पादक
४.	म.म. श्री दुर्गाप्रसाद शास्त्री	६१	काव्यमाला के सम्पादक
५.	श्री देवेन्द्र भट्ट	६५	सम्पादक
६.	श्री नारायण भट्ट पर्वणीकर	७४	अनेक ग्रन्थों के लिपिकार
७.	वि० वा० श्री मधुसूदन ओझा	६४	,, ,,
८.	श्री मुकुन्दराम भट्ट	१००	,, ,,
९.	शिवदत्त शास्त्री दाधिमथ	१३१	काव्य माला के सम्पादक

इनके अतिरिक्त अनेक ऐसे विद्वान् भी उल्लेखनीय हैं, जिनका नामोल्लेखन उपर्युक्त वर्गीकरण के अन्तर्गत नहीं आ सका है। ऐसे विद्वान् 'छ' वर्ण से चिन्हित किये गये हैं, जिनकी सूची परिशिष्ट १ (इस खण्ड के अन्त में) से जानी जा सकती है।

---

१. श्री इन्द्रलाल शास्त्री जैन

विद्वद्वर धर्मवीर पं० श्री इन्द्रलाल शास्त्री विद्यालंकार जयपुरीय जैन समाज में सुप्रतिष्ठित एवं सम्माननीय प्रौढ विद्वान् हैं। आपका जन्म २१ सितम्बर, १८९७ तदनुसार आश्विन कृष्णा १० संवत् १९५४ को जयपुर नगर में ही हुआ था। आपके पिता श्री मालीलालजी जयपुर से २४ मील दूर स्थित ग्राम 'लवान' (बस्सी के पास) से राजकीय सेवा के सन्दर्भ में सर्वप्रथम जयपुर आये थे। आपका बाल्यकाल अत्यन्त कष्ट में बीता। आपत्तियों एवं कष्टों की परवाह न करते हुए आपने अध्ययन किया और फिर सुर-भारती संस्कृत की सेवा में अपना जीवन लगा दिया। सर्वप्रथम सन् १९१५ ई० में साहित्य विषय से आपने शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की। उसके पश्चात् आप दिगम्बर जैन संस्कृत कालेज में अध्यापक भी रहे तथा कुछ समय तक प्राचार्य भी। इसके पश्चात् आप मथुरा, केकड़ी, लाडनूं आदि अनेक स्थानों पर सेवा करते रहे।

जयपुर में देवस्थान विभाग के अन्तर्गत सुप्रसिद्ध मन्दिर श्री गोविन्ददेवजी के 'कामदार' के रूप में आपका कार्य उल्लेखनीय है। आपकी सुयोग्यता से प्रभावित होकर भारतवर्म महामण्डल वाराणसी ने सन् १९४० ई० में आपको 'विद्यालंकार' की उपाधि प्रदान की। इसी प्रकार भारतवर्षीय दिगम्बर जैन सिद्धान्तरक्षिणी सभा ने १९५७ ई० में 'धर्म दिवाकर तथा अखिल भारतीय दिगम्बर जैन महासभा ने सं० १९५९ ई. में धर्मवीर की उपाधि प्रदान की।

आपने अनेक पुस्तकें लिखी हैं, जिनकी संख्या २५ के लगभग है। आप एक सफल पत्रकार रहे हैं। आपके द्वारा सम्पादित पत्रों में 'खण्डेलवाल जैन', 'हितेच्छु', 'जैन', 'सन्मार्ग, 'अहिंसा' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। आपने श्री पंचस्तोत्र (श्री भक्तामर, कल्याण मन्दिर, एकीभाव, विषापहार और भूपाल चतुर्विशतिका) श्री समन्तभद्राचार्य प्रणीत वृहत् स्वयंभूस्तोत्र और आत्मानुशासन जैसे महान् दार्शनिक, आध्यात्मिक क्लिष्ट ग्रन्थों का हिन्दी भाषा में पद्यानुवाद कर उल्लेखनीय कार्य किया है।। स्वतंन्त्र रचनाओं में वर्ण-विज्ञान,-आत्म-वैभव, जैन धर्म तथा जाति-भेद आदि विख्यात हैं।

आपने श्री दुर्गाप्रसाद नांगल्या (प्राचार्य, दिगम्बर जैन संस्कृत पाठशाला) तथा श्री हरिवंश ओझा (न्याय प्राध्यापक, म० संस्कृत कालेज) आदि प्रसिद्ध विद्वानों से शिक्षा प्राप्त की थी। आपके योग्यतम शिष्यों में श्री प्रवीणचन्द्र जैन तथा श्वेताम्बर जैनाचार्य श्री वरणीन्द्र सूरि का नाम उल्लेखनीय है।

आपके अनेक लेख संस्कृत रत्नाकर तथा भारती पत्रिका में प्रकाशित हुए हैं। उनमें से कतिपय इस प्रकार उल्लेखनीय हैं:—

१.	'कथं स्यात् सुर-भारती राष्ट्रभाषा'	(संस्कृत रत्नाकर ११।५)
२.	'स्वातन्त्र्यमूलं सुर-भारती प्रचारः'	(संस्कृत रत्नाकर ११।७)
३.	'अवधातव्यम्	(संस्कृत रत्नाकर १२।४)
४.	'धर्मराज्यम्'	(संस्कृत रत्नाकर १२।६)
५.	'किमेषा जनतन्त्रता'	(संस्कृत रत्नाकर १२।७)
६.	'जनदौर्भाग्यमेव कुशासनमूलम्	(भारती १।१२) इत्यादि

आपके लेख सामाजिक क्रान्ति से ओतप्रोत हैं। आप संस्कृत-वाग् विवर्धिनी परिषद् के अनेक वर्षों तक उपाध्यक्ष रहे हैं। गद्यलेखों के अतिरिक्त आप की पद्यरचना भी सुललित है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं, जिनसे आपकी विद्वत्ता का परिचय प्राप्त होता है—

(१) मान्यो वदान्यो मतिमाननन्यो धन्योऽद्यशून्यो कृतिनां वरेण्यः ।
सकीर्तिमालोऽप्यभिमानहीनः छिन्नः कृतान्तेन ह । भौरिलालः ॥

(२) धीमान् धर्मपरायणो धृतिधरो धैर्याम्बुधिर्धीधनो ।
धर्मोद्धारधुरंधरो धनिवरो सद्धर्मधारां धरन् ॥
धीमद्धर्ष धरः सदा सबुधप; सद्धीर्घरालंकृतिः ।
सद्ध्याता धरणोमणिः स भंवरीलालः सुधीर्धार्मिकः ।।

आप उल्लेखनीय विद्वान् हैं तथा अभी संस्कृत की सेवा में संलग्न हैं। (१-अ)

---

२. एकनाथ ओझा

श्री ओझाजी मैथिल ब्राह्मण थे। आपके पूर्वजों का आदिम निवास मिथिला प्रान्त रहा है। कहा जाता है कि सन् १८१८ ई० में तत्कालीन जयपुर नरेश सवाई श्री जगत्सिंह ने पं० श्री उग्रदत्तजी ओझा को अपना गुरु स्वीकार किया था। श्री उग्रदत्तजी के पुत्र का नाम श्री गंगेश झा था, जिनकी कन्या से आपका विवाह हुआ था। आपका अध्ययन, शिक्षा-दीक्षा आदि कार्य काशी में ही सम्पन्न हुआ था। 'शब्देन्दुशेखर' नामक ग्रन्थ के प्रसिद्ध भैरवी नामक टीकाकार पं० श्री भैरव मिश्र आपके गुरु थे, जो अपने समय में व्याकरण के उद्भट पण्डित माने जाते थे। अध्ययन समाप्ति पर आप जयपुर आये और श्री गंगेश झा ने आपकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर अपनी कन्या से आपका विवाह कर जामाता बना लिया। आजीविका की दृष्टि से श्री झा ने आपको तात्कालिक संस्कृत विद्यालय में अध्यापक बनवा दिया। आप राजगुरु नहीं थे, परन्तु राजगुरु श्री गंगेश झा के जामाता होने से राज-सम्मानित थे। महाराज स० रामसिंह द्वितीय द्वारा संस्थापित महाराज संस्कृत कालेज के आप प्रथम आचार्य थे। संस्कृत कालेज के प्राचीनतम उपलब्ध रिकार्ड सन् १८६९ ई० के उपस्थिति पत्रक में आपका नाम सर्वप्रथम प्राप्त होता है। आपने १८६९ ई० तक अध्यापन किया था।

संस्कृत कालेजीय उपलब्ध उपस्थिति-पत्रक सन् १८६९ ई० के जून मास प्रपत्र पर लिखित सूचना के आधार पर यह सिद्ध होता है कि आपने ४ जून १८६९ तक उक्त पद पर कार्य किया था। आपका देहावसान ५ जून. १८६९ ई० को जयपुर में ही हुआ था। (२-अ) आपकी जन्मतिथि ज्ञात नहीं है। जयपुर आगमन से पूर्व आपका तात्कालिक पत्रसंकेत 'पुखरोनी ग्राम, दरभंगा (विहार) था। आपके पुत्र का नाम श्री नरहरि ओझा था, जो स्वयं एक व्याकरण के विद्वान् तथा उक्त कालेज में व्याकरण के ही विभागाध्यक्ष थे। श्री नरहरि ओझा अपने मातामह (नाना) श्री गंगेश झा के दिवंगत होने पर राजगुरु पद के स्वामी बनाये गये, क्योंकि श्री झा ने आपको अपना उत्तराधिकारी (पुत्रिका पुत्र) बनाया था। तब से लेकर अब तक आपके वंशज राजगुरु और व्याकरण के प्रकाण्ड पण्डित रहे हैं। (२-आ)

(१-अ) आपका उपर्युक्त परिचय स्वयं प्रदत्त सूचना, श्री आत्मानुशासन व स्वयंभूस्तोत्र (प्रकाशित) की भूमिकाओं पर आधारित है। पद्य भंवरीलाल बाकलीवाल स्मारिका से उद्धृत हैं। ग्रन्थ लेखन के समय आप विद्यमान थे। अब आपका देहान्त हो चुका है।

(२-अ)— संस्कृत कालेजीय उपस्थिति पत्रक सन् १८६९ जून मास—' ५ जून, १८६९ को (मिति-ज्येष्ठ कृष्ण ११ संवत् १९२६) श्री ओझाजी फोत हुए।

(२-आ)— "अभ्रातृकां प्रदास्यामि तुभ्यं कन्यामलंकृताम्। अस्यां यो जायते पुत्रः स मे पुत्रो भवेदिति।" वशिष्ठ-वचनात् आप श्री गंगेश झा से वचनबद्ध थे। इसीलिए आपने अपने पुत्र नरहरि झा को उत्तराधिकारी बनने दिया।

आपका वंशवृक्ष इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

आपके शिष्यों में महामहोपाध्याय पं० शिवदत्त शास्त्री दाधिमथ, राजगुरु श्री नारायण भट्ट पर्वणीकर, श्री गंगावक्स व्यास आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। तत्कालीन सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री मथुरानाथ व्यास आपके मित्र थे। आपका रचनात्मक कार्य उपलब्ध नहीं है, फिर भी संस्कृत कालेज के प्रथम प्राचार्य, कुशल प्राध्यापक एवं व्याकरण के विशिष्ट विद्वान् होने के साथ ही संस्कृत-संस्कृति के रक्षक होने के कारण आप उल्लेखनीय विद्वान् थे। (२-उ)

(२-इ)— श्री दुर्गानाथ झा का वंश जयपुर में बडे ओझाजी के नाम से विख्यात रहा है, जिसमें इस समय श्री विद्यानाथजी ओझा (परिचय क्रमांक १२५) विद्यमान हैं।

(२-ई)— श्री नरहरि झा के पांच पौत्रों में जयपुर के इतिहास में संस्कृति एवं संस्कृत विद्वानों की श्रेणी में केवल दो विद्वानों के नाम ही उल्लेखनीय हैं, जो चन्द्रदत्तजी के पुत्र थे। इन का परिचय क्रमशः ८५ (श्री भवदत्तजी) तथा ५९ (श्री दुर्गादत्तजी) पर उपलब्ध है। अब श्री दुर्गादत्तजी भी दिवंगत हो गए हैं।

(२-उ)— आपका उपर्युक्त परिचय पं० श्री दुर्गादत्त झा (वर्तमान वंशज) से प्राप्त सूचनाओं तथा 'राजगुरु पं० चन्द्रदत्त झा का संक्षिप्त परिचय' नामक पुस्तिका (भट्ट मथुरानाथ शास्त्री) तथा संस्कृत कालेज के रिकार्ड के आधार पर प्रस्तुत किया गया है।

३. श्री कन्हैयालाल प्रश्नवर

आप महाराज सवाई जयसिंह द्वितीय द्वारा आहूत एवं संस्थापित परिवारों में से एक विद्वत्-परिवार के अनुवंशज थे। आप गुजराती ब्राह्मण तथा ब्रह्मपुरी में विख्यात श्री जागेश्वर महादेव के प्रधान उपासक थे। आप महाराज सवाई माधवसिंह द्वितीय के समय उल्लेखनीय विद्वानों में से एक थे।

संस्कृत कालेज के साहित्य प्राध्यापक स्वनामधन्य श्री कृष्ण शास्त्री के पास नियमित छात्र के रूप में अध्ययन कर आपने संवत् १९६७ तदनुसार १९१० ई० में साहित्य शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की। (३-अ) आपने तत्कालीन विद्वानों में से श्री वीरेश्वर शास्त्री द्राविड़ से व्याकरण का अध्ययन किया और कालान्तर में श्री विहारीलाल शास्त्री के पास साहित्य विषय का ज्ञानार्जन किया।

आपने अपने जीवन काल में अपने निवास स्थान पर ही अनेक ज्ञान-पिपासु छात्रों को ज्ञान प्रदान कर उनकी पिपासा शान्त की। आप व्याकरण, साहित्य, वेदान्त एव मन्त्रशास्त्र के अद्वितीय विद्वान् थे। आप छात्रों को निःशुल्क अध्यापन करते थे। सुन्दराक्षरों के कारण महाराज माधवसिंह द्वितीय ने आपको अपने व्यक्तिगत पुस्तकालय 'पोथीखाने' में प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों के लिपिकार के रूप में नियुक्त किया था। आपने अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की प्रतिलिपियां कर उन्हें सुरक्षित किया है। आपके प्रसिद्ध शिष्यों में श्री मनोहर शास्त्री शुक्ल, श्री मोतीलाल शास्त्री, श्री वृद्धिचन्द्र शास्त्री तथा श्री रामगोपाल शास्त्री के नाम उल्लेखनीय हैं। आपके पुत्र श्री शिवकुमार भट्ट साहित्याचार्य महाराज संस्कृत कालेज के स्कूल विभाग में अध्यापन कार्यरत हैं। आपके द्वितीय पुत्र श्री जगद्धर भट्ट राजकीय आयुर्वेद विभाग में सेवारत हैं। (३–आ)

आप जयपुर के उल्लेखनीय विद्वानों में परिगणनीय हैं।

४. श्री कन्हैयालाल न्यायाचार्य

वर्तमान काल के सुप्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् श्री न्यायाचार्य का जन्म मार्गशीर्ष कृष्ण ४ संवत् १९३७ तदनुसार २० नवम्बर, १८८० को जयपुर के एक कुलीन दाधीच ब्राह्मण वंश में हुआ था। आपके पूर्वज जयपुर राज्य की निवाई तहसील में रहते थे और वहां से आकर आजीविका के लिए यहां बस गए थे। आपके पिता पं० श्री सूर्यनारायणजी प्राचीन परम्परा के पौराणिक पण्डित और कर्मकाण्डी विद्वान् थे। यही कारण था, श्री नैयायिक प्राचीन परम्परा के अनुयायी तथा भारतीय धार्मिक विचार-धारा के पूर्णतः पक्षपाती व प्रबल समर्थक थे।

(३–अ)— 'संस्कृत–परीक्षोत्तीर्णच्छात्राणां नामादीनि'–शास्त्री परीक्षा क्रमांक ७२ "श्री कन्हैयालाल प्रश्नवरः साहित्ये तृतीयश्रेण्याम्" संवत् १९६७।
संस्कृत परीक्षोपाधि सूची सन् १९३३ ई० की संस्कृत पाठ्य-नियमावलि के अन्त में प्रकाशित है; 'परिशिष्ट २' में जो इस खण्ड के अन्त में संलग्न है, से देखी जा सकती है।

(३–आ)- आपका उपर्युक्त परिचय पं० श्री रामगोपालजी शास्त्री के सौजन्य से उपलब्ध हुआ है।

नैयायिकजी अपने बाल्यकाल से ही मेधावी तथा अध्ययनशील कर्मठ व्यक्ति थे। आपके पिताजी ने अपनी परम्परागत वृत्ति के अनुसार शिक्षित करने की दृष्टि से महाराज संस्कृत कालेज में आपको प्रविष्ट कराया। प्रखरबुद्धि एवं परिश्रमशील होने के कारण आपने अपनी वास्तविक रुचि का प्रदर्शन किया और विद्यार्थी जीवन में ही अपने गुरुओं के कृपापात्र बन गये। प्रवेशिका परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् आपने न्यायशास्त्र का अध्ययन प्रारम्भ किया। उस समय संस्कृत कालेज में श्री भाईनाथ ओझा मैथिल विद्वान् न्याय के प्राध्यापक थे। आपने न्याय का अध्ययन इन्हीं के चरणों में बैठकर प्रारम्भ किया और इसके पश्चात् श्री कालीकुमार तर्कतीर्थ (४–अ) से न्यायाचार्य की उपाधि प्राप्ति तक अध्ययन किया। इन्हीं के साथ श्री जीवनाथ ओझा से भी आपने न्याय विषयक ज्ञान प्राप्त किया था। आपने न्यायशास्त्री की परीक्षा संवत् १९६० में द्वितीय श्रेणि से तथा न्यायाचार्य की परीक्षा संवत् १९६४ में प्रथम श्रेणि से उत्तीर्ण की थी। (४–आ)

आपके जीवन की एक घटना उल्लेखनीय है, जिसने आपको जयपुर राज्य में आशातीत सम्मान प्राप्त कराया। यह घटना उस समय की है, जब जयपुर में संस्कृत का भाग्य-सूर्य परम उन्नतांश पर था तथा यहां विभिन्न शास्त्रज्ञ, शिरोमणि विद्वानों का अच्छा खासा जमघट था। नैयायिकजी को अपनी विद्वत्ता के कारण विद्वन्मण्डली में सम्मान तो बहुत मिलने लगा, परन्तु राजकीय सेवा-वृत्ति का शुभ अवसर नहीं मिला। कहा जाता है कि तत्कालीन प्रधानमंत्री बाबू संसारचन्द्र सेन के देहावसान पर बंगालियों के रीति रिवाज के अनुसार उनके श्राद्ध दिवस पर अनेक प्रसिद्ध बंगाली विद्वानों का आगमन हुआ। बंगाली विद्वान् परम्परागत न्यायशास्त्र के प्रौढ विद्वान् होते रहे हैं। इस अवसर पर उपस्थित बंगाली विद्वानों में एशियाटिक सोसायटी बंगाल के सम्मानित सदस्य एवं न्यायशास्त्र के विख्यात विद्वान् म०म० पं० श्री कामाख्यानाथ तर्कवागीश, 'वैशेषिक दर्शन' पर वैशेषिक सूत्र-विवृत्ति के रचयिता पं० श्री जयनारायण तर्कपंचानन तथा प्रख्यात विद्वान् श्री यदुनाथ सार्वभौम आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। यह विद्वन्मण्डली 'नदियाशान्ति' (बंगाल) की सुप्रसिद्ध मण्डली थी। बंगालियों की प्रथा के अनुसार दिवंगत तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्री संसारचन्द्र सेन के निवास स्थान पर एक विद्वद्गोष्ठी तथा शास्त्रार्थ सभा का आयोजन किया गया। शास्त्रार्थ के प्रसंग में नव्यन्याय के विशेष लोकप्रिय होने के कारण न्याय शास्त्र की सामान्य निरुक्ति पर शास्त्रार्थ होना निश्चित हुआ। पूर्वपक्षवादी के रूप में बंगालियों की ओर से श्री कामाख्यानाथ तर्कवागीश प्रमुख वक्ता चुने गये। उनकी शंकाओं का उत्तर देने के लिए जयपुर की ओर से श्री नैयायिकजी को चुना गया। अन्य बंगाली विद्वानों ने निर्णायक का पद संभाला और शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ। करीब एक घंटे तक पूर्वपक्षी विद्वान् श्री तर्कवागीश ने प्रश्न प्रस्तुत किए, जिनका उचित एवं चमत्कारी उत्तर सुनकर निर्णायक मुग्ध हो गये। जब श्री नैयायिकजी ने पूर्वपक्ष के रूप में प्रश्न उपस्थित करने का अवसर प्राप्त किया, तो उनके मीमांसा शास्त्र सम्मत श्राद्ध विषयक प्रश्नों ने उत्तरपक्षी विद्वान् को विचलित कर दिया। उनकी विलक्षण प्रतिभा एवं शास्त्रार्थ शैली से प्रभावित होकर निर्णायकों ने 'न्यायपरिषद सार्वभौम' तथा 'न्याय-रत्न' की उपाधियों से सम्मानित किया।

यह वृत्तान्त जब तत्कालीन महाराज सवाई माधवसिंहजी के पास पहुंचा तो वे अपने नगर के एक नवयुवक विद्वान् की इस विजय से हर्षित हुए। उन्होंने तत्कालीन शिक्षा संचालक बाबू श्री संजीवन गंगोली को आदेश

(४–अ)— म० संस्कृत कालेज के प्राचीन रेकार्ड—उपस्थिति पंजिकाओं के अनुसार श्री काली कुमार तर्कतीर्थ ८ जुलाई, १९०६ मे न्यायशास्त्र पढ़ाने लगे थे। उस समय श्री जीवनाथ ओझा तथा श्री भाईनाथ ओझा भी न्याय के प्राध्यापक थे। श्री जीवनाथ ओझा ३० मई, १९०८ तक रहे और २८ मार्च, १९१० को श्री तर्कतीर्थ दिवंगत हुए।

(४–आ)—शास्त्रिपरीक्षोत्तीर्णच्छात्राणां नामादीनि-क्रमांक ४४ "श्री कन्हैयालाल शर्मा दाधीच" आचार्यपरीक्षोत्तीर्णच्छात्राणां नामादीनि, क्रमांक १२ "श्री कन्हैयालाल शर्मा दाधीच।"

दिया कि वे ऐसे विलक्षण प्रतिभाशाली विद्वान् को अपने विभाग में स्थान दें। उन्हें आशंका थी कि कहीं ऐसा विद्वान् आजीविका न मिलने पर अन्यत्र न चला जाय। सौभाग्यवश उसी समय संस्कृत कालेज में श्री वसन्त शर्मा ओझा, जो न्यायशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् होने के साथ ही न्याय विभाग में प्रवक्ता भी थे, दिवंगत हो गये और एक स्थान रिक्त हो गया। इस रिक्त स्थान पर श्री नैयायिकजी की नियुक्ति के आदेश हुए। (४-इ) कुछ ही समय पश्चात् श्री कालीकुमार तर्कतीर्थ का भी निधन हो गया और आप न्यायशास्त्र के प्राध्यापक बना दिये गये। (४-ई) न्यायशास्त्र के प्राध्यापक पद पर आप सन् १९४३ तक कार्य करते रहे और सेवानिवृत्त होकर भी इस अध्ययन-अध्यापन प्रवृत्ति को स्वभाववश न छोड सके।

नैयायिकजी की विद्वत्ता से प्रभावित होने के कारण महाराज सवाई माधवसिंह ने इन्हें अपने निजी धार्मिक कार्यों में सुव्यवस्था की दृष्टि से व्यवस्थापक नियुक्त किया था। महाराज की धर्मनिष्ठा अपना एक विशेष महत्त्व रखती थी, इसीलिए वे सदा योग्य एवं सदाचारी ब्राह्मणों से श्रीमद्भागवत, रामायण, गोपालसहस्रनाम आदि के पारायण व अनुष्ठान कराया करते थे। ये सभी कार्य प्रायः श्री नैयायिकजी की देख-रेख में सम्पन्न होते थे व आपकी कार्यकुशलता से प्रसन्न होकर महाराज ने आपको राजपण्डित का सम्माननीय पद प्रदान किया। राज्यगत धार्मिक कार्यों के सुचारु रूप से संचालन, धार्मिक मर्यादाओं की स्थिति सुदृढ रखने एवं अन्य धार्मिक कार्यों के सम्बन्ध में शास्त्रीय व्यवस्था निर्धारण व प्रायश्चित्त आदि विधान के लिये महाराज श्री रामसिंह द्वितीय ने जिस मोद-मन्दिर नामक संस्था (धर्मसभा) की स्थापना की थी, आप इस संस्था के सम्मान्य अध्यक्ष नियुक्त किये गये और अन्तिम समय तक आप इसी पद पर विद्यमान रहे। वर्तमान जयपुर नरेश श्री सवाई मानसिंह द्वितीय के दत्तक रूप में ग्रहण आदि की क्रियायें आपकी ही देखरेख में सम्पन्न हुई थी। कुछ समय तक आप इनके धर्मशिक्षक भी रहे। इसके अतिरिक्त उनके संस्कारों में यज्ञोपवीत तथा सन्ध्योपासनादि कार्यों के संचालक भी रहे थे। श्री नैयायिकजी की दीर्घकालीन सेवा से संतुष्ट होकर राज्य सरकार ने आपको विश्रामवृत्ति (पेंशन) तथा धर्मसभा के अध्यक्षत्व के रूप में ५० रुपये मासिक की वृत्ति प्रदान की थी। आप चाँदपोल बाजार में विद्यमान सुप्रसिद्ध श्री रामचन्द्रजी के मन्दिर के महन्त भी थे। यह मन्दिर श्री नैयायिकजी को समस्त आर्थिक आय व सुविधाओं के साथ प्रदान किया गया था और आपके पुत्र श्री रूपनारायण शास्त्री न्यायाचार्य को श्री श्यामसुन्दरजी का मन्दिर प्रदान किया गया था। श्री रूपनारायण शास्त्री कुछ समय तक संस्कृत कालेज में अध्यापक रहे हैं।

आप १४ दिसम्बर, १९१५ से न्यायशास्त्र के प्राध्यापक पद पर नियुक्त हुए थे। (४-उ) आपके प्रमुख शिष्यों में राजगुरु स्वर्गीय सम्राट् गोपीनाथ शास्त्री, राजगुरु श्री कृष्णशरणदेव, आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रमुख राजगुरु श्री ध्रुवेन्द्र शास्त्री (जो सन्यास ग्रहण करने के पश्चात् श्री ध्रुवानन्द सरस्वती के नाम से विख्यात हुए हैं) पं० श्री नन्दकिशोर शास्त्री, भूतपूर्व प्राध्यापक, संस्कृत कालेज तथा श्री गोविन्दनारायण शास्त्री वर्तमान प्रिंसिपल संस्कृत कालेज के नाम उल्लेखनीय हैं। आप स्व० श्री चन्द्रदत्तजी ओझा, म.म. श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी,

---

(४-इ)— संस्कृत कालेज के प्राचीन उपस्थिति पत्रकों के अनुसार न्याय विभाग में श्री कालीकुमार तर्कतीर्थ के साथ श्री ओझा जीवनाथ और ओझा वसन्त शर्मा का नाम भी मिलता है। श्री वसन्त शर्मा ने १ जनवरी, १९०९ से १४ अगस्त, १९०९ तक केवल ७॥ साढे सात मास ही कार्य किया था। इसके पश्चात् २६ अगस्त, १९०९ से श्री नैयायिकजी का नाम है।

(४-ई)—उपर्युक्त उपस्थिति पत्रकों में सन् १९०९ के पत्रक में श्री कालीकुमार तर्कतीर्थ के नाम के सामने २८ मार्च, १९१० को दिवंगत होने का उल्लेख है।

(४-उ)- लिस्ट आफ एजूकेशनल आफिसर, करेक्टेड अपटू १ सितम्बर, १९३५, म० संस्कृत कालेज श्री कन्हैयालाल न्यायाचार्य, क्रमांक ३।

पं० श्री सूर्यनारायणजी शास्त्री व्याकरणाचार्य, पं० श्री मदनलालजी शास्त्री प्रश्नवर, भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री आदि विद्वानों की मण्डली के सदस्य थे। आपका देहान्त ७ मई, १९६४ तदनुसार वैशाख कृष्ण १० गुरुवार संवत् २०२१ को जयपुर में हुआ। भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री ने आपका स्मरण इस प्रकार किया है। (४-ऊ)

"न्यायशास्त्रशैलेभ्योऽथ भाईनाथनैथिलेभ्यो—
धीततर्कतन्त्रं नीतमन्त्रं प्रसमीक्षध्वम्
तत्तत्कालिकेभ्यो राजतन्त्रपरिचालकेभ्यो
गाढव्यवहारात्प्राप्तलाभमभिवीक्षध्वम्।
व्यंग्यावाग्रसिकमानुकूल्ये मित्रगोष्ठीप्रियं
स्वल्पप्रातिकूल्ये रक्तवदनं परीक्षध्वम्
बद्धसुहृद्भावं भूरि वैयाकरणानां गणे
नैयायिकवर्य तं कन्हैयालालमीक्षध्वम्॥"

आप यदाकदा संस्कृत पद्यों की रचना भी किया करते थे, जो संस्कृतरत्नाकर के प्राचीन अंकों में प्रकाशित हुए हैं। उदाहरण के लिए एक समस्यापूर्ति का पद्य प्रस्तुत है:—(४-ऋ)

'कल्पलतेव विद्या'
'कीर्ति' तनोति विमलां विविधप्रदेशे मानं विवर्द्धयति सन्तनुते मनीषाम्।
तापत्रयादिनिधना सुखमोक्षबीजा स्याराधिता त्रिदिवकल्पलतेव विद्या॥'

आपने लार्ड हार्डिंज की स्वास्थ्य कामना के लिए श्री गोविन्देव मन्दिर की प्रार्थना सभा में शुभकामना के रूप में कुछ पद्य प्रस्तुत किये थे, जो रत्नाकर के ७।११ माघ १९६९ में प्रकाशित हुए हैं। आपकी अनेक समस्यायें भी समय-समय पर प्रकाशित होती रही हैं।

आप वर्तमान समय के न्यायशास्त्र के विशिष्ट उल्लेखनीय विद्वान् थे।

---

५. श्री कन्हैयालाल व्यासोपाह्व

इनका वंश जयपुर नगर की स्थापना से पूर्व ही जयपुर-आमेर के कछवाहा शासकों के आश्रय में रहता रहा है। आपके पूर्वज आमेर के प्रसिद्ध मन्दिर श्री जगत्शिरोमणि में कथावाचन किया करते थे, इसीलिए इनके वंशज 'कथाव्यास' कहलाते रहे हैं। यह उपाधि संवत् १७४५ में प्राप्त होने का उल्लेख मिलता है। इस वंश में श्री नयनसुख व्यास नाम के एक विद्वान् सवाई जयसिंह तृतीय (१८७५-१८९१ संवत्) के आश्रित थे। इनके पिता सवाई श्री जगत्सिंह महाराज ने श्री व्यास को जयसिंहपुरा तथा विशनगढ़ (भाटियों का) में कुछ भूमि जागीर रूप में प्रदान की थी। आप अति सरल स्वभाव के विद्वान् थे। आपके पुत्र का नाम श्री मथुरानाथ व्यास था, जो इस वंश के

(४-ऊ)— 'जयपुरवैभवम्'—भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री, प्रकाशित संवत् २००४ सन् १९४७ पृष्ठ २५७ पद्य संख्या ६७।

(४-ऋ)— संस्कृत रत्नाकर (प्राचीनतम अंक) प्रथम आकर, द्वितीय रत्न, संवत् १९६१।

एक उल्लेखनीय विद्वान् रहे हैं। षट्शास्त्र-पारंगत श्री मथुरानाथ ने महाराज संस्कृत कालेज के प्रथम प्राचार्य (अध्यक्ष) श्री एकनाथ झा से अध्ययन किया था। आपने 'कुवलयानन्द' का शिखरिणी छन्द में अनुवाद कर गुरु दक्षिणा के रूप में श्री झा को समर्पित किया था। (५-अ)

आपका वंश-वृक्ष इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—
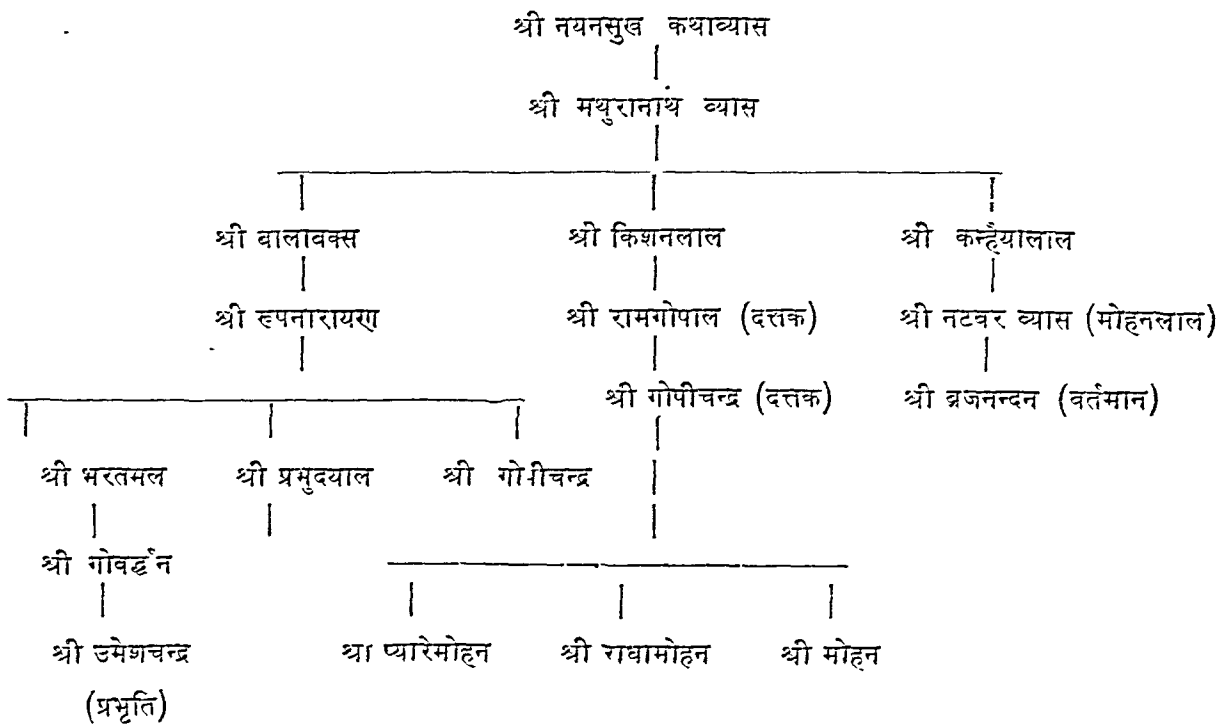
ऐसा प्रसिद्ध है कि जयपुर-आमेर आगमन से पूर्व आपके पूर्वज बादशाह के समय आगरे में मीरमुंशी थे। कुछ समय तक आमेर में आने के पश्चात् यहां के प्रधान अमात्य भी रहे। म० सवाई जयसिंह द्वितीय द्वारा अनुष्ठित अश्वमेध याग में आपके पूर्वजों का बहुत बड़ा योग था।

श्री कन्हैयालाल दाधीच (व्यासोपाह्व) अपने समय के उल्लेखनीय विद्वान् रहे हैं। आपने न्यायोपाध्याय तक महाराज संस्कृत कालेज जयपुर में श्री जीवनाथ ओझा तथा श्री भाईनाथ ओझा से न्यायशास्त्र का अध्ययन किया था। आपके पुत्र श्री नटवरलाल भी संस्कृत कालेज के न्यायशास्त्र विभाग के विद्यार्थी रहे हैं।

आप सुन्दर एवम् सुललित गीतियों के निर्माण करने में सिद्धहस्त थे। इनमें से कुछ गीतियां संस्कृत रत्नाकर के उन प्राचीनतम अंकों में उपलब्ध होती हैं, जिसका प्रकाशन सन् १९०४ में जयपुर निवासी कुछ विद्वानों के सत्प्रयास से प्रारम्भ हुआ था। इनका उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है—

१. अष्टपदी — संस्कृत रत्नाकर १।६ भाद्रपद संवत् १९६१
२. अष्टपदी — संस्कृत रत्नाकर १।८ कार्तिक संवत् १९६१
३. अष्टपदी — संस्कृत रत्नाकर १।९ मार्गशीर्ष संवत् १९६१ इत्यादि

(५-अ)— श्री मथुरानाथ व्यास का परिचय क्रमांक ९२ पर देखा जा सकता है।

आपकी विद्वत्ता का परिज्ञान निम्नांकित अष्टपदी से किया जा सकता है—

"द्रुतमवलोक्य रहसि वसन्तं नवनवनीत-सतृष्णम् ।
यादवकुलगुरु-गर्गमुनीश्वर-गीतगुणं श्री कृष्णम् ॥
किमिह करोषि गता निलयं न पश्यसि सुमुखि कथं सुतथन् । १
उलूखलोपरिबद्धनिजासन-जननीशंकितचित्तम् ।
करतलविनिहित-पूर्णकलाधरबिम्बाकृतिघृतवित्तम् ॥
कल्पितपंक्तिककपिकुलकेभ्यः कामं तद् वितरन्तम् ।
घृतपरिलिप्तमुखं चललोचनमोचनकौतुकवन्तम् ॥ ३
दधिपरिषिञ्चितनिजपदलक्षणलक्षितलीलास्तेयम् ।
जननीचरणकमलदरनिस्वनचकितमनसमभिधेयम् ॥
स्फुटगुणदूषणपरिणतिभूषण भूषिततनयमधीरम्
जननीजननीतं जनरंजनरंजननीलशरीरम् ॥" ४ इत्यादि

आप अपने समय के प्रसिद्ध कथावाचक होने के साथ ही उल्लेखनीय विद्वान् भी रहे हैं। (५-आ)

---

६. श्री कलानाथ शास्त्री

प्रवर्तमान कालीन संस्कृत-संस्कृति सेवकों में युवकवर्गीय श्री शास्त्री का नाम विशेषतः उल्लेखनीय है। आप वर्तमान युग के सुप्रसिद्ध विद्वान् कविशिरोमणि स्वर्गीय भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री के ज्येष्ठ पुत्र हैं तथा आपका जन्म १५ जुलाई, १९३६ को जयपुर नगर में हुआ है। आप प्राच्य एवं प्रतीच्य-उभयविध शिक्षा-निष्णात हैं। जहां एक ओर आपने व्याकरण विषय से सन् १९४८ ई० में उपाध्याय परीक्षा, साहित्य विषय से १९५० ई० में शास्त्री तथा साहित्य विषय से ही १९५२ ई० में आचार्य परीक्षा उत्तीर्ण की, वहां दूसरी ओर सन् १९५५ ई० में बी० ए० तथा १९५७ ई० में अंग्रेजी विषय से एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की है। आपको संस्कृत, हिन्दी एवं अंग्रेजी भाषा पर पूर्ण अधिकार है। आप इस समय राजस्थान सरकार के भाषा निदेशालय में निदेशक के रूप में कार्य कर रहे हैं।

आप सुप्रसिद्ध तैलंगभट्ट कविकलानिधि श्री कृष्ण भट्ट के वर्तमान वंशज हैं, जो जयपुर संस्थापक सवाई जयसिंह द्वितीय के समय जयपुर आये थे और राज-सम्मानित थे। आप का वंश-वृक्ष इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

(५-आ)- आपका उपर्युक्त परिचय पं श्री नन्दकुमार शास्त्री के सौजन्य से उपलब्ध हुआ है। उपर्युक्त उद्धरण श्री कलानाथ शास्त्री के अनुग्रह से प्रस्तुत किया जा सका है।
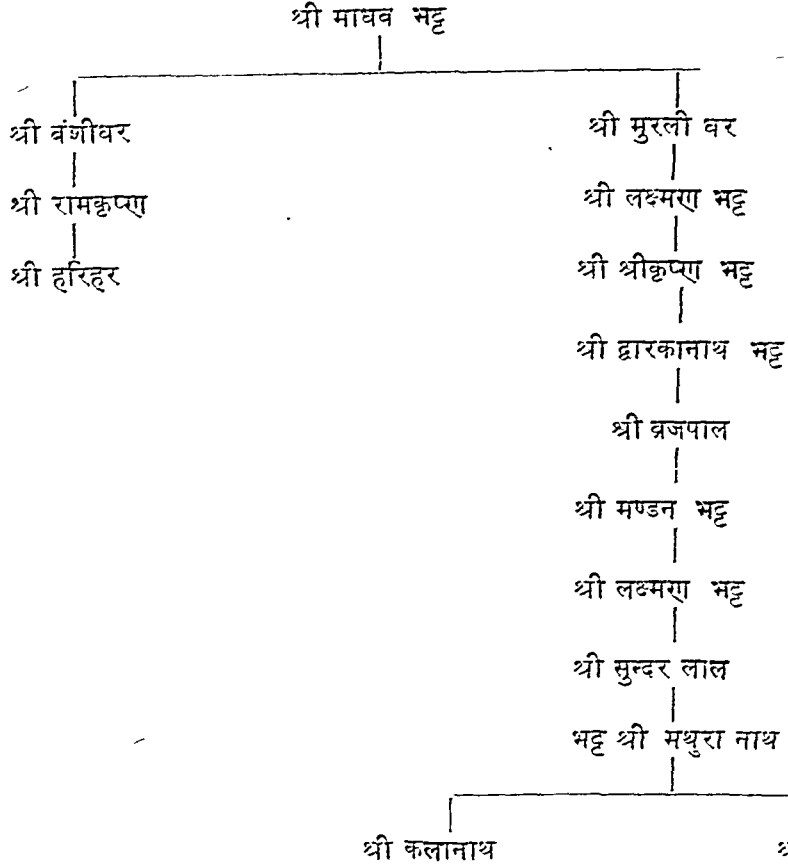
आपके पूर्वज देवर्षि की उपाधि से विभूषित रहे हैं, जिसका उपयोग अब तक करते आ रहे हैं। उपर्युक्त वंशावलि में उल्लिखित विद्वानों में श्री हरिहर, श्री श्रीकृष्ण शर्मा, श्री द्वारकानाथ, आदि संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् हुए हैं, जिनका उल्लेख जयपुर की संस्कृत-साहित्य को देन-१६६६-१८३४ ई. शोध-प्रबन्ध में किया जा चुका है। श्री व्रजपाल, श्री मण्डन प्रभृति विद्वान् व्रजभाषा और हिन्दी के क्षेत्र में विख्यात रहे हैं। श्री मथुरानाथ शास्त्री वर्तमान युग के उल्लेखनीय विद्वान् थे, जिनका हिन्दी और संस्कृत दोनों भाषाओं पर समान अधिकार था। (६–अ)

श्री शास्त्री ने संस्कृत कालेज के नियमित छात्र के रूप में आचार्यपर्यन्त अध्ययन किया है। आपके गुरुओं में स्वनामधन्य भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री, श्री जगदीश शर्मा साहित्याचार्य, श्री कलाधर भट्ट, श्री वृद्धिचन्द्र शास्त्री प्रभृति विद्वान् उल्लेखनीय हैं।

संस्कृत अध्ययन के पश्चात् आपने शुद्ध आंग्ल भाषा का अध्ययन स्थानीय महाराजा कालेज में नियमित छात्र के रूप में किया। इसके पश्चात् सन् १६५७ में एम० ए० उत्तीर्ण कर 'आप अंग्रेजी विभाग' महाराजा कालेज, जयपुर में ही व्याख्याता बन गये। राजकीय सेवा के कारण आपको कोटपूतली और सीकर महाविद्यालयों में व्याख्याता के रूप में
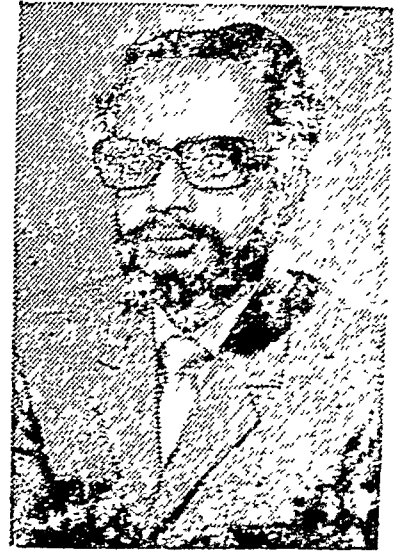
(६–अ)— भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री का परिचय क्रमांक ६१ पर उपलब्ध है।

कार्य करना पड़ा। दिनांक ३० सितम्बर, १९६५ से आप सहायक निदेशक, भाषा विभाग के पद पर कार्य कर रहे हैं। आपके अध्यापन काल में श्री सज्जनराज शाह (आई० ए० एस०) श्री शंकरराव देशमुख (आकाशवाणी, इन्दौर) डा० श्री रामकृष्ण शर्मा (स० मानसिंह चिकित्सालय, जयपुर) आदि शिष्य रूप में उल्लेखनीय हैं।

रचनात्मक कार्य की दृष्टि से आपका जयपुर के संस्कृत साहित्य को उल्लेखनीय योग प्राप्त हुआ है। आपने अपने पितृचरण के साथ सहसम्पादक के रूप में जयपुर से ही प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'भारती' का सम्पादन किया है। आपके अनेक लेख, कवितायें आख्यायिका, नाटक आदि उपलब्ध हैं, जिनका विवरण इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

(क) संस्कृत निबन्ध—

क्रम	शीर्षक	पत्रिका	वर्ष	अंक
१.	विफल-प्रयत्नः	संस्कृत रत्नाकर	१२	२–३
२.	संस्कृत भाषा राजभाषा भवेत्	,, ,,	१२	९
३.	कथं स्यात् संस्कृतोन्नतिः	,, ,,	१२	१०
४.	संस्कृतपत्राणामुपयोगितावादः	,, ,,	१३	११
५.	राष्ट्र भाषा-विषये विचित्रसम्मतिः	,, ,,	—	—
६.	व्यक्तिदर्शनम् (जीवनी)	मालवमयूर पत्रिका	२	६
७.	संस्कृतिरेव राष्ट्रीयताया अवलम्बः	कालेज पत्रिका	१९५५ ई०	
८.	देववाण्याः कृते क्रान्तिरपेक्ष्यते	भारती	६	८
९.	भारतीयो वैज्ञानिकः श्री जगदीशचन्द्रः वसुः	भारती	२	१
१०.	लेखान् कथं लिखेमः	,,	४	३
११.	आंग्लसैनिकस्य दृशि संस्कृतम्	,,	४	८
१२.	भट्ट श्री मथुरानाथशास्त्रिणो जीवनम्०	,,	१४	११
१३.	कालिदासः कदाविर्बभूव	कालेज पत्रिका	१९५६ ई०	
१४.	संस्कृतं नास्ति मृतभाषा	भारती	८	४
१५.	संस्कृतस्याभिमता प्रगतिः	,,		
१६.	अपि तृतीयं विश्वयुद्धं सम्भाव्यते	,,	८	१०
१७.	महाराणाप्रतापस्य असाधारणता	,,	२	८
१८.	महाकवेः रवीन्द्रस्य स्मृतये श्रद्धांजल्यः	,,	११	९ इत्यादि

(ख) संस्कृत कहानियां

क्रम	शीर्षक	पत्रिका	वर्ष	अंक
१.	धर्मक्षेत्रे	संस्कृत रत्नाकर	१३	४
२.	कुरुक्षेत्रे	संस्कृत रत्नाकर	११	६
३.	विनाशकाले विपरीतबुद्धिः	मालवमयूरः	१९४९ ई०	
४.	शत्रूमित्रे वा	अभिनव कथा निकुंजः (वाराणसी से प्रकाशित)		

(ग) विनोदपूर्ण लेख—			
१. मा च याचिष्म कंच।	संस्कृत प्रतिभा	७	१
२. कूपे भंगा कथं पतिता	भारती	१०	५
(घ) ललित निबन्ध—			
१. अहमपि लेखको भविष्यामि	भारती	३	६
२. फाल्गुन प्रमोद-गोष्ठी	,,	६	६
३. वाक्कीलस्य वाक्कीलनम्	,,	६	६
४. विनोद वाटिका	,,	५	६
५. विचित्रो विच्छेदः	,,	४	१०
६. नामकरणेऽपि नवीनता	,,	८	६
७. पण्डितरामानन्दस्य पत्रम्	,,	८	६ इत्यादि
(ङ) संस्कृत पद्य (काव्य)—			
१. वसन्तः सोऽयम्	भारती	४	४
२. वर्षाः समुपागताः	,,		
३. फेनकाष्टकम्	,,	१०	१०
४. जनगणमनसो नेतुर्वाणी	,,	११	१ इत्यादि

"जीवनस्य पृष्ठद्वयम्" (भारती ६।३,४,६–१२, १०।१,६,=१६ अंकों में प्रकाशित) एक धारावाहिक आख्यायिका है, जिसका समालोचनात्मक विश्लेषण तृतीय खण्ड में प्रस्तुत किया जायेगा। आकाशवाणी के जयपुर केन्द्र से अब तक ५० से अधिक वार्तायें विभिन्न विषयों पर प्रसारित हो चुकी हैं। आप रेडियो रूपक लेखक होने के साथ ही रेडियो रूपान्तरकार भी हैं। संस्कृत भाषात्मक ६ मौलिक रेडियो रूपक, जो विभिन्न तिथियों में जयपुर केन्द्र से प्रसरित हो चुके हैं, उल्लेखनीय हैं, जिनका विवेचन तृतीय खण्ड में देखा जा सकता है। इन दिनों आप अपने पितृचरण की अप्रकाशित रचनाओं का सम्पादन कर उन्हें प्रकाशित करने में सचेष्ट हैं।

---

७. श्री कल्याणदत्त शर्मा

जयपुर राज्य के निवासी श्री शास्त्री का जन्म कार्तिक कृष्णा १४ संवत् १६७७ को बांदीकुई में हुआ था। आपके पिता का नाम पं० श्री छोटेलाल शर्मा है। आप महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर में प्रवेश प्राप्त कर प्रवेशिका परीक्षा से ज्योतिषाचार्य तक नियमित छात्र रहे हैं। इसके पश्चात् कुछ वर्षों तक आपने उक्त कालेज के स्कूल विभाग में गणित का अध्यापन भी किया है।

आपने पं० श्री विन्ध्याचल प्रसाद जी ज्योतिषाचार्य, पं० श्री वृद्धिचन्द्रजी शास्त्री प्रभृति विद्वानों से ज्योतिष एवं धर्मशास्त्र का विशिष्ट ज्ञान प्राप्त किया है। विगत १०–१२ वर्षों से आप भारत-प्रसिद्ध ज्योतिष यन्त्रालय के अधीक्षक का कार्य कर रहे हैं।

आपने 'मिश्र यन्त्र' का निर्माण किया है। इस यन्त्र द्वारा किसी भी अक्षांश पर स्थित नगर का स्थानीय समय सरलता से जाना जा सकता है। इसके अतिरिक्त इस यन्त्र से अभीष्ट काल का उन्नतांश ज्ञान, मध्यान्हकालीन उन्नतांश ज्ञान तथा सूर्योदय-सूर्यास्त चर, स्थानीय अक्षांस, क्रान्ति आदि पदार्थों का ज्ञान हो जाता है। यह ज्योतिष शास्त्र का विषय है।

आप अपने वंश में उल्लेखनीय विद्वान् हैं। इस समय जयपुरीय ज्योतिष यन्त्रालय के अधीक्षक का कार्य करते हुए ज्योतिष शास्त्रीय अन्यान्य शोध कार्यों में संलग्न हैं। आप आकाशवाणी के जयपुर केन्द्र से प्रसारित होने वाले संस्कृत भाषात्मक विभिन्न कार्यक्रमों में सोत्साह भाग लेते हैं। (७-अ)

---

८. पं० श्री कल्याणवल्लभ शर्मा

दाधीच वंशोत्पन्न जयपुर नगर के वयोवृद्ध विद्वान् श्री शर्मा एक मौन साधक हैं। आपका जन्म माघ कृष्णा ६ संवत् १९५६ तदनुसार २३ जनवरी, १९०० को जयपुर नगर में ही हुआ था (८-अ) आपके पिता स्वनामधन्य पं० श्री गंगावल्लभजी थे, जो संस्कृत कालेज के प्रवेशिका विभाग में अध्यापक थे। श्री शर्मा ने व्याकरण विषय लेकर उपाध्याय परीक्षा उत्तीर्ण की थी कि पारिवारिक समस्याओं से अभिभूत होकर आपको अध्यापन कार्य करना पड़ा। आप १६ नवम्बर, १९१६ से महाराज संस्कृत कालेज के स्कूल विभाग में अध्यापक के रूप में नियुक्त हुए। आप सामान्य संस्कृत पढाया करते थे। आपकी विशेष रुचि साहित्य और व्याकरण विषयों के अतिरिक्त तन्त्र-मन्त्रात्मक ग्रन्थों में अधिक रही है। आप म०म० श्री दुर्गाप्रसाद द्विवेदी के प्रिय शिष्य रहे हैं। आपने कालेज छोडने के पश्चात् भी स्वतन्त्र रूप से श्री द्विवेदी के सान्निध्य में रह कर ज्ञानार्जन किया है। यद्यपि आप शास्त्री परीक्षोत्तीर्ण नहीं है, परन्तु आपकी ज्ञान गरिमा किसी भी आचार्य परीक्षोत्तीर्ण से न्यून नहीं कही जा सकती। आपका ज्ञान गहन व गम्भीर है। व्याकरण जैसे गम्भीर व शुष्क विषय पर आपका पूर्ण अधिकार है। आप संस्कृत कालेज के स्नातक और अध्यापक रहे हैं।

म०म० श्री द्विवेदी ने सन् १९११ से संस्कृत कालेज का प्राचार्यत्व-कार्य प्रारम्भ किया था और सन् १९३६ तक उक्त पद पर आसीन थे। श्री शर्मा का सेवाकाल १९१६ से प्रारम्भ होता है। इस प्रकार आपने अपनी युवावस्था के उन अमूल्य क्षणों को श्री द्विवेदी की सेवा में रह कर व्यतीत किया। आप श्री द्विवेदी के ग्रन्थ लेखन कार्य में पर्याप्त सहयोगी रहे हैं। सुन्दर अक्षर होने के कारण आप उनके ग्रन्थों की प्रतिलिपियां भी किया करते थे। श्री द्विवेदी के उल्लेखनीय ग्रन्थ "चातुर्वर्ण्य शिक्षा" का प्रकाशन सम्बन्धी कार्य आपकी सहायता से ही सम्पन्न हुआ था। इस तथ्य को स्वयं श्री द्विवेदीजी ने स्वीकार किया है। (८-आ)

"अथ च श्रुतिशेखरावरोहाप्यापादनम्रा परागमहिताप्यापरागमहिता सुमनोभिरामाप्यसुमनोभिरामा विश्वम्भरामोदवहा वैजयन्तीव सह वेददृष्टिरियं चातुर्वर्ण्य शिक्षा समानांकास्माभिः परगुणसारेण गुम्फिता लेखनेन

(७-अ)— आपका उपर्युक्त संक्षिप्त परिचय स्वयं प्रदत्त जानकारी पर आधारित है। इन पंक्तियों के लेखक को अपनी प्रारम्भिक शिक्षा के कुछ वर्ष संस्कृत कालेज के नियमित छात्र के रूप में आपके शिष्य रूप में व्यतीत करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। अब आप सेवा निवृत्त हैं।

(८-अ)— लिस्ट आफ एजूकेशनल आफिसर्स करेक्टेड अप्टू १ सितम्बर, १९३५, महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर, 'पण्डित' में अंकित तिथि के आधार पर।

(८-आ)— 'चातुर्वर्ण्य शिक्षा' उपोद्घात, पृष्ठ ३७ 'ग्रन्थग्रन्थप्रयोजने' शीर्षक।

संशोदेन शोधनेन व्यापारेण दाधीचपण्डितेन कल्याणवल्लभशर्मणा समस्कारीत्येनं विद्याविनयावदातमनुरूपेण "शास्त्रीपदेन" संयोजयन्तो (अ) स्याः पुस्तिकायाः समृद्ध्यै महेश्वरान् निर्व्याजकारुण्यविकस्वरान्.........
प्रार्थयामहे।" (८-इ)

आप एक उच्च कोटि के विद्वान् हैं, इसीलिये महामहोपाध्याय श्री दुर्गाप्रसाद द्विवेदी ने आपकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर आपको शास्त्री की उपाधि से सम्मानित किया। आपने श्री द्विवेदी की अन्यान्य रचनाओं को भी सम्पादित कर प्रकाशित होने में सहयोग किया है। इनमें 'साहित्यदर्पण' की 'छाया' नामक टीका के चतुर्थ, पंचम व षष्ठ संस्करण का संपादन व प्रकाशन, 'दशकण्ठवध' चम्पूकाव्य सम्पादन (यह काव्य राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर से कुछ वर्षों पूर्व प्रकाशित हो चुका है), 'दुर्गा पुष्पांजलि' ग्रन्थ (८-ई) का संशोधन व सम्पादन. ज्योतिष-शास्त्रीय ग्रन्थों में 'उपपत्तीन्दुशेखरः' (शिरोमणि टीका) के क्षेत्रादि निर्माण लेखन आदि प्रसिद्ध हैं। इन ग्रन्थों में साहित्यदर्पण की अन्तिम पीठिका दर्शनीय है, जिसमें श्री शर्मा का उल्लेख हुआ है। इनके अतिरिक्त 'भारतीय सिद्धान्तादेशः' (प्रकाशित), 'भारत-शुद्धिः' (अप्रकाशित), 'भारतालोकः' (अप्रकाशित) का संशोधन व वृत्ति आदि लेखन कार्य भी उल्लेखनीय हैं। (८-उ)

एक विद्वान् के सान्निध्य में रहकर श्री शर्मा ने आगम, तन्त्र मन्त्र साहित्य एवं अन्य विषयों के गूढ ग्रन्थों का गहन अध्ययन कर असाधारण योग्यता प्राप्त की है। जयपुर के संस्कृत साहित्य के इतिहास में आपका उल्लेखनीय योगदान माना जा सकता है। अब आप दिवंगत है।

---

९. श्री काशीनाथ द्राविड़

श्री शास्त्रीजी जयपुर नगर के विद्वानों में सुप्रसिद्ध रहे हैं। आप महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर के प्रवेशिका विभाग में व्याकरण के अध्यापक थे। आप विद्यार्थियों को व्याकरण शास्त्र इस शैली से पढाया करते थे कि वह उस विषय को कभी भी भूलता नहीं था। आपके जीवन चरित्र के सम्बन्ध में कोई विशेष जानकारी उप-

(८-इ)— चातुर्वर्ण्यशिक्षा के मुखपृष्ठ पर छपा है—"चातुर्वर्ण्यशिक्षा वेददृष्ट्या समेता, जयपुर महाराजाश्रितेन सत्संप्रदायाचार्येण महामहोपाध्याय श्री दुर्गाप्रसाद द्विवेदेन निरूपिता तदन्तेवासिना कल्याणवल्लभ शास्त्रिणा दाधीचेन संस्कृता। वैक्रमाब्दाः १९८३. सा च लक्ष्मणपुरे नवलकिशोर मुद्रणालये मुद्रिता प्रकाशिता च"। श्री शर्मा का कथन है कि उक्त रचना के पृष्ठ संख्या ३५४ से प्रारम्भ होने वाला 'सप्तपूरणी' अध्याय आपका स्वयं लिखित है। इस ग्रन्थ के चित्र भी आपने तैयार किये हैं।

(८-ई)— इसके अतिरिक्त दशकण्ठवध व लखनऊ से प्रकाशित उपपत्तीन्दुशेखर आपके सहयोग से प्रकाशित हुए हैं।

(८-उ)— उपर्युक्त इन तीन ग्रन्थों में प्रथम व द्वितीय ग्रन्थ का संशोधन तथा तृतीय 'भारतालोक' पर वृत्तिलेखन कार्य आपकी लेखनी से हुआ है। ऐसा स्वयं श्री शर्मा का कथन है।

लब्ध नहीं होती। केवल इतना ही कहा जा सकता है कि आप दतिया नामक प्रान्त से यहां आये थे तथा संस्कृत कालेज के तत्कालीन अध्यक्ष श्री लक्ष्मीनाथ शास्त्री द्राविड़ के सम्बन्धी थे। कविशिरोमणि भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री ने आपके विषय में लिखा है:—(९-अ)

"एते हि संस्कृत-कालेजे प्रवेशिकाप्रधान श्रेणौ व्याकरण-काव्याध्यापका आसन्। सुदृढाभ्यासद्वारा विद्यार्थिनः परिश्रमपूर्वकमपाठयन्निमे। दतियाप्रान्तादुपागता एते। इमे हि गुरुवराणां श्री लक्ष्मीनाथशास्त्रिचरणानां सम्बन्धिनोऽभवन्। गुरुपितामहानां काशीनाथशास्त्रिणां पुत्री 'मंगलाबाई नाम्नी आसीत्। एतस्याः पुत्रीं भाऊशास्त्री परिणीतवान्, यो हि श्रीकाशीनाथचरणानां लघुभ्रातासीत्।"

श्री लक्ष्मीनाथ शास्त्री की पैतृस्वस्रेयी (भूवा की लड़की बहिन) श्री शास्त्री के कनिष्ठ भ्राता श्री भाऊ शास्त्री की पत्नी थी अर्थात् इनकी भ्रातृपत्नी। संभवतः श्री लक्ष्मीनाथ शास्त्री के इस सम्बन्ध के कारण ही आपका जयपुर आगमन हुआ होगा। आप अपने समय के उल्लेखनीय विद्वानों में रहे हैं, क्योंकि राजवैद्य श्री कृष्णराम भट्ट ने जयपुर विलास में आपका सादर स्मरण किया है:—(९-आ)

"जीयादजस्रं जिनपाठशालागुरुः गुरुप्रीतिचरुर्गुरुश्रीः।
भंगाप्रकाशी कविरेष काशीनाथः सनाथः प्रततैर्यशोभिः।।"

आप दिगम्बर जैन संस्कृत कालेज के प्रधानाचार्य थे—यह उपर्युक्त इस पद्य से भी सिद्ध होता है। (९-इ)। संस्कृत रत्नाकर के प्राचीनतम अंकों में प्रकाशित आपके अनेक पद्यों के अन्त में आपके नाम के साथ 'जिनपाठशालागुरुः' शब्द मिलता है। आपका समय १८८५ई० के लगभग सिद्ध होता है।

आपने दिगम्बर जैन संस्कृत महाविद्यालय में १ जुलाई, १८८५ से २८ फरवरी १८९३ तक प्रधानाध्यापक के पद पर कार्य किया था और फिर संस्कृत कालेज के प्रवेशिका विभाग में व्याकरणाध्यापक के पद पर। कविशिरोमणि भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री ने आपका स्मरण इस पद्य द्वारा किया है:—(९-ई)

"व्याकरणाधानात्यदन्तेवासिमानसेषु
प्रोद्भासितसंस्कृतागण्यमार्गा ये समर्ह्यन्ते।
कविताविमर्शे सानुरागः शब्दशास्त्रपरा-
मर्शे नानुमेनिरे गरिष्ठबुधवर्य ते।
मंजुनाथव्युत्पत्तेः प्रवेशहेतवस्तेऽभव-
न्येषामुपदेशगिरः प्रायो नातिचर्यन्ते।
सरलतयैव सुप्रकाशीकृतदेवगिरः
काशीनाथशास्त्रिमहाभागा मुहुः स्मर्यन्ते।।"

भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री, म०म० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, श्री सूर्यनारायण शास्त्री व्याकरणाचार्य, राजगुरु चन्द्रदत्त ओझा प्रभृति विद्वान् आपके शिष्य रहे हैं। राजगुरु श्री नारायण भट्ट पर्वणीकर के आप अभिन्न मित्र थे। श्री पर्वणीकरजी ने आपका अनेक स्थानों पर उल्लेख किया है। "स्वमित्रश्लोकशतकसंग्रहः" में आपके पद्यों का संग्रह भी उपलब्ध होता है। एक पद्य उद्धृत है, जिसमें भगवती की स्तुति है:—(९-उ)

(९-अ)— "जयपुरवैभवम्"—भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री, नागरिकवीथी-सुधीचत्वरः पृ० २४८-२४९।
(९-आ)— "जयपुरविलास काव्यम्"—श्री कृष्णराम भट्ट पंचम उल्लास पृष्ठ ५४ पद्य सं० ५६।
(९-इ)— श्री दि० जैन सं० कालेज, जयपुर से प्राप्त प्रमाण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आप उक्त संस्था के प्रथम प्रधानाध्यापक थे। देखिये परिचय खण्ड अ० ३ (ख)
(९-ई)— "जयपुरवैभवम्"—भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री, सुधीचत्वरः पद्य सं० ५६ पृष्ठ २४८।
(९-उ)— "स्वमित्रश्लोकसंग्रहः"—श्री नारायण भट्ट पर्वणीकर, बस्ता नं० ११ अव्य श्री पर्वणीकर संग्रहालय, जयपुर—अपूर्ण)—पत्र संख्या ४।

"शृङ्गारादिरसप्रकाशितमहाऽलंकारशास्त्रान्तर—
क्रीडत् सत्कविवर्ण्यमानकविता-साम्राज्यदीक्षागुरुः।
शब्दार्थे प्रतिभाविशेषजननी वक्त्रारविन्दे सतां
प्रोद्यच्छारदचन्द्रसुन्दररुचिर्विद्योततां भारती ॥"

इस संग्रह में श्री पर्वणीकरजी ने अपने सभी मित्रों के पद्यों का संकलन कर प्रस्तुत किया है। एक अन्य रचना 'स्फुटश्लोकसंग्रहः' में आपके पद्य इस प्रकार संकलित हैं:—(९-ऊ)

"पर्वणीकरवंशात्मजश्रीनारायणेन हि।
काशीनाथकृताः श्लोकाः लिख्यन्ते बोध-हेतवे ॥"

आपकी कोई स्वतन्त्र रचना प्रकाशित रूप में उपलब्ध नहीं है। केवल कुछ मुक्तक पद्य व समस्या-पूर्तियां संस्कृत रत्नाकर के प्राचीन अंकों में (सन् १९०४–१९११ ई०) प्रकाशित हुए हैं। उदाहरण के लिए एक पद्य प्रस्तुत है:—(९-ऋ)

"नाना चित्रविचित्रपुष्पसुरभिप्रायाः प्रमोदापहा
आक्रीड़ा परितो विभान्ति मुदितैः पुंस्कोकिलैः कूजितम्।
श्रीरामोत्सवचण्डिकार्चनमहालंकार-भूषायिता
वर्तन्ते भुवि सम्प्रति प्रतिदिशं वासन्तिकाः वासराः ॥"

इसी प्रकार एक नतनोत्प्रेक्षा का पद्य देखिये—

"जापान-रूस-भटयोः समरे प्रवृत्ते मञ्चूरियाख्यरणभूमितलेऽतिभीष्मे।
भित्वा भटा मिहिरमण्डलमिन्दुलोकं गच्छन्ति तत्कृतबिलं परिदृश्यते नः ॥"

संस्कृत रत्नाकर के प्राचीन अंकों में आपकी निम्नांकित समस्यायें प्रकाशित हुई हैं—

१) विद्यार्जने के गुणाः १।१ (सं० १९६१)
२) कल्पलतेव विद्या १।२
३) भवति विकृतिर्नैव महताम् १।३
४) न दोषा गण्यन्ते मधुर-वचसां कापि कृतिभिः १।४
५) वर्षा मनः कर्षति १।५
६) नये च शौर्ये च वसन्ति संपदः १।६
७) सतां माने म्लाने मरणमथवा दूरसरणम् १।७
८) शरदियं समुपैति सुखास्पदम् १।८
९) नावश्यायैः पयसि सरसां दूयते पुण्डरीकम् १।१०
१०) वासन्तिकाः वासराः १।१२
११) नवनवगुणराशी प्रायशः सर्वलोकः १।११
१२) नूतनोत्प्रेक्षाः १।१२ इत्यादि

आप जयपुर के संस्कृत साहित्य के इतिहास में उल्लेखनीय विद्वान् रहे हैं।

(९-ऊ)— "स्फुटश्लोकसंग्रहः", वही।

(९-ऋ)— संस्कृत-रत्नाकर, प्रथम आकरः रत्नम्, १२ जयपुरनिवासविद्वद्मण्डल द्वारा संपादित, फाल्गुन शुक्ल १५ शाके १८२६ (संवत् १९६१) श्री कलानाथ शास्त्री के सौजन्य से प्राप्त अंक।

१०. श्री कुन्दनराम वैद्यः

भट्टमेवाड़ा जातीय प्रसिद्ध वैद्य परिवार का जयपुर के संस्कृत साहित्य में योगदान उल्लेखनीय है। अपने वंश का परिचय प्रस्तुत करते हुए श्री देवेन्द्रप्रसाद भट्ट ने लिखा है कि यह वंश मेवाड़ भूमि से निकल कर अनेक स्थानों पर भ्रमण करता हुआ जयपुर पहुंचा था। कहा जाता है कि सन् १६३२ में हल्दीघाटी के संग्राम के पश्चात् मेवाड़ से अनेक परिवार सुरक्षा की दृष्टि से अपनी मातृभूमि छोडकर अन्यत्र चले गये थे। इन परिवारों में स्वातन्त्र्य यज्ञ के ऋत्विज वीर नागदा ब्राह्मणों का भी एक विशाल समूह था, जो उत्तर गुजरात में जा बसा। ये नागदा ब्राह्मण ही भट्ट कहलाते थे। चूंकि ये लोग मेवाड़ के भट्ट थे, अतः भट्टमेवाड़ा कहलाये। राजवैद्य श्री कृष्णराम भट्ट ने अपनी रचना 'होला महोत्सवः' भाण में निम्नांकित महत्त्वपूर्ण जानकारी प्रस्तुत की है:—

"ब्राह्मणत्वेन विख्याता जातिरस्माकमेधने..............पुरा मेवाडभूमीन्द्रस्वदेशोन्नतिकाम्यया....... एकलिंगास्पदं भट्टमेवाड़ाग्रसरो द्विजः...........इष्टप्रसादान्मेवाडो नागदो द्विजसत्तमः...........तदारभ्य स्थिता भट्टमेवाड़ा नागदा वयं.... ......श्रीलिंगेन समाज्ञप्ता गुर्जरे स्थितिमादधुः।। पूते साभ्रमतीमंगैरहमदाबादपत्तने। शतशो निवसन्त्यस्मत् सम्प्रदायस्थिताः द्विजाः. ॥........"

भट्टमेवाड़ा जाति के मूल पुरुष श्री लक्ष्मीरामजी व्यास अहमदाबाद में राजा महता की पोल में निवास करते थे। इनके आयुर्वेद चमत्कार को सुन कर जयपुर महाराज सवाई प्रतापसिंह (१७७८-१८०३ ई०) ने अपनी राजधानी में आपको सम्मानपूर्वक आश्रय दिया और इसके पश्चात् आपका वंश यहीं का स्थायी निवासी बन गया। कहा जाता है कि महाराज प्रतापसिंह ने "प्रतापसागर" व "अमृतसागर" नामक आयुर्वेद ग्रन्थ का प्रणयन आपके सहयोग से ही सम्पन्न किया था। श्री कृष्णराम भट्ट के पुत्र व्यासोपाख्य राजवैद्य श्री गंगाधर भट्ट ने "सिद्धभैषजमणिमाला" के प्रथम संस्करण की भूमिका में लिखा है—

"तत्र श्रीमन्महाराजाधिराज-श्रीप्रतापसिंहदेवराज्यसमये (अ) धीतायुर्वेदो गुर्जरभूमिनिर्जरान्तर्गत-भट्टमेवाडजातीयः स्वयशः प्रख्यापनकृतमतिः लक्ष्मीरामनामाः सुमतिरहमदाबादनामकप्रसिद्धपुटभेदनादाजगाम। सत्यं च रोगि-नैरोग्य-संपादितप्रसिद्धिः भूमिपतेरपि सम्मानमवाप। अथ लल्लुरामनामा तदात्मजः पितृसमान एवाल्पेनैव कालेन महाराजाधिराज-प्रान्तराजवैद्यप्रतिष्ठः श्रीयशसामेकं निधानमभवत्। अथ तस्य पौत्रः श्री वैद्य कुन्दनरामः पुत्रः श्री कृष्णरामनामा च मे पितासीत्...............।"

आपका वंशवृक्ष इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—(१०-अ)

श्री लक्ष्मीराम भट्ट (स० प्रतापसिंह कालीन)

- श्री उदयराम
  - श्री गोविन्दराम
    - श्री मणिलाल
- श्री लल्लूराम (१८५५-१९३० सं०)
  - श्री कुन्दनराम (१८८५-१९३७ सं०)
    - श्री कृष्णराम (१९०५-१९५४ सं)
      - श्री गंगाधर भट्ट (१९३२-१९७४ सं)
        - श्री नरहरि भट्ट (१९५०-२०१३सं)
          - श्री देवेन्द भट्ट (वर्तमान)
    - श्री हरिवल्लभ (१९२३-१९७७)
      - श्री शंकरप्रसाद (१९७१-१९९४)
        - ————
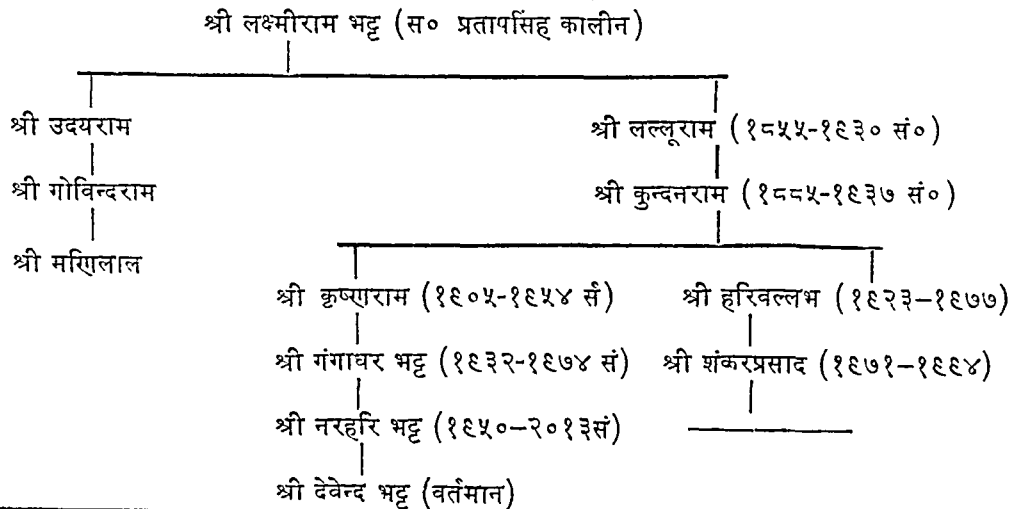
(१०-अ)- यह वंशावली श्री देवेन्द्रप्रसाद भट्ट के सौजन्य से प्राप्त हुई है।

श्री कुन्दनराम के पिता का नाम श्री लल्लूराम भट्ट तथा पितामह का नाम श्री लक्ष्मीराम भट्ट था। इसकी पुष्टि के लिये श्री कृष्णराम भट्ट के "जयपुरविलास" की भूमिका से निम्नांकित पद्य उपस्थित किये जा सकते हैं:—(१०-आ)

"तत्रासीद् भट्टमेवाड़ो गुर्जरो भूमिनिर्जरः।
चन्द्रोज्ज्वलयशः श्रीमांल्लल्लूरामाभिधो भिषक् ॥
रोगनिग्रहनिश्चिन्तजनगीतमहामहाः।
ततः श्रीकुन्दनः कुन्दकीर्तिः सूनुरजायत ॥
यस्मै श्रीरामसिंहाख्यो राजा कूर्मकुलेश्वरः।
दत्तवान्पाठशालायामुच्चकैर्वैद्यकासनम् ॥
वैद्यवाचस्पतेस्तस्य त्रिवारोढत्रियोषितः।
प्राप्तलक्ष्मीविलासस्य द्वावभूतां सुतौ कवी ॥
तत्र श्रीकृष्णरामोऽहं ज्येष्ठःश्रेष्ठयशो रुचिः। इत्यादि"

जयपुरविलास के पंचम उल्लास में श्री कृष्णराम भट्ट ने श्री लल्लूराम को ही मूल पुरुष माना है तथा फिर श्री कुन्दनराम के दो पुत्र स्वयं और श्री हरिवल्लभ भट्ट का उल्लेख किया है। (१० इ)

श्री कुन्दनरामजी का दूसरा नाम श्री जीवनराम (जीवणराम) भी था। (१०-ई) आप संस्कृत कालेज में स्थापना के समय से ही आयुर्वेद के अध्यापक थे और श्री जीवनराम के नाम से प्रसिद्ध रहे हैं। आपका जन्म श्रावण शुक्ला १५ संवत् १८८५ को हुआ था। आपको २० जून, १८५६ से उक्त कालेज में आयुर्वेद का शिक्षक नियुक्त किया था। आपने सुललित संस्कृत वाङ्मय में यूनानी का एक अद्वितीय ग्रन्थ "हिकमन्मन्दार" की रचना संवत् १९१५ में की थी। आपने तीन विवाह किये थे, जिनमें से प्रथम पत्नी से श्री कृष्णराम भट्ट तथा द्वितीय पत्नी से श्री हरिवल्लभ भट्ट का जन्म हुआ था। तृतीय पत्नी की सन्तति का उल्लेख नहीं मिलता। (१०-उ) आपके जीवन-काल में ही आपके पुत्र श्री कृष्णराम भट्ट संस्कृत कालेज में आयुर्वेद के प्राध्यापक हो गये थे। १ जनवरी, १८७२ ई. के उपस्थिति पत्रकमें श्री जीवनराम जी के स्थान पर श्री कृष्णराम भट्ट का नाम मिलता है। आपने संवत् १९३७ तदनुसार १८८० में स्वर्ग गमन किया था। उस समय आपकी अवस्था ५२ वर्ष मात्र थी.

आपकी रचना "हिकमन्मन्दार" अभी तक अप्रकाशित है। यह हस्तलिखित प्रति के रूप में श्री देवेन्द्र-प्रसाद भट्ट के पास सुरक्षित है। यह एक प्रकाशन योग्य रचना है।

राजवैद्य श्री कृष्णराम भट्ट ने आपका स्मरण इस प्रकार किया है—(१०-ऊ)

"योगान्वितः सुरसभावनकर्मदक्षः काव्यादरः परविभावलयं दधानः।
पुत्रो भवद्गुरुसमृद्धिरमुष्य वैद्यविद्याचणो जयति कुन्दनरामनामा ॥"

(१०-आ)- "जयपुरविलास काव्यम्"—भूमिका से उद्धृत पद्य, प्रकाशित सन् १८८७ ई०।

(१०-इ)- "जयपुरविलास काव्यम्"—पंचम उल्लास, पद्य सं० ७२, ७३, ७४ पृष्ठ सं० ५६।

(१०-ई)— महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर की स्थापना सन् १८६६ से पूर्व मानी जाती है। उपलब्ध प्राचीनतम उपस्थिति पत्रक सन् १८६६ में श्री जीवनराम भट्ट को आयुर्वेद का अध्यापक बतलाया है। इसका उल्लेख परिचय खण्ड-तृतीय अध्याय अनुभाग 'क' में किया जा चुका है। देखिये परिशिष्ट ४ भी।

(१०-उ)- सिद्धभैषजमणिमाला–मणिप्रभा हिन्दी टीका, श्री देवेन्द्र भट्ट, भूमिका पृष्ठ "ञ" लिखा है–तृतीय सपत्नी साक्षात् रेवास्वरूपा पूज्यपाद रेवावा १९३९ ई. तक रही।

(१०-ऊ)- जयपुरविलास-पंचम उल्लास पृष्ठ सं० ५६, पद्य सं० ७३।

इस पद्य की टिप्पणी में कुन्दनरामनामा को "जीवनराम इत्यप्येषां नामान्तरम्" से स्पष्ट किया है। इससे स्पष्ट है कि आपका दूसरा नाम जीवनराम भी था। जयपुर के संस्कृत साहित्यान्तर्गत आयुर्वेद साहित्य में आपका नाम उल्लेखनीय है। आप स्वयं विद्वान् एवं विद्वानों के जन्मदाता रहे हैं।

---

११. श्री कृष्णराम भट्ट (राजवैद्य)

भट्टमेवाडा जाति में लब्धजन्मा, जातीय–कुलभूषण राजवैद्य श्री कुन्दनराम (श्री जीवनराम) के ज्येष्ठ पुत्र राजवैद्य श्री कृष्णराम भट्ट का जन्म श्री कृष्ण जन्माष्टमी संवत् १९०५ को जयपुर में हुआ था। आप श्री जीवनराम भट्ट की प्रथम पत्नी से उत्पन्न हुये थे। आपने अपने पितामह श्री लल्लूराम भट्ट तथा पिता श्री जीवनराम भट्ट से आयुर्वेद विद्या का अध्ययन किया था। अन्य विषयों के ज्ञानार्जन के लिये आपने तत्कालीन अन्यान्य विद्वानों से ज्ञान प्राप्त किया था, जिसका उल्लेख जयपुर विलास के पंचम उल्लास में मिलता है:

"येनाशिक्षि स जीवनाथगुरुतः काव्यप्रकाशाशय–
श्छन्दश्चन्दनदासतः सगणितं वैद्यागमस्ताततः।
सूते गन्धकजारणावधि कृता येन क्रिया नैकशः
सोऽहं नूतनकाव्यपंचककृतिः श्री कृष्णशर्मा कविः॥" (११–अ)

इससे स्पष्ट है कि श्री भट्ट ने काव्यप्रकाश के गूढ स्थलों का अध्ययन श्री जीवनाथ ओझा से तथा छन्दःशास्त्र, गणित आदि का अध्ययन श्री चन्दनदास साधु (दादूपन्थी) से कया था। इसी प्रकार वैद्यशास्त्र आपने श्री जीवनराम से पढा था।

जयपुर नगर के प्रसिद्ध वैद्य स्वर्गीय स्वामी श्री जयरामदासजी (प्रधान शिष्य एवं उत्तराधिकारी स्वामी श्री लक्ष्मीरामजी) ने "सिद्धभैषजमणिमाला" के चतुर्थ संस्करण के प्रकाशन के साथ लिखी विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावना में आपका अत्यन्त संक्षिप्त परिचय इस प्रकार प्रस्तुत किया है:— (११–आ)

"आसीन्मेदपाटीयभट्टा (भट्टमेवाड़ा) ह्वजातीयो महीसूरप्रवरः पण्डितप्रकाण्ड आयुर्वेदागमप्रवीणः 'कुन्दनजी' त्युपनामकः श्री जीवनरामभट्टः। यः खलु जयपुर राजकीय–संस्कृत–पाठशालायाः प्रारम्भे जयपुर-पुरन्दरेण श्री रामसिंह–महाभागेन सादरं समर्पितमायुर्वेदविद्यायाः प्रथमाध्यापकपदमतितरामलंचकार तस्य तनयद्वये ज्येष्ठः सर्वविद्यागुणगणः जयपुर-जनताया परमप्रेष्ठश्च पण्डितश्रेष्ठः श्री कृष्णराम शर्मा भिषग्रत्नभभूत्। जीवनरामशर्मणः क्रमशः परिणीते पत्नीद्वये प्रथमायामेव कुशाग्रधिषणः पंचोत्तरैकोनविंशतिशतितमे विक्रमवत्सरे कृष्णजन्माष्टम्यां जन्म लेभे। अस्यैव च वैमात्रेय कविमल्लः श्री हरिवल्लभशर्मा आसीत्, येन जयनगरपंचरंगप्रभृतयो (अ) नेके काव्यप्रबन्धा निर्मीयन्त"…………इत्यादि।

इस अवतरण से श्री भट्ट का परिचय और भी स्पष्ट हो जाता है। आपने अपने पिता के पश्चात् संस्कृत कालेजीय आयुर्वेद व्याख्याता पद पर कार्य प्रारम्भ किया था, जिसका उल्लेख संस्कृत कालेज के प्राचीन रिकार्ड

(११–अ)– जयपुर-विलास पंचम उल्लास सं० ५६–५७ पद्य सं० ७५।

(११आ)– सिद्धभैषजमणिमाला—चतुर्थ संस्करण—प्रस्तावना तथा 'जयपुर की आयुर्वेद साहित्य को देन' शीर्षक लेख, (प्रकाशित) आयुर्वेद ज्योति द्वितीय पुष्प, प्रथम वर्ष फरवरी, १९६६ के आधार पर।

उपस्थिति पत्रक १ जनवरी, १८७२ व १ जुलाई १८८८ से सितम्बर, १८९१ में मिलता है। (११-इ) सम्भवतः आपने १८९५ तक उक्त पद पर कार्य किया था क्योंकि अगस्त, १८९६ में आपका उल्लेख नहीं मिलता। आयुर्वेद विभाग में श्री लक्ष्मीराम वैद्य का उल्लेख है। १६फरवरी, १८९७ से आपके पुत्र श्री गंगाधर शर्मा ने आयुर्वेद व्याख्याता के रूप में कार्य प्रारम्भ किया था—ऐसा उल्लेख मिलता है।

आपने अपने पितामह श्री लल्लूराम वैद्य के आदेशानुसार सर्वप्रथम "विद्वद्वैद्यतरंगिणी" नामक ग्रन्थ लिखना प्रारम्भ किया था और सुललित पद्यों में वैद्यक विषय को उपस्थित करते हुए उक्त ग्रन्थ उन्हें ही समर्पित किया था। यह ग्रन्थ अभी अप्रकाशित है। इस ग्रन्थ का उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है:—(११-ई)

"पितामहाज्ञां सम्प्राप्य वैद्यानन्दतरंगिणीम्।
कुर्वेऽहं वैद्यरंगाय नाम्ना श्रीकृष्ण विश्रुतः॥
आयुर्वेदवचो विचारणपरो नृणां त्रिधा रोगहृत्
संख्याहीनगुणाश्रयो (अ) मृतकरः साक्षाद् हि धन्वन्तरिः॥
कारुण्यो हितकारको (अ) तिसुखदः कल्पद्रुवत् प्रेष्ठदः।
श्रीमद्भट्टवरेन्द्रगुर्ज्जरकुले श्री लल्लुजिद् राजते॥
सद्यज्ञसंतर्पितसर्वदेवः संभोज्य संतोषितभूमिदेवः।
वाग्यज्ञसंमोहितकालिदासो वैद्यश्चिरं राजति विष्णुरामः॥१५॥

श्री लल्लूराम वैद्य का दूसरा नाम विष्णुराम भी था। इन पद्यों में 'राजते' आदि क्रियायें वर्तमान काल की हैं जिनसे स्पष्ट है कि इस ग्रन्थ का प्रणयन उनके जीवितावस्था में ही हुआ था। आप भी आयुर्वेद के कुशल अध्यापक थे, इसकी पुष्टि उपर्युक्त ग्रन्थ के ही एक पद्य से होती है:—

"शिष्यमंडलसमावृतमूर्त्तिः वैद्यराजद्रवलतादिहासौ।
विष्णुराम इति सप्रथितो नस्तात तात उदयं वितनोतु॥" २१॥

यह रचना श्री भट्ट के बाल्यकाल में प्रणीत है जिसका उल्लेख स्वयं ने इस प्रकार किया है:—

"इदं मद्बालचाचंल्यं क्षमध्वं भोश्च साधवः।
युष्मदग्रे यथा कीरस्तथा वाचमहं ब्रुवे॥ ३१॥

श्री भट्ट की अप्रसिद्ध व अप्रकाशित द्वितीय रचना है— "त्रिशती— वैद्यजीवन प्रतिनिधि की"। यह भी आयुर्वेद ग्रन्थ है। खेद है यह पूर्ण उपलब्ध नहीं है। प्रारम्भ के मांगलिक पद्यों में अपने पितृपितामह के साथ ही आश्रयदाता श्री रामसिंह द्वितीय का भी वर्णन प्रस्तुत किया गया है;—

"पूर्वाचार्यैस्त्रिशत्यां यदुदितमथ यत् सद्भृशज्जीवने (अ) पि
प्रायः पद्यान्तरैस्तत् कथयितुमहमिहाम्भोरुहाक्ष्युद्यतो (अ) स्मि
अद्य श्री रामसिंहाभिधनरपतिना प्रेरितः कृष्णरामः
प्रीत्या पश्यन्तु सर्वे शिशुगदितमिति ग्रन्थयुग्मार्थमत्र॥ ५२॥"

आप आयुर्वेद में रससिद्धिसिद्धगुरु माने जाते थे, तो साहित्य के क्षेत्र में महाकवि कालिदास के अंशावतार। आपकी साहित्यिक रचनाओं की ख्याति आज भी सर्वत्र है। इन रचनाओं की समीक्षा से इस कथन की पूर्णतः पुष्टि हो सकेगी। (११-उ)

(११-इ)— संस्कृत कालेजीय उपलब्ध उपस्थिति पत्रकों के आधार पर उक्त तिथियां संकेतित है। श्री देवेन्द्र भट्ट ने आपका कार्यकाल संवत् १९३० से प्रारम्भ माना है। देखिये "सिद्धभैषज्यमणिमाला"—मणिप्रभा हिन्दी टीका, भूमिका।

(११-ई)— उक्त ग्रन्थ हस्तलिखित प्रति के रूप में श्री देवेन्द्र भट्ट के पास सुरक्षित है।

(११-उ)— आपकी साहित्यिक विभिन्न रचनाओं का विश्लेषण अग्रिम खण्ड में प्रस्तुत है।

आचार्यचरण ऋषिकल्प, जयपुर नगर के सर्वप्रथम म०म० श्री दुर्गाप्रसाद द्विवेदी ने आपके सम्बन्ध में एक पद्य प्रस्तुत किया है, जो आपकी रचनाओं का महत्त्व उपस्थित करता है:—

"उद्यल्लावण्यलक्ष्मीवलयितवपुषां स्वर्गवारांगनाना
माश्लेषे यः प्रमोदः स्फुरति च गरिमा यो (अ) मृते माधुरीणाम् ।
सौरस्यं कुंकुमे यत् पयसि विमलता याऽप्यहो तत्समस्तं
मित्रैकत्रेक्षितुं चेदभिलषसि तदा पश्य कृष्णस्य काव्यम् ॥"

यद्यपि आपके विषय में बहुत कुछ लिखा जा सकता है, परन्तु आपका पारिवारिक परिचय आपके पिता श्री कुन्दनराम वैद्य (परिचय क्रमांक १०) के परिचय के साथ प्रस्तुत किया जा चुका है। शेष आपकी विद्वत्ता का समीक्षण अग्रिम खण्ड का विषय है, जिसमें आपके महाकाव्य, खण्डकाव्य आदि का विश्लेषण किया गया है। एक पद्य आपके सम्बन्ध में, जो आपकी गर्वोक्ति है, यहां प्रस्तुत किया जा रहा है:—

"श्रीमन्माधवसिंहभूपसमितौ" लब्धप्रतिष्ठास्पदः
साहित्याम्बुधिकुम्भसम्भवमुनिर्धन्वन्तरिर्वैद्यके ।
कीर्तिर्यस्य दिगन्तगा च कवने यः कालिदासोपमः
सोऽयं राजभिषग्वरो विजयते श्रीकृष्णशर्मा गुरुः ॥"

आपकी रचनाओं का उल्लेख संक्षेप में इस प्रकार किया जा सकता है :—

क्रम	रचना का नाम	विषय	विवरण
१.	विद्वद्वैद्यतरंगिणी	आयुर्वेद	अप्रकाशित
२.	त्रिशती	आयुर्वेद	अप्रकाशित
३.	सिद्धभैषजमणिमाला	आयुर्वेद	प्रकाशित
४.	पलाण्डुराजशतकम्	आयुर्वेद	प्रकाशित
५.	कच्छवंशमहाकाव्यम्	महाकाव्य	अप्रकाशित
६.	जयपुरविलासकाव्यम्	खण्डकाव्य	प्रकाशित
७.	सारशतकम्	खण्डकाव्य	प्रकाशित
८.	मुक्तकमुक्तावली	खण्डकाव्य	प्रकाशित
९.	जयपुरमेलककुतुकम्	प्रकीर्णक	अप्रकाशित
१०.	आर्यालंकारशतकम्	गीतिकाव्य	अप्रकाशित
११.	गोपालगीतम्	गीतिकाव्य	अप्रकाशित
१२.	छन्दोगणितम्	छन्दःशास्त्र	अप्रकाशित
१३.	गप्पसमाधानम्	प्रकीर्णक	अप्रकाशित
१४.	होलामहोत्सवः	प्रकीर्णक	प्रकाशित
१५.	माधवपाणिग्रहोत्सवः	प्रकीर्णक	प्रकाशित
१६.	काशीनाथस्तवः	स्तोत्र	अप्रकाशित
१७.	गोविन्दभट्टभंगम्	प्रकीर्णक	प्रकाशित

आपका देहान्त ४९ वर्ष की अल्पावस्था में ही वैशाख कृष्ण प्रतिपद् संवत् १९५४ को हुआ था। आपके पुत्र का नाम श्री गंगाधर शर्मा भट्ट था।

१२. श्री कृष्ण शास्त्री

श्री शास्त्री का मूल निवास स्थान मद्रास प्रान्तान्तर्गत 'कुम्भघोण' नामक स्थान था । आप तैलंग ब्राह्मण थे । आप अपने शैशव से ही दक्षिण भारत का परित्याग कर उत्तर भारत में रहने लगे थे । कहा जाता है कि गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होने से पूर्व आप बहुत वर्षों तक बदरिकाश्रम में ब्रह्मचारी के वेश में रहे थे । इससे पूर्व आप 'कुल्लू–मण्डी' राज्य में धर्माधिकारी के पद पर रहे थे । जब आप जयपुर पधारे, उस समय सवाई रामसिंह द्वितीय का शासन काल था । आपकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर श्री रामसिंह ने आपको मोदमन्दिर धर्म सभा का सदस्य नियुक्त किया और श्री राजीवलोचन ओझा द्वारा लिखे जा रहे 'धर्मचन्द्रोदय' नामक ग्रन्थ को पूर्ण करने के लिये सहायक के रूप में नियुक्त किया था । श्री कृष्णराम भट्ट ने लिखा है कि श्री लक्ष्मीनाथ शास्त्री व श्रीकृष्ण शास्त्री ने मिल कर 'धर्मचन्द्रोदय' ग्रन्थ को पूर्ण किया था । (१२–अ) संवत् १९४८ तदनुसार १८९१ ई० में तत्कालीन शिक्षा निदेशक श्री हरिदास शास्त्री ने आपको संस्कृत कालेज में साहित्याध्यापक के पद पर नियुक्त किया था । आप अपने दैनन्दिन कृत्यों में धर्म–परिपूर्ण, श्रद्धावान् तथा स्वभाव से परोपकारी थे ।

आपकी विद्वत्ता के सम्बन्ध में कविशिरोमणि श्री मथुरानाथ शास्त्री ने लिखा है– "विश्वविदित" पाण्डित्यमप्यस्मादृशैरकिंचित्करैः प्रस्तूयेत एवापि लघोर्मुखान्महती वार्तास्ति ।" अर्थात् इनकी विद्वत्ता के सम्बन्ध में कुछ भी कहना 'छोटे मुंह बडी बात' की कहावत को चरितार्थ करना होगा । (१२–आ) विद्वानों का परिचय प्रस्तुत करते हुए श्री कृष्णराम भट्ट ने लिखा है:—

> "राजीवलोचनबुधेन समस्तशास्त्राण्यालोच्य रामवचसा (अ) रचि धर्मचन्द्रः ।
> याभ्यामपूरि स ततो (अ) न्विह कृष्णलक्ष्मीनाथौ बुधौ कथय कस्य न संमतौ तौ ।।"

श्री विहारीलाल शास्त्री, म०म० श्री विश्वेश्वरनाथ रेऊ. भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री प्रभृति विद्वान् आपके शिष्य रहे हैं । श्री मथुरानाथ शास्त्री ने अपने जयपुरवैभवम् में आपका सादर उल्लेख इस प्रकार किया है:—(१२–इ)

> "येषां धर्मकर्मणि तपसि सत्यनिष्ठा (अ) भव-
> त्पाण्डित्य-प्रतिष्ठा (अ) तो गरिष्ठा (अ) भूद्विसंदेहम्
> चर्याव्यवहारे चतुराणां शुद्धभावो (अ) भवद्
> ब्राह्मणोपकारे येषां मानसममन्देहम् ।
> राजकीय-विद्यालये साहित्योपदेशका:(अ)स्ते
> गुणगणनीयं स्मरणीयं ये (अ) वहन्देहम्
> नानादेश-नानाजन -नानाकथा-नानारस-
> र्वाबिणो (अ) द्य श्रीमत्कृष्णशास्त्रिणो (अ) भिवन्दे (अ) हम् ।।५२।।"

संस्कृत कालेज में प्राप्त प्राचीन उपस्थिति पत्रकों में आपका उल्लेख १८८९ ई० में साहित्याध्यापक के रूप में किया गया है । आपने १९११ मार्च तक इस पद पर कार्य किया है । (१२–ई)

आपके रचनात्मक कार्य के सम्बन्ध में यद्यपि कुछ विशेष उल्लेख नहीं किया जा सकता, परन्तु आपकी कुछ समस्यापूर्तियां संस्कृत रत्नाकर के प्राचीन अंकों में प्रकाशित हुई हैं । इनमें "न दोषा गण्यन्ते मधुरवचसां कापि

(१२–अ)– जयपुरविलास काव्यम्, पंचम उल्लास पृष्ठ सं० ५२ पद्य सं० ४१ ।

(१२–आ)– जयपुरवैभवम्—नागरिकवीथी—सुधीचत्वर: पृष्ठ २४३ 'संग्रह' से उद्धृत ।

(१२–इ)– वही, भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री रचित काव्य, पृष्ठ २४२ (गुरुवर श्रीकृष्णशास्त्रि-चरणाः) ।

(१२–ई)– देखिये, प्राचीन रेकार्ड उपस्थिति पत्रक—संस्कृत कालेज जयपुर में उपलब्ध ।

कृतिभिः" (संस्कृत रत्नाकर १।४) तथा "नवनव-गुणरागी प्रायशः सर्वलोकः" (संस्कृत रत्नाकर १।११) उल्लेखनीय हैं। आप श्री नारायण भट्ट पर्वणीकर के अभिन्न मित्रों में से एक थे। श्री पर्वणीकरजी द्वारा संगृहीत 'स्वमित्र श्लोकसंग्रहः' में आपके कुछ पद्यों का संग्रह है। यहां केवल दो पद्य प्रस्तुत किये जा रहे हैं :—

"तिङः कृतिं हि साधितुं प्रवृत्तवाग् विभूतयः
कृतः कृतिं कथं जगुः कणादतन्त्रविज्जनाः।
नयन्ति चेत्समन्वयं कृदर्थमाश्रयन्वतो
मुधैव निर्निपातयोः पदार्थयोरभेदता ॥१॥
प्रिये प्राणत्राणप्रसरणगुणे (अ) कारणपणे
सुदृग्वक्त्रौपम्यं परमभिलषं सौधकिरणः।
सदैकत्वं जानन् गुणत इति शास्त्रात् सदृशयो-
र्न जानीमः कस्मात् कमलवनवैरी हिमकरः ॥२॥"

इन पद्यों के भाव-सौन्दर्य से आपकी विद्वत्ता स्पष्टतः परिलक्षित है।

---

१३. श्री कृष्णलाल शास्त्री प्रश्नवर "कान्हजी"

श्री शास्त्री जयपुर नगर के चांदपोल स्कूल में संस्कृत पढ़ाया करते थे। आप जाति से प्रश्नवर-गुजराती ब्राह्मण थे। आप कितने समय से जयपुर में निवास कर रहे थे, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। आपका समय सवाई रामसिंह द्वितीय का शासनकाल रहा है। श्री माधवप्रसाद शर्मा शास्त्री संस्कृताध्यापक, संस्कृत कालेज आपके प्रधान शिष्य रहे हैं। आपके सम्बन्ध में एक जनश्रुति प्रसिद्ध है। आप गौर वर्ण के थे, परन्तु आपका नाम कृष्णलाल था। कहा जाता है आपकी भेंट आर्य समाज के प्रसिद्ध संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती से हुई थी। श्री दयानन्द ने आपसे प्रश्न किया था—'कस्त्वम्'। इनका उत्तर था—'कृष्णो(अ) हम्'। श्री सरस्वती ने व्यंग्य में कहा था—'कृष्णत्वं तु न कुतो (अ) पि दृश्यते'। उसी समय आपने उन्हें पद्यमय उत्तर दिया था—

"न दयास्ति न चानन्दो न च त्वयि सरस्वती।
भूयो (अ) पि वद कस्मात्त्वं 'दयानन्दसरस्वती' ॥"

जयपुर में होने वाले प्रसिद्ध तमाशों के आप शौकीन थे। आपके द्वारा रचित अनेक गीत आज भी गाये जाते हैं। आप जयपुरी (ढूंढारी) के साथ ही पंजाबी बोली में भी गीत बनाया करते थे। आपके अनेक संस्कृत भाषात्मक पद्य संस्कृत रत्नाकर के प्राचीनतम अंकों में प्रकाशित हुये हैं। आप विशेषकर गीतियां लिखा करते थे। आपकी सुप्रसिद्ध दो गीतियां विद्वानों के मनोविनोदार्थ यहां प्रस्तुत की जा रही हैं। इससे आपकी विद्वत्ता का भी सहज ही अनुमान किया जा सकता है :—

"भवं भज भवसागरतारम्। भवं भज भवसागरतारम्।
भूसुरभूपशिखं भूतेशं भोगिभोगहारम्। भवं भज० (ध्रु० प०।
भगनयनध्नं सगदं भगवन्तं भजितभूभारम्।
भूमीधरभूभावभावितं भस्मीकृतमारम् ॥१॥ भवं०।
भक्तभूरिभयभिदं भवानीभर्तारं भवसारम्।
भूतिविभूषिततनुं भूतिदं भाजितवनसारम्॥२॥ भवं०।
भद्रं भीमं भरुं भैरवं भिल्लतनुं मातारम्।
भल्लभुशुंडीभुजं भीषणं भेदितभूदारम् ॥३॥ भवं०।

भूतभविष्यद्भवद्भवाभवभावाभावभिदाधारम् ।
भट्टकृष्णभणितं भणयति यो भवते भवपारम् ॥४॥ भवं० । इत्यादि"
(सं० रत्नाकर ११)

एक अन्य गीति विशेष लावनी देखिये जो गीतगोविन्दकार जयदेव के अनुकरण पर प्रस्तुत की गई है:—

"विलम्बनमनुचितमभिसरणे निकुंजे कृतकेशवशरणे ॥
त्वमसि सखि यद्यपि बहुनिपुणा । सुखं तव न विना मधुरिपुणा ॥
भविष्यति केलिकलागुरुणा । अलं लपितेन मया पुरुणा ॥
मानं हित्वा मानसं मानिनि हरिपदि देहि ।
हृदयंगममिति वचनं कुरु मम चल सखि हरिसविधे हि ॥
धेहि सखि तव हृदि हरिचरणे । विलम्बन० ॥१॥
कुसुमशरशरचयबहुभग्नम् । निरन्तरमानजलधिमग्नम् ।
मनः कुरु केशवसंलग्नम् । उदितमपि पश्य मकरलग्नम् ।
मम वचनानि हितानि ना यासां मनसि वसन्ति ।
अलमविषयभयलज्जावंचितमात्मानं प्रहसन्ति ।
सन्ति किं ता हरिपरिचरणे । विलम्बन० ॥२॥" इत्यादि (१३-अ)

इसी प्रकार आपकी अन्य अनेक गीतियां अष्टपदी में प्रकाशित हुई हैं। इन प्रकाशित रचनाओं का पूर्ण विवेचन इसलिये सम्भव नहीं है कि संस्कृत रत्नाकर के प्राचीनतम अंकों की पूर्णतः एकत्र प्राप्ति नहीं हो सकी। उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि आप जयपुर नगर के उल्लेखनीय विद्वान् थे।

---

१४. श्री केदारनाथ ज्योतिर्विद्

श्री शर्मा बम्बई से प्रकाशित 'काव्यमाला' सीरिज के सम्पादक म० म० पं० श्री दुर्गा प्रसाद शर्मा के एक मात्र सुपुत्र थे। आपके पितामह का नाम पं० व्रजलाल शर्मा था। संस्कृत भाषा का संरक्षण आपकी कुल परम्परा का विषय रहा है। आप राजस्थान प्रान्त में नारनौल नामक ग्राम के निवासी थे, परन्तु कालान्तर में आप जयपुर के ही स्थायी निवासी हो गये थे। आपके पूर्वज पितामहादि काश्मीर नरेश द्वारा सम्मानित होते रहे हैं। आपको भी काश्मीर नरेश से सम्मान प्राप्त हुआ था। इसी आशय का एक समाचार 'संस्कृत-रत्नाकर' के प्राचीन अंक में प्रकाशित हुआ है, जिसका अविकल अंश यहां उद्धृत किया जा रहा है :— (१४-अ)

अभिनन्दनम्

पाठकमहोदयानां सेवायां तदिमं प्रियसंवादमावेदयामो यदस्मत् प्रियवयस्यः संस्कृतरत्नाकरस्य सहायकः काव्यमालासम्पादकः राजज्योतिषी श्रीकेदारनाथशर्मा वर्तमानकाश्मीरधराधिपतिमहीमहेन्द्रश्रीप्रतापसिंह-महोदयैः सांप्रतं सम्यक् सम्मानित इति। केदारनाथमहोदयस्य हि काश्मीरराज्येन सह पारस्परिक सम्बन्धः। वर्तमान-

(१३-अ)- संस्कृत रत्नाकर जयपुर निवासी विद्वन्मण्डल द्वारा सम्पादित ११३ द्वि० ज्येष्ठ शुक्ला १५ शाके १८२६ संवत् १९६१ जयपुरीय प्रश्नवर पं० (कान्हजी) कृष्णलाल शर्म्मणाम् (गीतिविशेष : लावनी)।

(१४-अ)- संस्कृत रत्नाकर—७ अ.कर ६ रत्न—भाद्रपद संवत् १९६९ तदनुसार ई० सन् १९१२।

काश्मीरभूपतेः पितामहानां महाराज श्रीगुलाबसिंहमहामहोदयानां सविधे केदारनाथशर्मणः पितामहाः राजज्योतिषिका अभूवन् । तदनन्तरं च महाराज श्रीरणवीरसिंहजीमहोदयाः केदारनाथशर्मणः पितृचरणैः महामहोपाध्याय-पं०श्रीदुर्गाप्रसाद शर्मभिः सह सौहार्दं स्थापयामासुः । एतेनैव पूर्वसम्बन्धेन पं० केदारनाथशर्मा एतत्प्रदेशमुपागतं श्री काश्मीरधराधिपं पद्यादिपरिचयप्रदानेन समतूतुषत् । प्रसेदिवांश्च काश्मीरेशो निजराजधानीमुपागत्य महार्घवस्त्रादिसंभावनां प्रेषयदेतस्मै । वयं खलु काश्मीरधरणीशस्य तदेतदौदार्यं समधिकं प्रशंसन्तः पं० श्रीकेदारनाथशर्मणः संभावनामिमामान्तरेणाभिनन्दामः ॥"

इससे ज्ञात होता है कि इनके पिता तथा पितामह भी ज्योतिषी थे तथा अपने समय के उल्लेखनीय विद्वान् थे । जयपुर नगर के साथ केवल आपका तथा पितृचरण श्री दुर्गाप्रसादजी शर्मा का ही सम्बन्ध रहा है ।

आपकी सम्पूर्ण शिक्षा-दीक्षा जयपुर में ही सम्पन्न हुई । आपने ज्योतिष विषय का अध्ययन म० म० श्री दुर्गाप्रसाद जी द्विवेदी से तथा अन्य विषयों का अध्ययन विद्यावाचस्पति पं. श्री मधुसूदनजी ओझा से किया था । आपके अनेक शिष्य रहे हैं, जिन्होंने आपके निवास स्थान पर नियमित रूप से ज्योतिषशास्त्र का अध्ययन किया था । इनमें ज्योतिष्मती पत्रिका (सोलन) के प्रधान सम्पादक श्री हरदेव शर्मा त्रिवेदी, श्री कल्याणदत्त शर्मा, अधीक्षक, जयपुर यन्त्रालय, श्री रामपाल शर्मा, व्याख्याता, ज्योतिष विभाग, संस्कृत कालेज, जयपुर आदि उल्लेखनीय हैं ।

आपके जीवन के दो कार्य महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं––(१) अपने पिता द्वारा किये जाने वाले काव्यमाला सीरिज का शेष सम्पादन कार्य और (२) जयपुर व देहली के यन्त्रालयों (जन्तर-मन्तर) का जीर्णोद्धार व नवीनयन्त्र निर्माण करवाना । आपने दिल्ली की यन्त्रशाला में "मिश्रयन्त्र" का निर्माण किया जिससे ४ प्रमुख स्थानों के मध्यान्हकाल का ज्ञान होता है । इसी प्रकार जयपुर की यन्त्रशाला में विद्यमान 'षष्ठांश यन्त्र' आपकी ही देन है जो स्पष्ट मध्याह्नकाल व सूक्ष्म क्रांति के ज्ञान में सहायक होता है ।

आपको अध्ययन का बहुत शौक था । आपकी रुचि का ज्ञान उस संग्रहालय से ज्ञात होता है जो इस समय राजस्थान पुरातत्त्व मन्दिर, में सुरक्षित है । इस संग्रहालय में संस्कृत-साहित्य के विभिन्न विषयात्मक अनेक ग्रन्थ हैं ।

म० म० श्री गिरिधरशर्मा चतुर्वेदी, कविशिरोमणि भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री, पं० श्री सूर्यनारायण व्याकरणाचार्य, राजगुरु पं० श्री चन्द्रदत्त ओझा प्रभृति विद्वान् आपके मित्र रहे हैं । आपने जीवन-पर्यन्त ज्योतिष शास्त्र का पर्याप्त प्रचार और प्रसार किया । आप धूप घड़ी यन्त्र का निर्माण करने में सिद्धहस्त माने जाते थे और इसकी गणित बड़ी सरलता से किया करते थे । आप संस्कृत व हिन्दी दोनों ही माध्यम से ज्योतिष विषय पर लेख लिखा करते थे । आपके उल्लेखनीय कुछ लेखों का यहां उल्लेख किया जा रहा है, जो इस प्रकार हैं––

१. "खगोलवेत्तुराश्चर्यमयमात्मवृत्तम्" (१४ आ) माघ–फाल्गुन १९९५ संवत्–संस्कृत रत्नाकर
२. "वेदकाल-निर्णयः अयनांशाश्च"–२ भागों में, संस्कृत रत्नाकर ६।१–२ तथा ७।४ ।
३. "हंस-चारः क्रान्तिवृत्तच"–आषाढ़ १९७१ संस्कृत रत्नाकर ।
४. "मृगशीर्षनक्षत्रस्य वेदकालिकी स्थितिः"–आषाढ़ संवत् १९९९ में समाप्त ।
५. "ज्योतिषविज्ञानम्" (२ भागों में) संस्कृत रत्नाकर ८ वर्ष, १० व ११ संचिकायें, १९४२ ई.
६. "फलितशास्त्रम्"–संस्कृत रत्नाकर ११।१ जुलाई, १९४६ ।
७. "भारतीय ज्योतिषम्"–संस्कृत साहित्य सम्मेलनस्य प्रथम वार्षिकी निबन्धावली (सं० १९९१)
८. "ज्योतिषमपि दर्शनशास्त्रेषु परिगणितं चेत्"–दर्शनांक १९४५ ई० विशेषांक ।
९. "सिद्धार्थो बुद्धदेवः"–७ आकर ६ रत्न संस्कृत रत्नाकर भाद्रपद संवत् १९९९ ।
१०. "चतुरंग-तुरंगनः "संस्कृत रत्नाकर ७ आकर ७ रत्न आश्विन १९९९ संवत् इत्यादि ।

८––आ(१४) कमहालनाम्नि गुर्जरमासिकपत्रे (अ) मुद्रितस्यलेखस्य टिप्पण्यादि संवर्द्धितो (अ)नुवा :।

"चतुरंग-तुरंगन्" लेख में आपने शतरंज में घोड़े की चाल का उल्लेख किया है, जो एक कोष्ठक द्वारा उपस्थित किया गया है। इसके लिये एक पद्य प्रस्तुत किया गया है—

"शस्त्रै" निर्भिन्नदेहोऽ (पि) श्रान्तो (ऽ) पि गुरुभारतः।
न मुञ्चति रणे नाथमतः कोन्यो हयात् सुहृत् ॥

श्री ज्योतिषीजी के अनेक पद्य संस्कृत रत्नाकर के प्राचीनतम अंकों में प्रकाशित हुए हैं। लार्ड हार्डिग की स्वास्थ्य कामना के लिये जयपुर में आयोजित सभा में आपने जो पद्य प्रस्तुत किया था, वह इस प्रकार है—

"भारतवर्षपुरन्दरप्रतिनिधिरूपो (ऽ) स्ति लार्ड हार्डिञ्जः।
त्वत् करुणालवलाभान्निर्बाधो मोदमानश्च ॥"

भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री ने आपका वास्तविक चित्रण निम्नांकित पद्य द्वारा प्रस्तुत किया है-(१४-इ)

"सर्वविधपुस्तकसंग्राहकस्य यस्य गृहे
परितो (ऽ) प्युदस्य पत्रराशिमुपलालय
आगन्तुकलोकेभ्यः प्रदर्शयितुर्यन्त्रगृहं
गेह एव यस्य मुद्रायन्त्रमुपसालय।
ज्योतिषे गरिष्ठमथ साहित्ये निविष्टतमं
तं हव्बुलगारकुतुकस्थमनुपालय
'काव्यमाला' संपादनगीतगुणगाथमिमं
पण्डितकेदारनाथमचिरान्निभालय ॥

आप ज्योतिष शास्त्रीय विद्वानों की श्रेणी में उल्लेखनीय रहे हैं।

---

१५. श्री केदारनाथ ओझा

श्री ओझा विहार प्रान्त के जिला सारन, पोस्ट पचरुखी, ग्राम गह्वरिया के मूल निवासी हैं। आपने विहार और उसके पश्चात् वाराणसी में अनेक वर्षों तक व्याकरण शास्त्र का अध्ययन किया था। राजगुरु पं० श्री चन्द्रदत्त जी ओझा के सेवा-निवृत्त होने पर आप महाराज संस्कृत कालेज जयपुर में व्याकरण प्राध्यापक के रूप में नियुक्त थे। आपकी जन्म तिथि १५ फरवरी १९०९ है। (१५-अ)

आपने उक्त कालेज में व्याकरण प्राध्यापक का कार्यभार २२ जुलाई, १९४१ को सम्भाला था। आपके उल्लेखनीय शिष्यों में श्री रामनारायण चतुर्वेदी, प्राचार्य, संस्कृत कालेज, जोधपुर का नाम स्मरणीय है। आप अनेक विषयों के प्रकाण्ड पण्डित रहे हैं। आपने कुछ वर्षों तक संस्कृत कालेज में अध्यापन कर जयपुर परित्याग किया था। इसके पश्चात् आप पटना में अध्यापनरत रहे और इस समय अपनी जन्म भूमि में विश्राम कर रहे हैं। आपके कुछ लेख संस्कृत रत्नाकर के प्राचीन अंकों में प्रकाशित हुए हैं, जिनका उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है—

१. प्राचीनपरिपाटीपटूनां-संस्कृत पण्डितानां साम्प्रतं किं स्थानम्-८।४
२. मुधैव पण्डिता अविक्षिप्यन्ते-११।७

(१४-इ)— जयपुरवैभवम्—नागरिकवीथी, सुधीचत्वरः पद्य सं० ६६ पृष्ठ संख्या २५८।
(१५-अ)- सिविल लिस्ट-करेक्टेड अपटू ३१ जुलाई, १९४६ शिक्षा विभाग-संस्कृत कालेज, पृष्ठ ५९।

३. हा हन्त शास्त्रशैथिल्यमेव सुधारः—११।१०
४. बालानां कृते किं संस्कृतपुस्तकम्—११।१०-११
५. सान्वयवादः—१६।१२ वाराणसी से प्रकाशित
६. अनुभववादः —१७।४ कानपुर से प्रकाशित
७. शब्दतत्त्वम्—१९५५ ई० पृष्ठ १३९ से १६० दर्शनांक विशेषांक इत्यादि।

आप व्याकरण के क्षेत्र में उल्लेखनीय विद्वान रहे हैं। आपकी विद्वत्ता का परिज्ञान उपर्युक्त कतिपय संस्कृत भाषात्मक लेखों की समीक्षा से स्वतः ही हो जाता है। आपकी सेवायें उल्लेखनीय रही हैं।

---

१६. श्री केवलराम श्रीमाली

गुजरात प्रान्त से श्रीमाली विप्रवंश में लब्धजन्मा श्री केवलरामजी का नाम अपने समय के विद्वानों में उल्लेखनीय रहा है। राजवैद्य श्री कृष्णराम भट्ट ने अपने समकालीन विद्वानों का उल्लेख करते हुए आपका सादर स्मरण किया है—(१६-अ)

"भर्गस्तुतिः संस्कृतविप्रवर्गः प्रतिक्षणं कारितपुण्यसर्गः।
दैवज्ञरत्नं विलसन्निसर्गः स केवलः केवलमस्ति गर्गः॥

इस पद्य से यह सिद्ध होता है कि श्रीमाली ज्योतिष शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् और तत्कालीन विद्वत् समाज में सम्मानित थे। श्रीमाली परिवार जो भी जयपुर आये, प्रायः सभी ज्योतिषशास्त्र के महान् वेत्ता रहे हैं और इसी कारण वे जयपुर राज्य द्वारा सम्मानित भी होते रहे हैं। आपका नाम जयपुर के जयविनोदी पंचाङ्ग के निर्माता के रूप में प्रसिद्ध रहा हैं। (१६-आ) जयपुर में सर्वप्रथम पंचाग का निर्माण आपने ही प्रारम्भ किया था और इसके पश्चात् आपके पुत्र श्री गूजरमल शर्मा और पौत्र श्री नारायण शर्मा ने इस पंचाग-निर्माण-परम्परा का पूर्ण निर्वाह किया। इस समय श्री मदनमोहन शर्मा तथा श्री गंगाप्रसाद शर्मा जो आपके प्रपौत्र हैं, पंचांग का सम्पादन कर रहे हैं। यद्यपि अब यह पंचाग प्राचीन गणित से निर्मित होने के कारण संशोधनीय है, फिर भी इसका इतिहास स्मरणीय है। आप उल्लेखनीय विद्वान रहे हैं।

---

१७. श्री गजानन दाक्षिणात्यः

महाराज सवाई रामसिंह द्वितीय एवं महाराज सवाई श्री माधवसिंह द्वितीय के शासनकाल में जयपुर नगर में एक दाक्षिणात्य विद्वान् के होने का उल्लेख मिलता है। यह उल्लेख राजवैद्य श्री कृष्णराम भट्ट ने अपने जयपुर विलास काव्य में समकालीन विद्वानों के उल्लेखन के साथ किया है।

(१६-अ)— जयपुर विलास काव्यन् पंचम उल्लास पद्य सं० ५३ पृष्ठ सं० ५३

(१६-आ)— श्री केवलराम ज्योतिषराय भी गुजराती विद्वान् थे जो सवाई जयसिंह द्वितीय (जयपुर संस्थापक) के समकालीन थे। श्रीमाली सवाई रामसिंह द्वितीय के समकालीन रहे हैं। जयपुर के ज्योतिष यन्त्रालय के बाहर पुरातत्व संग्रहालय के निदेशक द्वारा लगाया गया शिलालेख अशुद्ध है, क्योंकि इसमें श्रीमाली को सवाई जयसिंह द्वितीय कालीन बतलाया गया है।

"परं प्रजाविघ्नविनाश-कर्मठः शिवांघ्रिसेवाप्रथितात्मवैभवः ।
सदैव दानार्द्र करो महामहा गजाननो भाति गजाननो यथा ।।६३।।"

इसका आशय है कि आप भगवान् गणेश के समान प्रजा के विघ्नों के नाश करने में संलग्न रहा करते थे तथा भगवान् शंकर की सेवा में संलग्न भी । आपका नाम संस्कृत कालेजीय अध्यापक वर्ग में उपलब्ध नहीं होता । आपके सम्बन्ध में कोई विशेष बात ज्ञात नहीं हो सकी । आपका रचनात्मक कार्य भी उपलब्ध नहीं है। केवल आपका उल्लेख राजवैद्य श्री कृष्णराम भट्ट द्वारा विद्वानों की परिगणना के आधार पर यहां किया गया है। संभवतः आप उस समय उल्लेखनीय विद्वान् रहे होंगे ।

---

१८. श्री गणेश शास्त्री गोड़शे

श्री गोडशे दाक्षिणात्य विद्वान् थे । आप म० म० श्री दुर्गाप्रसाद द्विवेदी के प्राचार्यत्व काल में महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर के वेद के प्राध्यापक थे । (१८–अ) उस समय केवल इस कालेज में यजुर्वेद का ही पाठन होता था । म. म० श्री द्विवेदी जी ने इनके स्वभाव को देखकर कहना प्रारम्भ किया था––'प्रकृतिमुखरो दाक्षिणात्यः स्वभावः ।'' इससे ज्ञात होता है कि ये स्वभाव से बहुत ही शान्त एवं गम्भीर विद्वान् थे । आप वेद के प्रकाण्ड विद्वान् थे । सोमयाग आदि विधियों के ज्ञाता होने के कारण आपका नाम वैदिक विद्वानों की श्रेणी में उल्लेखनीय है । अखिल भारतीय वैद्य सम्मेलन के सोलहवे अधिवेशन, जयपुर में वैदिक मंगलाचरण के लिए जब आपसे प्रार्थना की गई थी, तब आपने उत्तर दिया था कि इस सार्वजनिक सभा में वेद श्रवण के अनधिकारी यवन आदि भी उपस्थित हैं, अतः वेद की मर्यादा को जानने वाले मुझ जैसे व्यक्ति से सम्भव नहीं है कि वेद पाठ किया जाये । (१८–आ)

कविशिरोमणि भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री ने आपका उल्लेख इस प्रकार किया है–(१८–इ)

"माध्यन्दिनशाखामाप्य काश्यां समधीत्य श्रुतिं
व्युत्पत्तिप्रकाश्यामथ विद्यामधिगत्य ताम् ।
सदसि घनान्तवेदपाठी पुनः श्रौतविधा-
वग्निचयनान्तक्रियाकुशलो (अ) वधार्यताम् ।।
जयपुरराजकीयशालावेदपाठको (अ) यं
शिरसि विशालां दधदुष्णीषिकामिष्यताम् ।
व्यंजन्नात्ममानं वैद्यसम्मेलने षोडशे (अ) थ
गोडशे गणेशशास्त्री वैदिको विभाव्यताम् ।।"

इस पद्य से ज्ञात होता है कि आपका अध्ययन काशी में सम्पन्न हुआ था । पं० शिवप्रताप वेदाचार्य तथा पं० श्रीविजयचन्द्र चतुर्वेदी आपके उल्लेखनीय शिष्य थे । आपने २५ अगस्त, १९२४ तक संस्कृत कालेज में अध्यापन किया था । आप उल्लेखनीय विद्वान् रहे हैं ।

(१८–अ)– संस्कृत कालेज के प्राचीन रिकार्ड उप–स्थिति पत्रको में सन् १९२४ तक आपका नाम मिलता है। आपके साथ पं० जानकीलालजी भी वेद पढ़ाया करते थे ।

(१८–आ)– जयपुरवैभवम्–नागरिकवीथी सुवीचत्वरः, पद्य सं० ६५ की विवृत्ति, पृष्ठ सं० २५५–५६

(१८–इ)– वही, पृष्ठ २५५

१९. श्री गिरिजाप्रसाद द्विवेदी

श्री द्विवेदीजी भारत विख्यात सत्सम्प्रदायाचार्य श्री सरयूप्रसादजी द्विवेदी के पौत्र तथा म० म० पं० श्री दुर्गाप्रसाद द्विवेदी के सुपुत्र थे। यों तो आपके पूर्वज अयोध्या (जिला फैजाबाद, उत्तरप्रदेश) से पश्चिम में आठ कोस पर विद्यमान "पण्डितपुरी" के निवासी थे। खास मौजा पिलखावां है, जहां "वयस" क्षत्रिय और धर्मकर्मपरायण जोखा उपनामक सरयूपारीण पाण्डे ब्राह्मण रहा करते थे। लखनऊ-मुगलसराय लाइन पर फैजाबाद से चौथा स्टेशन 'देवराकोट' है और इसी के समीप पण्डितपुरी नामक स्थान है। आपके पितामह श्री सरयूप्रसादजी द्विवेदी ने यहां एक साम्बशिव का मन्दिर, कूप, फलपुष्प-वाटिका तथा पुस्तकालय आदि की स्थापना की थी। इसका नाम 'शिवकुटीर' है। यद्यपि श्री सरयूप्रसादजी द्विवेदी जयपुर रहने लगे थे, परन्तु फिर भी वे पारिवारिक मांगलिक कार्यों के सम्पादन हेतु पण्डितपुरी जाया करते थे। श्री द्विवेदी का जन्म पण्डितपुरी में ही हुआ था। आप अपने पिता के एक मात्र पुत्र थे। आपका वंशवृक्ष इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :—

श्री वेणीप्रसाद द्विवेदी
|
श्री राधाकृष्ण द्विवेदी
|
├── श्री सरयूप्रसाद द्विवेदी
│ |
│   श्री दुर्गाप्रसाद द्विवेदी
│ |
│   श्री गिरिजाप्रसाद द्विवेदी
│   ├── श्री महादेवप्रसाद द्विवेदी
│   └── श्री गंगाधर द्विवेदी
└── श्री नन्दकिशोर द्विवेदी

श्री द्विवेदीजी की जाति सरयूपारीण ब्राह्मण, उपाख्या द्विवेदी, गोत्र काश्यप, वेद शुक्लयजुः तथा शाखा माध्यन्दिनी थी। आपके पिता म० म० श्री दुर्गाप्रसाद द्विवेदी महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर के ज्योतिष प्राध्यापक व प्राचार्य रहे थे। पूर्व परंपरागत संस्कारों के कारण श्री द्विवेदी ने भी मुख्यतः ज्योतिष शास्त्र का ही अध्ययन किया था।

श्री द्विवेदी का जन्म २१ नवम्बर, १८८३ को हुआ था। (१९–अ) आपकी शिक्षा जयपुर में ही सम्पन्न हुई। आप महाराज संस्कृत कालेज के नियमित छात्र रहे हैं तथा आपने ज्योतिष शास्त्री परीक्षा संवत् १९५९ में तृतीय श्रेणी से तथा ज्योतिषाचार्य परीक्षा संवत् १९६२ में प्रथम श्रेणि से उत्तीर्ण की थी। (१९–आ) आपने म० म० श्री दुर्गाप्रसाद द्विवेदी के अवकाश ग्रहण करने पर ९ सितम्बर, १९२६ से असिस्टेन्ट प्रोफेसर, ज्योतिष विभाग के पद पर कार्य करना प्रारम्भ किया था। सन् १९४३ तक आप संस्कृत कालेज में ज्योतिष का अध्यापन

(१९–अ)–लिस्ट आफ एजूकेशनल आफिसर–करेक्टेड अप्टू १ सितम्बर, १९३५ महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर–असिस्टेन्ट प्रोफेसर, क्रमांक ९ पर अंकित तिथि के अनुसार।

(१९–आ)–'शास्त्रिपरीक्षोत्तीर्णच्छात्राणां नामादीनि' क्रम सं० ४३ तथा 'आचार्यपरीक्षोत्तीर्णच्छात्राणां नामादीनि' क्रम सं० ९ पर अंकित विवरण।

करते रहे। इस अवधि में आपके अनेक विख्यात शिष्य रहे हैं, जो संपूर्ण भारतवर्ष में विद्यमान हैं। आपने ज्योतिष शास्त्र का अध्ययन अपने पितृचरण से ही किया था।

ज्योतिष के अतिरिक्त आपका साहित्य, आख्यान साहित्य, धर्मशास्त्र, वैदिक उपाख्यान, पद्यरचना, इतिहास व गवेषणा के प्रति विशेष प्रेम था। आपके अनेक लेख (रचनायें) संस्कृत रत्नाकर के प्राचीन अंकों में प्रकाशित हैं। इनका उल्लेख इस प्रकार है :—

क्रम	नाम रचना	विधा	पत्रिका	वर्ष	अंक	विवरण
१.	वर्षा मनः कर्षति	समस्या पूर्ति	संस्कृत रत्नाकर	१	६	१६०४ ई०
२.	नये च शौर्ये च वसन्ति संपदः	,,	,,	१	७	१६०४ ई०
३.	घोयी कविः	इतिहास	,,	६	३	१६१४ ई०
४.	कविचर्या (तिरुमलाम्बा)	,,	,,	१	२	१६३३ ई०
५.	भट्टक्षीरस्वामी	,,	,,	२	३	—
६.	पृथ्वीराज विजयं काव्यम्	,,	,,	८	६	—
७.	ऋतुविलास-काव्यम्	काव्य	,,	१	८, ६, १०	१६३३ ई०
८.	कृपक कथा	कथा	,,	१	१०	१६३३ ई०
६.	काकरुतन्	शकुनशास्त्र	,,	१	१२	१६३३ ई०
१०.	शंखलिखितस्मृतिः	धर्मशास्त्र	,,	२	८	—

इनके अतिरिक्त अम्बवाटीमङ्गलम् (८।७), देशदशा (८।८), छात्रशिक्षा (लेख) (८।१२), गोमतीतीरम् (६।४), वर्षा (१०।५) आदि अनेक लेख व पद्य प्रकाशित हुए हैं।

आपके अन्य प्रकाशित ग्रन्थात्मक रचनाओं का उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है :—

१. **सिद्धान्तशिरोमणि** (गणिताध्याय) भास्कराचार्य कृत—**भाषा और उपपत्ति**—संस्कृत में प्रभा नामक **टीका** और भाषाभाष्य—नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित।
२. **सिद्धान्तशिरोमणि** (गोलाध्याय)—**प्रभा नामक टीका व भाष्य**—नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित।
३. **लीलावती** (भास्कराचार्य कृत)—**संपादन व उपपत्ति**—नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित।
४. **बीजगणित** (भास्कराचार्य कृत)—**संपादन व उपपत्ति**।
५. **क्षेत्रमिति—संपादन—विशेष परिष्कारयुक्त**।
६. **मेघदूत** (कालिदास) **संस्कृत एवं हिन्दी टीका**—नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित।
७. **बृहत्संहिता** (वराहमिहिर) **हिन्दी टीका एवं संपादन**—नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित।
८. **अलंकारसर्वस्व संपादन** (रुय्यक कृत) निर्णयसागर प्रेस, बम्बई से प्रकाशित।
६. **मनुस्मृतिः—हिन्दी टीका**—नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित।
१०. **लघुपाराशरी—हिन्दी टीका**—नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित।
११. **शिवमहिम्नस्तोत्र—व्याख्या** (प्रकाशित)।

आपका ८४ वर्ष की अवस्था में अपने घर पण्डितपुरी में ही स्वर्गवास हुआ। आप ज्योतिष शास्त्र के साथ ही अन्य विषयों के भी उल्लेखनीय विद्वान् थे। आपका उल्लेख कविशिरोमणि भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री ने इस प्रकार किया है :—(१६–इ)

(१६–इ)—जयपुरवैभवम्—नागरिकवीथी—सुधीचत्वरः, पद्य संख्या ६८, पृष्ठ संख्या २५७।

"लब्धाचार्यगौरवो यो ज्योतिषेऽ(अ) प्यमन्दीभवन्
पत्रादिषु दर्शनीयहिन्दी लेखमर्माऽ (अ) यम् ।
सर्वविश्वसाहित्यानुरागो लघुलेखगद्गु-
मित्रमण्डलीषु मिलन्मर्मस्पर्शिनर्माऽ (अ) यम् ।
चक्रोष्णीषधारी भाति गुरुतां दधानोऽ (अ) धुना
प्राप्तराजविद्यालयाध्यापकत्वकर्माऽ(अ) यम्
वार्ताप्रौढिभावाद्भूरिवेदी परामृश्यतां च
दृश्यतां द्विवेदी गिरिजाप्रसादशर्माऽ(अ) यम् ॥"

आपकी रचनाओं के विश्लेषण से आपका वैदुष्य स्पष्टतः ज्ञात हो जाता है।

---

२०. महामहोपाध्याय पं० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी

जयपुर ही नहीं, वरन् सम्पूर्ण भारतवर्ष में विख्यात विद्वान् महामहोपदेशक विद्वत्शिरोमणि श्री चतुर्वेदीजी सदृश विद्वान् यदा कदा ही अवतरित होते हैं। श्री चतुर्वेदीजी का नाम जयपुर के संस्कृत साहित्य के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से उल्लेखनीय है। आपने सनातन धर्म के संस्थापन हेतु सम्पूर्ण जीवन बलिदान किया और संस्कृत-संस्कृति की नींव को दृढ़ करने के लिये आजीवन सत्प्रयास किया। योगदान के प्रकारों में से शायद ही कोई ऐसा क्षेत्र रहा होगा, जिसमें श्री चतुर्वेदीजी का बौद्धिक या शारीरिक योग न रहा हो। आपके उल्लेखनीय कार्यों में अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन की स्थापना तथा संस्कृत रत्नाकर सदृश संस्कृत भाषात्मक पत्र का सम्पादन व प्रकाशन स्मरणीय हैं।

वंश-परिचय :

श्री चतुर्वेदीजी के पूर्वज जयपुर की स्थापना के पश्चात् यहां आकर स्थायी रूप से रहने लग गये थे। इस सम्बन्ध में श्री चतुर्वेदीजी का अपनी आत्मकथा में उल्लेख ही सर्वतः प्रामाणिक है। उन्होंने लिखा है :—

"मेरे पूर्वज कई पीढियों से जयपुर राज्य में हिन्दी भाषा के 'कवीश्वर' पद पर प्रतिष्ठित थे। कहा जाता है कि जयपुर राज्य के पूर्व महाराज श्री माधवसिंहजी जो कि उदयपुर के महाराजा श्री अमरसिंहजी के दौहित्र थे और बहुत काल तक उदयपुर (२०-अ) का राज्य सिंहासन प्राप्त न कर सके थे। वे जब महाराज पद प्राप्त कर जयपुर पधारे तब उनके साथ ही मेरे पूर्वज भी मथुरा से आये थे। ऐसा अनुमान होता है कि यवन साम्राज्य

(२०-अ)-यह उदयपुर नहीं, जयपुर होना चाहिये, क्योंकि माधवसिंह प्रथम जयपुर के शासक बने थे।

के दिनों में अपनी प्रतिष्ठा बचाने के लिए बहुत से माथुर चतुर्वेदियों ने मेवाड़ राज्य की शरण ली थी, उनमें ही ये भी रहे होंगे। ये ज्योतिष के भी विज्ञाता थे और उसके आधार पर ही उन्होंने श्री माधवसिंहजी से कहा था कि "आप जयपुर राज्य के अधिपति अवश्य बनेंगे।" तब उन्होंने वचन दिया था कि "मैं यदि जयपुर का अधिपति बनूंगा, तो तुम्हें भी अपने राज्य अवश्य ले चलूंगा।" उसी वचन के अनुसार वे उन दो भ्राताओं को, जिनका कि नाम श्री ब्रजलालजी और रामलालजी था, अपने साथ जयपुर लाये थे। वहां लाकर उन्हें सम्मानपूर्वक रखा और राज कवीश्वरों में इन्हें प्रतिष्ठित स्थान दिया।" (२०–आ)

आपका वंशवृक्ष इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :—
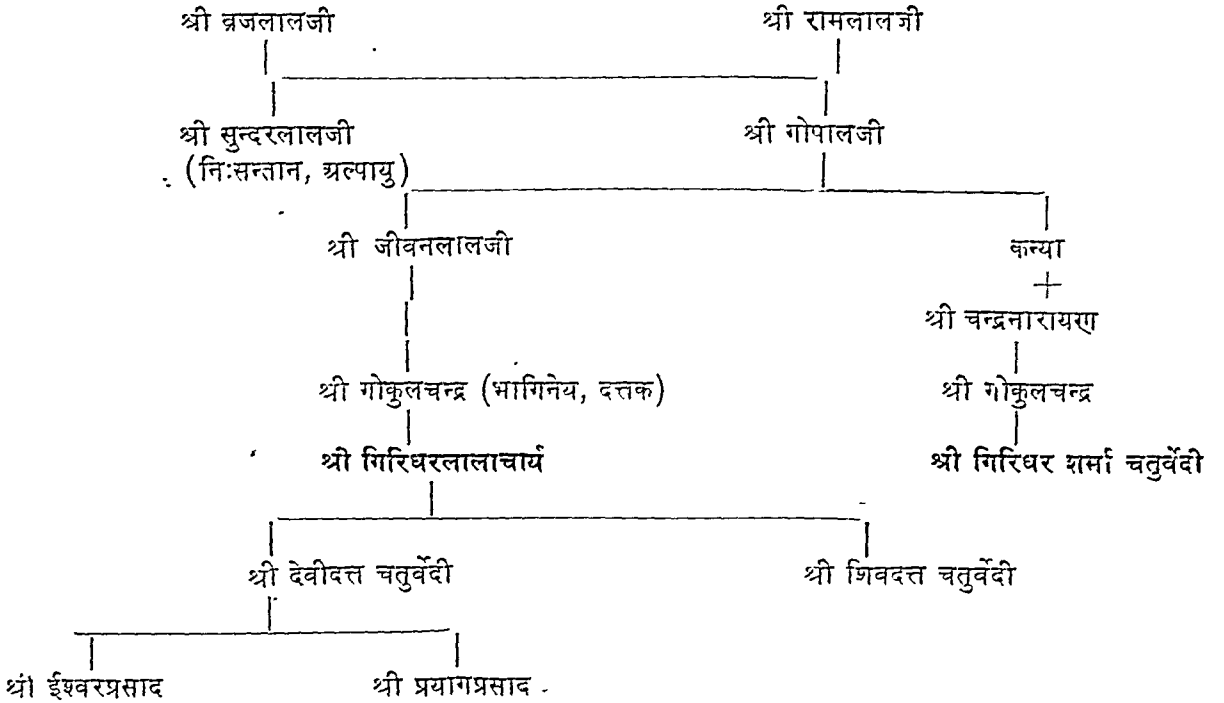
श्री चतुर्वेदीजी के पिता श्री गोकुलचन्द्रजी थे तथा माता का नाम श्रीमती लवंगीदेवी था, जो प्रख्यात कवि कुलपति मिश्र के वंशज श्री लक्ष्मीप्रसादजी की कन्या थी। श्री गोकुलचन्द्रजी के जन्मदाता श्री चन्द्रनारायणजी थे, जो गोपालजी के जामाता तथा श्री जीवनलालजी के भगिनीपति (बहनोई) थे। श्री जीवनलालजी के सन्तान न होने पर दत्तक रूप में श्री गोकुलचन्द्रजी आपके पुत्र बने। श्री गोकुलचन्द्रजी के ७ पुत्र नष्ट होने पर श्री चतुर्वेदीजी का जन्म हुआ और कन्या हुई ही नहीं। इस प्रकार श्री चतुर्वेदीजी अपने पिता के एकमात्र पुत्र रहे।

जन्म–शिक्षा—मेवाड़ देशस्थ श्री रूपचतुर्भुजजी के आराधन से पौषशुक्ल दशमी विक्रम संवत् १९३८ को श्री चतुर्वेदीजी का जन्म हुआ और इसीलिए आपका नाम श्री गिरिधरलाल रखा गया। एकाकी होने के कारण आपका बाल्यकाल बड़े ही लाड-प्यार से बीता था। आठ वर्ष की अवस्था में उपनयन संस्कार और बाल विवाह की कुप्रथा के अनुसार नवम वर्ष में जयपुर राज्य के कवीश्वर जयपुर निवासी श्री रघुनन्दनजी के पुत्र श्री छविनाथ जी की कन्या श्रीमती विद्या देवी के साथ सम्पन्न हुआ। (२०–इ) आठ वर्ष की अवस्था में सर्वप्रथम आपने

(२०–आ)–'आत्मकथा और संस्मरण'–म० म० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, वाराणसी से प्रकाशित–पृष्ठ १ "जन्म और शिक्षा।"

(२०–इ)–'आत्मकथा और संस्मरण'–पृष्ठ ३ के अनुसार।

महाराज संस्कृत कालेज में प्रवेश लिया और संवत् १९५२ में १४ वर्ष की अवस्था में प्रथम श्रेणी में प्रवेशिका परीक्षा उत्तीर्ण की। आपकी विद्वत्ता एवं योग्यता से प्रभावित होकर श्री कालीपद वन्द्योपाध्याय ने न्यायोपाध्याय में प्रवेश लेने का आग्रह किया। इधर पितृचरण की इच्छा थी कि साहित्याध्ययन किया जाय, परन्तु स्वयं की इच्छा व्याकरण पढने की थी और अन्त में आपने व्याकरण उपाध्याय में ही प्रवेश लिया। श्री जीवनाथ झा ने आपको स्नेहपूर्वक पढने के लिये प्रोत्साहित किया तथा भगवती आद्या की दीक्षा भी दी। आपके प्रवेशिका के गुरु थे—श्री कन्हैयालालजी (व्याकरण) पं० श्री कन्हैयालालजी (न्याय) श्री रामचन्द्रजी (गणित) श्री जानकीलालजी चतुर्वेदी (व्याकरण) श्री गोपीनाथजी शास्त्री दाधीच (साहित्य)। अन्य उल्लेखनीय गुरुजनों में श्री नरहरि ओझा मैथिल, श्री लक्ष्मीनाथ शास्त्री द्राविड़, विद्यावाचस्पति पं० मधुसूदन ओझा के नाम स्मरणीय हैं। इनमें श्री लक्ष्मीनाथ शास्त्री से व्याकरण, श्री जीवनाथ झा से साहित्य तथा न्याय एवं विद्यावाचस्पतिजी से वैदिक विज्ञान का अध्ययन किया था। इसी सन्दर्भ में कुछ उल्लेखनीय घटनायें हैं, जिनका संकेत महामहोपाध्यायजी की आत्मकथा से मिलता है। उन्होंने लिखा है कि जब वे व्याकरणोपाध्याय की परीक्षा में सम्मिलित हुए थे, उस समय श्री दामोदर शास्त्री तथा श्री गंगाधर शास्त्री, जो वाराणसी के विख्यात विद्वान् थे, आपके परीक्षक थे। उन्होंने परीक्षा-परिणाम के साथ लिखकर भेजा था—"व्याकरणोपाध्यायपरीक्षायां गिरिधरलालचन्द्रदत्तयोः समीचीनः शास्त्राभ्यासः। प्रशंसनीया चानयोर्लेखपरिपाटी।" (२०-ई) इसी प्रकार शास्त्री के परीक्षक श्री शिवकुमार मिश्र का स्वहस्तलिखित प्रमाण पत्र भी उल्लेखनीय है—"अयं महाबुद्धिमान् शास्त्रे कृतश्रमश्चोत्तीर्णः।" (२०-उ) व्याकरणाचार्य परीक्षा के उल्लेखन पर स्वयं महामहोपाध्यायजी ने लिखा है कि श्री शिवकुमार शास्त्री ही आपके महाभाष्य के प्रश्नपत्र के परीक्षक थे और उन्होंने आपको इस पत्र में सौ में से पूरे सौ योग्यता अंक प्रदान किये थे। इससे उनकी पण्डित मण्डली में बहुत ख्याति हुई। (२०-ऊ) आपके द्वारा उतीर्ण परीक्षाओं का विवरण (संक्षिप्त) इस प्रकार है :—

क्रम	नाम परीक्षा	वर्ष	श्रेणि	स्थान	विवरण
१.	प्रवेशिका	सं १९५२	प्रथम	प्रथम	
२.	उपाध्याय (व्याकरण)	सं १९५५	प्रथम	प्रथम	
३.	शास्त्री (व्याकरण)	सं १९५८	प्रथम	प्रथम	
४.	आचार्य (व्याकरण)	सं १९६०	प्रथम	प्रथम	
५.	न्यायशास्त्री	सं १९६३	प्रथम	प्रथम	पंजाब विश्वविद्यालय
६.	वेदान्त आचार्य	सं १९६१	प्रथम	—	

आपकी मित्रमण्डली में पं० श्री कन्हैयालालजी न्यायाचार्य (दाधीच), पं० श्री अनिरुद्ध ठक्कुर (श्री भाईनाथजी ओझा के पुत्र, अल्पायु में ही दिवंगत), आयुर्वेदाचार्य श्री दुर्गाप्रसादजी गौड़ (अध्ययन में साथ नहीं थे), श्री लक्ष्मीनारायण जी (उपनाम श्री भूरामलजी), श्री केदारनाथ जी ज्योतिर्विद्, श्री भगवतीलाल दाधीच (प्रवेशिका में सहाध्यायी), श्री चन्द्रदत्तजी ओझा (बाबूजी के नाम से विख्यात, यावज्जीवन परम सुहृद्) श्री कृष्ण मैथिल, श्री सूर्यनारायण जी व्याकरणाचार्य (यावज्जीवन परम मित्र), स्वामी लक्ष्मीरामजी वैद्य, श्री मदन लाल शास्त्री प्रश्नवर, भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री (यावज्जीवन परम मित्र), श्री सोमदेव गुलेरी (अल्पायु में

(२०-ई)—वही, पृष्ठ १५।
(२०-उ)—वही, पृष्ठ १९।
(२०-ऊ)—वही, पृष्ठ २१।

दिवंगत), श्री रूपनारायणजी (श्री जानकीलालजी चतुर्वेदी के पुत्र) आदि उल्लेखनीय विद्वान् थे, जिसका उल्लेख महामहोपाध्यायजी ने अपनी आत्मकथा में स्थान–स्थान पर किया है।

उल्लेखनीय घटनायें—

संवत् १६५८ अर्थात् सन् १६०१ में श्री चतुर्वेदीजी व उनकी मित्र-मण्डली ने संस्कृतोपयोगिनी सभा की स्थापना की थी। इसका उद्देश्य पाठ्येतर गतिविधियों को प्रोत्साहित करना था, जिनमें भाषण देने का अभ्यास करना, अपने विचारों की अभिव्यक्ति, शास्त्रार्थ मीमांसा, ऊहापोह मुख्य थे। इसमें सभी मित्र लिख–लिख कर कुछ संस्कृत के छोटे–छोटे निबन्ध पढ़ा करते थे। यह कुछ ही दिन चल सकी। यह घटना शास्त्री परीक्षा में सम्मिलित होने से पूर्व की है। (२०–ऋ)

शास्त्री परीक्षा देने के पश्चात् श्री बालचन्द्रजी शास्त्री द्वारा संस्थापित "राम सभा" में वक्तृता का अभ्यास प्रारम्भ किया और सर्वप्रथम "भगवान् का नाम और रूप" पर व्याख्यान दिया। इसके पश्चात् अनेक व्याख्यान दिये, जिनमें श्री मधुसूदनजी झा के वैदिक विज्ञान, आर्यसमाज, सनातन धर्म सम्बन्धी खण्डन-मण्डनात्मक भाषण सम्मिलित हैं। सप्ताह के अन्त में एक दिन "शास्त्रार्थ" किये जाने के लिए संस्कृत पाठशाला में ही "शास्त्रार्थ सभा" की स्थापना की गई। आपने संस्कृत कविता निर्माण करने का अभ्यास (बहुत प्रारम्भ से ही) श्री लक्ष्मीनाथ शास्त्री द्राविड़ की प्रेरणा से किया था और इसका यह भी परिणाम रहा कि आपको अंग्रेजी भाषा का भी सामान्य ज्ञान हो गया था। उनके प्रयास से अंग्रेजी की स्पेशल क्लास की व्यवस्था की गई थी और श्री कालीपद महाशय जो पट्टो बाबू के नाम से विख्यात थे। अंग्रेजी पढ़ाते थे।

आचार्य परीक्षा उत्तीर्ण होने पर मित्र मण्डली के विचारानुसार तथा गुरुवर श्री मधुसूदनजी झा के प्रोत्साहन व श्री बालचन्द्र शास्त्री के मुद्रण सम्बन्धी व्यवस्था का आश्वासन प्राप्त होने पर "संस्कृत रत्नाकर" नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया गया। यह घटना संवत् १६६१ की है। आपने श्री सूर्यनारायण जी व्याकरणाचार्य, चन्द्रदत्तजी मैथिल तथा कविशिरोमणि भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री के सहयोग से उक्त पत्रिका का सफल सम्पादन प्रारम्भ किया। यह पत्रिका जयपुर निवासी विद्वन्मण्डल द्वारा सम्पादित थी। इसका जयपुर के संस्कृत साहित्य के इतिहास में महत्त्वपूर्ण योगदान है। (२०–ए) श्री चतुर्वेदीजी इसके जन्मदाता हैं। श्री चतुर्वेदीजी की अधिकांश रचनायें इसी के माध्यम से विश्वविख्यात हैं। इस पत्रिका की प्रथम संचिका (प्रथम आकर, प्रथम रत्न) में जो वैशाख शुक्ल १५ शाके १८२६ को प्रकाशित हुई है, "विद्यार्जने के गुणाः" समस्या की पूर्ति करने वाला श्री चतुर्वेदीजी द्वारा लिखित पद्य यहां प्रस्तुत किया जाता है :—(२०–ऐ)

"यत्सर्वेषु सुखेषु निःस्पृहतया बद्धव्रतं स्थीयते
शुश्रूषा च गुरोः कुलेऽनवरतं कष्टा समालम्ब्यते।
नीयन्ते च निशाः प्रजागरवला यच्छास्त्रमभ्यस्यता
तन्मे ब्रूहि सखे! त्वयाऽत्र कलिता विद्यार्जने के गुणाः॥"

(२०–ऋ)–'आत्मकथा और संस्मरण'—पृष्ठ १७ के अनुसार।

(२०–ए)—संस्कृत रत्नाकर का इतिवृत्त इस शोध प्रबन्ध के प्रथम खण्ड (परिचय खण्ड) अनुभाग 'ङ' पृष्ठ संख्या ८२–८८ पर देखिये।

(२०–ऐ)—उक्त पद्य श्री कलानाथ शास्त्री के पास सुरक्षित 'संस्कृत रत्नाकर' की प्रति से उद्धृत है।

संस्कृत रत्नाकर के प्रकाशन में उपस्थित गत्यवरोधों का शान्तिपूर्व शमन करते हुए श्री चतुर्वेदीजी ने इसे अपने जीवन काल तक येनकेनप्रकारेण प्रकाशित रखा। यह प्रयास वास्तव में उल्लेखनीय है।

आपके उल्लेखनीय कार्यों मे (१) भारतधर्म महामण्डल के अधिवेशन में विद्यावाचस्पतिजी के साथ वाराणसी गमन, (२) स्वनामधन्य श्री मदनमोहनजी मालवीय द्वारा आयोजित श्रीसनातनधर्म महासभा के अधिवेशन प्रयाग मे सम्मिलित हो, विशाल विद्वान् समुदाय के बीच व्याख्यान देना, (३) श्री कस्तूरिरंगाचार्य द्वारा 'संस्कृत चन्द्रिका' नामक संस्कृत पत्रिका में प्रकाशित व्याकरण सम्बन्धी लेख 'ओजिष्ठादिशब्दविचारः' का समालोचनात्मक लेख 'ओजिष्ठादिशब्दविचारालोचनम्' का संस्कृत रत्नाकर में प्रकाशन, (४) सरस्वती के यशस्वी सम्पादक श्री महावीरप्रसाद द्विवेदी के लेख 'भाषा की अनस्थिरता' की आलोचना में भाग लेते हुए 'भारतमित्र' आदि कई प्रमुख पत्रो मे अपने लेख (खण्डनात्मक) प्रकाशित करवाना, (५) वृन्दावन के श्री मधुसूदन गोस्वामी के आलोचक श्री वामनाचार्य को प्रत्युत्तर देते हुए लिखे गये गोस्वामीजी के ही लेख 'स्मार्तमर्म' का खण्डन, जो भारत धर्म महामण्डल द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका 'निगमागमचन्द्रिका' में 'स्मृति–विरोधपरिहारः' शीर्षक से लेखमाला के रूप में प्रकाशित हुआ है, आदि शैक्षणिक विकास के लिए चिरस्मरणीय है। (२०–ओ)

सहारनपुर का अध्यापन

आचार्य परीक्षा उत्तीर्ण करने के दो वर्ष पश्चात् अखिल भारतीय दिगम्बर जैन महाविद्यालय, सहारनपुर के प्रधानाध्यापक पद पर आश्विन सं० १९६३ में ५०रु० मासिक पर आपकी नियुक्ति हुई थी। इस समय आपकी आयु २५ वर्ष की थी। एक वर्ष भी शान्तिपूर्वक कार्य न किया जा सका और उक्त विद्यालय को 'स्याद्वाद विद्यालय' के अधीन कर वाराणसी स्थानान्तरित कर दिया गया। फलतः आपको जयपुर लौटना पड़ा। (२०–औ)

हरिद्वार के ऋषिकुल में

सन् १९०८ के अन्त में श्री चतुर्वेदीजी ने ऋषिकुल हरिद्वार में अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया। आपका कार्यकाल ९ वर्ष का था। वास्तव में मनुष्य की कार्य की उत्साह की जो अवस्था होती है, श्री चतुर्वेदीजी ने हरिद्वार में ही बिताई। श्री चतुर्वेदीजी ने लिखा है कि उनके कारण ऋषिकुल देश में प्रसिद्ध हुआ और ऋषिकुल के कारण उन्हे भी देश में पूर्ण ख्याति प्राप्त हुई। श्री चतुर्वेदीजी ने इस विद्यालय का पाठ्यक्रम बनाया और इसे सुव्यवस्थित करने की दृष्टि से पांच विभागों की स्थापना की—(१) अध्यापक विभाग, (२) उपदेशक विभाग, (३) कर्मकाण्ड विभाग (४) ज्योतिष विभाग और (५) आयुर्वेद विभाग। यहां की आर्थिक स्थिति सुदृढ करने के लिए आपने भारतवर्ष की विभिन्न यात्रायें कीं। अपनी माता और पितामही के दिवगत हो जाने पर वियोग की मनोव्यथा से पीडित होते हुए भी आप इसके उत्थान के लिए प्रयत्नशील रहे। यहा तक कि आपकी प्रथम पत्नी प्लेग से आक्रान्त होकर दस दिन रोगशैय्या पर रहकर परलोक सिधार गई, फिर

(२०–ओ)—'आत्मकथा और संस्मरण' नामक प्रकाशित ग्रन्थ में स्वयं श्री चतुर्वेदी जी ने जिन घटनाओं का उल्लेख किया है, यहां उनका संकेतमात्र किया गया है—पृ० १ से ३०।

(२०–औ)—'आत्मकथा और संस्मरण'—सहारनपुर में अध्यापन—पृष्ठ संख्या ३१ से ३६।

भी आपने धैर्य न छोड़ा और उक्त ऋषिकुल के कार्य में संलग्न रहे। अन्त में इतनी सेवा करके छोड़ना पड़ा। (२०-अ)

आपके हरिद्वार के ऋषिकुल में रहते हुए उल्लेखनीय कार्यों में अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन की स्थापना, गुरुकुल के शास्त्रार्थ, ब्रह्मचारी पत्र का सम्पादन आदि विख्यात हैं, जो आपकी सुप्रसिद्धि के मूल कारण रहे हैं। (२०-अः) आर्यसमाज के सिद्धान्तों का खण्डन करने के लिये तथा सनातनधर्म के सिद्धान्तों की पुष्टि के लिए अनेक शास्त्रार्थों का आयोजन हुआ, जिनमें से अधिकांश का आपने अपनी आत्मकथा में उल्लेख किया है। इन शास्त्रार्थों आप प्रमुख वक्ता होते थे और सदा विजय प्राप्त करते रहे। ब्रह्मचारी मासिक पत्र का प्रकाशन भी इसी विचारधारा से प्रेरित होकर किया गया था। इस पत्र में प्रस्तुत किये गये अनेक सम्पादकीय बहुत ही महत्त्वपूर्ण माने गये हैं। यद्यपि इसमें सनातनधर्म की चर्चाओं का ही विशेष उल्लेख होता था, परन्तु साथ ही आर्यसमाज के सिद्धान्त-दर्शन का चित्रण भी होता था। कानपुर में सम्पन्न आर्यसमाज के साथ हुए विख्यात तीन शास्त्रार्थों का उल्लेख इस पत्र में प्रकाशित हुआ था, जिसकी समालोचना श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी ने सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित की थी। इसका प्रत्युत्तर भी प्रकाशित करना आवश्यक हो गया था। यह समालोचना म० म० श्री चतुर्वेदीजी ने आत्मकथा में उद्धृत की है। (२०-क)

ऋषिकुल छोड़ने के पश्चात् आप कुछ दिन जयपुर में रहते हुए स्वास्थ्यलाभ करते रहे। समय-समय पर अनेक सभाओं तथा समितियों में सम्मिलित होते रहे। ऋषिकुल छोड़ने पर भी आप उसकी सहायतार्थ भ्रमण करने वाले सभ्यसंग में भी जाते रहे और इन दिनों आपने प्रयाग, सी० पी०, वाराणसी, रामेश्वरम आदि स्थानों की यात्रायें की। 'पटेल बिल' का विरोध करने के लिए जो सभा वाराणसी में हुई थी, आप उसके प्रधान वक्ता थे। (२०-ख) आपका यह भ्रमण कार्य दो वर्ष तक चलता रहा।

लाहोर में निवास—

लाहोर के सनातनधर्मावलम्बी विद्वानों के आग्रह पर सं० १९७६ में आप वहां गये और वहीं रहने का निश्चय किया। आपने सनातन धर्म कालेज के प्रिंसिपल के रूप में कार्य प्रारम्भ किया। जयपुर के ही उत्कृष्ट विद्वान् म० म० पं० श्री शिवदत्त शास्त्री दाधीच वहाँ ओरियन्टल कालेज में संस्कृत के प्राध्यापक थे। आपके साथ उनका सौहार्द सम्बन्ध रहा। लाहोर जाने तक आप ऋषिकुल की शिक्षा-समिति के सदस्य थे और ब्रह्मचारी

(२०-अ)—पंजाब निवासी श्री भोलानाथजी के प्रस्ताव पर अंग्रेजी अध्यापक के लिए श्री केदारनाथ शर्मा की नियुक्ति हुई। आरम्भ में तो ये उनके साथ बहुत मैत्री रखते थे, किन्तु ये बड़े अनैतिक पुरुष थे, इसलिये आगे चलकर इनके विरोध पर ही उन्हें ऋषिकुल छोड़ना पड़ा। 'आत्मकथा और संस्मरण' पृष्ठ ५४ के अनुसार।

(२०-अः)—सं० सा० सम्मेलन—स्थापना पृ० ५७, गुरुकुल शास्त्रार्थ-७२-८१ 'ब्रह्मचारी पत्र का सम्पादन' पृ० १०६.....'आत्मकथा और संस्मरण'—श्री चतुर्वेदीजी।

(२०-क)—'आत्मकथा और संस्मरण'—श्री चतुर्वेदी-पृष्ठ ११६ से १२५।

(२०-ख)—पटेल बिल का आशय था—'कोई भी वर्ण किसी भी वर्ण के साथ विवाह सम्बन्ध कर सकता है। इसमें कोई बाधा नहीं मानी जाय। पं० दीनदयालजी शर्मा इस संस्था में प्रधान रूप में उपस्थित थे। आर्यसमाजियों को उपद्रव करते हुए देखकर पं० दीनदयाल जी ने घोषणा की थी-अन्य मतावलम्बी चाहे जितने पं० बुलालें, हम अपनी तरफ से केवल गिरिधर शर्मा को ही देते हैं।—पृष्ठ १५५।

पत्र के सम्पादक भी। लाहोर पहुँचकर उक्त दोनों कार्यों से मुक्ति प्राप्त कर ली। सद्यः समुद्घाटित सनातनधर्म कालेज की उन्नति में मनोयोग से परिश्रम किया और व्याख्यान, वाचस्पति श्री दीनदयालुजी के प्रभाव से अलवर नरेश से संस्कृत शिक्षा की व्यवस्था के लिए एक बहुत बड़ी धनराशि प्राप्त की। श्री रघुवरदयालजी, दीवान श्री कृष्णकिशोरजी, वैद्य ठाकुरदत्तजी, दीवान हरिकृष्णजी, डा० बुलनर, डा० लक्ष्मणस्वरूपजी आदि विद्वानों एवं रईसों से आपका सम्पर्क हुआ। लाहोर आर्य समाज का गढ़ था। अतः श्री चतुर्वेदीजी को सनातनधर्म के सिद्धान्तों की स्थापना हेतु अनेक शास्त्रार्थ करने पड़े। जैसा कि उल्लेख मिलता है श्री चतुर्वेदीजी इनमें सदा विजयी रहे हैं।

९ वर्ष लाहोर में बिताकर परिस्थितियों के कारण आपको जयपुर आना पड़ा। यह घटना दिसम्बर, १९२४ की है।

जयपुर में बीस वर्ष

आपने १९२५ ई० से २० वर्ष जयपुर संस्कृत कालेज में व्यतीत किये। यद्यपि लाहोर संत्याग से श्री चतुर्वेदीजी को पर्याप्त रूप से आर्थिक तथा अन्य दृष्टियों से भी हानि ही थी, तथापि पारिवारिक समस्याओं के अनुरोध से आपको जयपुर आना पड़ा। संस्कृत कालेज के इतिहास के लिए यह उल्लेखनीय घटना है, क्योंकि इस कालेज का जितना सुव्यवस्थित रूप आपके शासन काल में बना, उतना न पहले था और न भविष्य में ही बन सका। यह सब श्रेय गुणग्राही शिक्षा-निदेशक श्री श्यामसुन्दरजी शर्मा को ही दिया जाना चाहिये, जिन्होंने आपको साग्रह जयपुर बुलाया। इससे पूर्व कुछ समय तक आपने वेदान्त के प्राध्यापक के रूप में कार्य किया था। उस समय वेदान्त (दर्शन) श्रेणि में अध्ययन करने वाले छात्रों में श्री विश्वदेव शर्मा, श्री नेत्रमणि शास्त्री, वैद्य नन्दकिशोरजी भिषगाचार्य, वैद्य मुकुन्ददेवजी, श्री सिद्धगोपाल शास्त्री, श्री रामदासजी भिषगाचार्य, (मुलतानी) प्रसिद्ध थे।

संस्कृत कालेज की उन्नति में आपका तो महत्त्वपूर्ण योग रहा ही है, साथ ही आपके सहपाठी मित्रों में श्री चन्द्रदत्तजी ओझा, श्री कन्हैयालालजी न्यायाचार्य, श्री मदनलालजी प्रश्नवर, श्री सूर्यनारायणजी व्याकरणाचार्य तथा भट्ट श्री मथुरानाथजी शास्त्री प्रभृति विद्वानों का, जो उस समय जयपुर में ही रहकर संस्कृत साहित्य की सेवा में संलग्न थे, पूर्ण सहयोग रहा है। संस्कृत कालेज के स्तर निर्माण करने में नवीन विषयों की अध्यापन व्यवस्था करने में चारों वेदों की कक्षायें प्रारम्भ करने में तथा समयानुकूल अनेक सुविधायें प्रदान करने में श्री चतुर्वेदी जी के निर्णय व प्रयास आदि भी स्मरणीय हैं। आपके शासन काल में अध्यापकों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हुई और छात्रों की संख्या में भी आशातीत वृद्धि। आपने छात्र समिति की स्थापना, उपाधि-वितरणोत्सव की परम्परा का प्रारम्भ, प्राध्यापक समिति का गठन, बालचर संघ का शुभारम्भ, आयुर्वेद महासम्मेलन व नाट्य संघ की स्थापना आदि कुछ ऐसे कार्य किये थे, जो इस कालेज के उत्थान में उल्लेखनीय हैं। आपने आत्म कथा में संस्कृत कालेज का पूर्ण विवरण प्रस्तुत किया है। (२०—ग)

आपके संस्कृत कालेज के प्राचार्यत्व काल में स्वामी श्री लक्ष्मीराम जी की सेवा निवृत्ति पर संस्कृत रत्नाकर का एक विशेषांक आयुर्वेदांक, विद्यावाचस्पति मधुसूदन जी ओझा के अभिनन्दनावसर पर विशेषांक वेदांक तथा अन्य एक विशेषांक शिक्षांक इस प्रकार तीन विशेषांक, प्रकाशित किये गये। ये तीनों अंक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। जब आप संस्कृत कालेज के प्राचार्य पद से मुक्त हुए, तब आपके सम्मान में भी संस्कृत

(२०—ग)—जयपुर में बीस वर्ष—'आत्मकथा और संस्मरण'—पृष्ठ १६१–२१७।

रत्नाकर का एक विशेषांक 'दर्शनांक' के नाम से प्रकाशित किया गया और संस्कृत कालेज के विद्वानों एवं संस्कृत साहित्य सम्मेलन द्वारा आपके भव्य अभिनन्दन का आयोजन किया गया । इस दर्शनांक में दर्शन शास्त्र के पृथक्-पृथक् गम्भीर विषयों पर भारत के अनेक सम्माननीय विद्वानों के मननीय निबन्ध प्रकाशित हुए हैं ।

अवकाश ग्रहण करने के पश्चात् तीन वर्षों का विवरण

आप तीन वर्ष तक सनातन धर्म के उद्धार हेतु आयोजित अनेक समाजों में सम्मिलित होते रहे और इसलिए आपने हैदराबाद, अमरावती, उज्जैन, लाहोर, मुलतान, रावलपिण्डी, पंजाब, सिन्ध, वाराणसी आदि अनेक स्थानों पर भ्रमण करते रहे । आपके भाषणों में एक ओजस्विता तथा आकर्षण बना रहता था । आपको वाराणसी में स्थायी रूप से रहने का आग्रह भी किया गया । आपने स्वामी करपात्री जी महाराज के अनुरोध पर राम राज्य परिषद् का कार्य भी सम्भाला । आपने अलवर नगर में बहुत आग्रह पर संस्कृत कालेज की अध्यक्षता स्वीकार की । अलवर नरेश ने आपको राजपण्डित का सम्मान दिया । आपने वहाँ निर्बन्ध रूप से दो वर्ष तक कार्य किया । इसी के साथ आपने मूलचन्द खैरातीराम सनातन धर्म संस्कृत विद्यापीठ, लाहौर का संचालन भी किया । इसलिए आपको लाहोर भी जाना पड़ता था । आप छः मास अलवर, तीन मास लाहोर और तीन मास जयपुर रहते थे । यह सन् १९४७ की घटना है । (२०—घ) पाकिस्तान बनने की घोषणा होने पर आपका लाहोर गमन अवरुद्ध हुआ । आपको इसमें आर्थिक हानि भी हुई । इधर अलवर का कार्यकाल भी समाप्त हो गया था । आपने स्वामी श्री करपात्रीजी के आग्रह पर धर्मयुद्ध आन्दोलन में भाग लिया । राष्ट्रभाषा की समस्या भी उस समय जोर पर थी । 'हिन्दूकोडबिल' के विरोध में, जो शिष्टमण्डल राष्ट्रपति से मिला था, आपने उसका नेतृत्व किया था ।

वाराणसी-निवास

महामना मालवीयजी के सुपुत्र श्री गोविन्द मालवीय ने जो हिन्दू विश्वविद्यालय के वाइस-चांसलर थे, प्राच्यविद्या समिति के प्रस्तावानुसार दीक्षान्त समारोह में आपको 'वाचस्पति' (डी० लिट्०) की उपाधि से सम्मानित किया । आप ही सर्वप्रथम व्यक्ति थे, जो हिन्दू विश्वविद्यालय से वाचस्पति की उपाधि से सम्मानित हुए थे । श्री गोविन्द मालवीय ने आपको हिन्दू विश्वविद्यालय में संस्कृत शिक्षा संचालक के पद पर आसीन होने का आग्रह किया और आपने ७० वर्ष की अवस्था मे भी उसे स्वीकार किया ।

जीवन के अन्तिम वर्षों में श्री चतुर्वेदीजी की इच्छा भी थी और उसी के अनुसार आपको वाराणसी निवास प्राप्त हुआ । आप हिन्दू संस्कृति के परम भक्त और उसका पूर्ण पालन करने वाले व्यक्ति थे । वाराणसी का विद्वत् समाज विश्व विख्यात है । अतः विद्वानों के निरन्तर साहचर्य का अपूर्व आनन्द भी आपको प्राप्त होता रहा । आपने लिखा है "यह भी मेरा सौभाग्य रहा कि अपने वार्द्धक्य के अनुरूप बड़े विद्वानों ने भी मुझे इतना आदर सर्वदा प्रदान किया कि उसके भार से मैं लदा ही रहा ।" (२०—ङ)

लगभग चार वर्ष तक आप हिन्दू विश्वविद्यालय में रहे । आचार्य परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् अनेक छात्र शोध कार्य के लिये "चक्रवर्ती" श्रेणि में प्रवेश लिया करते थे । आपके निर्देशन में श्री रघुराज शास्त्री ने "वैदिकी सृष्टि-प्रक्रिया" पर "चक्रवर्ती" की उपाधि प्राप्त की । हिन्दू विश्वविद्यालय छोड़ने पर आप काशी नरेश महाराज श्री विभूतिनारायणसिंह के आग्रह पर शिव पुराण पर प्रवचन किया । उनके आग्रह पर ही आपने सारे पुराणों पर विषय निरूपण करते हुए एक ग्रन्थ भी लिखा, जो अभी अप्रकाशित है ।

अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन के तत्त्वावधान में प्रकाशित होने वाले "विश्व संस्कृत शताब्दी ग्रन्थ" के आप प्रधान सम्पादक रहे हैं, जिसके अन्तर्गत "काश्मीर" खण्ड प्रकाशित हो चुका है । आप

(२०—घ)—'आत्मकथा और संस्मरण'—अवकाश ग्रहण के बाद तीन वर्ष—पृष्ठ २१८—२३६ ।
(२०—ङ)—'आत्मकथा और संस्मरण'—वाराणसी निवास—पृष्ठ २३७ ।

संस्कृत साहित्य सम्मेलन के संस्थापक-सदस्य तो थे ही, इस संस्था के कर्णधार भी थे। शायद ही कोई ऐसा अधिवेशन हुआ हो, जिसमें म० म० श्री चतुर्वेदीजी ने उपस्थित होकर उसके संचालन में सहयोग न दिया हो।

हिन्दू विश्वविद्यालय के निवास काल में आप प्रति रविवार को वहाँ गीता प्रवचन किया करते थे। यह प्रवचन ८ वर्ष तक निरन्तर चलता रहा। आपके प्रवचनों का लेखन तथा मुद्रण कराने के लिए प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता व इतिहासविज्ञ स्व० डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने रुचि ली तथा नेपाल प्रकाशन फण्ड से इसे तीन भागों में प्रकाशित कराया। दो ही भाग प्रकाशित हो सके थे कि दुर्भाग्यवश आपकी जिह्वा पर पक्षाघात हुआ। तीसरा भाग आपके कनिष्ठ पुत्र श्री शिवदत्त शास्त्री ने आपके नोट्स के आधार पर पूर्ण किया, जो बाद में प्रकाशित हुआ। आप उस समय उपनिषदों पर प्रवचन कर रहे थे तथा सातवां प्रवचन देने के लिए जाने को थे, तभी यह दुर्घटना हुई थी।

आपने 'वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति' विषय पर एक पुस्तक लिखी थी' जो बिहार राष्ट्रभाषा प्रचार समिति द्वारा प्रकाशित हुई। उक्त समिति के अध्यक्ष श्री शिवपूजन सहाय ने आपके ५ व्याख्यान भी करवाये थे, जो महत्त्वपूर्ण थे। इस ग्रन्थ पर उत्तर प्रदेश तथा राजस्थान सरकार ने आपको पुरस्कृत किया था।

सन् १९५८ में सर्व प्रथम चार विद्वानों को भारत सरकार ने सम्मानित किया था, जिनमें आपका नाम सर्वप्रथम था। यह सम्मान आपने स्वर्गीय डा० राजेन्द्रप्रसाद (राष्ट्रपति) से प्राप्त किया था। आपने वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय में सम्मानित प्राध्यापक के रूप में भी कार्य किया था और श्री गंगानाथ झा व्याख्यान माला के अन्तर्गत तीन व्याख्यान भी दिये थे। आपको जगद्गुरु शंकराचार्य पुरी पीठ के पद पर आसीन होने के लिए आग्रह भी किया गया था, परन्तु आपने अपनी असमर्थता इसलिए व्यक्त की, क्योंकि आपकी धर्मपत्नी उस समय विद्यमान थीं और आपका अपने पौत्र-पौत्रियों के प्रति वात्सल्य था। इस प्रकार ईश्वर भूत भावन भगवान् काशीनाथ विश्वेश्वर की आराधना में संलग्न रहते हुए १० जून, १९६६ को इन नश्वर शरीर का परित्याग कर शिवसायुज्य प्राप्त कर लिया। आपके इस निधन से संस्कृत साहित्य की अपूरणीय क्षति हुई। आपकी विद्वत्ता के सम्बन्ध में कुछ भी कहना सूर्य को दीपक दिखाने के समान होगा। आपके मित्र कविशिरोमणि भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री ने जो उद्‌गार आपके सम्बन्ध में उपस्थित किये थे, प्रस्तुत हैं :—

> "साहित्याद्रिमार्मिके (अ)थ दर्शनविमर्शवहो महामहोपाध्यायादिविरुदोऽ (अ)यमिष्यताम्
> रत्नाकरवाही महाकाव्यसंग्रहादिपरः प्रायशः प्रवासी वक्तृताऽ र्थेऽ याद्यशस्यताम्
> ग्रहिलः कदाचिदेव, सरलः स्मिता स्यः सदा कार्यशतव्यापृतः सुदीर्घाह्निको दृश्यताम्
> वेदोदितविज्ञानप्रकाशनेष्वखेदादयो गिरिधरशर्मचतुर्वेदयो भूरि शस्यातम्॥" (२०-च)

विपुलकीर्तिशाली सात्विक, शास्त्र-निष्णात, सनातनधर्म के स्तम्भ, प्रगाढ विद्वत्ता और प्रगतिशील विचार के धनी, वेदविज्ञान के समुद्धारक श्री चतुर्वेदी जी का व्यक्तित्व अविस्मरणीय है। आपके रचनात्मक कार्य का उल्लेख संक्षेप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

(२०-च)—जयपुरवैभवम्—नागरिकवीथी—सुधीचत्वरः—पृष्ठ २५४—पद्य संख्या ६३।

क्रम	रचना नाम	प्रकाशन विवरण	विवरण
	(क) वेद खण्ड		
१.	ऋतं च सत्यं च	चतुर्वेदि-संस्कृत रचनावलिः	प्रथम भाग
२.	वेदेषु विज्ञानम् तस्य क्रमिको ह्रासश्च	,, ,,	प्रथम भाग
३.	वेदेषु पितरः	,, ,,	प्रथम भाग
	(ख) पुराण खण्ड		
४.	पुराणेषु विकासवादः	चतुर्वेदि-संस्कृत रचनावलिः	प्रथम भाग
५.	कूर्मपुराणविषयालोचनम्	,, ,,	प्रथम भाग
६.	मुद्गलपुराणविषयालोचनम्	,, ,,	प्रथम भाग
७.	वेदेषु पुराणमहत्त्वम्	,, ,,	प्रथम भाग
८.	पुराणलक्षणानि	,, ,,	प्रथम भाग
९.	पुराणेतिहासविषयः	संस्कृत रत्नाकर (१८ अंकों में)	क्रमशः सन् १९४८ से
	(ग) शब्दशास्त्र (व्याकरण) खण्ड		
१०.	पुरातनानि व्याकरणानि वैयाकरणाश्च	चतुर्वेदि-संस्कृत रचनावलिः	प्रथम भाग
११.	ओजिष्ठादि-विचारालोचनम्	संस्कृत रत्नाकर	(२ अंकों में) १९४४, ११६-७
	(घ) धर्मशास्त्र खण्ड		
१२.	चातुर्वर्ण्यम्	चतुर्वेदि-संस्कृत रचनावलिः प्रथम भाग	संस्कृत-रत्नाकर से त्रिववावर्ममीमांसा
१३.	प्रमीतपतिका-धर्मालोचनम्	,, ,,	—
१४.	स्पर्शादौ शास्त्रीया व्यवस्था	,, ,,	—
१५.	पितृविवेकः	,, ,,	
	(ङ) काव्य साहित्य-खण्ड		
१६.	महाकाव्य-संग्रहः (रघुवंश-२, १३, कुमार सम्भव-१,५, किरातार्जुनीय-२,३,११, शिशुपाल वध-१,२ सर्ग)	चतुर्वेदि-संस्कृत रचनावलिः	प्रथम भाग
१७.	कविकाव्यशब्दौ (कविस्तत् काव्यं च)	,, ,,	,,
१८.	(अ) पितुरुपदेशः (कथा) (आ) कश्चित् कविः (कथा)	संस्कृत रत्नाकर	७।८।९
	(च) दर्शनशास्त्र		
१९.	प्रमेयपारिजातः	संस्कृत रत्नाकर (५ अंकों में)	६।१-३, ५-६, ७-८, ७।६,८
२०.	प्राचीन-दर्शनानि—तेषाम् आविर्भावकालश्च	संस्कृत साहित्य सम्मेलन प्रथम अधिवेशन विशेषांक	संस्कृत रत्नाकर २२।३-४ में
	(छ) प्रकीर्ण रचना खण्ड		
२१.	(क) विद्यार्जने के गुणाः	संस्कृत रत्नाकर, १९०४, ११११	समस्या पूर्ति
	(ख) कल्पलतेव विद्या	संस्कृत रत्नाकर, १९०४, ११२	,,
	(ग) वर्षा मनः कर्षति	संस्कृत रत्नाकर, १९०४, ११५	,,
	(घ) नावश्यायैः पयसि सरसाः	संस्कृत रत्नाकर १९०४, ३।१०	,,

क्रम	रचना नाम	प्रकाशन विवरण	विवरण
२२.	मंगलम्	संस्कृत रत्नाकर, १९०४, १।२, २२।२ २।६,	पद्य
२३.	शास्त्रीयो विचारः	,, ,, १९३२, २।११	समीक्षा
२४.	संस्कृतभाषायाः प्रचारोपायाः	,, ,, १३।७, ८	लेख
२५.	सम्मेलनस्य आत्मकथा	,, ,, १७।१	लेख
२६.	रत्नाकरस्य आत्मकथा	,, ,, १९३१, १।१	लेख
२७.	अनावृतं पत्रम्	,, ,, ७।३	लेख
२८.	सभापति–भाषणम्	,, ,, ५।१,२,३,८,११	धारावाहिक लेख

इनके अतिरिक्त आपने संस्कृत साहित्य सम्मेलन के विभिन्न अधिवेशनों का विवरण (१।६), जयपुर संस्कृत पाठशाला का कार्य-विवरण, संस्कृत कालेज के वार्षिकोत्सव का कार्य-विवरण, कुम्भपर्व समारोह आदि अनेक लेख संस्कृत रत्नाकर में प्रकाशित किये हैं। यों आप संस्कृत रत्नाकर के प्रकाशक थे ही साथ ही, सारा कार्य आप ही किया करते थे–यह आत्मकथा और संस्मरण ग्रन्थ से तथा व्यक्तिगत सम्पर्क से कहा जा सकता है। इनके अतिरिक्त वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति, साहित्यिक निबन्ध, गीता व्याख्यानमाला तीन भाग, दर्शन अनुचिंतन आदि रचानायें ग्रन्थ रूप में प्रकाशित हो चुकी हैं। एक दार्शनिक लेख प्रमेयपारिजात और पुराणपारिजात का विद्यास्कन्ध भारत सरकार के अनुदान से संस्कृत विद्यापीठ देहली द्वारा प्रकाशित हो चुके हैं। "म. म. पं. गिरधर शर्मा चतुर्वेदी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व" विषय पर 'शोध प्रबन्ध, प्रस्तुत कर डॉ. कैलाशचन्द्र त्रिपाठी ने राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर से सन् १९७८ ई० में पीएच. डी. की उपाधि प्राप्त की है। यह शोध प्रबन्ध प्रकाशन योग्य है।

---

२१. श्री गिरिराज शास्त्री

जयपुर नगर के प्रसिद्ध आचार्य परिवार में लब्धजन्मा श्री शास्त्री संस्कृतसंस्कृति के उपासक होने के साथ ही एक कर्मठ व्यक्ति भी हैं, जो सदा ही इसके अभ्युत्थान व संरक्षण के लिए तत्पर रहते हैं। आपने अपना जीवन ही संस्कृत-संस्कृति की रक्षा के लिए समर्पित कर दिया है। आप भारती मासिक पत्रिका के प्रबन्ध सम्पादक हैं। आपके पिता आनन्दीलाल शर्मा जयपुर नगर के ही स्थायी निवासी हैं। यों आपके पूर्वजों का इतिहास दिल्ली दरबार से संबद्ध बताया जाता है। कहा जाता है कि हिन्दू सम्राट् श्री पृथ्वीराज चौहान के समय आपके पूर्वजों का प्रमुख वैद्य के रूप में राज्य सभा में महत्त्वपूर्ण स्थान था। कालान्तर में ये लोग महाराणा संग्रामसिंह के समय उदयपुर चले गये। कुछ वर्ष वहां रहने के पश्चात् महाराजा सवाई जयसिंह द्वितीय के द्वितीय विवाह पर उदयपुर से जयपुर आ गये। इन आगन्तुक व्यक्तियों में उच्चकोटि के वैद्य तथा अनेक विषयों के विद्वान् थे। उनमें से एक विद्वान् को सवाई धन्वन्तरिजी की उपाधि देकर महाराज ने सम्मानित किया था। उसके पश्चात् इनके अनुवंशजों ने आचार्य पदवी का उपयोग किया। आपको सम्मान में जागीर भी प्राप्त थी।

श्री शास्त्री का जन्म भाद्रपद कृष्णा १४ अनन्त चतुर्दशी संवत् १६७८ को जयपुर में हुआ था। आप दाधीच ब्राह्मण हैं। आपकी शिक्षा दीक्षा महाराज संस्कृत कालेज जयपुर में ही सम्पन्न हुई। आपने वेद तथा साहित्य विषय लेकर परीक्षायें उत्तीर्ण कीं। किन्हीं अपरिहार्य परिस्थितियों के कारण आपको विवश होकर अध्ययन छोड़ना पड़ा और आपने संस्कृत कालेज के स्कूल विभाग में अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया। आप लगभग ढाई वर्ष तक वहां रहे। इसके पश्चात् आपने स्थानीय अन्य विद्यालयों में भी अध्यापन कार्य किया। सन् १६४७ से पूर्व देश की स्वतन्त्रता के लिए अनेक सत्याग्रहों में आपने सोत्साह भाग लिया और इस सन्दर्भ में आपको अनेक बार जेल भी जाना पड़ा। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ नामक संस्था के प्रचार कार्य में भी आप सक्रिय रहे हैं।

सन् १६५० के कार्तिक मास से आपके ही सत्प्रयास से भारती नामक संस्कृत पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। आप इसके प्रबन्धक सम्पादक हैं। विगत २६ वर्षों से यह पत्रिका आपके कुशल प्रबन्धकत्व में सफलतापूर्वक प्रकाशित हो रही है। इस पत्रिका ने जयपुर के क्षेत्र में उल्लेखनीय स्थान प्राप्त किया है। संस्कृतरत्नाकर के जयपुर छोड़ने के पश्चात् संस्कृत विद्वानों के लेख कविता आदि को प्रकाशित कर उनकी विद्वत्ता का प्रदर्शन करने में इस पत्रिका का उल्लेखनीय योगदान रहा है। सामान्यतया पत्रिकाओं का प्रकाशन आर्थिक कठिनाइयों के कारण अवरुद्ध हो जाता है, परन्तु श्री शास्त्री के सत्प्रयासों से इस पत्रिका की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ है और इसका श्रेय श्री शास्त्री को ही दिया जा सकता है। आपके इस पत्रिका में प्रकाशित संस्कृत भाषात्मक कुछ लेखों का उल्लेख यहां किया जा रहा, है जिससे आपकी विद्वत्ता का परिज्ञान स्वतः ही हो जाता है :—

क्रम	रचना-नाम	पत्रिका	वर्ष अंक
१.	मकर-संक्रान्तिः	भारती	१।३
२.	पूज्यः माधवरावगोलवलकर-महाभागः	भारती	१।५
३.	संघसंस्थापकाः श्रीहैडगेवारमहोदयाः	भारती	१।६
४.	स्वातन्त्र्यवीरः सावरकरः	भारती	२।८
५.	गीता-जयन्ती	भारती	३।१
६.	ईशोपनिषदि निर्दिष्टानि राज्यशासनतत्त्वानि	भारती	३।७
७.	प्राचीना अर्वाचीना च शिक्षा-प्रणाली	भारती	३।६-१०
८.	सुपुत्रस्य परिचयः	भारती	३।१२
६.	पितृस्वागतम्	भारती	४।२
१०.	पुस्तकालोकः	भारती	४।२
११.	विहारप्रान्ते भारतीप्रचारः	भारती	४।५
१२.	पंचनदप्रान्ते संस्कृतस्थितिः	भारती	४।८
१३.	भारतवर्षे शक्तिसंस्कृत्योरभिन्नता (अनुवादः)	भारती	५।१
१४.	संस्कृतसाहित्य-प्रदर्शनी	भारती	१२।११
१५.	पट्टाभिषेक-विवरणम्	भारती	१४।६
१६.	संस्मरणानि (भट्ट श्रीमथुरानाथांकः)	भारती	१४।११

ये रचनायें सरल व सुबोध भाषा में लिखे जाने के कारण सभी के लिए उपयोगी हैं। आप अभी भी इस पत्रिका के प्रकाशनार्थ विगत २९ वर्ष से निरन्तर प्रयत्नशील हैं। आपका उल्लेख पत्रिका के प्रबन्धक व व्यवस्थापक के रूप में योगदान की दृष्टि से किया गया है।

---

२२. श्री गोकुलचन्द्र भावन

श्री भावनजी का जन्म पौष कृष्णा १३ संवत् १९०९ को जयपुर नगर में हुआ था। आपके पिता श्री कालूरामजी भावन ज्योतिष के विद्वान् थे। (२२-अ) बाल्यकाल से ही आपको भी ज्योतिषशास्त्र के प्रति आकर्षण होने लगा। आप संस्कृत कालेज, जयपुर के स्नातक रहे हैं और आपने अध्ययन समाप्त कर उक्त कालेज में अध्यापन प्रारम्भ किया था। इसके पश्चात् दौसा तथा सवाईमाधोपुर में भी अध्यापक रहे हैं। संस्कृताध्यापन के साथ ही आपने ज्योतिष अध्ययन का क्रम भी निरन्तर रखा और इसी कारण भारत विख्यात जयपुर यन्त्रशाला के अधीक्षक के पद पर आपका स्थानान्तरण किया गया। आपने सवाई जयसिंह द्वितीय के समय निर्मित अनेक महत्त्वपूर्ण यन्त्रों का जीर्णोद्धार करवाया। यह घटना संवत् १९५८ की है। सवाई रामसिंह के नाम से 'रामयन्त्र' का निर्माण हुआ था। संवत् १९६६ में आपने जयपुर की यन्त्रशाला के जीर्णोद्धार के पश्चात् दिल्ली की यन्त्रशाला तथा संवत् १९६८ में बनारस की वेधशाला का जीर्णोद्धार करवाया था। इसी संदर्भ में आप उज्जैन भी गये थे और वहां भी यन्त्रों का संस्कार करवाया। उज्जैन की यन्त्रशाला बहुत ही जीर्ण शीर्ण-स्थिति में हो चुकी थी, जिसे आपने सुव्यवस्थित करवाया। श्रेष्ठिवर्य श्री रामप्रताप चमड़िया ने फतेहपुर शेखावटी (जिला सीकर) में एक यन्त्र बनवाया था। इस यन्त्र के निर्माण का श्रेय आपको ही है। इस यन्त्र का नाम 'मन भावन' है।

भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री ने जयपुरीय विशिष्ट विद्वानों का परिचय प्रस्तुत करते हुए आपका उल्लेख इस प्रकार प्रस्तुत किया :—(२२-आ)

> **"गणितविभागे यथा भूरिपरिणद्धमलं फलितविभागे तथा विज्ञातमं जानीथा :**
> **जाग्रज्ज्यौतिषागमनिविष्टमतेरस्य मुखादद्भुतविशिष्टशतश्लोकानुग्रहणीथाः ।**
> **उज्जयिनी-देहलीप्रभृतियन्त्रशालासखं वार्द्धकेऽप्यखण्डगतिशक्तिमिमं संवीथाः**
> **राजकीययन्त्रशालातन्त्रपरिभावनाय श्रीगोकुलचन्द्रभावनाय नमस्कुर्वीथाः ।।"**

आप मथुरा के प्रसिद्ध सेठ श्री मनीरामजी के प्रधान ज्योतिषी रहे हैं। आपकी ज्योतिषास्त्र में अद्भुत प्रतिभा देखकर ही जयपुर नरेश ने संवत् १९५५ में आपको ज्योतिष यन्त्रालय में प्रधान ज्योतिषी का पद प्रदान किया। आप ज्योतिषशास्त्र की फलित तथा गणित दोनों ही शाखाओं में प्रकाण्ड पण्डित थे। सन् १९०९ में जयपुर के ज्योतिषी विद्वानों की ओर से प्रतिनिधि के रूप में अखिल भारतीय ज्योतिर्विद् सम्मेलन में सम्मिलित

(२२-अ)—यह विवरण स्वर्गीय श्री भावन के वर्तमान वंशज पौत्र श्री वंशीधर शास्त्री भावन द्वारा प्रदत्त सूचनाओं पर आधारित है। आपका स्थायी निवास स्थान मुंशी जयलाल का रास्ता, होलीटीबा, पुरानी बस्ती, जयपुर है।

(२२-आ)—जयपुरवैभवम्—नागरिकवीथी—सुधीचत्वरः—पृष्ठ २६०—पद्य संख्या ७२।

होने के लिए बम्बई गये थे। जगद्‌गुरु शंकराचार्य ने आपकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर वहां 'विद्याभूषण' की उपाधि एवं अन्य उपहारों से सम्मानित किया था। (२२–इ)

आपने स्वर्गीय ज्योतिर्विद श्री केदारनाथ शास्त्री, पंचांगकर्त्ता 'स्वर्गीय ज्यो० श्री नारायणजी श्रीमाली, स्व० श्री पुरुषोत्तमजी चतुर्वेदी, स्व० पं० श्री जानकीलालजी आदि विद्वानों को ज्योतिषशास्त्र का अध्यापन किया था। आपने आजीवन ज्योतिष की सेवा की तथा ७६ वर्ष की अवस्था में फाल्गुन कृष्णा १३ संवत् १९८५ को शिवसायुज्य प्राप्त किया।

रचनात्मक कार्य

आपका प्रमुख कार्य यन्त्रों का विवेचन, शोधन, संस्कार, निर्माण तथा वर्णन करना रहा है। आपने जयपुर, देहली, उज्जैन, बनारस आदि स्थानों पर विद्यमान यन्त्रशालाओं का जीर्णोद्वार किया था और उनका संस्कार भी। 'मन भावन' यन्त्र ज्योतिषशास्त्र को आपकी अपनी ही देन है। आपने पंचांगकल्पवल्ली, गृहला-घवसारिणी, मेलापकसारिणी आदि अनेक ज्योतिष विषयक ग्रन्थों की रचनायें की। बालबोध नामक प्रारम्भिक हिन्दी शिक्षक का प्रणयन किया। श्री रविदास नामक विद्वान् द्वारा रचित 'मिथ्याज्ञान विडम्बन' प्रहसन को पूर्ण करते हुए संशोधित रूप में प्रकाशित किया था। 'भारतीय वेधपथ प्रदर्शक' आपका महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है, जो हिन्दी भाषा में लिखा गया था। इसके द्वारा ज्योतिष यन्त्रों के वेध का प्रकार व उनका ज्ञान सरलता से हो जाता है। इसी के साथ 'ताराविलास' नामक नक्षत्रविद्या का ग्रन्थ भी उल्लेखनीय कृति है, जो प्रकाशित हो चुका है। आप संस्कृत तथा हिन्दी भाषा में पद्य रचना भी किया करते थे, जो इस समय उपलब्ध नहीं है। पूना की पण्डित सभा के सम्मानित सदस्य के रूप में आपका उल्लेख जयपुर के ज्योतिषशास्त्र के इतिहास में स्मरणीय व उल्लेखनीय घटना है।

---

२३. श्री गोपालनारायण बहुरा

वर्तमानकालिक शोध-क्षेत्र के उल्लेखनीय विद्वानों में श्री बहुराजी का नाम स्मरणीय है। आपका जन्म १४ मई, १९११ को जयपुर में ही हुआ था। आपके पिता श्री कल्याणनारायणजी बहुराजी साधुस्वभाव, रामभक्त और तुलसी साहित्य के अच्छे विद्वान् थे। आप पारीक ब्राह्मण हैं तथा रामगढ (जयपुर) के किले की तलहटी में बसे 'खोहा' नामक ग्राम से महाराजा सवाई जयसिंह द्वितीय के समय जयपुर लाकर बसाये गये थे। आपके परम्परागत पूर्वजों ने राज्य सेवा द्वारा विभिन्न पदों पर कार्य करते हुए जीवन निर्वाह किया। महाराजा सवाई प्रतापसिंह के समय आपके पूर्वज श्री दीनारामजी बहुरा जयपुर स्टेट के प्रधान अमात्य थे। (२३–अ) इन्हीं ने सांगानेर रोड (टोंक फाटक) यह 'बहुराजी का बाग' नामक एक भव्य उद्यान का निर्माण करवाया था। यह उद्यान आज भी श्री बहुराजी का निवास है।

(२२–इ)—जयपुरवैभवम्—नागरिकवीथी—सुधीचरवरः—पृष्ठ २६०–६२—चरित्रसग्रह। भट्टजी ने आपके चरित्र को संक्षिप्त में पद्य के साथ प्रस्तुत किया है, इससे आपकी उल्लेखनीयता स्पष्ट है।

(२३–अ)—उपर्युक्त परिचयात्मक सूचनायें स्वयं श्री बहुराजी से उपलब्ध हुई हैं, अतः ये प्रामाणिक हैं।

सद्बोधाद्धस्तबन्धो जयपुरवसतिः काव्यनिर्माणदक्षो
गोपीनाथाभिधो(ऽ) यं विरचयति बुधप्रीतये ग्रन्थमेनम् ॥"

इस पद्य से ज्ञात होता है कि आपका जन्म दाधीच वंश में हुआ था, आप काश्यप गोत्री, जयपुर निवासी एवं काव्यनिर्माणदक्ष विद्वान् थे। आनन्दनन्दनकाव्य में आप का विस्तृत परिचय उपलब्ध होता है। ग्रन्थान्त में कुछ पद्य इस प्रकार हैं :—

"आनन्दनन्दनमिदं विबुधामोदप्रदं मया रचितम्।
पीयूषकुल्या(ऽ)दः सेक्ष्यति नारायणः को(ऽ)पि ॥
दाधीचः काश्यपोभूज्जयपुरवसतिर्नन्दरामाभिधानो
मालीरामः सुतो(ऽ)स्या(ऽ)भवदमलमतिस्तस्य चास्तां सुतौ द्वौ।
गंगाविष्णुः पुरो(ऽ)भूद्धरिरितिरपरो ब्रह्मवित् कृष्ण-भक्तो
गोपीनाथाभिधो यो व्यरचयदमितानन्ददं ग्रन्थमेनम् ॥ ११२॥"

इति श्री कृष्ण चरणारविन्दामन्दमकरन्दास्वादमिलिन्दीकृतमानसेन श्री दधीचिवंशोद्भवेनानन्दरामात्मज मालीरामनन्दनेन श्रीगोपीनाथेन विरचिता आनन्दनन्दने हरिचन्दनवाटिका पूर्तिमभजत्। समाप्तोऽयं ग्रन्थः मिति पौष शुक्ला पंचमी वि० सं० १९४४।"

आपका वंशवृक्ष इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :—

श्री आनन्दराम
|
श्री मालीराम
|

श्री गंगाविष्णु	श्री गोपीनाथ शास्त्री दाधीच
श्री लक्ष्मीनाथ शास्त्री दाधीच	(निःसन्तान)
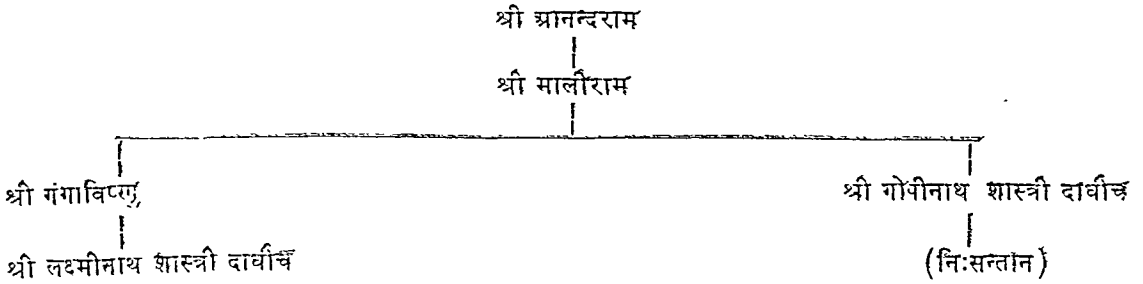
आपके ग्रन्थ तर्ककारिका (दर्शनशास्त्र) की समाप्ति पर एक पद्य प्राप्त होता है, जिससे सिद्ध होता है कि श्री जीवनाथ ओझा भी आपके गुरु रहे हैं। पद्य इस प्रकार है :—

"इति श्री जीवनाथोझागुरूणां शिष्यकेण च।
कृता समाप्तिं प्राप्तेयं नामतस्तर्ककारिका ॥ २१ ॥"

'आनन्दनन्दन काव्य' में प्रदत्त आपके वंश परिचय की पुष्टि 'माधवस्वातन्त्र्यम्' नामक नाटक (अप्रकाशित) की प्रस्तावना से होती है :—

"है जयनगर जग विख्याता। जहाँ नृपति माधव सुखदाता।
बसैं तहाँ दधीच ऋषिवंशा। सकल विप्रकुलको अवतंसा।
'नन्दराम' तामें उपजायो। हरिभक्तन में जो सरसायो।
गोत्र ताहि काश्यप यह जानो। डेरोल्या अवटंक पिछानों।
मालीराम भयो सुत ताके। भई सुन्दरी वनिता वांके।
दोनों कृष्ण भक्ति रस पायो। तिन ते दोय पुत्र उपजायें।
गंगाविष्णु पूर्वसुत जानिउ। दूजो गोपीनाथ पिछानऊ।
गंगाविष्णु भक्ति परवीना। दूजो ज्ञान भक्ति रस लीना॥ इत्यादि"

वास्तव में यह परिचय स्वानुभवसार नामक ग्रन्थ की समाप्ति पर प्रस्तुत किया गया है, परन्तु उक्त नाटक में इसे नटी द्वारा प्रस्तुत करवाया गया है। इससे आपका परिचय पूर्ण रूप में ज्ञात हो जाता है आपके पूर्वज जयपुर के पास नांगल नामक ग्राम विशेष से सम्बद्ध होने के कारण 'नागंल्या' कहलाते थे। 'उपदेशामृतघटी' नामक रचना के प्रारम्भ में आपने लिखा है--पं० गोपीनाथ ने जाति-दाधीच, अवटंक डेरोल्या, गोत्र काश्यप रहने वाला जयपुर का सं० १६४० विक्रमार्क·········इत्यादि। यह रचना प्रकाशित हो चुकी है और भगवद्गीता का अनुवाद है। (२४-ई)

राजगुरु नारायण भट्ट पर्वणीकर, पं० श्री लक्ष्मीनाथ शास्त्री द्राविड़, म० म० पं० दुर्गाप्रसाद शास्त्री (काव्यमाला सम्पादक), म० म० पं० शिवदत्त शास्त्री दाधिमथः, वैद्य श्री कृष्णराम भट्ट आपके परम मित्र थे। उस समय साहित्यशास्त्रियों में दो ही व्यक्ति विशेष रूप से प्रसिद्ध थे--एक श्री दाधीच और दूसरे राजवैद्य श्री कृष्णराम भट्ट। आपने 'माधवस्वातन्त्र्यम्' नाटक की प्रस्तावना में इस तथ्य को इस प्रकार प्रस्तुत किया है--, "इह लोकोत्तररचनाशालिनि जयपुरे द्वावेव विश्रुतौ राजकीयसंस्कृत-पाठशालायां लब्धप्रतिष्ठौ कवी। पूर्वोऽ (अ) यम् श्री गोपीनाथः, अपरः कृष्णरामो, यो जयपुरविलासस्योद्भवभूमिः··········।"

हितैषी पत्रिका के जयपुर अंक में श्री दाधीच का नाम वेदान्ती विद्वान् के रूप में उट्टंकित है। महाराज संस्कृत कालेज के प्राचीन (उपलब्ध) उपस्थिति पत्रकों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आपने सन् १८८४ से सन् १६०३ के बाद तक स्कूल विभाग में साहित्याध्यापन का कार्य किया था। आपकी रचनाओं का विवरण इस प्रकार अंकित किया जा सकता है :--

१. शिवपदमाला	स्तोत्र
२. श्रीकृष्णपुष्पांजल्यष्टकम्	स्तोत्र
३. श्रीदधिमथी अष्टकम्	स्तोत्र
४. श्रीरामचन्द्रपुष्पांजल्यष्टकम्	स्तोत्र
५. हरिपंचविंशतिः	स्तोत्र
६. विश्वनाथविज्ञप्तिपंचाशिका	स्तोत्र
७. दामोदरनीराजनस्तोत्रम्	स्तोत्र
८. तर्ककारिका	दर्शन (न्याय)
९. वृत्तचिन्तामणिः	छन्दःशास्त्र
१०. आनन्दनन्दनकाव्यम्	काव्यग्रन्थ
११. रामसौभाग्यशतकम्	काव्यग्रन्थ
१२. कृष्णार्यास्पिशती	काव्यग्रन्थ
१३. प्रधानरसपंचाशिका	काव्यग्रन्थ
१४. नीतिदृष्टान्तपंचाशिका	काव्यग्रन्थ (नीति)
१५. माधवस्वातन्त्र्यम्	नाटक
१६. संतोषपंचाशिका	काव्यग्रन्थ (प्रकीर्णक)
१७. सुतजन्ममहोत्सवः	प्रकीर्णक

(२४-ई)--विशेष विवरण के लिये देखिये--पं० श्री गोपीनाथ शास्त्री दाधीच (नागंल्या) एवं उनकी रचनायें-शीर्षक लेख (शोधप्रबन्ध लेखक) हिन्दी विश्व भारती अनुसंधान परिषद् नागरी भण्डार, बीकानेर की प्रमुख त्रैमासिक शोध पत्रिका 'विश्वम्भरा' के तृतीय वर्ष तृतीय अंक में प्रकाशित।

१८. स्वजीवनचरितम्	प्रकीर्णक
१९. भावनगर प्रशस्तिः	प्रशस्तिकाव्य

इनके अतिरिक्त पद पंचदशी, स्वानुभवसार, उपदेशामृतघटी, सत्यविजयनाटक, समयपरिवर्तन नाटक आदि हिन्दी के ग्रन्थ हैं। संस्कृत ग्रन्थों में यशस्वत् प्रतापप्रशस्तिः तथा ज्ञानस्वरूपतत्त्वनिर्णयः भी हैं, जो अभी उपलब्ध हुये हैं। आपकी रचनाओं का विवेचन अग्रिम खण्ड (कृतित्व खण्ड) में यथास्थान किया जायेगा। आप उल्लेखनीय विद्वान् थे।

---

२५. श्री गोपीनाथ द्राविड़

श्री द्राविड़ का जन्म ज्येष्ठ शुक्ला १४ संवत् १९५३ को दरभंगा भवन, काशी (उत्तरप्रदेश) में हुआ था। आपके जनक श्री कृष्ण शास्त्री संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा काशी में ही हुई। जब आप १६ वर्ष के थे अर्थात् सन् १९१२ में आप सर्वप्रथम जयपुर आये। श्रीजी की मोरी नामक स्थान पर विद्यमान मन्वाजी महन्त श्री रामनाथजी के दत्तक पुत्र के रूप में आपका आगमन हुआ। आपने महाराजा कालेज, जयपुर में प्रवेश प्राप्त कर संस्कृत विषय से बी० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके पश्चात् सन् १९२७ में काशी से साहित्याचार्य तथा इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम० ए० (संस्कृत) व एलएल० बी० की परीक्षा उत्तीर्ण की। आप राजगुरु पदविभूषित हैं।

श्रीजी की मोरी में विद्यमान श्री गोपीजनवल्लभजी के मन्दिर का उक्त द्रविड़ परिवार को उपलब्ध होना एक महत्त्वपूर्ण घटना की ओर संकेत करता है। ऐसा विख्यात है कि निम्बार्क सम्प्रदाय के ३९ वें जगद्गुरु निम्बार्काचार्य श्री वृन्दावन देवाचार्यजी जयपुर संस्थापक सवाई जयसिंह द्वितीय के गुरु थे और भारत प्रसिद्ध अश्वमेध याग के समय जयपुर पधारे थे। आपने जयपुर में परशुरामद्वारा नाम स्थान पर निवास किया था। निम्बार्क सम्प्रदाय के ३५ वें आचार्य श्री हरिव्यास देवाचार्यजी के १२ प्रमुख शिष्य थे, जिनमें एक श्री परशुरामाचार्य भी थे। इन परशुरामाचार्यजी के द्वारे में ४ प्रमुख आचार्य थे। श्री वृन्दावन देवाचार्यजी को जयपुर में स्थायी निवास के लिए महाराज जयसिंहजी ने गोपीजनवल्लभजी का मन्दिर जागीर में प्रदान किया था। सवाई रामसिंह द्वितीय तक यह मन्दिर निम्बार्क सम्प्रदाय के पीठाधीश्वरों के पास रहा। जैसा कि प्रसिद्ध है संघी झूंथाराम के कारनामों से अनेक सज्जन व्यक्तियों ने जयपुर त्याग दिया था और उनमें से आप भी एक थे। दूसरी बात यह थी कि सवाई रामसिंह द्वितीय के समय शैव सम्प्रदाय और वैष्णव सम्प्रदाय का एक शास्त्रार्थ हुआ, था जो कालान्तर में उग्र रूप धारण कर गया था। इस समय वैष्णव लोग शनैः शनैः जयपुर छोड़कर जाने लगे थे और ऐसी मान्यता है कि जगद्गुरु निम्बार्काचार्य श्री गोपेश्वरशरण देवाचार्यजी भी यहां से सलीमाबाद चले गये और फिर लौट कर नहीं आये। श्री निम्बार्काचार्यजी के यहां से सलीमाबाद चले जाने पर महाराज रामसिंह ने प्रसिद्ध विद्वान् श्री जयरामजी शेष को यहां का महन्त बनाया। ये द्राविड़ थे। इनके पश्चात् श्री कामनाथजी द्राविड़ गुरु बने। श्री कामनाथजी शास्त्री को ही १९२९ संवत् में यह मन्दिर भेंट किया गया था। आपके पुत्र श्री रामनाथजी के निःसन्तान होने के कारण उनने अपने सगोत्री श्री कृष्ण शास्त्री के पुत्र वर्तमान श्री गोपीनाथ शास्त्री को दत्तक रूप में स्वीकार कर उत्तराधिकारी बनाया। आपने पं० श्री नित्यानन्दजी शास्त्री पर्वतीय, श्री नारायण शास्त्री खिस्ते, श्री सूर्यनारायणजी शास्त्री व्याकरणाचार्य तथा श्री वीरेश्वर शास्त्री द्राविड़ से विद्याध्ययन किया था। आपने कुछ दिन जयपुर

राजकुमारों को अध्यापन करवाया था। आप जीवन भर विद्या व्यसनी रहे है और यही कारण रहा है कि आप जयपुरीय विद्वत्समाज में सम्माननीय व्यक्ति हैं। आप संस्कृत भाषा में अनेक लेख लिखते रहे हैं, जिनमें से कुछ संस्कृत रत्नाकर में प्रकाशित हुये हैं। उनका उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है :—

१.	संस्कृताध्येतृणां कृते समुचितपरामर्शः	संस्कृत रत्नाकर, २।२,३,४,५,६ अंकों में
२.	चषके वात्या (व्यंग्य)	संस्कृत रत्नाकर,' २।११
३.	गोस्वामिनस्तुलसीदासस्य काव्यार्थचौर्यम्	संस्कृत रत्नाकर, ३।१,२ अंकों में
४.	भासनाटकचक्रे (अ) पि पंचरात्र संक्षेपः	संस्कृत रत्नाकर, ३।३
५.	प्रतिमा संक्षेपः	संस्कृत रत्नाकर, ३।५
६.	अभिषेक संक्षेपः	संस्कृत रत्नाकर, ३।६
७.	स्वप्नवासवदत्तम्	संस्कृत रत्नाकर, ३।७
८.	अविमारकम्	संस्कृत रत्नाकर, ३।८
९.	कुसुमानां कलहः (पद्यानि)	संस्कृत रत्नाकर, ४।६
१०.	कायस्थानां दूरदर्शिता	संस्कृत रत्नाकर, १२।८
११.	काशीलहरिः (अपूर्ण)	संस्कृत रत्नाकर, १२।१०,११,१२ अंकों में

इन लेखों में 'संस्कृताध्येतृणां कृते समुचितपरामर्शाः' शीर्षक लेख सन् १९२८ में महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर के उपाधिवितरणोत्सव पर प्रधानवक्ता के रूप में प्रदत्त प्रधान वक्तृता हैं, जो एक महत्त्वपूर्ण निबन्ध है। शोधपूर्ण लेखों में 'गोस्वामिनस्तुलसीदासस्य काव्यार्थचौर्यम्' शीर्षक निबन्ध उल्लेखनीय है। आपकी भाषा सरल एवं सुबोधगम्य है। उपलब्ध साहित्य में से कुछ पद्य उदाहरण रूप में यहां प्रस्तुत किये जा रहे हैं, जिनसे आपकी विद्वत्ता का परिज्ञान स्वतः ही हो जाता है :—"गुलाब का पुष्प कह रहा है"—

"विश्वव्यापियशाः कुशेशयरुचिः श्रीमानहं पाटलः
सौन्दर्यं पुनरद्वितीयमथ मे पारेगिरां सौरभम्।
पुष्पाणामहमेव तत्परिवृढः सर्वातिशायी सतः
तूर्णं मत्पुरतोऽपसर्पत जड़ा लज्जानमन्मौलयः ॥१॥"

केतकी का पुष्प गुलाब से भी अधिक सुगन्धित होता है। पूर्वोक्त गुलाब के गर्वोक्तिपूर्ण वचनों को सुनकर केतकी चुप न रह सकी और उसने कहा—

"केतक्याः पुरतः किमज्जड़मते मे धार्ष्ट्यमालम्बसे
लज्जा चेतसि वर्तते हि यदि ते तूर्णं दिगन्तान् व्रज।
धन्या सौरभसम्पदेन न मिता मेऽनन्य साधारणी
साम्राज्ञीपदभाजनं सुमनसामेकैव तस्मादहम् ॥"

सुवर्णचम्पक स्वयं को पुष्पों के सम्राट् रूप में चुने जाने का दावा करता है तो इधर नवमालिका स्वयं को साम्राज्ञी के लिए उम्मीदवार के रूप में प्रस्तुत करती है। देवकल्पतरु पारिजात भी चुप क्यों बैठने लगा और स्वयं को "मत्वा मां कुसुमोत्तमं विरमतान्योन्यं विवादाद् द्रुतम्"—कुसुमोत्तम श्रेणि में रख कर विवाद शान्ति के लिए अपना वक्तव्य देने लगा। इतनी ही देर में बकुलमंजरी बोल उठी—

"दुर्गन्धिः किल पारिजात ! भवसि त्वं स्पृष्टगात्रो भृशं
म्लानो मूढ विकत्थसे बकुलमंजर्याः पुरो मे कियत्।
चेतः संयमिनामपि स्मरवशं कर्तुं क्षमा मां विना
कान्या, यूयमतो (अ) भिषिंचत जवान्मामेव राज्ञीपदे ॥"

और अन्त में कवि स्वयं इसका फैसला करता है कि इस संसार में न कोई ऊंचा है न कोई नीचा। सभी को हिल मिल कर कार्य करना चाहिये। भाषा की सलता सरसता से आप्लावित है। माधुर्यगुण से परिपूर्ण उपर्युक्त पद्य अत्यन्त सुललित एवं आकर्षक हैं।

कविशिरोमणि भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री के शब्दों में आप उल्लेखनीय विद्वान् हैं और आपका वास्तविक परिचय उनके इस पद्य से स्वतः स्पष्ट है :—(२५–अ)

"धार्मिकपदस्थैर्भूरि नार्मिकतयैव बेद्यां संस्कृतसरस्वतीमदभ्रमुपजीव्यताम्
लब्ध्वा (आ) चार्ययोग्यतामथा (आ) धुनिककालोचिता-
मिंगलिशभाषाम् एम० ए० पर्यन्तं प्रणीयताम्।
लब्धोचितज्ञानो विबुधेषु ना (अ) भिमानोद्धतः सरलतयैव सुखं संचरन्प्रतीयताम्
मन्वानो महत्वं विद्ययैव, श्रमं तन्वानो (अ) त्र मन्वास्थानगोपी गोपीनाथः परिचीयताम्॥"

आप सदृश विद्वानों से जयपुर नगरी गौरवान्वित रही है।

---

२६. श्री गोपीनाथ शास्त्री धर्माधिकारी

श्री धर्माधिकारीजी के पिता का नाम पं० श्री राजाराम शास्त्री था। आपका जन्म १७ नवम्बर, १८८४ को ग्राम वटेश्वर तहसील भिण्ड जिला आगरा (उत्तरप्रदेश) में हुआ था। (२६–अ) आपके ज्येष्ठ भ्राता श्री शिव-राजजी काले के 'धर्मपुत्र' के रूप में ब्रह्मपुरी, जयपुर में निवास कर रहे थे। श्री कालेजी के पूर्वज जयपुर नगर की स्थापना के अवसर पर जयपुर आये थे। तभी से श्री कालेजी के पूर्वज अध्ययनाध्यापन व देवार्चन द्वारा अपना जीवन यापन किया करते थे। जयपुर राज्य की ओर से इन्हें पर्याप्त भूमि जागीर रूप में प्राप्त थी ही। आप महाराष्ट्री ब्राह्मण थे। अतः श्री धर्माधिकारीजी के ज्येष्ठ भ्राता को अपने यहां रख कर उन्हें अध्ययन के लिये प्रोत्साहित किया करते थे। श्री राजाराम शास्त्री के दिवंगत होने पर श्री धर्माधिकारीजी अपनी माता सहित जयपुर चले आये और स्थायी रूप से यहीं रहने लगे। श्री कालेजी का उत्तराधिकार परम्परागत रूप में आपको प्राप्त हुआ। आपकी शिक्षा-दीक्षा संस्कृत कालेज, जयपुर में हुई। आपने सन् १९२२ में तृतीय श्रेणी से व्याकरणाचार्य परीक्षा और साहित्य शास्त्री की परीक्षा भी उत्तीर्ण की। (२६–आ) आपके गुरुओं में सर्वश्री लक्ष्मीनाथ शास्त्री द्राविड़, श्री वीरेश्वर शास्त्री द्राविड़, म० म० श्री दुर्गाप्रसाद द्विवेदी, पं० श्री चन्द्रदत्त झा आदि उल्लेखनीय हैं। प्रसिद्ध शिष्यों में पं० श्री दुर्गादत्त झा, श्री गुलाबचन्द्र चतुर्वेदी, श्री रामनारायण चतुर्वेदी, श्री वेणीमाधव शास्त्री,

---

(२५–अ)–जयपुरवैभवम्–नागरिकवीथी–विशिष्टजनचत्वरः–पृ० २१४–पद्य सं० ४।

(२६–अ)–यह सूचना स्व० श्री धर्माधिकारी के पुत्र श्री प्राणनाथ धर्माधिकारी द्वारा प्रदत्त सूचना पर आधारित है। श्री धर्माधिकारीजी के जन्म दिनांक पर मतभेद हैं। श्री प्राणनाथ धर्माधिकारी ने दि० १७-११-१८८४ का उल्लेख किया है, जब कि लिस्ट आफ एजूकेशनल आफिसर्स करेक्टेड अपटू १-६-३५ में ११-११-१८८४ अंकित है।

(२६–आ)–शास्त्रिपरीक्षोत्तीर्णच्छात्राणां नामादीनि–क्रमांक १४६ एवं आचार्यपरीक्षोत्तीर्णच्छात्राणां नामादीनि क्रमांक ४९। आपने संवत् १९७५ में व्याकरणशास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की थी।

श्री नारायण कांकर आदि विद्वान हैं। आचार्य परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् सन् १६२३ में आपने सर्वप्रथम संस्कृत कालेज, रामगढ शेखावाटी (जिला सीकर) में व्याकरणाध्यापन प्रारम्भ किया। कुछ ही मास पश्चात् आप जयपुर संस्कृत कालेज के स्कूल विभाग में अध्यापक नियुक्त हो गये। आपकी सर्वप्रथम नियुक्ति दिनांक ८ जनवरी, १६२३ को हुई थी। (२६-इ) आप राजकीय सेवा मुक्ति के समय व्याकरण व्याख्याता के पद पर कार्य कर रहे थे और सन् १६४३ में राजकीय सेवा से मुक्त हुए। सेवा निवृत्ति के पश्चात् भी आपने अध्यापन कार्य निरन्तर चालू रखा। आपने श्रीधर संस्कृत पाठशाला में कार्य किया। यह पाठशाला पूर्व परम्परागत श्री कालेजी के अध्ययनाध्यापन-प्रवृत्ति की सूचिका थी। आश्रम व्यवस्था के अनुकूल चली आ रही इस परम्परा को आपने मूर्त रूप प्रदान किया और इसे व्यवस्थित किया। इस समय यह एक मान्यता प्राप्त संस्कृत शिक्षण संस्थान है। इसका विवरण परिचय खण्ड (ख) अन्याय विद्यालय में अंकित है।

आप शान्त एवं गम्भीर प्रकृति के विद्वान् रहे हैं। लेख लिखने की प्रवृत्ति तो इतनी उग्र नहीं रही, परन्तु आप यदाकदा पद्य रचना किया करते थे। "समयालोचनम्" शीर्षक लेख संस्कृत रत्नाकर के २।४ में प्रकाशित हुआ है। समस्यापूर्ति रूपात्मक अनेक पद्य हैं। उदाहरण के लिए यहां दो पद्य प्रस्तुत किये जा रहे हैं:—(२६-ई)

"न्याय-व्याकरण-प्रशस्ततरणिः साहित्य-कल्लोलिनी
स्तम्भौ ज्यौतिषदर्शने सुरुचिरं भैषज्यमस्याः पयः।
श्रीमन्माननृपो भगीरथसमो गोप्ता नरेन्द्रस्तुता
सेयं वेदसुवाहिनी त्रिपथगा शाला समुज्जृम्भताम् ॥"

"गजेन्द्रसंघसंघटा विदीर्णगण्डमण्डला: गलन्ति यत्र मौक्तिकं तदेव युद्धमुद्धतम्।
कबन्धवृन्दनर्त्तनं न यत्र रक्तपूरकं सदा वृष्टिश्जयो भवेत् कथं न युद्धमुद्धतम् ॥"

इन पद्यों के अवलोकन से आपके श्लोक निर्माण चातुर्य का परिज्ञान होता है। आप अपने विषय के मार्मिक विद्वान् माने जाते थे। आपका देहावसान ८ सितम्बर, १६६३ को जयपुर में हुआ, जो एक अपूरणीय क्षति कहा जा सकता है। कविशिरोमणि भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री ने आपका उल्लेख इस प्रकार किया है:-(२६-उ)

"शास्त्रिपदधारी काव्य-साहित्यागमे श्रमेण प्राप्ताचार्यचिन्हः पुनर्व्याकृतिमधीत्य ताम्
शुष्यन्मुखमण्डलस्य यस्य भ्रुवोर्मध्ये शोणशोभनस्त्रिकोणतिग्मतिलकः प्रतीयताम्।
चित्ते महामहाराष्ट्रभावनया मव्यीभवन् प्रावेशिकपाठने परिश्रमी प्रणीयताम्
यो धर्माधिकारिपदचिन्हितो विभाति सदा गोपीनाथ शर्मा साधुकर्मा सो (मीयताम् ॥"

आप कुशल अध्यापक के रूप में उल्लेखनीय रहे हैं।

(२६-इ)—सन् १६३५ में स्कूल विभाग में ६ पण्डित थे, जिनमें आप व्याकरण पण्डित थे।

(२६-ई)—संस्कृत कालेज के वार्षिक उपाधिवितरणोत्सव (एकादशे महोत्सवे) पर पठित दो समस्याओं में से एक पद्य यहां प्रस्तुत किया गया है, जो संस्कृत रत्नाकर के तृतीय वर्ष २-३-जून व जुलाई, १६३५ मंजिकाओं में प्रकाशित है। दूसरा पद्य सन् १६४० के उपाधि वितरणोत्सव पर आयोजित कविसम्मेलन में सुनाया गया था, जो संस्कृत रत्नाकर के आठवें वर्ष की ११ वीं मंजिका (जून १६४२) में प्रकाशित है।

(२६-उ)—जयपुरवैभवम्—नागरिकवीथी, सुधीचत्वरः—पद्य ६१, पृष्ठ २७१।

२७. श्री गोपीनाथ पुरोहित

आपका जन्म संवत् १९१९ में जयपुर के पारीक पुरोहित ब्राह्मण परिवार में हुआ था। आपने अपने परिश्रम व लगन के कारण ही जयपुर नगर में ख्याति प्राप्त की। सर्वप्रथम आप ही जयपुरीय नागरिक थे, जिन्होंने एम० ए० (संस्कृत) की परीक्षा उत्तीर्ण कर स्थानीय महाराजा कालेज में प्राध्यापक का पद प्राप्त किया था। इसके पश्चात् आप जयपुर स्टेट कौंसिल के सदस्य बनाये गये। अपनी योग्यता के कारण ही आप जयपुर केबिनेट के वाइस-प्रेसिडेन्ट तथा होम मेम्बर नियुक्त हुए। ब्रिटिश सरकार ने आपको रायबहादुर तथा सर की उपाधि से विभूषित किया था। आपने शेक्सपीयर, प्रेमलीला, वेनिस का व्यापारी आदि कई नाटकों के अतिरिक्त मित्रता तथा वीरेन्द नामक पुस्तकों की रचनायें की। भर्तृहरि शतकत्रय का अंग्रेजी में अनुवाद एक विख्यात कार्य है। आपने संस्कृत ग्रन्थों का बहुत बड़ा संग्रह किया था और आपको संस्कृत से अत्यन्त प्रेम था। संस्कृत विद्वानों का सम्मान करना आपके व्यवहार में उल्लेखनीय कार्य था। आप संस्कृत भाषा प्रेमी, संरक्षक तथा संपोषक के रूप में जयपुर के संस्कृत साहित्य के इतिहास में उल्लेखनीय है। (२७-अ)

आपका देहावसान सन् १९३५ में हुआ था। आपके पुत्र श्री द्वारकानाथ पुरोहित जयपुर राज्य में सम्मानित व्यक्ति रहे हैं और इस समय राजस्थान सरकार के अधीन आरक्षी विभाग में उच्चाधिकारी के पद पर आसीन हैं।

कविशिरोमणि भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री ने आपकी विद्वत्ता का वर्णन इस प्रकार किया है :–(२७-आ)

"एम० ए० पदखण्डितो नवीनशिक्षानीतौ यथा तद्वद्देशभाषापण्डितोऽसौ परस्मायते
संप्रति सतर्कभावरक्षणीयामेतामहो जयपुरराज्यधुरां धैर्याढ्योऽवलम्बते।
विनय-विवेक-वयो-विज्ञानैरलंकृतिनान् पण्डितसभासु मतिमान्यः प्रतिभासते
नीतिनैपुणेन भूरिभीतिजवलोपी श्रीजगोपीनाथप्रवरपुरोहितो विराजते।"

आप संस्कृत-संस्कृति उन्नायक के रूप में सुप्रसिद्ध रहे हैं।

---

२८. श्री गोपीनाथ सम्राट्

जयपुर के संस्थापक सवाई जयसिंह द्वितीय (१६९९–१७४३ ई०)के द्वारा ससम्मान आहूत पण्डित श्री जगन्नाथ सम्राट् का नाम विद्वानों में उल्लेखनीय रहा है। आप ज्योतिष के प्रकाण्ड विद्वान् थे, जिनकी सहायता व सम्मति से ही श्री जयसिंहजी ने भारत के विभिन्न पांच स्थानों पर ज्योतिष यन्त्रशालायें बनवाई थी। आपका नाम ज्योतिषशास्त्रीय इतिहास में स्वर्णाक्षरों से अंकित है। आप महाराज जयसिंह के गुरु भी थे और राजकीय कार्यों के सलाहकार भी। आपके ही वंश में सर्वान्तिम विद्वान् हुए हैं श्री गोपीनाथ सम्राट्। आपके पिता का नाम श्री मुकुन्दनाथ सम्राट् था। आपके पुत्र श्री प्राणनाथ सम्राट् अल्पावस्था में ही दिवंगत हो गये। राज्य प्रदत्त जागीर का उपभोग करते रहने के कारण इस वंश की वह विद्याश्री यहां तक पहुंचते पहुंचते क्षीणप्रायः हो चुकी थी। इस

(२७-अ)–हितैषी. जयपुर अंक–सन् १९४०-४१ में प्रकाशित–पृष्ठ १५९–६० के आधार पर।
(२७-आ)–जयपुरवैभवम्–नागरिकवीथी–विशिष्टजनचत्वरः–पृष्ठ २२८ पद्य सं० ३४।

समय आपके वंश में कोई भी पुरुष विद्यमान नहीं है। आप साहित्य शास्त्री भी थे। आपने महाराज संस्कृत कालेज से न्याय शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की थी। (२८–अ) आपके न्यायशास्त्र के गुरु श्री कन्हैयालाल शास्त्री न्यायाचार्य थे। आपने कुछ दिन संस्कृत कालेज में अध्यापन भी किया था।

आप जयपुर के विशिष्ट व्यक्तियों में उल्लेखनीय रहे हैं। इसीलिये कविशिरोमणि भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री ने आपका उल्लेख विशिष्ट व्यक्तियों की श्रेणि में किया है :—(२८–आ)

"नव्यन्यायशास्त्रे यो हि शास्त्रीतिप्रकर्षेऽवहो ज्ञाने काव्यशास्त्रीयेऽपि यो ऽसावभिलाषते
प्रौढे वयसीह राजगौरवप्रमोदं प्राप्य वीणया विनोदं बहून् वेलां यो विगाहते
मान-भूमिशकाश्रितमान्यमहद्वृन्दे बृहच्चकाकारमुष्णीषं दधानोऽसौ सुखायते
विबुधगणेषु यस्य वृत्तिरतिनम्रा भाति राजगुरु-गोपीनाथसत्ताडेषु राजते ॥"

आप महाराष्ट्री ब्राह्मण थे तथा वीणा वादन में सिद्धहस्त माने जाते थे। आपका कोई भी रचनात्मक कार्य उपलब्ध नहीं होता। आप उल्लेखनीय विद्वानों में परिगणनीय रहे हैं।

---

२९. श्री गोविन्दनारायण शास्त्री

दाधीच कुलावतंस श्री शास्त्री के पितामह श्री कल्याणबक्ष शर्मा जयपुर नगर के ही निवासी रहे हैं तथा दुर्गापाठी विद्वान् के रूप में प्रसिद्ध रहे हैं। श्री शास्त्री के पितृचरण पं० श्री नन्दकिशोरजी न्यायाचार्य महाराज संस्कृत कालेज जयपुर के ही स्नातक तथा वहीं (कालान्तर में) न्याय के प्राध्यापक रहे हैं। आपने ही श्री शास्त्री को अपनी ही परम्परा मे न्याय शास्त्र का अध्ययन करवाया। श्री शास्त्री का जन्म कार्तिक कृष्णा १० भौमवार, विक्रम सवत् १९७५ को जयपुर नगर में ही हुआ था। (२९–अ)

आपकी प्रारंभिक शिक्षा व कालेजीय शिक्षा–महाराज संस्कृत कालेज मे ही सम्पन्न हुई। आपने सन् १९३२ ई० में १४ वर्ष की अवस्था मे प्रवेशिका परीक्षा प्रथम श्रेणि मे उत्तीर्ण की। इसके पश्चात् १९३४ ई० में संस्कृत कालेज से ही साहित्योपाध्याय परीक्षा द्वितीय श्रेणि मे उत्तीर्ण की। किसी कारणवश सन् १९३६ में स्वाधीन रूप में अध्ययन करना पड़ा और साहित्यशास्त्री द्वितीय श्रेणि में तथा १९३९ मे साहित्याचार्य परीक्षा भी स्वाधीन छात्र के रूप में ही द्वितीय श्रेणि में उत्तीर्ण की। इससे पूर्व सन् १९३७ में न्यायोपाध्याय द्वितीय श्रेणि से, १९४४ ई० में न्यायशास्त्री द्वितीय श्रेणी मे तथा १९४३ ई० न्यायाचार्य परीक्षा संस्कृत कालेज के नियमित छात्र के रूप में उत्तीर्ण होने के कारण महाराणा उदयपुर स्वर्ण पदक से अलंकृत किया गया था। स्वाधीन अथवा कालेज के नियमित छात्र के रूप में आपने अनेक विद्वानों से शिक्षाध्ययन किया था। इनमें से

(२८–अ)–'शास्त्रिपरीक्षोत्तीर्णच्छात्राणां नामादीनि' क्रमांक १७०।

(२८–आ)–'जयपुरवैभवम्'–नागरिकवीथी–विशिष्टजनचत्वरः, पद्य संख्या २, पृष्ठ २१३। भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री ने आपको जयपुर के विशिष्ट विद्वानों में तथा सम्मानित व्यक्तियों में प्रथम स्थान प्रदान किया है, यह उल्लेखनीय है।

(२९–अ)–यह तिथि एवम् परिचय स्वयं श्री शास्त्रीजी द्वारा प्रदत्त सूचना पर आधारित है।

विद्यासागर पं० कन्हैयालालजी नैयायिक, पं० श्री लक्ष्मीनाथशास्त्री दाधीच, सर्वतन्त्रस्वतन्त्र पं० हरिश्चन्द्र दाधीच (प्रज्ञाचक्षु, शाहपुरा नरेशाश्रित), पं० जगदीश शर्मा दाधिमथः, साहित्याचार्य, पं० श्री सूर्यनारायणजी शास्त्री सिद्ध आदि उल्लेखनीय हैं। आपका न्याय, साहित्य, व्याकरण धर्मशास्त्र, ज्योतिष तथा कर्मकाण्ड साहित्य से विशेष सम्बन्ध रहा है।

शिष्य परम्परा में-श्री दीनानाथ त्रिवेदी, मधुप (वर्तमान व्याख्याता, न्याय शास्त्र, म० सं० कालेज,) श्री शिवराम शुक्ल, न्यायाचार्य (वाराणसी), श्री कृष्णदत्त शर्मा न्यायाचार्य, श्री कालीचरण भट्टाचार्य, पं० श्री नारायण शास्त्री कांकर आदि उल्लेखनीय हैं।

आप सर्वप्रथम २२ मार्च सन् १९५२ में महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर में न्याय प्राध्यापक के पद पर नियुक्त हुए। १२ वर्ष इस पद कार्य करने के पश्चात् तत्कालीन प्रिंसिपल श्री चन्द्रशेखराचार्य के जगद्गुरु शंकराचार्य के पद पर प्रतिष्ठित हो जाने के कारण आपको अस्थायी रूप से उक्त पद (प्राचार्य) पर कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ और अब आप स्थायी प्राचार्य के रूप में कार्य कर रहे हैं।

आपका रचनात्मक कार्य प्रकाशित नहीं है। आपने जब साहित्याचार्य परीक्षा उत्तीर्ण की थी, उस समय यदा कदा समस्यापूर्ति रूपात्मक कुछ पद्य रचनाएँ किया करते थे। उदाहरण के रूप में प्रस्तुत उस पद्य से आपकी कवित्व शक्ति का परिज्ञान हो सकता है। आप न्यायशास्त्र के किसी ग्रन्थ का सरल व्याख्यात्मक रूप

तैयार कर रहे हैं, जो लगभग समाप्त ही है। समस्यापूर्ति रूपात्मक एक पद्य यहां प्रस्तुत किया जा रहा है जो संस्कृत कालेज के वार्षिकोत्सव पर समायोजित कवि सम्मेलन में प्रस्तुत किया गया था :—(२९–आ)

"सन्तापं निरयत्यघं च शमयत्यानन्दमुच्चछति
भद्रं भावयते ददाति सुयशो दूरी करोत्यापदम्।
सत्यं स्थापयते हितानि फलयत्यन्तर्विधत्ते मुदं
तत्त्वं ब्रूहि सखे कथं न भवतात् संघः सतां सौख्यदः॥"

आप इस समय जयपुर नगर में न्याय शास्त्र के विशिष्ट विद्वान् माने जाते हैं। आपका उल्लेख महाराज संस्कृत कालेज के प्राचार्यों की परम्परा में भी किया गया है।

आप ६ मई १९६४ से स्थानापन्न प्राचार्य तथा ३० मई ६७ से ३० अक्टूबर ७३ तक प्राचार्य के पद पर कार्य कर ससम्मान सेवा निवृत्त हुए हैं। आप उल्लेखनीय विद्वान् हैं।

---

३०. श्री गोविन्दप्रसाद दाधीच

श्री दाधीच के पूर्वज जयपुर नगर के निवासी हैं तथा इसकी स्थापना से इस नगर में विभिन्न कार्यों द्वारा जीवन यापन करते रहे हैं। आपके प्रपितामह पं० श्री रंगलालजी प्रसिद्ध ज्योतिषी थे और पितामह पं० श्री गंगाधरजी विख्यात पौराणिक। इनके चार पुत्र थे जिनमें (१) श्री सुन्दरलालजी कर्मकाण्डी थे, (२) श्री छोटेलालजी व्याकरणशास्त्रज्ञ होने के साथ ही मोदमन्दिर के सरिस्तेदार थे, (३) पं० श्री दामोदरलालजी फारसी तथा संस्कृत के विद्वान् थे और वकालत किया करते थे तथा (४) श्री धन्नालालजी प्रसिद्ध ज्योतिषी थे। इन्हीं में तृतीय श्री दामोदरलालजी श्री दाधीच के पिता थे। श्री दामोदरलालजी एक अन्य परिवार में दत्तक के रूप में चले गये। इस परिवार में वकालात का कार्य किया जाता था, इसीलिए श्री दामोदरलालजी को वकालात करनी पड़ी। श्री दाधीच ने अनेक संस्थाओं में अध्यापन कार्य किया है तथा राज्य कर्मचारी रहे हैं। आपका वंशवृक्ष इस प्रकार है :—
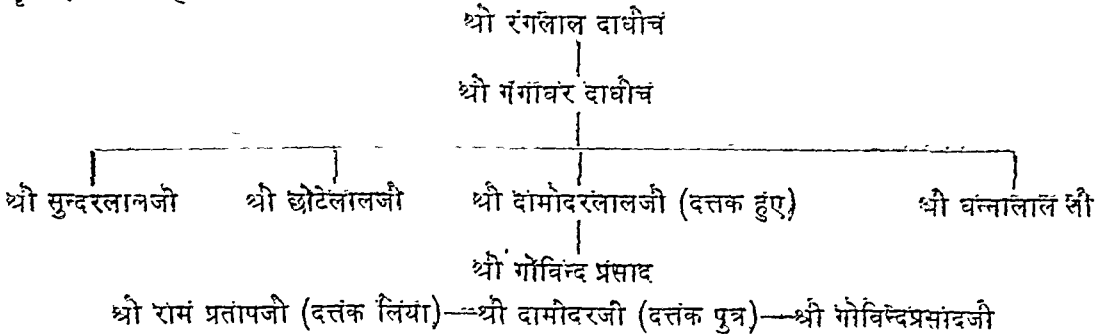
(२९–आ)—संस्कृत रत्नाकर में प्रकाशित, जून सन् १९४२ वर्ष, ८ संचिका ११। इसी अंक में 'वृद्धैर्वृद्धतमः' शीर्षक समस्यापूर्ति रूपात्मक पद्य भी प्रकाशित हुआ है।

श्री दाधीच का जन्म श्रावण शुक्ला द्वादशी संवत् १९५४ को जयपुर में ही हुआ था। आपका स्थायी निवास मुंशी जयलाल का रास्ता, पुरानी बस्ती, हनुमानजी के मन्दिर के पास (मकान नं. ६६७) है। आप प्रारम्भ से ही संस्कृत भाषा के प्रेमी रहे है तथा लगन के साथ इसका अध्ययन किया है। म० म० पं० श्री दुर्गाप्रसादजी द्विवेदी से अपने शिक्षा ग्रहण की। सर्वप्रथम यजुर्वेद संहिता का तथा कर्मकाण्ड का अध्ययन किया और साथ ही अंग्रेजी, फारसी तथा उर्दू भाषाओं का हाईस्कूल तक अध्ययन किया। फिर व्याकरण तथा साहित्य विषयक ग्रन्थों का पठन-पाठन किया। आप शास्त्री परीक्षा में सम्मिलित न हो सके थे। स्वयंपाठी छात्र के रूप में आपने म० म० पं० श्री दुर्गाप्रसादजी द्विवेदी, पं० श्री लक्ष्मीनाथजी शास्त्री दाधीच, पं० जगन्नाथजी वैदिक तथा म०म० पं० श्री शिवदत्तजी शास्त्री दाधिमथः आदि विद्वानों से अध्ययन किया था। आपके शिष्यों में अनेक राज्य-सेवारत है। श्री दाधीच की योग्यता किसी भी शास्त्री परीक्षोत्तीर्ण व्यक्ति से न्यून नही मानी जा सकती। आप ने अपने जीवन में सर्वप्रथम अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया था और इसके पश्चात् आप राजस्थान राज्य की ओर से सेल्स आफीसर, सिविल जज कार्यालय, डिस्ट्रिक्ट एवं सेशन जज न्यायालय में रीडर के पद पर कार्य करते रहे। अब सेवा निवृत्त होकर सहायता एवं मान्यता प्राप्त शिक्षण संस्थाओं में संस्कृत शिक्षण का कार्य कर रहे हैं। (३०–अ)

रचनात्मक कार्य—आपने बालोपयोगी एवं सामाजिक व इतिहास प्रसिद्ध नाटकों का सरल संस्कृत भाषा में रूपान्तर किया है, जो भारती पत्रिका के विभिन्न अंकों में प्रकाशित हैं। इनका उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है :—

क्रम	नाम रचना	पत्रिका	वर्ष	अंक
१.	बालशाकुन्तलम् नाटकम्	भारती	१३	४, ५, ६ (तीन अंकों में)
२.	कृष्णसुदामा नाटकम्	भारती	१३	१२
३.	हरिश्चन्द्र-नाटकम्	भारती	१४	५
४.	श्रवणकुमार-नाटकम्	कल्याणी	इस पत्रिका के आप प्रधान सम्पादक रहे है, जो तीन वर्ष तक प्रकाशित होने के बाद अब बन्द हो चुकी है।	
५.	श्रेष्ठशिष्योदाहरण-नाटकम्	कल्याणी		
६.	भारतेतिवृत्त-नाटकम्	कल्याणी		
७.	भारतविजय-नाटकम्	कल्याणी		
८.	पाकगर्वभंजनं नाटकम्	कल्याणी		

इनके अतिरिक्त आपने रघुवंश तथा हितोपदेश के मित्रलाभ पर टीकाये भी लिखी है।

सन् १९६४–६५ से आप कल्याणी मासिक पत्रिका के प्रधान सम्पादक रहे है, जो अब सहायता प्राप्ति के अभाव में अनियमित है। आपकी पद्य रचना सरल एवं सुबोधगम्य होती है।

आप उल्लेखनीय विद्वान् हैं।

(३०–अ)—श्री शास्त्री का उपर्युक्त परिचय स्वयं शास्त्री द्वारा प्रदत्त सूचनाओं पर आधारित है।

३१. श्री गंगाधर द्विवेदी

जयपुर नगर के उपखण्ड ब्रह्मपुरी निवासी प्रसिद्ध द्विवेदी परिवार में लब्धजन्मा श्री द्विवेदी का जन्म पूर्वजों के स्थायी निवास पण्डितपुरी (अयोध्या, उत्तर प्रदेश) में ८ दिसम्बर १९२१ को हुआ था। आपके प्रपितामह पं० श्री सरयूप्रसाद द्विवेदी, पितामह म०म० पं० श्री दुर्गाप्रसाद द्विवेदी, पिता श्री गिरिजाप्रसाद द्विवेदी संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित तथा सुप्रसिद्ध लेखक रहे हैं। (३१-अ) आपकी शिक्षा-दीक्षा पितामह म० म० श्री दुर्गाप्रसाद द्विवेदी के सान्निध्य में सम्पन्न हुई है। आप महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर के नियमित विद्यार्थी रह चुके हैं तथा आपने उक्त कालेज से व्याकरणोपाध्याय परीक्षा उत्तीर्ण की थी। इसके पश्चात् आपने स्वयंपाठी छात्र के रूप में प्रसिद्ध विद्वान् श्री वीरेश्वर शास्त्री द्राविड़ से अध्ययन करते हुए व्याकरणतीर्थ की परीक्षा सन् १९३९ में द्वितीय श्रेणि से उत्तीर्ण की। आपने श्री द्राविड़ से महाभाष्य, शब्देन्दुशेखर, मंजूषा आदि महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का विधिवत् अध्ययन किया था। आपने लखनऊ विश्वविद्यालय से श्री बूटर झा शास्त्री व श्री गिरीशचन्द्र अवस्थी के सान्निध्य में अध्ययन कर साहित्याचार्य परीक्षा उत्तीर्ण की।
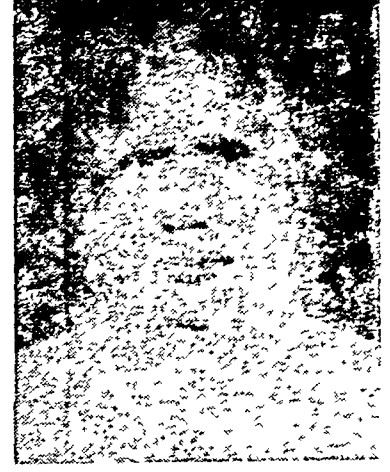
सर्वप्रथम सन् १९४४ ई० में आप सामान्य संस्कृत व्याख्याता के रूप में संस्कृत कालेज में नियुक्त हुए, परन्तु किन्हीं आपत्तियों के कारण एक वर्ष ही कार्य कर सके। इसी बीच आप 'साहित्यशास्त्र' में अनुसन्धान करने के लिए वाराणसी चले गये। सन् १९४९ में पुनः आप संस्कृत कालेज में सामान्य संस्कृत के व्याख्याता पद पर नियुक्त हुए। इस समय आप इसी कालेज में साहित्य के प्राध्यापक पद पर कार्य कर रहे हैं। इससे पूर्व सन् १९६७ में राजकीय संस्कृत महाविद्यालय, अलवर के प्राचार्य पद पर भी कार्य कर चुके हैं। सन् १९६८ से आप साहित्य प्राध्यापक हैं। आप परम्परागत रूप से स्थानीय मोदमन्दिर के सम्मानित सदस्य हैं।

रचनात्मक कार्य--आपने हिन्दी तथा संस्कृत भाषा में अनेक लेख लिखे हैं। ये महत्त्वपूर्ण लेख प्राचीन पत्रिकाओं माधुरी, सरस्वती (हिन्दी) एवं संस्कृत रत्नाकर, संस्कृतम् आदि (संस्कृत) में प्रकाशित हो चुके हैं। इनकी संख्या लगभग २० है। अध्ययन काल में आप समस्यापूर्ति किया करते थे। आपके समस्यापूर्ति रूपात्मक कुछ पद्य प्रस्तुत हैं, जिनकी आलोचना से आपकी विद्वत्ता का परिज्ञान स्वतः ही उद्भासित होता है :—

'उच्छिन्ना गुणिबन्धुता स हि गतो मानः परिम्लानतां
येऽ पोष्टाः सुहृदो हितव्रतधियस्तेऽ वज्ञया बाधिताः।
एवं कण्टकितेऽ त्र लोकनिवहे साहित्यसेवाभृतां
सौहार्दं कलयन् स कोऽ पि जगती देवो जगद् रक्षतात् ॥
स्वान्तोन्माथिनि निर्विशंकमभितः संहार-हाहाकुले
तन्मानुष्यकमद्य भौतिकबलेरस्तोन्मुखं दृश्यते।
संघर्षाग्निजदह्यमानजनता संताप-निर्वापणैः
कश्चिद् दक्षिणदृष्टिपातचतुरो देवो जगद् रक्षतात् ॥"

(३१-अ)--आपके पूर्वजों का परिचय--श्री सरयूप्रसाद द्विवेदी (प्रपितामह) क्रमांक १८०, म० म० श्री दुर्गाप्रसाद द्विवेदी (पितामह) क्रमांक ९२ तथा श्री गिरिजाप्रसाद द्विवेदी (पिता) क्रमांक १९-पर प्रस्तुत है।

आप अपने पूर्वजों के ग्रन्थों का सम्पादन कर प्रकाशित करने के कार्य में अधिक संलग्न है। ये ग्रन्थ राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर के तत्वावधान में प्रकाशित होते हैं। आपने निम्नलिखित ग्रन्थों का सम्पादन किया है :—

१. **दुर्गापुष्पांजलि** :—(म०म० श्री दुर्गाप्रसाद द्विवेदी) परिमल विवृति
२. **दशकण्ठवधचम्पूकाव्यम्**—(म० म० श्री दुर्गाप्रसाद द्विवेदी) सम्पादन व टीका की पूर्ति
३. **आगम रहस्य (तन्त्रशास्त्र)**—(म० म० श्री सरयूप्रसाद द्विवेदी) पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध (बृहत्काय ग्रन्थ) सम्पादन, प्रस्तावना, मितभाषिणी व्याख्या सहित

इनके अतिरिक्त म० म० श्री दुर्गाप्रसाद द्विवेदी कृत 'भारतलोक और 'भारतशुद्धिः' नामक दो ग्रन्थ सम्पादनार्थ स्वीकृत है।

आप की रचनाये जो संस्कृत रत्नाकर में प्रकाशित हुई हैं, इस प्रकार उट्टंकित की जा सकती है :—

१. **व्याकरणाधिकरणे क्षुद्रकमालवा** :—संस्कृत रत्नाकर–९।२,३—महत्त्वपूर्ण शोध लेख
२. **नीतिवर्मणः कीचकवधम्**— संस्कृत रत्नाकर—१०।२
३. **व्याकरणशिक्षा-विमर्शः**— संस्कृत रत्नाकर—११।४,५,६ (तीन अंकों में) इत्यादि

आप जयपुरस्थ आकाशवाणी के संस्कृत कार्यक्रमों में विशेष रूप से भाग लेते हैं। आपकी शताधिक वार्तायें प्रसारित हो चुकी हैं। आपने कतिपय रेडियो रूपक भी लिखे हैं, जिन में से कतिपय मौलिक भी है। आपकी प्रसारित वार्ताओं में 'अमरुक', राजतरंगिणी' आदि महत्त्वपूर्ण हैं। इसी प्रकार रूपको में 'कमलिनी कलहंस 'उल्लेखनीय है। (३१–आ)

संस्कृत–संस्कृति के प्रचारक व उन्नायकों में आपका नाम उल्लेखनीय है।*

(३१–आ)—आपका उपर्युक्त विवरण स्वयं प्रदत्त सूचनाओं पर आधारित हैं।

* इस समय आप सेवा निवृत्त होकर विश्व विद्यालय अनुदान आयोग द्वारा प्रदत्त विशेष शोध वृत्ति प्राप्त कर राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर के संस्कृत विभाग में प्राध्यापक के पद पर कार्यरत है।

३२. गंगाधर भट्ट—राजवैद्य

आयुर्वेदविद्यानिधि राजवैद्य श्री गंगाधर भट्ट सर्वतन्त्रस्वतन्त्र महाकवि श्री कृष्णराम भट्ट के ज्येष्ठ पुत्र थे। भट्टमेवाड़ा जातीय इस परिवार के देदीप्यमान पुरुषों में आप चतुर्थ पुरुष थे। (३२-अ) आपका जन्म माघ कृष्णा अष्टमी, संवत् १९३२ को हुआ था। आपने अपने पितृचरण एवं पितृव्य श्री हरिवल्लभ भट्ट (कविमल्ल) के सान्निध्य में सेवारत रहते हुए व्याकरण, न्याय, साहित्य आदि विषयों का सर्वाङ्गीण अध्ययन किया था। कुल परम्परागत आयुर्वेद का अध्यापन भी किया। ऐसी मान्यता है कि अचानक असाध्य उदरव्याधि से पीड़ित आपके पितृचरण ने रोग शैय्या पर होते हुए भी अपने अनुभवों व आयुर्वेद शास्त्र के गूढ रहस्यों को समझाया था और आपने उसे समझ कर अपने जीवन में प्रयोग किया था। आप उनके देहावसान पर उनके ही स्थान पर प्रिय शिष्य स्वामी श्री लक्ष्मीरामजी की नियुक्ति होने पर अवशिष्ट रिक्त स्थान पर आयुर्वेद व्याख्याता के रूप में नियुक्त किये गये थे।

कहा जाता है आपकी नियुक्ति के लिए एक नवीन स्थान की स्थापना की गई थी। इसके लिए तत्कालीन महाराज माधवसिंह द्वितीय का विशेष आदेश था।

परम्परागत सर्वतोमुखी प्रतिभा एवं विद्वत्ता के कारण आप तत्कालीन विद्वत् समाज में समादृत थे। अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के संस्थापकों में आपका नाम बडे आदर से लिया जाता है। आप इस सम्मेलन के द्वितीय अधिवेशन पनवेल में सभापति थे। आप के आयुर्वेद-ज्ञान गौरव से प्रभावित होकर वैद्य महासम्मेलन ने आपको 'आयुर्वेदविद्यानिधि' की उपाधि से सम्मानित किया था। भारत के सुदूर विभिन्न प्रान्तों से आये हुए अनेकानेक दिग्गज पण्डित आप से शास्त्रार्थ में पराजित होते रहे हैं। श्रीमद्रामानुजसम्प्रदायपीठाधीश्वर प्रतिवादी भयंकरोपनामक जगद्गुरु श्रीमदनन्ताचार्य के साथ आपका शास्त्रार्थ सुप्रसिद्ध है, जो कई दिनों तक चला था।

आपने प्लेगग्रस्त अपने द्वितीय पुत्र श्री बाबूराव के आसन्न अवसान को देखकर एक घण्टा पूर्व ही 'हे राम' शब्द के साथ नश्वर शरीर का त्यागकर परलोक यात्रा की। यह दिन माघ कृष्ण द्वादशी संवत् १९७४ का मध्याह्न था। उस समय आपके ज्येष्ठ पुत्र श्री नरहरि भट्ट मात्र परिवार में अवशिष्ट सदस्य थे। (३२-आ)

रचनात्मक कार्य—आपने अपने पितृचरण श्री कृष्णराम भट्ट द्वारा रचित कच्छवंशमहाकाव्य तथा 'जयपुर मेलककुतुकम्' की पूर्ति की थी तथा उन्हीं के ग्रन्थ 'अलंकारशतकम्' की टिप्पणी लिखी थी। आपके अनेक समस्यापूर्ति रूपात्मक पद्य संस्कृत रत्नाकर के प्राचीनतम अंकों में उपलब्ध होते हैं। विशेषकर यह पद्यमाला संस्कृत रत्नाकर के प्रारम्भिक वर्ष की संचिकों में उपलब्ध है। कुछ समस्यापूर्तियां यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं, जिनसे आपकी विद्वत्ता स्वतः ही स्पष्ट हो जाती है :—

(३२-अ)—वंश परिचय के लिए देखिये—श्री कृष्णराम भट्ट का परिचय क्रमांक ११ तथा श्री कुन्दनराम भट्ट परिचय क्रमांक १०।

(३२-आ)—सिद्धभेषजमणिमाला-मणि प्रभा टीका, प्रथम संस्करण, पृ० तथ्य के आधार पर।

(१) "लोकोत्तरेण रसतोऽपि च गन्धतोऽपि प्रीणाति भक्तजनवांछितमातनोति ।
शक्नोति पामरजनं विबुधं विधातुं किं किं करोति नहि कल्पलतेव विद्या ।।
सं० र० १।२,१९०४

(२) "कविः कालीदासो विदजतशिरः शेखरमणिस्तथा व्यासोदाशीजनुरपि च दासेरविदुरः ।
प्रशस्यन्तेऽप्येते विपुलमतिभिर्नैकनिकरैर्न दोषा गण्यन्ते मधुरवचसां क्वापि
कृतिभिः ।।"१।४

(३) "नये च शौर्ये च वसन्ति संपदस्तेषां विनश्यन्ति न सन्ति बान्धवाः ।
नये च शौर्ये च वसन्ति संपदस्तेषां भवन्ति प्रभवन्ति ते भुवि ।।"सं० र० १।६,१९०४

(४) "जनताभविकैकभाजनं कृतिनं चन्द्रमसं तथागमम् ।
स्वपदस्य रसेन निर्भरं सकलं कोऽपि जनो न पश्यति ।।"सं०र० १।९, १९०४

इसी प्रकार "नवनव गुणरागी प्रायशः सर्वलोकः (सं० र० १।११,१९०५)" और प्रथम विश्वमहन्युद्ध के समय गोविन्ददेवजी के मन्दिर में समायोजित सम्मेलन में प्रस्तुत पद्यावलिया दर्शनीय हैं ।

---

३३. श्री गंगावल्लभ शास्त्री

जयपुर नगर के प्राचीनतम शिक्षण संस्थान महाराज संस्कृत कालेज में श्री गंगा वल्लभ नामक विद्वान् का उल्लेख मिलता है, जो ज्योतिष शास्त्र के अधिकारी विद्वान् थे । आप संस्कृत कालेज के प्रारम्भिक रूप मिश्रित पाठशाला में अध्यापक रहे । राजवैद्य श्री कृष्ण राम भट्ट ने 'जयपुरविलास' में आपका उल्लेख इस प्रकार किया है :—(३३-अ)

"विभाति गंगादिमवल्लभास्पदे भज्ञो जगन्नाथ इति श्रुतो द्विजः ।
ध्यापन्नपंचास्यपदे प्रतिष्ठितः कचाचितोऽचाकृतिकुंजरो यथा ।।"

वास्तव में यह वर्णन जगन्नाथ ज्योतिषी का है, जो महाराज संस्कृत कालेज में १८८४ से १ दिसम्बर, १८९० तक ज्योतिष के प्राध्यापक रहे हैं । इनकी नियुक्ति पण्डित गंगावल्लभजी के स्थान पर हुई थी । म०म० प० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ने बतलाया था कि आप काव्य प्रकाश के भी मार्मिक विद्वान् थे । अनेक विद्वानों के गुरु दर्शनकेशरी श्री जीवनाथ ओझा ने आप से अध्ययन किया था । आपप्रश्नवर गुजराती ब्राह्मण थे तथा आपके पूर्वज जयपुर की स्थापना से पूर्व वाजपेय, अश्वमेध आदि यज्ञों में ससम्मान बुलाये गये थे । हितैषी जयपुर अंक में भी आपका उल्लेख मिलता है । इस समय आपके वंशजों में कोई भी विद्यमान नहीं है । आपका रचनात्मक कार्य अनुपलब्ध है । केवल आपके संस्कृताध्यापक होने का उल्लेख मिलता है । आप अपने समय के उल्लेखनीय विद्वान् रहे हैं ।

(३३-अ)—'जयपुर विलास'—पंचम उल्लास, पद्य संख्या ५१ पृष्ठ संख्या ५३ एवं हितैषी जयपुर अंक, पृष्ठ १५० पर अंकित २१ वा नाम साहित्याचार्य गंगावल्लभजी ।

३२. श्री घूटर झा

आप मिथिला निवासी थे तथा दर्शनशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित थे। आपकी नियुक्ति महाराज संस्कृत कालेज के प्राचार्य पद पर हुई थी, जब महामहोपाध्याय श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ने १३ मई १९४४ को विश्राम ग्रहण किया था। विश्राम ग्रहण से पूर्व म० म० श्री चतुर्वेदीजी अवकाश पर रहे थे। अतः इनकी नियुक्ति अवकाश काल में ही हो गई थी, आप लोक-सेवा आयोग, जयपुर द्वारा चयनित थे तथा आपने उक्त कालेज में दिनांक १ मई, १९४४ से स्थायी रूप से कार्य प्रारम्भ किया था। खेद का विषय है कि आप अधिक दिन तक कार्य न कर सके और दुःसाध्य रोगग्रस्त होने के कारण २२ जनवरी, १९४५ को दिवंगत हुए। अतः आपका काल बहुत ही न्यून रहा। आप उच्चकोटि के विद्वान् थे तथा आपकी शिक्षा-दीक्षा वाराणसी में सम्पन्न हुई थी। जयपुर आने से पूर्व आप लखनऊ विश्वविद्यालय में दर्शन व साहित्य के प्राध्यापक थे। जयपुर आकर आपने एक आदेश प्रसारित किया था, जिससे अनुसार कक्षा में, महाविद्यालय में, कार्यालय में, अध्यक्ष के पास सर्वत्र संस्कृत भाषा में ही वार्ता व्यवहार करना आवश्यक था। यह छूट केवल उन अध्यापकों के लिए थी जो संस्कृतेतर विषय का अध्यापन करते थे। आपकी अध्यापन शैली प्रभावी थी, क्योंकि आप बालकक्षाओं के समान उच्च कक्षाओं में भी पद विश्लेषण पूर्वक सिद्धि प्रकार का निरूपण कर अन्वयपुरस्सर सामान्य अर्थ का प्रतिपादन करते हुए विशिष्ट व्यंजना प्रस्तुत करते थे। इस अनुभूति का उल्लेख पं० रामगोपालजी शास्त्री ने किया है। (३४-अ)
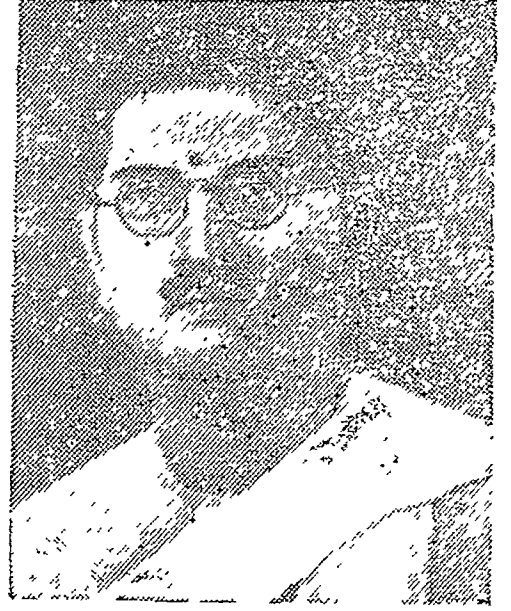
वर्तमान साहित्य प्राध्यापक श्री गंगाधर द्विवेदी व पं० रामगोपाल शास्त्री साहित्य-धर्मशास्त्राचार्य का नाम आपके शिष्य के रूप में उट्टंकित किया जा सकता है। आपके लेख कविता आदि समय-समय पर तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं। संस्कृत रत्नाकर के विशेषांक 'दर्शनांक' में आपके निम्नांकित दो लेख उपलब्ध होते है—

१. दर्शनानां विरोधः (पृष्ठ १२२) दर्शनांक
२. छात्रकल्पवल्ली–पद्य (दर्शनांक)

आप विद्यावाचस्पति आदि अनेक उपाधियों से विभूषित रहे है। आपका अल्पावस्था में देहावसान संस्कृत जगत् के लिए अपूरणीय क्षति कहा जा सकता है।

(३४-अ) 'वैजयन्ती'–इतिहासाङ्क, राजस्थान संस्कृत संविद्, जयपुर पत्रिका–अगस्त १९७८, "महाराज संस्कृत महाविद्यालयस्य प्राचार्य परम्परा," पं० रामगोपाल शास्त्री, पृष्ठ ३४

३५. श्री चन्दनदास साधु

श्री चन्दनदासजी दादूपन्थी सम्प्रदाय में कालेडहरे के थांभे में स्वामी श्री ध्यानदासजी में प्रमुख शिष्य थे। आपने बाल्यावस्था में गुरु-सान्निध्य में रहकर संस्कृत भाषा की अच्छी शिक्षा प्राप्त की थी। आप व्याकरण साहित्य, न्याय तथा वेदान्त के प्रौढ़ विद्वान् माने जाते थे। छन्दःशास्त्र और आयुर्वेदशास्त्र के तो आप विशेषज्ञ थे। छन्दःशास्त्र का ज्ञान आपने वेदान्तशास्त्र के परम मान्य विद्वान् 'वृत्ति प्रभाकर' व 'विचारसागर' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थों के रचयिता पं० श्री निश्चलदासजी महाराज से प्राप्त किया था। श्री निश्चलदासजी को यह ज्ञान स्वामी रसपुंजजी से प्राप्त हुआ था। स्वामी निश्चलदासजी ने बूंदी से जयपुर लौटते हुए यहां विश्राम कर स्वामी चन्दन दासजी को छन्दःशास्त्र का ज्ञान दिया। स्वामीजी ने उसी ज्ञान को 'छन्दोविन्मण्डन' नामक पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया। यह ग्रन्थ जयपुरी मिश्रित हिन्दी भाषा में है। (३५-अ)

श्री स्वामीजी का जन्म जयपुर के समीपस्थ एक छोटे से ग्राम में संवत् १९०१ में हुआ था। आप जन्मना गौड़ ब्राह्मण थे। पांच वर्ष की अवस्था में ही आप दादू सम्प्रदाय में दीक्षित किये गये। आपका जन्म नाम श्री चुन्नीलालजी था। आपका निवास श्री नथमलजी के घेर के पास था, जहां आज स्वामी लक्ष्मीरामजी की हवेली विद्यमान है। आपने श्री लक्ष्मीरामजी को अपना उत्तराधिकारी बनाया था, जो कालान्तर में जयपुर के सुप्रसिद्ध वैद्य सिद्ध हुए।

छन्दःशास्त्र की विशेषज्ञता के कारण जयपुर के तत्कालीन कई विद्वानों ने आपसे छन्दःशास्त्र का अध्ययन किया था। इनमें श्री गोपीनाथ शास्त्री दाधीच (सांगल्या) तथा महाकवि श्रीकृष्णराम भट्ट का नाम विशेषतः उल्लेखनीय है। श्री कृष्णराम भट्ट जी ने तो जयपुर-विलास के पंचम सर्ग में आपका सादर उल्लेख किया है।

"येनाशिक्षि स जीवनाथगुरुतः काव्यप्रकाशाशय-
श्छन्दश्चन्दनदासतः सगणितं वैद्यागमस्ताततः।
सूते गन्धकजारणावधि कृता येन क्रिया नैकशः
सोऽहं नूतनकाव्यपंचककृतिः श्रीकृष्णशर्मा कविः॥"
(पृ० ५६-५७, पद्य ७५)।

श्री स्वामीजी संगीतशास्त्र के ज्ञाता थे और आपने **पथ्यापथ्य** नामक आयुर्वेद विषय के ग्रन्थ का भी प्रणयन किया था। आप उल्लेखनीय विद्वान् रहे है।

(३५-अ)—श्री लक्ष्मीरामजी स्वामी का जीवनचरित्र, पृष्ठ ८-११, गुरु परिचय पर आधारित।

३६. चन्द्रदत्त ओझा (राजगुरु)

श्री ओझाजी जयपुर नगर के विद्वानों में विख्यात रहे हैं। आपकी वंशपरम्परा में सभी विद्वान् (पूर्वज और अनुवंशज) मान्त्रिक तथा उपासक होने के साथ ही राजगुरु पद को सुशोभित करते रहे है। आप मैथिल ब्राह्मण और आपके पूर्वजों का आदिम निवास स्थान मिथिला प्रान्त रहा है। विद्या तथा कला को आश्रय देने वाले जयपुर के महाराजाओ ने विद्वानो तथा गुणी व्यक्तियों को दूर-दूर स्थानों से लाकर यहां ससम्मान बसाया था। आपके पूर्वजो में सर्वप्रथम श्री पुरुषोत्तम झा के पुत्र श्री त्रिलोचन झा महाराज प्रताप सिंह के समय जयपुर आये थे। आपके मान्त्रिक चमत्कार मे प्रभावित होकर महाराज ने आपका पर्याप्त सम्मान किया था। श्री त्रिलोचन झा कुछ ही दिनों पश्चात् भ्रमण करते हुए जयपुर से चले गये। कालान्तर में महाराज के अन्वेषण से आपके दोनो पुत्रो को जयपुर बुलवाया गया और राजगुरु पद प्रदान किया गया। इन दोनों पुत्रो का वंश—श्री भैया झा (श्री दुर्गानाथ झा) "बड़े ओझाजी" तथा श्री लालझा (श्री उग्रदत्तझा) 'ओझाजी' के नाम से जयपुर में विख्यात रहा है और अब भी दोनो वंशो में श्रीविद्यानाथ ओझा (बड़े ओझाजी) तथा श्री दुर्गादत्त झा (ओझाजी) विद्यमान हैं। (३६—अ)

श्री एकनाथ झा महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर के प्रथम अध्यक्ष नियुक्त किये गये थे। (३६—आ) आपके पुत्र श्री नरहरि झा, जो श्री चुम्बन चौधरी के नाम से विख्यात थे, संस्कृत कालेज में ही व्याकरण के प्राध्यापक थे। इसी प्रकार आपके ज्येष्ठ पुत्र श्री हरदत्त झा एवं कनिष्ठ पुत्र श्री चन्द्रदत्त झा (चरित नायक) व्याकरण के प्राध्यापक रहे हैं, इस समय आपके कनिष्ठ पुत्र श्रीदुर्गादत्त झा उक्त कालेज में व्याकरण के प्राध्यापक है, इस प्रकार आपका यह वंश संस्कृत कालेज की स्थापना से लेकर अब तक व्याकरण के अध्ययनाध्यापन परम्परा का पूर्णतः पालन करता आ रहा है। (३६—इ) श्री चन्द्रदत्त ओझा का जन्म भाद्रपद कृष्णा ९ संवत् १९३६ तदनुसार २६ अगस्त, १८७९ को हुआ था। (३६—ई)

आपने संवत् १९५८ मे व्याकरण शास्त्री परीक्षा प्रथम श्रेणि में तथा संवत् १९६० में व्याकरणाचार्य परीक्षा प्रथम श्रेणि में ही उत्तीर्ण की थी। परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् चार वर्ष तक स्वतन्त्र अध्ययन किया था। आपने न्याय शास्त्री की परीक्षा भी उत्तीर्ण की थी। आपके व्याकरण विषयक ज्ञान को देख कर परीक्षको ने विशेष योग्यता प्रमाण पत्र प्रदान किया था। (३६—उ)

(३६—अ)—ऐसा कहा जाता है कि श्री त्रिलोचन झा के कोई औरस पुत्र नही था। श्री भैया झा और श्रीलाल झा उनके भ्रातृज थे। राजगुरु श्री विद्यानाथ ओझा का भी यही मत है।

(३६—आ)—आत्मकथा और संस्मरण—जी चतुर्वेदीजी—पृष्ठ ४ तथा "श्री चन्द्रदत्त ओझा अभिनन्दन पत्रिका" पृष्ठ ३ के अनुसार।

(३६—इ)—श्री एकनाथ झा—परिचय क्रमांक २, श्री नरहरि झा—परिचय क्रमांक ७१, श्री हरदत्त झा—परिचय क्रमांक १४७, श्री दुर्गादत्त झा—परिचय क्रमांक ५९।

(३६—ई)—लिस्ट आफ एजूकेशनल आफिसर्स, संस्कृत कालेज, क्रमांक २ पर अंकित विवरण।

(३६—उ) (i) 'शास्त्री परीक्षोत्तीर्णच्छात्राणां नामादीनि'—क्रमांक ३६

(ii) 'आचार्यपरीक्षोत्तीर्णच्छात्राणां नामादीनि'—क्रमांक ६।

आपके गुरुजनों में श्रीमाद् लक्ष्मीनाथ शास्त्री द्राविड़ एवं पूज्य ज्येष्ठ भ्राता श्रीहरदत्तझा का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। आपने श्री द्राविड़ के निधन पर शोक पुष्पांजलि के रूप में कुछ पद्य उपस्थित किये थे, वे वास्तव में दर्शनीय हैं :—

"संसारोऽयमसारः परिणतिविरसो बहुक्लेशः।
मृगतृष्णापरिभूतो विद्वद्‌भिर्नैव संशोच्यः ॥१॥
इत्युपदेशमिव स्वं छात्रसमूहाय केवलं वितरन्।
लक्ष्मीनाथबुधाग्र्यः संप्राप ब्रह्मसायुज्यम् ॥२॥
तस्मिन् धैर्यनिधाने सुयशौ वैदुष्य-संपदां सदने।
निजसंसर्गविभूषित-सौजन्यप्रभृतिसद्‌गुणग्रामे ॥३॥
व्याकृत्यम्बुधिचन्द्रे कालपयोदच्छटाभिराच्छन्ने।
विद्वन्मनश्चकोरे दैवाद् वैधुर्यमापन्ने ॥४॥
तमसा व्याप्तं जगदिदमवलोकयताम्-पदे पदे स्खलताम्।
आश्चर्यं हतहृदयं साम्प्रतमपि नेति शकलत्वम् ॥५॥
किं कुर्मः क्व च यामः कं ब्रूमो दुःखमात्मीयम्।
दैवेन वंचितानां नेदानीं कश्चिदाश्रयोऽस्माकम् ॥६॥
श्रीमद्‌गुरुचरणानां परलोकेऽप्यात्मनः शान्तिम्।
श्री विश्वेश्वरपदतो वाञ्छन्तः किन्तु विरमामः ॥७॥" इत्यादि

आपके सहाध्यायियों एवं अन्तरंग मित्रों में म० म० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, श्री सूर्यनारायण व्याकरणाचार्य, आयुर्वेदमार्तण्ड स्वामी श्रीलक्ष्मीरामजी, श्रीयुत माधवजी आयुर्वेदाचार्य, राजपण्डित श्रीकन्हैयालालजी न्यायाचार्य, आयुर्वेदपंचानन पं० श्री दुर्गाप्रसादजी वैद्य, कविशिरोमणि भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री का नाम विशेषतः स्मरणीय है।

म० म० श्री चतुर्वेदीजी ने आपका उल्लेख अपनी आत्मकथा में अनेक स्थानों पर किया है। आपके साथ उनका केवल सौहार्द ही नहीं था, गार्हिक सम्बन्ध भी था। आपका आजीवन इनके साथ जो सम्बन्ध रहा, वह सामान्यतया इस युग में दृष्टिगोचर नहीं होता।

आपने साहित्य तथा न्याय का अध्ययन जयपुर के सुप्रसिद्ध मैथिल विद्वान् श्री जीवनाथ ओझा से किया था और व्युत्पत्तिवाद तथा दर्शनग्रन्थों की गुत्थियां जयपुर महाराज के सभापण्डित मधुसूदनजी ओझा के सान्निध्य में अध्ययन कर सुलझाई थी। मन्त्रशास्त्र का पाण्डित्य आपका वंशानुगत रहा है। व्याकरणशास्त्र विषयक विशेष ज्ञान से प्रभावित श्री दामोदर शास्त्री (वाराणसी) तथा श्री म० म० शिवकुमार मिश्र (वाराणसी) ने आपको म० म० पण्डित श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी के साथ अपना प्रशंसा प्रमाण पत्र प्रदान किया था। (३६—ऊ) आप पंजाब विश्वविद्यालय से शास्त्री परीक्षा में तृतीय रहे थे। यह संवत् १९६१ की घटना है।

(३६—ऊ)—'आत्मकथा और संस्मरण'—श्री चतुर्वेदीजी—पृष्ठ १५ तथा अभिनन्दन पत्रिका पृष्ठ १०। विशेष विवरण के लिये देखिये म० म० चतुर्वेदीजी का परिचय क्र० २०।

३ जुलाई, १६०८ को आप सर्वप्रथम व्याकरण के प्राध्यापक नियुक्त हुए थे। आप की इस पद पर प्रथम व अन्तिम समान ही नियुक्ति रही। शास्त्रीय विचारों में आप बड़े मार्मिक थे। आपकी अध्यापन शैली पूर्णतः विचारशील रही है। छात्रों के कई वार प्रश्न करने पर आप बड़ी शान्ति से विना किसी झुंझलाहट के उनका समाधान किया करते थे। आपके उल्लेखनीय शिष्यों में राजगुरु भट्ट मुकुन्दराम शास्त्री पर्वणीकर, पं० पुरुषोत्तम शास्त्री प्रश्नवर (हरिद्वार), पं० चन्द्रशेखर शास्त्री प्रश्नवर (जयपुर) पं० गोपीनाथ शास्त्री धर्माधिकारी, पं० राम चन्द्र शास्त्री प्रश्नवर (भट्ट), व्याकरणधर्मशास्त्राचार्य पं. श्री वृद्धिचन्द्र शास्त्री, वेदवीथीपथिक पं. मोतीलाल शास्त्री आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

आपके पांच पुत्रों में से ज्येष्ठ स्वर्गीय पं० भवदत्त झा व्याकरण के प्रौढ़ विद्वान् थे। इसी प्रकार द्वितीय पुत्र पं० दुर्गादत्त झा इस समय व्याकरण के प्राध्यापक हैं।❀

आपने ३२ वर्ष तक महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर में व्याकरण का अध्यापन किया और सेवा निवृत्ति के समय तत्कालीन विद्वन्मण्डली द्वारा आपका एक भव्य अभिनन्दन किया गया। आप स्वभाव से मृदु एवं उदार रहे हैं। आपको कभी क्रुद्ध नहीं देखा गया। आपके विषय में तत्कालीन विद्वानों की यह धारणा थी—

"कुप्यत्येव न सुजनो यदि कुप्यति विप्रियं न चिन्तयति।
यदि चिन्तयति न जल्पति यदि जल्पति लज्जितो भवति॥"

आपके स्वभाव के सम्बन्ध में विद्वानों की दृष्टि निम्नांकित पद्य गत विचारों से पूर्णतः प्रकट होती हैं :—

"ते विरलाः सत्पुरुषाः स्नेहो येषामभिन्नसुखरागः।
अनुदिवसवर्द्धमानः पुत्रेष्वृणमिव हि संक्रामेत्॥"

कविशिरोमणि भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री ने आपका सही चित्र निम्नांकित पद्य द्वारा उपस्थित किया है :—(३६—ऋ)

"प्राप्य सन्निधाने यस्य काव्य-कथाऽऽलापादिभिः सकलजनस्य मनस्तोषं प्रसमीक्षध्वम्।
तन्त्रे सुप्रगल्भं शब्दशास्त्रपरिष्कारे पटुमौचित्योपचारे परिनिष्ठितं परीक्षध्वम्।
पाठशालावातायनमध्ये मंजुमूर्त्या स्थितिमध्येतृषु मृत्येष्वपि मृदुलमुदीक्षध्वम्।
शान्तिकरीं मुद्रामाप्य विबुधकरीन्द्रसमं राजगुरुचन्द्रदत्तचौधरीं निरीक्षध्वम्॥"

आपका वैशाख शुक्ला ११ संवत् २०१३ को ७७ वर्ष की अवस्था में स्वर्गवास हुआ था। आप जयपुर विद्वन्मण्डली में "बाबूजी महाराज" के नाम से विख्यात थे। आप के पश्चात् जयपुर व्याकरण-पाण्डित्य से शून्य हो गया।

रचनात्मक कार्य

यों तो आप अत्यन्त व्युत्पन्न एवं मेधावी विद्वान् थे, अनेक काव्यों की रचना का सामर्थ्य रखते थे परन्तु आपकी इस दिशा में विशेष प्रवृत्ति नहीं थी। म० म० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ने संस्कृत रत्नाकर का इतिहास प्रस्तुत करते हुए लिखा है :—(३६—ए)

❀ अब आप भी दिवंगत हैं।

(३६—ऋ)—'जयपुरवैभव'—नागरिकवीथी, सुधीचत्वरः पृष्ठ २५५, पद्य संख्या ६४।

(३६—ए)—'आत्मकथा और संस्मरण'—श्री चतुर्वेदीजी—पृष्ठ २३।

"हमारे घनिष्ट मित्र श्री चन्द्रदत्तजी मैथिल ने आरम्भ में कुछ कविता आदि देने की सहायता की थी, किन्तु लेख-निबन्ध आदि लिखने में इनकी प्रवृत्ति कभी नहीं हुई। यद्यपि लेख लिखने और कविता रचना में वे बड़े ही प्रौढ़ थे, किन्तु आलस्यवश उधर प्रवृत्ति नहीं रखते थे।"

भट्ट मथुरानाथ शास्त्री ने अभिनन्दन समिति के तत्त्वावधान में प्रकाशित पत्रिका में आपके रचना-चातुर्य के सम्बन्ध में अपने उद्गार इस प्रकार प्रकट किये हैं :—(३६—ऐ)

"गद्य-पद्य रचना में आप विद्यार्थी दशा में ही प्रगल्भ हो चुके थे।.........कालेज में रचना सम्बन्धी जब जब काम पड़ते थे, सब में आपका पूर्ण योग रहता था। श्रीमान् शास्त्रीजी महाराज (श्री लक्ष्मीनाथजी शास्त्री) के समय तो व्युत्पत्ति-दृढ़ता के लिए कई बार श्रेणि में भी रचना विषयक स्पर्द्धाविनोद हुआ करता था, जिसमें हमारे चरितनायक (श्री चन्द्रदत्त ओझा), म० म० पं० श्री गिरिधर शर्मा आदि तो रहते ही थे, किन्तु प्रारम्भिक व्युत्पत्ति देखकर श्रीमान् शास्त्रीजी महाराज के कृपा विशेष के कारण सहाध्यायी न होने पर भी इन पंक्तियों का यह तुच्छ लेखक (भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री) भी सम्मिलित होता था।.........आपकी रचना पर वहां भी प्रशंसा और अभिनन्दन की मुहर होती थी।"

संवत् १९६१ से प्रकाशित होने वाले संस्कृत रत्नाकर के सर्वप्रथम अंक में मंगलपद्य आपकी ही लेखनी से प्रसूत हुए थे। वे पद्य इस प्रकार हैं :—

"जयति भक्तसमीहितसाधकः सकलविघ्नहरो गणनायकः।
अपि जगत्त्रयनिर्मितशिल्पिना प्रथममेव नुतः परमेष्ठिना ॥१॥
समस्तशास्त्रवारिधेर्विगाहने विपश्चितां कदापि यत्प्रभावतो भ्रमो न जायते नु ताम् ॥
सुधामयूखविस्फुरत्कलाकलापमंजुलां प्रसन्नवक्त्रपंकजां समाश्रये सरस्वतीम् ॥२॥
उमाहृदयसन्मणिं प्रणविचित्रचिन्तामणिं सुधाकराकरावलीकलितचारुचूडामणिम् ॥
सुरासुरशिरोमणिच्छुरितपादपंकेरुहं नमामि जितमन्मथं त्रिभुवनाधिनाथं हरम् ॥३॥

इसी प्रकार गोविन्द, गोपाल आदि अनेक रूपात्मक ऐसे ब्रह्म की स्थिति के (६ तथा ४ अन्य) १० पद्य प्रस्तुत किये हैं। इन पद्यों में जयपुर नरेश माधवसिंह का वर्णन भी दर्शनीय है :—

"भास्वद्वंशवतंसमध्यमणिः प्रत्यर्थिसीमन्तिनी
चेता वृत्तिसरोजिनीहिमकरो दामोदरो सादरः।
धैर्यौदार्यविवेकशौर्यमधुरश्चंचद्यशो भास्वरः
सोऽयं धर्मधुरन्धरो विजयतामुर्वीधरो माधव : ॥६॥"

इसी प्रकार स्वर्गीय सम्राट् पंचम जार्ज जब प्रिन्स आफ वेल्स के रूप में जयपुर आये थे, उस समय उनके अभिनन्दन के रूप में पंचचामर छन्द की बन्दिश बहुत सुन्दर व आकर्षक थी। वायसराय लार्ड हार्डिज की शारीरिक स्वास्थ्य प्राप्ति की कामना के लिए आयोजित गोविन्ददेव मन्दिर सभा में प्रस्तुत आपकी रचना उल्लेखनीय है :—

(३६—ऐ)—'अभिनन्दन समिति पत्रिका'—पृष्ठ १५।

"देहल्यां समुपस्थितेऽतिविषमे घोरे महासंकटे
ह्यार्डिंजं नृपपुंजमंजुललमं संरक्षत साम्प्रतम् ।
श्री गोविन्द दयानिधे, तव कथंकारं शरण्यादभुतां
भक्तत्राणपरां सुरक्षणकलां शैलीमिमां संस्तुमः ॥

(संस्कृत रत्नाकर, सप्तम वर्ष पौष-माघ, सं० १९६९, सं ७।१०)

आपने अनेक समस्यापूर्तियां भी की थीं, जो संस्कृत रत्नाकर के अनेक अंकों में प्रकाशित हुई हैं। केवल दो समस्यापूर्ति रूपात्मक पद्य यहां प्रस्तुत किये जा रहे हैं :—

"लोकानामनुरंजनं परिषदि प्रत्यर्थिनां गंजनं
हृत्तामिस्रविभंजनं प्रतिपदं सद्भिः सदासंजनम् ।
दुर्नीतिरतिवर्ज्जनं भ्रमवतां भ्रान्तेस्तथा तर्ज्जनं
तस्माद् दुर्ज्जनगर्ज्जनं मतमिदं विद्यार्जने के गुणाः ॥"

"धनुर्भङ्गाद्रामे स्पृहयति सुकान्तारसरणं प्रयुंजानो रामः परपरिभवापूरसरणम् ।
पराभूतस्तस्माद् द्रुतमकृतकान्तारसरणं सतां माने म्लाने मरणमथवा दूरसरणम् ॥"

संस्कृत रत्नाकर के विशेषांक शिक्षाङ्क में प्रकाशित आपकी रचना का शब्दलालित्य, अर्थ-प्रसाद और सारल्य दर्शनीय है :—

"भक्तिः शूलिनि शक्तिरात्मदमने, किञ्चेकितायाः समा-
सक्तिः शास्त्रनिगूढतत्त्वकलने, व्यक्तिः श्रुतेर्मर्मणाम् ।
मुक्तिर्लक्ष्यमथाऽनुरक्तिरनघे धर्म्ये विधौ शाश्वती
भुक्तिर्वीतभया यया भवति सा शिक्षा सुशिक्षा मता ॥" इत्यादि

संस्कृत रत्नाकर का प्रतिज्ञा पद्य आपके द्वारा रचित था, जो अब तक उसके मुखपृष्ठ पर प्रकाशित होता रहा है। पद्य आशीर्वादात्मक मंगलाचरण का सूचक है :—

'चित्रं द्विजपतिमण्डलकलासमृद्ध्याऽयमेधमानोऽपि ।
वेलामनतिक्रामन् संस्कृत–रत्नाकरो जयति ॥"

आपकी रचना "पुष्करमहिमा" (सुललित पद्य) संस्कृत रत्नाकर में प्रकाशित हो चुकी है (३६—ओ) आपने "मैथिलहितसाधन" नामक पत्र का भी प्रकाशन किया था। आपकी रचनायें अन्यान्य पत्र-पत्रिकाओं में भी प्रकाशित हुई हैं। आपकी विद्वत्ता का परिज्ञान उपर्युक्त प्रस्तुत पद्यों से सरलतापूर्वक किया जा सकता है। वास्तव में आप एक उल्लेखनीय विद्वान् रहे हैं।

(३६—ओ)—'संस्कृत रत्नाकर'—वर्ष २८ संचिका ४–५, नवम्बर-दिसम्बर, १९६०।

३७. श्री चन्द्रदत्त दाधीच

जयपुर राज्य के ताजीमी सरदार कथाभट्ट राजगुरु पं. छोटेलालजी नामावल, जो श्री हरगोविन्द शर्मा के नाम से भी विख्यात रहे हैं, उल्लेखनीय विद्वान् थे। आपके पौत्र श्री चन्द्रदत्त दाधीच थे। आपका वंशवृक्ष इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :—
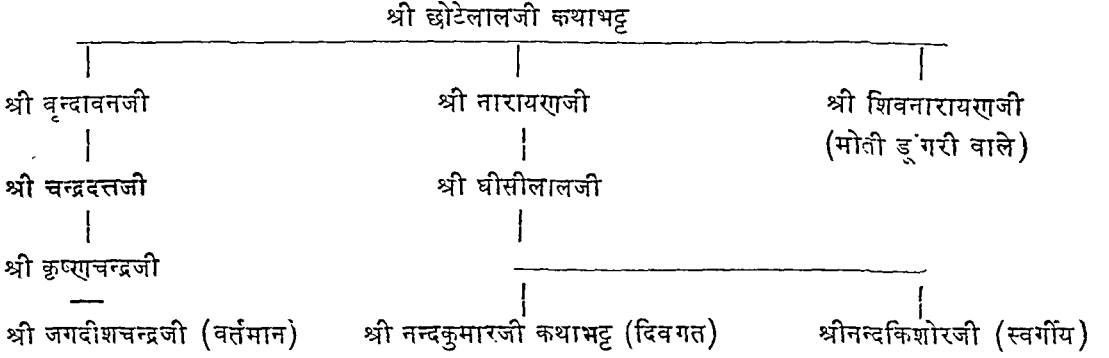
श्री छोटेलालजी के ज्येष्ठ पुत्र श्री वृन्दावनजी ने महाराज संस्कृत कालेज की स्थापना से पूर्व और कुछ समय पश्चात् तक हिन्दी पाठन का कार्य किया था। संस्कृत कालेज में उपलब्ध प्राचीन रिकार्ड के अनुसार यह कहा जा सकता है कि पं० वृन्दावनजी के पश्चात् उनके पुत्र श्री चन्द्रदत्तजी नियुक्त हुए थे। श्री वृन्दावनजी का देहावसान माघ कृष्णा १५ संवत् १९४० को हुआ था और इसके पश्चात् चैत्र शुक्ला ६ संवत् १९४० अर्थात् अप्रैल, १८८४ से श्री चन्द्रदत्तजी ने कार्य प्रारम्भ किया था।

आपकी जन्म तिथि ज्ञात न हो सकी। आप अपने समय के उल्लेखनीय विद्वान् रहे हैं। राजवैद्य श्री कृष्णराम भट्ट ने समकालीन विद्वानों में आपका उल्लेख किया है :—(३७—अ)

"जिह्वाग्रविस्फूर्जितसर्वभारतः परंनतः सद्गुणगुच्छभारतः।
विराजते राजगुरुः सभारतः स चन्द्रदत्तः परमप्रभारतः ॥"

आप अल्पावस्था में ही आश्विन शुक्ला १० संवत् १९५० को दिवंगत हो गए थे। आपका रचनात्मक कार्य उपलब्ध नहीं है। आप उल्लेखनीय विद्वान् थे।

———

(३७—अ)—'जयपुरविलास' पंचम उल्लास, पद्य संख्या ३९—एते च कथाभट्टत्वेन राजगुरवो दाधीचाः। (टिप्पणी)।

३८. श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

श्री गुलेरीजी का नाम हिन्दी साहित्य के इतिहास में 'उसने कहा था' नामक प्रसिद्ध कहानी के लेखक के रूप में विख्यात है। आप मूलतः संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे। जयपुर की संस्कृत साहित्याभिवृद्धि में उल्लेखनीय योगदाताओं की सूची में आपका नाम स्मरणीय है। आप महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर के स्थायी प्रिंसिपल श्री रामभज शर्मा के अभिन्न मित्र श्री शिवराम शर्मा गुलेरी के ज्येष्ठ पुत्र थे।

पर्वतीय सारस्वत ब्राह्मण परिवार में लब्धजन्मा पं० श्री शिवरामजी महाराज कागंड़ा प्रान्तीय 'गुलेर' ग्राम के राजपुरोहित थे। आपके पूर्वज 'मणिवाले' कहलाते थे। आपका अध्ययन काशी में सम्पन्न हुआ था। श्री शिवरामजी के तीन पुत्र थे––(१) श्री चन्द्र धर शर्मा, (२) श्री सोमदेव शर्मा और (३) श्री जगद्धर गुलेरी।

श्री गुलेरी की प्रारम्भिक शिक्षा आपके पितृचरण की देखरेख में सम्पन्न हुई थी। आपने उस समय बी० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की थी और कुछ समय तक मेयो कालेज में (अजमेर) अध्ययन किया था। कालान्तर में आप खेतड़ी नरेश के भी अध्यापक रहे हैं। भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री ने आपके विषय में लिखा है–– 'एष हि महाभागो यथार्गलविद्याया' तथा संस्कृत–पाण्डित्ये हिन्दी साहित्ये चापि परमं परिनिष्ठितो (अ) भवत्। अयं जयपुरात् प्रकाश्यमानस्य "समालोचक" पत्रस्य काशी नागरीप्रचारिणीपत्रिकायाश्च सम्पादको (अ) भवत्।" (३८–अ) इससे ज्ञात होता है कि आप जयपुर से प्रकाशित होने वाली समालोचक नामक पत्रिका के एवं काशी नागरीप्रचारिणी सभा पत्रिका के सम्पादक रहे हैं। आपने हिन्दी में "पुरानी हिन्दी" नामक पुस्तक लिखी है, जो आज भी एक उल्लेखनीय रचना के रूप में विख्यात है। आपकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर महामना मदन मोहन मालवीय ने आपको हिन्दू विश्वविद्यालय में संस्कृत विभाग का अध्यापन कार्यभार सौंपा था। आपका निधन (अल्पावस्था में ही) हिन्दी एवं संस्कृत जगत् के लिए अपूरणीय क्षति माना गया था।

आपके सम्बन्ध में कहा जाता है कि आपने एक बार लार्ड हार्डिज को पद्य सुनाया था, जिसका आशय था––स्वराज मिले चाहे न मिले पर सुराज्य अवश्य मिलना चाहिये। वह पद्य इस प्रकार है :––(३८–आ)

"स्वराज्यमस्तु मा वा स्वत्कीर्तेः सम्प्रसारणम्।
शाब्दिकाः वयमिच्छामः तदादौ सम्प्रसारणम्॥'

संस्कृत भाषा में निबद्ध आपके लेख महत्त्वपूर्ण होने के साथ ही गवेषणात्मक भी हैं। उदाहरण के लिए रत्नाकर के प्राचीनतम अंकों में "वैदिक पृषता" :––(१) गोदानम् लेख आपकी अध्ययन गम्भीरता को प्रकट करता है। यह लेख वैदिक साहित्य के साथ ही धर्मशास्त्र व साहित्य के गहन अध्ययन के बिना नहीं लिखा जा सकता। इसमें प्रत्येक विषय सप्रमाण, गृह्यसूत्र व वेद के भाष्यों के उद्धरणों से युक्त हैं। यह कालिदास के पद्यांश "अथास्य गोदानविधेरनन्तरं० विवाहदीक्षां निरवर्तयद् गुरुः (रघुवंश तृतीय सर्ग ३३वां पद्य) में समागत गोदान शब्द का स्पष्टीकरण करने हेतु लिखा गया एक शोध लेख है।

लार्ड हार्डिज जब दिल्ली को नवीन राजधानी के रूप में स्वीकृत कर प्रतिष्ठामहोत्सव का सम्पादन करने वाले थे, तभी किसी व्यक्ति ने उन पर घातक आक्रमण किया था। उस समय उनकी जीवन रक्षा के लिए भारतवर्ष के प्रत्येक भाग में प्रार्थनासभाओं का आयोजन किया गया था। जयपुर के गोविन्ददेवजी के मन्दिर में

(३८–अ)–जयपुरवैभवम्–भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री-सुधीचत्वरः पृष्ठ २४५–४६।
(३८–आ)–पं० नन्दकुमार कथाभट्ट के सौजन्य से प्राप्त पद्य।

सम्पन्न (२६ दिसम्बर १९१२ को) सभा में आपके प्रति आपने भी शुभ कामनायें प्रकट करने हेतु कुछ पद्य प्रस्तुत किये थे। इसके पश्चात् २७ जनवरी, १९१३ को लार्ड हार्डिंज के स्वस्थ होने पर एक प्रमोद सभा का आयोजन किया था। उस अवसर पर आपने ६ पद्य सुनाये थे जो संस्कृत रत्नाकर के सप्तम वर्ष पौष-माघांक संवत् १९५९ में प्रकाशित हुए हैं। एक पद्य यहां उद्धृत किया जा रहा है :—

"उज्झितगदशयनफनस्तीर्णायुर्दधिः सकान्तिरमणीकः।
विधिनियमसमाद्यमर्णादिष्ट्याद्य चकास्ति हार्डिंजः ॥"

(माघ कृष्णा ५ सं० १९६९ मकरार्कमुक्तदिनानि १५ सोमे २७–१–१३ भारतीयानां राजभक्तिः शीर्षक से उद्धृत पद्य ।)

राजभक्ति से प्रेरित होकर श्री गुलेरीजी ने प्रत्येक हिन्दू के लिए प्रतिदिन पठनीय एक प्रार्थना का भी निर्माण किया था, जिसमें पद्य हैं। वे यहां उद्धृत हैं :—

"राजभक्तैः हिन्दुभिः प्रातः प्रातः सन्ध्योत्तरं पठनीय प्रार्थना"

धर्मो यतो जगदधीश ! ततः सदा त्वं
भूतिर्जयश्च सततं हि ततो यतस्त्वम् ।
धर्माय युद्ध्यति चमूर्नृपजार्जभक्ता
तस्यै जयं परमकारुणिक ! प्रयच्छ ॥"

जित्वा रिपून्त जगति शान्ति-सुखं वितन्वन् संघोषितो जयरवैर्निजवाहिनीभिः।
साम्राज्यपालनमकण्टकमादधानो जीव्याच्चिरं नरपतिर्भवतः प्रसादात् ॥

(संस्कृत रत्नाकर नवम् वर्ष सं० १९७१, भाद्रपद पृष्ठ २–३, सन् १९१४ ई०)

इसी प्रकार "पंचनदस्तवं" नामक पद्य संग्रह भी अद्वितीय है। इसमें वेद से संबद्ध अनेक कथानक उपस्थित किये गये हैं, जिनका आशय बिना संकेत समझना दुष्कर है। एक पद्य उदाहरण के लिए यहां प्रस्तुत किया जा रहा है :—

"तत्र स्रोतस्वनी पुण्या या वशिष्ठं न्यपाशत ।
यदैश्वर्येर्ष्यया ज्येष्ठा सपत्नी शतधाद्रवत् ॥
भूर्देवदुर्लभा रम्या तामुदग् भाति पार्वती ।
कूपान् सुधोदकान् यत्थांश्चिरं सस्मार पाणिनिः ॥

इस पद्य का आशय जानने के लिए निरुक्त ९।२६ तथा अष्टाध्यायी ४।१।७४ का अनुसंधान करना आवश्यक है। इसी प्रकार आपके अनेक लेख (ग्रीष्म ९ वर्ष सं० १९६७) संस्कृत रत्नाकर के प्राचीन अंकों में प्रकाशित हुए हैं। आपका जयपुर के संस्कृत-साहित्य को उल्लेखनीय योगदान रहा है।

३९. श्री चन्द्रशेखर शास्त्री प्रश्नवर

श्री शास्त्रीजी का जन्म जयपुर नगर की उपनगरी ब्रह्मपुरी में दिनांक ४ नवम्बर १८८९ ई० को हुआ था। आपकी शिक्षादीक्षा महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर में हुई। आपने व्याकरणशास्त्र का अध्ययन राजगुरु पं० श्री चन्द्रदत्तजी झा बाबूजी महाराज से किया था। इसके पश्चात् आप दिनांक १७ अगस्त, १९२१ को असिस्टेण्ट प्रोफेसर व्याकरण के पद पर नियुक्त हो गए। (३९-अ) आप व्याकरण के प्रख्यात विद्वान् थे। पं० श्री वृद्धिचन्द्रजी शास्त्री, पं० श्री मनोहरजी शुक्ल, पं० श्री मोतीलाल शास्त्री प्रभृति अनेक ख्यातनामा विद्वान् आपके शिष्य रह चुके हैं।

भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री ने जयपुरवैभवम् में आपके लिए निम्नलिखित पद्य प्रस्तुत कर गौरवमय स्थान प्रदान किया है :—

"जयपुरराजकीयपाठशालामध्यागतो
व्याकरणाध्यापनतो नन्दति गतच्छलम्
सायं पुनः कालीमन्दिरान्तमौनमुद्रासने
सेवते गरुडमुद्रां प्रत्यहमचंचलम्।
पंचकेशवैभवात्प्रपंचयन् स्वतान्त्रिकतां
नानाविधवार्तारसं योऽ (आ) चंति निरञ्चलम्
मानसोपनीलचन्द्रशेखर-मधीतचन्द्र-
शेखर-मनीत चन्द्रशेखरमनर्गलम्॥"

आप व्याकरण के प्रकाण्ड विद्वान् सरल एवं साधु स्वभाव सम्पन्न व्यक्ति थे। आपका रचनात्मक कार्य उपलब्ध नहीं होता। आपके पुत्र श्री चन्द्रधर शर्मा शास्त्री प्रश्नवर राजस्थान सरकार के अधीन किसी विद्यालय में संस्कृत के अध्यापक हैं। आप अपने छात्रवात्सल्य के कारण अपने समय में उल्लेखनीय विद्वान् रहे हैं।

(३९-अ)-लिस्ट आफ एजुकेशनल आफिसर, करेक्टेड अपटू १ सितम्बर, १९३५-महाराज संस्कृत कालेज जयपुर—७ असिस्टेण्ट प्रोफेसर—क्रमांक १२ पर उद्धृत सूचना पर आधारित जन्म तिथि एवं नियुक्ति तिथि।

(३९-आ)-जयपुरवैभवम्-नागरिकवीथी सुवीचत्वरः—पृष्ठ २६६ पद्य संख्या ८०।

४०. श्री चन्द्रशेखर शास्त्री द्विवेदी

भारतवर्ष के सुप्रसिद्ध चार पीठों में से पुरी पीठ के शंकराचार्य पद पर आसीन स्वामी श्री निरंजनदेव तीर्थ महाराज दीक्षा ग्रहण करने से पूर्व 'चन्द्रशेखर द्विवेदी' के नाम से विख्यात थे। आप महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर के अध्यक्ष पद पर कार्य कर चुके हैं। आपका कार्यकाल २५ फरवरी, १९५५ से २८ जून, १९६४ तक रहा है।

वंशपरिचय (४०-अ)

राजस्थान प्रान्त की राजधानी जयपुर नगर के दक्षिणपूर्व भाग से कुछ दूर विद्यमान टोडाभीम नामक ग्राम में आपके पूर्वजों का निवास रहा है। यह स्थान अनेक विद्वानों की जन्मभूमि रहा है। 'रसगंगाधर' की हिन्दी व्याख्या करने वाले वाराणसी के प्रख्यात विद्वान् पं० पुरुषोत्तम चतुर्वेदी भी इसी ग्राम में उत्पन्न हुये थे। वास्तव में ये सभी विद्वान् पाटन राज्य के अधीश्वर सिद्धराज सोलंकी के समय गुजरात देश में रहते थे। कालान्तर में ये औदीच्य ब्राह्मण जयपुर के राजा जयसिंह द्वितीय के समय जयपुर में आकर बसने लगे। जयपुर नगर से ही जयपुर राज्य में फैलने के कारण आपके पूर्वज टोडाभीम नगर में रहने लगे। आपके मूल पुरुष माननीय श्री गोपीराम द्विवेदी थे, जो श्रौतस्मार्त कर्म-परायण एक विद्वान् व्यक्ति थे। आपके पुत्र श्री हरिकृष्ण तथा पौत्र श्री लक्ष्मीकृष्णजी थे। इसी परम्परा में श्री मगनीराम द्विवेदी का जन्म हुआ, जो प्रसिद्ध ज्योतिषशास्त्री थे। श्री मगनीरामजी के तीन पुत्र थे (१) श्री फतहशंकर (२) श्री जगन्नाथ (३) श्री केदारनाथ। श्री केदारनाथ द्विवेदी अल्पावस्था में ही दिवंगत हो गये। श्री फतहशंकर द्विवेदी के चार पुत्र हुए-(१) शिवचन्द्र, (२) मथुरानाथ, (३) मोतीलाल तथा (४) गणेशलाल। श्री शिवचन्द्र द्विवेदी अपने तीनों भाइयों सहित टोडाभीम से व्यावर आये। इन्हीं में पण्डितप्रवर ऋग्वेद शांखायन शास्त्रीय श्री गणेशलाल द्विवेदी के पांच पुत्रों में ज्येष्ठ श्री चन्द्रशेखर द्विवेदी हमारे चरितनायक हैं। श्री चन्द्रशेखर द्विवेदी का जन्म आश्विन कृष्णा १४ रविवार संवत् १९६७ को व्यावर में ही हुआ था। आपकी माता का नाम श्री रंभा देवी था। आपके ४ भाई और है (१) श्री दामोदर (२) श्री गिरिवरधर, (३) श्री शिववल्लभ, (४) श्री विश्वनाथ।

श्री द्विवेदी की प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा ज्येष्ठ पितृव्य श्री मोतीलालजी के सान्निध्य में सम्पन्न हुई थी। लघुसिद्धान्त कौमुदी, सम्पूर्ण अष्टाध्यायी एवं अमरकोश जो संस्कृत भाषा के अध्ययन के लिए परमावश्यक ग्रन्थ हैं, आपने इन्हीं से पढ़े थे। इसके पश्चात् आपने सनातनधर्म पाठशाला, ब्यावर में खण्डेला ग्रामवासी श्री गोविन्द-नारायण शास्त्री, मेरठनिवासी प० श्री मुरारिलालजी, कांठग्राम निवासी (मुरादाबाद) पं० श्री रामेश्वर त्रिवेदी तथा बदायूं वासी श्री प्यारेलाल शर्मा व्याकरणाचार्य से व्याकरणशास्त्री प्रथम वर्ष तक अध्ययन किया था। ये सभी आपके प्रारम्भिक गुरु रहे हैं। आपने व्याकरणशास्त्री, व्याकरणाचार्य तथा पोष्ट चार्य की परीक्षायें वाराणसी क्वींस कालेज, (गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज) से नियमित अध्ययन के पश्चात् उत्तीर्ण की थीं।

आपने श्री गणपति शास्त्री मोकाटे से व्याकरण व मीमांसा, म० म० श्री हाराणचन्द्र भट्टाचार्य तथा म० म० श्री हरिहरकृपालु द्विवेदी से वेदान्त दर्शन, श्री नारायण शास्त्री (नृसिंह) तथा श्री सूर्यनारायण न्याय-

(४०-अ)-आपका पूर्ण परिचय 'भारती' संस्कृत मासिक पत्रिका के १४ वर्ष ८ अंक, जून, १९६४ में (प० श्री दीनानाथ त्रिवेदी द्वारा लिखित) प्रकाशित हुआ है। उसी लेख को आधार बनाकर संक्षिप्त रूप में यहां विवरण प्रस्तुत किया गया है।

व्याकरणाचार्य से न्यायशास्त्र का अध्ययन किया था। तपोनिधि महाशय श्री रामयश त्रिपाठी ने आपको व्याकरण शास्त्र का विशेष ज्ञान दिया। पोष्टाचार्य परीक्षा में म० म० श्री गोपीनाथ शास्त्री कविराज से न्याय तथा वेदान्त विषयों का विशिष्ट अध्ययन किया था। आपने वेदान्त न्याय, सांख्य विषयों में तीर्थ परीक्षा भी उत्तीर्ण की थी।

अध्यापन कार्य तथा कार्यकाल

आपने सन् १९३७ ई० से सांगब्रह्म विद्यालय वाराणसी में अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया था। इसके पश्चात् गुजरात प्रान्तीय पेटलाद नगरस्थ नारायण संस्कृत विद्यालय में प्रधानाचार्य के पद पर कार्य किया। इसके उपरान्त २ वर्ष तक अपने घर पर ही प्राचीन परिपाटी से विद्यालय का संचालन किया था। इसी समय अखिल भारतीय धर्मसंघ के संचालक पूज्यपाद करपात्रीजी महाराज के सम्पर्क में आकर उक्त संघ में १५ वर्ष तक निरन्तर कार्य किया। आप कुछ समय तक संघ के अध्यक्ष भी रहे हैं। आपने धर्म शिक्षा मण्डल के निरीक्षक पद पर भी कार्य किया। वाराणसी से प्रकाशित होने वाले 'सन्मार्ग' पत्र के सम्पादक के रूप में आपका नाम विख्यात है। आप अखिल भारतीय राम राज्य परिषद के मन्त्री भी रह चुके हैं। स्वामी श्री करपात्रीजी महाराज की आज्ञा से आपने ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम हरिद्वार में लगभग दो वर्ष तक प्राचार्य एवं अध्यापन का कार्य किया था। उसी समय आपने अनेक यज्ञयागादिकों (पंचलक्ष चण्डी प्रयोग, अनेकशतमुख कोटि होम) में भाग लिया। एक वर्ष तक केन्द्रीय शासनाधीन जामनगर (गुजरात) में विद्यमान आयुर्वेद अनुसंधान शाला में आयुर्वेद-मुख्यांगवर्णनिश्चय, प्रकृतिनिर्णय आदि अनेक कार्यों का सम्पादन किया। आपने तीन हजार पद्यात्मिका व्याख्यानमाला का हिन्दी में अनुवाद किया है जो सिहोर नगर (गुजरात) के सत्संग मण्डल द्वारा प्रकाशित किया जाने वाला है। इस प्रकार अनेक स्थानों पर कार्य करते हुए राजस्थान लोक सेवा आयोग, जयपुर द्वारा चयनित होकर सन् १९५५ में आप महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर के अध्यक्ष पद पर आसीन हुए और सन् १९६४ तक आप उक्त पद पर कार्य करते रहे। जगद्गुरु शकराचार्य पुरी पीठाधीश्वर द्वारा स्वीकृत उत्तराधिकारियों की सूची में आपका नाम देखकर जब पुरी पीठ की स्थायी समिति ने उक्त आसन को ग्रहण करने का अनुरोध किया तब आपने लोक कल्याणार्थ अपने परिवार को छोड़कर सन्यास ग्रहण कर लिया।

आप समय-समय पर महामहोपाध्याय, विद्याभूषण, पण्डितमार्तण्ड आदि उपाधियों से सम्मानित होते रहे हैं। आपने अपने जीवन काल में अध्यापन द्वारा जिन योग्य शिष्यों को भगवती सरस्वती की उपासना का आदेश प्रदान किया है, उनके नाम इस प्रकार हैं :

१. श्री शशिधर शर्मा, व्याख्याता, पंजाब विश्वविद्यालय, प्राच्यविद्या विभाग।
२. श्री रामानन्द स्वामी
३. श्री सच्चिदानन्द ब्रह्मचारी
४. श्रीरामनाथ शास्त्री, जामनगर
५. श्री भाई शंकर पुरोहित, भारतीय विद्याभवन बम्बई
६. श्री गौरी शंकर मोतीराम शास्त्री, उमरेट
७. श्री मधुकर शास्त्री, कोटा
८. श्री नरेन्द्रकुमार कथावाचक, खम्भात
९. श्री वेणीमाधव धर्माधिकारी, जयपुर
१०. श्री मुक्ताशकर मणिशंकर शर्मा, पेटलाद
११. श्री दीनानाथ त्रिवेदी, जयपुर, इत्यादि

आपने अपने जीवन पर्यन्त संस्कृत संस्कृति की सुरक्षा के लिए कार्य करने का प्रण लिया है। यद्यपि आपका कोई रचनात्मक कार्य उपलब्ध नहीं है, फिर भी जयपुर संस्कृत कालेज के प्राचार्य के रूप में तथा सनातनधर्म के महामहोपदेशक व प्रचारक के रूप में आपका योगदान उल्लेखनीय है।

---

४१. श्री चिरजीलाल शर्मा

महाराजा संस्कृत कालेज, जयपुर में आप ऋग्वेद के प्रथम व अन्तिम अध्यापक कहे जा सकते हैं। महामहोपाध्याय श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ने संस्कृत कालेज के प्राचार्य पद को संभालने के पश्चात् यह अनुभव किया था कि यहाँ चारों वेदों के अध्ययनाध्यापन की व्यवस्था होनी चाहिए और इस विचार से आपने ही सर्वप्रथम ऋग्वेद आदि चारों वेदों के अध्यापकों की नियुक्तियां की थी।

श्री शर्मा गुजराती ब्राह्मण थे तथा जयपुर में ही ब्रह्मपुरी के निवासी थे। आपका जन्म २६ जुलाई, १८९४ को हुआ था (४१–अ)। आपकी संस्कृत कालेज में 'पण्डित के रूप में प्रथम नियुक्ति १६ जुलाई, १९२८ में तथा 'ऋग्वेद पण्डित' के रूप में नियुक्ति १ जुलाई, १९३० को हुई थी। आपने सन् १९४६ तक संस्कृत कालेज में ऋग्वेद का अध्यापन किया था। आप प्रवेशिका विभाग में पढ़ाया करते थे। आपके सेवा निवृत्त होने पर यह पद भी समाप्त हो गया।

ऋग्वेद के अधिकारी विद्वान् होने से आपका नाम उल्लेखनीय माना जाता रहा है। आप अब इस लोक में नहीं हैं। आपका रचनात्मक कार्य उपलब्ध नहीं है। आप उल्लेखनीय विद्वान् थे।

---

४२. श्री चुन्नी लाल अथर्ववेदी

संस्कृत कालेज, जयपुर में संस्थापित अथर्ववेद के अध्यापक पद पर आप ही सर्वप्रथम नियुक्त हुए थे। आपका जन्म २० नवम्बर, १८८० को हुआ था। (४२–अ) आपके पिता का नाम श्री बापूजी था। आपका निवास स्थान लुणावाड़ा (गुजरात) था और यही आपकी जन्मभूमि थी। आपके पिता श्री बापूजी अपने समय के अथर्ववेद के प्रकाण्ड विद्वान् थे। आपने अपना पूर्ण अध्ययन अपने पितृचरण से ही किया था। आप श्री बापूजी भगवान् के नाम से विख्यात थे। इस प्रकार पिता तथा गुरु दोनों आप ही थे। आपने अथर्ववेद के साथ ही शाखागत उपनिषदों एवं वेद की अन्यान्य शाखाओं का अध्ययन किया था।

श्री अथर्ववेदी जी नागर ब्राह्मण थे, जो विशेषतः गुजरात में प्राप्त होते हैं। आपकी महाराज संस्कृत कालेज में प्रथम नियुक्ति १५ जुलाई, १९२८ को हुई थी तथा फिर आप पण्डित अथर्ववेद के पद पर १ जुलाई, १९३० से कार्य करने लगे। सेवा मुक्त होने के पश्चात् भी आप जयपुर में ही रहते थे तथा समय-समय

(४१–अ)–लिस्ट आफ एजूकेशनल आफिसर्स—करेक्टेड अपटू १ सितम्बर, १९३५—महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर—६ पण्डित (वेतन शृंखला ३०–२–५०)—क्रमांक २४—पण्डित चिरंजील ल शर्मा ब्राह्मण पण्डित ऋग्वेद।

(४२–अ)–लिस्ट आफ एजूकेशनल आफिसर्स करेक्टेड अपटू १ सितम्बर, १९३५, म० संस्कृत कालेज, जयपुर क्रमांक २२—पण्डित अथर्ववेद।

पर अनेक यज्ञों में भाग लेकर अपनी विद्वत्ता से विद्वानों को सन्तुष्ट किया करते थे। वेद पाठ में इनका स्वर इतना मधुर था कि भारतवर्ष में अथर्ववेद में सस्वर पाठ में आप अद्वितीय विद्वान् माने जाते थे। महाराजा जयपुर की ओर से आपको १७ रु. झाड़शाही प्रतिमाह प्राप्त होता था। इस प्रकार आप राज्याश्रित विद्वान् थे। आपने अनेक निर्धन ब्राह्मणों को निःशुल्क अध्यापन किया था। आपके उल्लेखनीय छात्रों में श्री भालचन्द्र नागर, प्राध्यापक हिन्दी, राजकीय महाविद्यालय दौसा, श्री प्रभुलाल शास्त्री अथर्ववेदाचार्य, श्री सूर्य नारायण शास्त्री, जयपुर प्रसिद्ध हैं। आपका सन् १९६३ में देहावसान हो गया, जो एक अपूरणीय क्षति कही जा सकती है। आपका रचनात्मक कार्य उपलब्ध नहीं है। आप केवल अथर्ववेदाध्यापक के रूप में उल्लेखनीय विद्वान् रहे हैं। (४२-आ)

---

४३. पं० श्री चैनसुख दास न्यायतीर्थ

जयपुर नगर के जैन विद्वानों में श्री न्यायतीर्थ जी का नाम उल्लेखनीय है। पण्डितजी का जन्म २२ जनवरी, १९०० ई० को भादवा ग्राम निवासी श्री जवाहरमलजी के यहां हुआ था। आपके पूर्वज कम से कम ७ पीढ़ियों से भादवा ग्राम के जागीरदार के कामदार रहे हैं। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा अपने जन्म स्थान भादवा ग्राम में ही सम्पन्न हुई थी। उसके पश्चात् आप दो वर्ष तक जोबनेर में रहे और वहाँ प्राथमिक शिक्षा प्राप्त की। आपकी उच्च शिक्षा वाराणसी में सम्पन्न हुई। आपने न्यायतीर्थ और साहित्याचार्य का तृतीय खण्ड उत्तीर्ण कर लेने पर सन् १९१९ से सन् १९३१ तक कुचामन के जैन विद्यालय में प्रधानाध्यापक एवं अधीक्षक का कार्य किया था। १ नवम्बर, १९३१ से आप जैन दिगम्बर संस्कृत कालेज, जयपुर के प्रिंसिपल रहे और अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक इस पद पर कार्य करते रहे। आपका आकस्मिक देहान्त २५ जनवरी, १९६९ को रात्रि के डेढ बजे हुआ।

श्री पण्डितजी ने अपना जीवन एक शिक्षक के रूप में प्रारम्भ किया था और मृत्युपर्यन्त आप एक शिक्षक ही रहे। भारत सरकार ने उन्हें आदर्श शिक्षक के रूप में राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित कर शिक्षा के क्षेत्र में उनके द्वारा की गई सेवाओं का सही मूल्यांकन किया था। दिगम्बर जैन संस्कृत कालेज, जयपुर के प्राचार्य के रूप में आपने ३८ वर्ष तक कार्य कर संस्कृत शिक्षा के क्षेत्र में आशातीत सफलतायें प्राप्त कीं। उक्त कालेज का वर्तमान स्वरूप आपके अथक परिश्रम का ही परिणाम है।

आपके गुरुओं में काशी, वाराणसी के प्रख्यात विद्वान् महामहोपाध्याय पं० अम्बादासजी शास्त्री एवं श्रीयुत गुलाब झा का नाम उल्लेखनीय है। प्रमुख शिष्यों में पं० श्री भंवरलाल न्यायतीर्थ, पं० श्री मिलाप चन्द्र शास्त्री, डा० कस्तूरचन्द्र कासलीवाल, डा० कमलचन्द्र सोगानी, डा० कैलाशचन्द्र जैन, डी० लिट्०, स्व० श्री प्रकाश शास्त्री आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन पंक्तियों के लेखक को भी आपके सान्निध्य में कुछ दिन जैनदर्शन के अध्ययन का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। आपके जीवन का उद्देश्य ही विद्यादान था। आप अनेक मान्य संस्थाओं से संबद्ध रहे हैं, जिनमें कुछ उल्लेखनीय संस्थायें इस प्रकार हैं :—

(४२-आ)-आपका यह परिचय श्री भालचन्द्र शर्मा, (नागर) व्याख्याता, राजकीय महाविद्यालय, दौसा के सौजन्य से प्राप्त हुआ है। श्री अथर्ववेदी जी का जन्म स्थान—नागरवाड़ा लुणावाड़ा, डिस्ट्रीक्ट पंचमहल, गुजरात था।

१ राजस्थान रिलीजियस ट्रस्ट बोर्ड के सदस्य, २ राजस्थान संस्कृत शिक्षक सलाहकार बोर्ड के सदस्य, ३ राजस्थान राज्य संस्कृत परीक्षा स्थायी समिति के सदस्य ४. जयपुर पब्लिक लाइब्रेरी (सार्वजनिक-पुस्तकालय) की कार्यकारिणी के भूतपूर्व सदस्य तथा पुस्तक निर्वाचिनी समिति के वर्तमान सदस्य) और ५. राजस्थान सं० सम्मेलन के उपसभापति।

रचनात्मक कार्य :—आपकी कृतियों में उल्लेखनीय कुछ इस प्रकार हैं :–(१) पावनप्रवाह, (२) भावना विवेक, (३) जैनदर्शनसार, (४) षोड्शकारण भावना, (5) अर्हत् प्रवचन आदि अनेक हैं। इनमें से पावनप्रवाह एवं षोड्शकारण भावना दोनों ही संस्कृत भाषात्मक रचनायें हैं, जिनके विश्लेषण से आपका वैदुष्य प्रतिभासित होता है। जैनदर्शनसार सम्पूर्ण जैन दर्शन का संस्कृत में संक्षिप्त सारसंग्रह है, जिसे मौलिक कृति कहा जा सकता है। यह रचना अनेक विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में निर्धारित है। अर्हत् प्रवचन प्राकृत भाषा की रचना है। संकलनात्मक कृतियों में प्रवचन प्रकाश का भी नाम उल्लेखनीय है, जो संस्कृत भाषात्मक है।

आपके दो लेख भारती पत्रिका में प्रकाशित हुए हैं—(१) भगवान् बुद्धः (१।२), तथा (२) विश्व-कवेर्मूल्यांकनम् (१।८)। इसी प्रकार संस्कृत रत्नाकर में (१) लोकैषणा (७।६) (2) ज्ञानलिप्सा (८।४),

(३) आलस्यशत्रु: (९।५), (४) संस्कृतभाषाया: अन्तर्राष्ट्रीयत्वम् (९।७), (५) भारतीयसंस्कृते: मेरुदण्ड: (९।१०) (६) धर्मस्य भारात्मकस्वानुभव: (११।३) आदि पठनीय एवं मननीय लेख प्रकाशित हुए हैं।

आप प्रारम्भ से ही पत्रकार रहे हैं। आपने सर्वप्रथम मुलतान से प्रकाशित होने वाले **जैनदर्शन** पत्र का सम्पादन किया था और इसके पश्चात् कलकत्ते से प्रकाशित होने वाले **जैनबन्धु** के प्रमुख सम्पादक थे। जयपुर से प्रकाशित होने वाले **वीरवाणी** पत्र का २१ वर्ष तक सम्पादन किया। यह एक साहित्यिक एवं सामाजिक पत्रिका है। इस पत्र की सम्पादकीय टिप्पणियाँ देश एवं समाज की मनोदशा का सही रूप में चित्र प्रस्तुत करती हैं।

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, श्री महावीरजी के विकास में आपका योगदान उल्लेखनीय है। आपकी सत्प्रेरणा से ही उक्त संस्था ने एक शोध संस्थान की स्थापना की थी तथा छात्रवृत्ति फण्ड योजना प्रारम्भ की थी। आपके निर्देशन में कार्य करते हुए उक्त संस्थान ने १४ उल्लेखनीय ग्रन्थों का प्रकाशन किया है जिसका श्रेय आपको दिया जाना चाहिए।

प्राचीन वाङ्मय की खोज एवं उसके प्रकाशन में आपकी विशेष रुचि रही है। साहित्यकार तो आप प्रारम्भ से ही रहे है। आप पाली, प्राकृत, अपभ्रंश तथा राजस्थानी भाषा के अच्छे विद्वान् थे। बाबू छोटेलाल जैन स्मृति ग्रन्थ तथा इसी प्रकार अन्यान्य अनेक स्मारिकाओं का प्रकाशन आपकी कार्यपटुता का परिणाम है। आप कलकत्ता समाज द्वारा कविरत्न की उपाधि से सम्मानित थे। जयपुर नगर की प्राय: सभी सामाजिक एवं शिक्षण संस्थायें विशेषत: जैन सम्प्रदाय से संबद्ध, आपके मार्गदर्शन में प्रगति प्राप्त किया करती थीं। आपकी गणना इस शताब्दी के उन मूर्धन्य विद्वानों में की जाती है, जिन्होंने देश एवं समाज की सेवा में अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित किया। आप बहुचर्चित व्यक्तित्व के धनी थे।

---

४४. श्री छगनाजी

जाति से सनाढ्य ब्राह्मण, राजवैद्य श्री कृष्णराम भट्ट के परम मित्र तथा पड़ौसी विद्वान् श्री छगना जी का नाम अन्यत्र नहीं मिलता। इनका उल्लेख श्री भट्ट ने जयपुर विलास में किया है, इसी विचार से इन्हें जयपुरीय विद्वन्मण्डली में सम्मिलित किया गया है। श्री भट्टजी ने लिखा है :–(४४–अ)

> "सौन्दर्यनीचीकृतमारमानं शास्त्रोपदेशे गुरुणा समानम्।
> समुज्ज्वलानां यशसां निधानं न श्लाघते कश्छगनाभिधानम्॥"

(४४–अ)–जयपुरविलास—काव्यम्–पंचम उल्लास:, पृष्ठ संख्या ५६—पद्य संख्या ६६।

'अस्य कवे: परमं मित्रं प्रतिवेशी चायं सनाढ्यश्च' (टिप्पणी)

इससे प्रतीत होता है कि श्री छगना जी बहुत ही सुन्दर थे तथा शास्त्रोपदेश किया करते थे। इसी के साथ ऐसा भी आभास होता है कि आप अपने समय के विख्यात विद्वान् भी रहे होंगे।

आपका रचनात्मक कार्य उपलब्ध नहीं होता।

---

४५. श्री छोटेलाल नामावल

राजगुरु कथाभट्ट श्री छोटेलाल जी नामावल का दूसरा नाम श्री हरगोविन्द भी था। आप जोधपुर राज्यान्तर्गत 'पोकरण' के निवासी थे तथा जयपुर के महाराज सवाई रामसिंह द्वितीय के गुरु थे। आपके पूर्वज महाराज जगत् सिंह जी (१८०३-१८१८ ई०) के शासन काल में जयपुर आये थे। आप ताजीमी सरदार थे। महाराज सवाई रामसिंह द्वितीय की दादी जी महारानी चम्पावती जी ने आपकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर एक मन्दिर भेंट किया, जो चम्पावत जी के मन्दिर के नाम से आज भी विख्यात है। आपके अनुवंशज यहीं निवास करते आ रहे हैं। आपका वंशवृक्ष इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है:-(४५-अ)।

(४५-अ)-आपके अनुवंशजों में श्री वृन्दावनजी, (प० क्र० १३०) श्री चन्द्रदत्त जी (प० क्र० ३७) श्री नन्द कुमार जी (प० क्र० ७०), श्री नन्दकिशोरजी (प० क्र० ६८), श्री जगदीश चन्द्र जी (प० क्र० ४७) आदि विद्वानों का परिचय प्रस्तुत किया गया है।

वंशावली

श्री श्यामजी (पोकरण रहे, जोशी कहलाते थे)
|
श्री पांचाजी
|
श्री जगन्नाथजी (राजपुरोहित, पोकरण ठिकाना)

- श्री जयकृष्ण जी
  - श्री बालूराम जी
  - श्री शालिग्राम जी
- श्री जादूराम जी
  - **श्री छोटेलाल जी**
    - श्री वृन्दावनजी
      - श्री चन्द्रदत्तजी
        - श्री किशन चन्द्रजी
          - श्री जगदीशचन्द्र जी
    - श्री नारायणजी
      - श्री घासीलालजी (श्री जयचन्द्रजी)
        - पं० श्री नन्द कुमारजी
        - पं० श्री नन्दकिशोरजी
    - श्री शिवनारायणजी (मोती डूंगरी का ठिकाना)
- श्री रामकिशन जी

इस वंश में अनेक विद्वान् व्यक्तियों ने जन्म लिया है, जिसका परिचय क्रमांनुसार प्रस्तुत किया गया है। श्री छोटेलाल जी कथावाचन शैली इतनी आकर्षक थी कि उसे सुनने तत्कालीन बड़े-बड़े रईस, प्रतिष्ठित नागरिक तथा प्रसिद्ध विद्वान् आपके निवास स्थान पर आया करते थे। महाराज सवाई रामसिंह स्वयं आपका बहुत सम्मान किया करते थे। इसका प्रमाण निम्नलिखित पत्र की प्रतिलिपि से प्रस्तुत किया जा सकता है :–(४५–आ)

रामजी

महाराजाधिराज श्री सवाई
रामसिंह जी चाँपावती जी

साल सम्वत १९१८
मिती चैत सुदी ५ सुकरवार मुकाम सवाई जयपुर

गुरु वीरामण दायमा (गुरु ब्राह्मण दायमा)

(४५–आ)–उक्त पत्र की मूल प्रति पं० श्री नन्द कुमार जी कथाभट्ट के पास सुरक्षित है और उन्हीं के सौजन्य से यहाँ प्रस्तुत की गई है।

वै० हरगोविन्दजी षतागुर (कथागुरु) वेटा जअकीसन (जयकृष्ण) का, जंगनाथ (जगन्नाथ) का पोता, बीरामण (ब्राह्मण) दायमा माजी महाराज श्री जी वकुंठवासीजी का मींद्र (मन्दिर) का रहणेवाला कुं (को) चन्द्रमहल में बुलाया साथ महरवानगी क खतागुरु (कथागुरु) पदवी का दसतुर (दस्तूर) को सोरोपाव (सिरोपाव) वकसो (वक्स्यो, प्रदान किया) तफसील जेल (निम्नलिखित विवरण के अनुसार)

पाग खुटादार तुरा कमाल की १ (पगड़ी)
दुसालो गुल अनार १, दुपटो जरी पला को १
पास्यो मोती की कंठी बुग्बुगी सुदां (सहित) १
पालकी १, चंवर १, खतगुरु पदवी १, आसण इनायत १ ।

सो मुसारन अलहे क नजर दुपटो परसाद (प्रसाद) आसीर्वाद देर सीख कर सात घडी रात का अमल में डेरा गये अर लवाजमा साथ तफ्सील जेल चोवदार १ ढलत १ पालकी १, चीकची १ । सो मुसारन अलहे क डेर पोंछा (पहुंचाकर) के आये ।"

उक्त पत्र से सिद्ध होता है कि संवत् १९१७ अर्थात् १८६१ ई० में श्री छोटेलाल जी को कथागुरु का पद प्राप्त हो गया था और इसी के अनुकूल सम्मान भी । जयपुर के इतिहास से सिद्ध होता है कि महाराज श्री जगत्सिंह के २२ रानियां थीं, जिनमें एक चांपावतजी भी थीं, जो पोकरण ठिकाने की बेटी थी । इनका जब जयपुर आगमन हुआ, तब पोकरण से राजपुरोहित श्री जगन्नाथ जी भी साथ ही जयपुर आये । इनका काम भी कथावाचन करना था । श्री जगन्नाथजी के पौत्र चरितनायक श्री छोटेलालजी पर महारानी चांपावतजी का बहुत स्नेह था । जब महारानी चांपावतजी ने अपनी वृद्धावस्था में इन्हें योग्य व कुशल कथावाचक के रूप में देखा तो वे बहुत प्रसन्न हुई और उन्होंने निम्नलिखित पत्र द्वारा हार्दिक इच्छा इस प्रकार व्यक्त की । इस पत्र की मूल प्रति भी पं० नन्दकुमार जी कथाभट्ट के पास देखी जा सकती है ।

चांपावतजी का रुका (रुक्का) है

"छोटु सु मारो निमस्कार वाचं जो, छोटु मारी निजर थार मत लाग जो । तु भोत (बहुत) कथा सुदंर वांच, जो थारा मुखारवींद (मुखारविन्द) को इमरत (अमृत) पीता मार (मुझको) नृपताई आवे ही नहीं, श्री विंदावन चंद (भगवान् श्री वृन्दावनचन्द्र) मो सरखी (मत्सदृश) अनाथ के उपर क्रपा (कृपा) करो छै । जद आपको गुणानवाद तो सरखा (त्वत् सदृश) पडत (पंडित) का मुखारवंद सु मन सुणायो छै । म्हारै ई वात की भोत लालसा छी सो छोटु कद (कब) पढै अर मै कद सुणु सो दयाल म्हारी प्रार्थना सुण ने त नु (तुमको) पडतराज (पण्डितराज) कर दियो । अब म्हारो विरधपणो (वृद्धावस्था) छै सो म्हारो जनम (जन्म) सफलकर कथा सुणावो कर । तु सपुत हुयो । तु चरजीव रहो (चिरंजीवी हो) थारा मन में कामना होय सो सिध (सिद्ध) हुवो । म्हारी या आसीस छै तन घणी घणी विदा (विद्या) आवो मिति तुरत की । **(पत्र के हाँसिये में फिर लिखा है)** थारा मुख को वाक (वाक्य) इसो निकसे जाणे पुसवा (पुष्पों की) की विरखा (वृष्टि) होय छै । तू सी मन थारो, कथा सुणु जद मन (मुझको) कथा ही सा दीख, फेर देख्या दीख नहीं ।"

उपर्युक्त पत्र में श्री छोटेलालजी को छोटू सम्बोधन किया गया है। कारण स्पष्ट है। वह महारानीजी (चांपावतजी) (४५–इ) जो श्री जगन्नाथ जी के साथ जयपुर आई, उनके पौत्र के समय वृद्ध हो चुकी होंगी और श्री छोटेलालजी उनके पौत्र के समान आयु वाले ही होंगे। इसीलिये महारानीजी ने वयोवृद्धता के नाते श्री छोटेलालजी को आशीर्वाद दिया है। पत्र की वात्सल्यता एवं स्वाभाविकता दर्शनीय है। वह अपने साथ आये हुए राजपुरोहित परिवार की निरन्तर सुख समृद्धि की कामना करती है। सम्भवतः श्री छोटेलालजी कनिष्ठ पुत्र होने के कारण छोटू के नाम से सम्बोधित किये गये हैं और इसीलिये आप छोटेलालजी के नाम से विख्यात रहे होंगे।

कालान्तर में महाराज रामसिंह जी ने आपका पर्याप्त सम्मान किया था। आपको मोदमन्दिर धर्मसभा का प्रधान पद प्रदान किया था। सवाई रामसिंहजी के समय जो शैव और वैष्णव सम्प्रदायों का विवाद हुआ था, आपका इससे सीधा सम्बन्ध था। इसके प्रमाण रूप में एक पत्र की प्रतिलिपि प्रस्तुत की जा रही है, जो श्री राधाकृष्ण और श्री हरिश्चन्द्र नामक व्यक्तियों द्वारा वाराणसी से जानकारी प्राप्त कर लिखा गया था। यह पत्र श्री हरगोविन्द जी को इसलिये लिखा गया था कि आप उस समय मोद मन्दिर के प्रधान थे और धार्मिक विवादों का सीधा सम्बन्ध उक्त मोदमन्दिर (धर्मसभा) से ही था :—

श्री काशी विश्वेश्वराभ्यां नमः
श्री १०८ सवाई रामसिंहजी

"स्वस्ति श्री सर्वोपमानोपमेयालंकृतिविशिष्टेषु विद्वत्शिरोमणिराज्यमान्यश्री ६ छोटेलाल शर्मसु राधाकृष्ण-हरिश्चन्द्रशास्त्रिकृताः प्रणतयः सन्तुतराम्। शमत्र, श्रीमच्चरणसरोजाधिकरणवली-पटलसिन्धुविन्दुकणिकातः। तत्रत्यं श्रीमत्कं प्रतिक्षणमेधमानमीहे। श्री काशीविश्ववृत्तमग्ने विधिना ज्ञेयम्। श्रीमद्राजाधिराजमहाराजराजराजेन्द्रश्रीजी प्रतापाधिक्यतया, सम्प्रदाय-चतुष्टयवादिनो जिताः। श्रीमद्-राजाज्ञया सनातनधर्मसंस्थापक व्यवस्थापत्रोपरि एकादश शत ११०० संख्याकानां दिगन्तश्रुतकीर्तिनां श्री पण्डित रामनाथादिपंचगौड़ानां सखारामभट्ट-राजारामशास्त्रि-गंगाधर शास्त्रि प्रभृति पंचद्राविड़ानां च श्री स्वामि रामनिरंजनादि दण्डिनां च हस्ताक्षराणि जातानि। तत्रत्य–जयनगरस्थ विद्वद्भ्यो बोधनीयं सम्प्रदायचतुष्टयप्रवर्तकाः परिजितारित्यलं विद्वत्सन्निधौ। पत्रलिखितम्। पौष बुदि ११ संवत् १९२१।"

यह पत्र संवत् १९२१ अर्थात् १८६४ ई० का है। उस समय आप मोदमन्दिर के अध्यक्ष थे। आपके पुत्र श्री वृन्दावनजी संस्कृत पाठशाला में हिन्दी पढ़ाते थे। आपका देहान्त श्रावण कृष्ण ९ संवत् १९३८ को हुआ था। उस समय महाराज माधवसिंह द्वितीय का शासन काल प्रारम्भ हो चुका था। उक्त सम्प्रदायों के विवाद को संकलित कर आपने "सज्जनमनोनुरंजनम्" नामक ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित करवाया था। यही आपका उल्लेखनीय कार्य है।

(४५–इ)—"Geneological Tables of Kachhwahas" Sheet No. 3 Serial No. 36 (5) Amder and Jaipur Maharajass, Maharanies and their children–Shri Harnath Singh Dundlod House, Jaipur.

४६. पं० श्री जगदीश शर्मा (दाधीच)

दाधीचकुल में लब्धजन्मा श्री परमानन्द शास्त्री के पौत्र एवं संस्कृत कालेज के सुप्रसिद्ध साहित्य प्राध्यापक पं० बिहारीलाल शास्त्री के कनिष्ठ पुत्र श्री जगदीश शर्मा का जन्म पौष कृष्णा ११ संवत् १९६७ को हुआ था। आपकी शिक्षा-दीक्षा संस्कृत कालेज में आपके पितृचरण की देखरेख में ही सम्पन्न हुई थी। आपने उक्त कालेज के नियमित छात्र के रूप में साहित्य शास्त्री परीक्षा संवत् १९८४ तथा साहित्याचार्य परीक्षा संवत् १९७८ में द्वितीय श्रेणी से उत्तीर्ण की। (४६-अ)

आचार्य परीक्षा उत्तीर्ण करने के ३ वर्ष पश्चात् आपको चमड़िया संस्कृत कालेज, फतेहपुर शेखावाटी (जिला सीकर) में प्राचार्य के पद पर कार्य करने का अवसर मिला। कुछ समय तक आप खेतड़ी में भी अध्यापन कराते रहे। सन् १९३७ में आप जयपुर पहुंच गए थे तथा वहां सामान्य विषयों के अध्यापनार्थ प्रवेशिका विभाग में नियुक्त हुए। १९४९ में आपको साहित्य के प्राध्यापक का पद मिला, जहां आपने १० वर्ष अध्यापन किया। इस समय आप अवकाश प्राप्त करने पर वनस्थली विद्यापीठ में वेद विद्यालय का संचालन करते हैं। आपका व्याकरण विषयक ज्ञान भी उल्लेखनीय है। आप संस्कृत के पक्षपाती रहे हैं। आपने पितृपितामह की परम्परा का निर्वाह करने में संम्पूर्ण जीवन व्यतीत करने का निर्णय किया है। आपने श्री वीरेश्वर शास्त्री द्राविड़ की सेवा में साहित्यशास्त्र का विशेष अध्ययन किया था। इसलिए आप उनके प्रिय शिष्य रहे हैं और द्राविड़ द्वारा संस्थापित वीरेश्वर पुस्तकालय के अवैतनिक सचिव के रूप में कार्य कर रहे हैं। रचनात्मक कार्य की दृष्टि से आपके कुछ पद्य समस्यापूर्ति रूपात्मक संस्कृत-रत्नाकर के प्राचीन अंकों में प्रकाशित हुए हैं। इनका उल्लेख इस प्रकार है—(१) वासन्तिकाः वासराः (१।४), (२) सा हि गीर्वाण-वाणी (१।५), (३) कस्तं निरोद्धुं क्षमः (२।३), (४) समुज्जृम्भताम् (३।२), सन्ति सन्तः कियन्तः (३ ८-११), (६) मलीमसामाददते न पद्धतिम् (३।३) इत्यादि। एक पद्य :—

> "शुचिरसपरिपूर्णा वृत्तिरीतीर्वहन्तो गुणपरिकरगम्याः साम्यभावैर्निभान्तः।
> सुकृतफलविवर्ताः काव्यबन्धाः इवान्तः परिषदि विलसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः॥"

उपर्युक्त इस पद्य के विश्लेषण से ही आपकी विद्वत्ता का परिज्ञान हो जाता है। आपने अनेक छात्रों को काव्य निर्माण की शिक्षा देकर उन्हें योग्य बनाया। आपके शिष्य राजकीय सेवारत उच्च पदों पर आसीन हैं। आपका अन्य रचनात्मक कार्य कुछ लेखों के रूप में उपलब्ध है।

(४६-अ)—शास्त्रिपरीक्षोत्तीर्ण छात्राणां नामादीनि–क्रमांक २३१ व आचार्य० क्रमांक ६१।

४७. कथाभट्ट पं० जगदीशचन्द्र नामावाल

कथाभट्ट नामावाल श्री छोटेलालजी के प्रपौत्र श्री जगदीशचन्द्र शास्त्री इस समय महाराज संस्कृत कालेज में साहित्य के व्याख्याता हैं। आपके पिता का नाम श्री कृष्णचन्द्रजी था। आपका वंशवृक्ष श्री छोटेलालजी नामावाल के परिचय से प्राप्त किया जा सकता है।

आपका जन्म कार्तिक शुक्ला १२ संवत् १९७३ को हुआ था। आपकी शिक्षा संस्कृत कालेज में सम्पन्न हुई। आप साहित्याचार्य परीक्षोत्तीर्ण हैं। अध्ययनकाल से ही आप संस्कृत में पद्य रचना किया करते थे। आपके अध्ययनकाल का एक पद्य यहां प्रस्तुत किया जा रहा है, जो संस्कृत रत्नाकर के वर्ष ४ अंक ४-५ में प्रकाशित हुआ है :—

"छात्राश्रमामितपरिश्रमबद्धमूला संवर्धितान्तरनुशीलनवारिसेकैः।
भो स्नातकाः विबुधलोकसमाश्रिता वः सेयं सदा फलतु कल्पलतेव विद्या॥"

इसी प्रकार एक समस्या है "सा चातुरी चातुरी"। इसको पूर्ण करने वाले दोनों पद्य आपकी विद्वत्ता को प्रकट करते हैं :—

"विद्याऽनन्यसमार्जिता यदि ततः कीर्तिश्च लोकोत्तरा
चित्तं चाप्यनपायि यौवनसुखास्वादोऽनुभूतः परः।
भक्तिश्चाप्यनघा मुरारिचरणाम्भोजद्वये साधिता
तन्वा यद्यनयैव लोकयुगली सा चातुरी चातुरी॥
"पालैर्दारुमयैरयोविरचितैर्यन्त्रैस्सनाथास्तरन्
त्यम्भोधिं यदि नाम कात्र पटुता तेषां निसर्गो हि सः।
गंगा वारिमयीं विधाय तरणिं भीमा भवाम्भोनिधे-
स्तीर्णः पण्डितराज यद्धि भवता सा चातुरी चातुरी॥"

आप गद्य लेख भी लिखा करते हैं। भारती में प्रकाशित (१) महाशिवरात्रेः महत्वं (५।५), (२) सम्पादकीयम् पत्रम् (७।७) आदि उल्लेखनीय है। हिन्दी कविता के प्रति विशेष रुचि रखते हैं। सामान्यतया संस्कृत सम्मेलनों में आयोजित कवि सम्मेलनों के कार्यक्रमों में आप सोत्साह भाग लिया करते हैं। आप एक उल्लेखनीय विद्वान् हैं।

---

४८. पं० श्री जगन्नाथ ज्योतिषी

गुर्जरगौडकुलावतंस श्री जगन्नाथ का नाम एक प्रसिद्ध ज्योतिर्विद के रूप में प्रसिद्ध है। आप संस्कृत पाठशाला के स्थिति-स्थापक विद्वानों में से एक थे। आपने अनेक वर्षों तक ज्योतिष का अध्यापन किया है। संस्कृत कालेज में उपलब्ध उपस्थिति पत्रकों के अनुसार आप १ जनवरी, १८७२ से भी पूर्व ज्योतिष के अध्यापक थे।

१८६० ई० तक आप प्रवेशिका विभाग में थे और फिर ज्योतिष व्याख्याता बनाये गये। कालेज विभाग में आपने महाराज संस्कृत कालेज के भूतपूर्व अध्यक्ष तथा ज्योतिष विभाग के अध्यक्ष, महामहोपाध्याय पं० श्री दुर्गाप्रसादजी महाराज के साथ कार्य किया है। आपका कार्यकाल १९०५ ई० तक रहा। इसके पश्चात् भी आप अपने घर पर ही पढाया करते थे। आपके अवकाश ग्रहण करने के पश्चात् आपके पुत्र पं० श्री दुर्गादत्तजी ज्योतिष के प्राध्यापक बने। आप ज्योतिषी होने के साथ ही तान्त्रिक भी रहे हैं। आपकी गणना सिद्ध पुरुषों में की जाती है। आपके रचनात्मक कार्य के सम्बन्ध में ऐसा ज्ञात हुआ है कि एक ग्रन्थ अभी अप्रकाशित है तथा श्री पद्मनाभ शास्त्री के पास सुरक्षित है।

आपके विषय में श्री कृष्णराम भट्ट ने इस प्रकार संकेत किया है :—(४८-अ)

"विभाति गंगादिमवल्लभास्पदे भज्ञो जगन्नाथ इति श्रुतो द्विजः।
व्यापन्न-पंचास्यपदे प्रतिष्ठितः कचाचितोच्चाकृतिकुंजरो यथा॥"

इससे सिद्ध होता है कि आपने श्री गंगावल्लभजी के स्थान पर नियुक्त होकर कार्य करना प्रारम्भ किया था। श्री गंगावल्लभजी संस्कृत पाठशाला के पृथक्करण से भी पूर्व विद्यमान मदरसे में संस्कृत अध्यापक थे। आप अपने समय के उल्लेखनीय ज्योतिषशास्त्री विद्वान् थे।

---

४९. पं० श्री जयचन्द्र झा

बिहार प्रान्त से जयपुर नगर में समागत विद्वानों की परम्परा में श्री झा सामवेद के उद्भट विद्वान् थे। आपका जन्म स्थान ग्राम जोंकी जिला दरभंगा, बिहार था। आप महाराजा संस्कृत कालेज जयपुर में सामवेद के अध्यापक के रूप में विख्यात रहे हैं। आप के पितामह श्री दरबारी झा अपने ग्राम के जागीरदार के तहसीलदार थे। आपके पिता का नाम पं० बलभद्र झा था। आपके ज्येष्ठ पितृव्य श्री दामोदर झा प्रसिद्ध ज्योतिषी रहे हैं, जिन्होंने महामहोपाध्याय पं० बापूदेव शास्त्री से ज्योतिष का अध्ययन किया था। आपका वंश वृक्ष इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :—
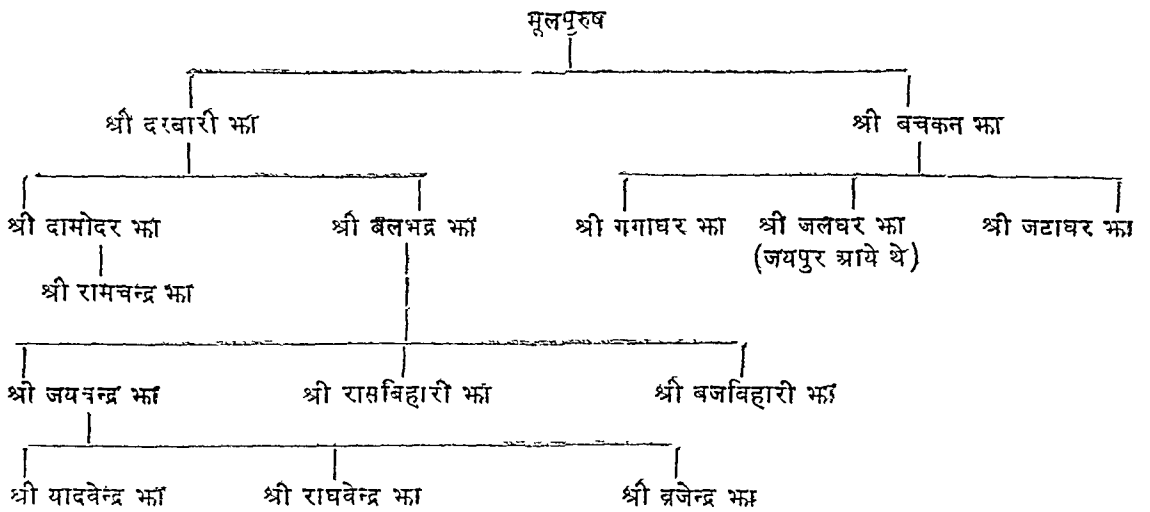
(४८-अ)—जयपुरविलास काव्यम्–श्री कृष्णराम भट्ट पंचमं, उल्लास, पद्य संख्या ५१, पृष्ठ संख्या ५३।

श्री वचकन झा के मध्यम पुत्र श्री जलधर झा अपने सम्बन्धी विख्यात विद्वान् विद्यावाचस्पति मधुसूदनजी ओझा के पास जयपुर आये थे। श्री विद्यावाचस्पतिजी ने राजकीय अनुष्ठान की स्थायी सेवा दिलाई थी, जिसके आधार पर इनका जीवन चलता था। अध्ययन कर श्री जलधर झा अपने पिता की आज्ञा से वाराणसी चले गये थे और वापिस लौट कर नहीं आये। आपने ही श्री झा को जयपुर भेजा था और अपनी अनुष्ठान वृत्ति आपको दिलवाई थी। इस प्रकार सन् १९२५ के लगभग श्री झा को जयपुर आने का अवसर प्राप्त हुआ। श्री झा का अध्ययन ग्राम जोंकी से ३० मील उत्तर में स्थित संस्कृत कालेज, दरभंगा में हुआ था। आपने प्रथम तो सामवेद का अध्ययन किया। उसके पश्चात् व्याकरण का। उस समय उक्त विद्यालय में सामवेद के अध्यापक एक दक्षिणी विद्वान् थे।

आपने सामवेद से तीर्थ परीक्षा द्वितीय श्रेणि में उत्तीर्ण करने के पश्चात् व्याकरण के उत्कृष्ट ग्रन्थों का अध्ययन प्रसिद्ध विद्वान् 'नागेशोक्तिप्रकाश' तथा व्युत्पत्तिवाद की नौका टीका के लेखक श्री खुद्दी झा से किया था। कुछ समय परिष्कार कौस्तुभ आदि अनेक ग्रन्थों के लेखक श्री रविनाथ झा के सान्निध्य में रह कर अध्ययन का सौभाग्य प्राप्त किया था। आपने व्याकरणतीर्थ परीक्षा द्वितीय श्रेणि में उत्तीर्ण की थी।

जयपुर आने के पश्चात् आप श्री जलधर झा की अनुकम्पा से प्राप्त अनुष्ठान वृत्ति से अपना जीवन यापन करते रहे। कालान्तर में म० म० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी के सत्प्रयास से महाराज संस्कृत कालेज में संस्थापित सामवेद के अध्यापक के स्थान पर आपकी नियुक्ति १५ जुलाई, १९२८ को हुई। (४९-अ) इस पद पर आपने सन् १९५४ तक कार्य किया और सेवा निवृत्त होकर आप अपने देश विहार चले गये। आपका सन् १९६७ में देहावसान हुआ। आपका जन्म २५ मार्च, १८९८ को हुआ था। आपकी सामवेद पण्डित के रूप में पदोन्नति १ जुलाई, १९३० को हुई थी। आपके प्रमुख शिष्यों में श्री कल्याण प्रसाद शास्त्री, श्री राधेश्याम शास्त्री, श्री रेवतीरमण शर्मा तथा इन पंक्तियों के लेखक का नाम भी स्मरणीय है। आप शान्त एवं गम्भीर विद्वान् थे। यदा कदा संस्कृत पद्य रचना भी किया करते थे। आपके कुछ पद्य संस्कृत रत्नाकर के प्राचीन अंकों में प्रकाशित हुए हैं। कुछ पद्य यहां उद्धृत किए जा रहे हैं, जिनके विश्लेषण से आपका वैदुष्य प्रतिभासित होता है :—

१. "उन्मीलन्नवमल्लिकापरिमलं पीत्वा गता मत्ततां
भृंगाः, कोकिलकूजितेन सरसं स्वान्तं मुनीनामपि।
चूतानां स्फुटमञ्जरीमधुकणामोदैरमन्दा नरा
नीयन्ते पथिकैः कथं कथमहो वासन्तिकाः वासराः ॥" (१।४)

२. "यस्याध्यापनकर्म्मसंभृतधियः साम्राज्यमासादयन्
यस्योपासनयामरत्वपदवीं प्रापुर्महर्षिद्विजाः।
यस्य ज्ञानपरम्परापरतया संलेभिरे ब्रह्मतां
साऽसौ सर्वजनप्रियो हि भगवान् वेदः समुज्जृम्भताम् ॥ (३।२)

आप सामवेद के सर्वप्रथम और सर्वान्तिम विद्वान् के रूप में उल्लेखनीय हैं। (४९-आ)"

(४९-अ)—लिस्ट आफ एजूकेशनल आफिसर्स-करेक्टेड अपटू १।६।१९३५-६ पण्डित-क्रमांक २३, जन्म तिथि २५ मार्च १८९८ पण्डित सामवेद, प्रथम नियुक्ति १५।७।१९२८।

(४९-आ)—आपका उक्त परिचय श्री शुकदेवजी पाठक, प्राचार्य, सं० कालेज, सीकर के सौजन्य से प्रस्तुत है।

५०. स्वामी श्री जयरामदास

आयुर्वेदमार्तण्ड, चिकित्साचूड़ामणि स्वामी श्री जयरामदासजी भिषगाचार्य न केवल जयपुर के ही, अपितु समस्त भारत में आयुर्वेद विद्या-निष्णातों में अपना प्रमुख स्थान रखते थे। आप सुप्रसिद्ध प्राणाचार्य स्वामी श्री लक्ष्मीरामजी के प्रधान शिष्य थे। आपका जन्म जयपुर मंडलान्तर्गत 'भादवा' नामक ग्राम में १३ नवम्बर, १९०५ को हुआ था। (५०-अ) आपके माता-पिता सामान्य श्रेणि के व्यक्ति थे। बाल्यकाल में आपका नाम 'जीवन' था और दादू सम्प्रदाय में दीक्षित होने के पश्चात् आप **जयरामदास** नाम से विख्यात हुए। किसी दैवज्ञ के द्वारा भविष्यवाणी करने पर कि यह बालक आप लोगों के लिए अनिष्टकर है, आपके माता पिता ने आपको महन्त भूरादासजी को समर्पित कर दिया। श्री भूरादासजी ने आपको भिवानी के सुप्रसिद्ध वैद्य श्री कल्याणदासजी की सेवा में भेजा।

(५०-अ)-भारती आयुर्वेदांक, अप्रेल-मई, १९६४, परिचय लेखक श्री दीनानाथ त्रिवेदी।

श्री कल्याणदास जी ने आपको दादू सम्प्रदाय में विधिवत् दीक्षित कर अध्ययन की व्यवस्था की। आपके नाम परिवर्तन का श्रेय श्री कल्याणदासजी को ही है। श्री कल्याणदासजी के समाविस्थ होने पर आप भिवानी गद्दी के महन्त बने और आपने अपना अध्ययन काशी में प्रारम्भ किया। साहित्य शास्त्री के अध्ययनोपरान्त आपने आयुर्वेद पढ़ना प्रारम्भ किया और इसके लिये आप श्री दयानिधिजी स्वामी के पास हृषीकेश गये। सौभाग्य की बात थी, उन्हीं दिनों जयपुर में स्वामी श्री लक्ष्मीरामजी, पं० नन्दकिशोरजी एवं स्वामी मंगलदासजी वहां धन्वन्तरि मन्दिर के उद्घाटन अवसर पर गये हुए थे। श्री स्वामीजी ने आपकी योग्यता से प्रभावित होकर जयपुर चलने का प्रस्ताव रखा और आप उनके आदेशानुसार ज्येष्ठ शुक्ला १५ विक्रम संवत् १९७९ को जयपुर आगये। आपने आयुर्वेद का प्रारम्भिक अध्ययन राजपण्डित श्री नन्दकिशोरजी वैद्य से किया था। शेष सभी आयुर्वेदोपाध्याय प्रथम श्रेणि में तथा विशारद परीक्षा द्वितीय श्रेणि में उत्तीर्ण की थी। महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर में औषध निर्माण कार्य करते हुए आपने संवत् १९८३ में आयुर्वेद शास्त्री परीक्षा प्रथम श्रेणि में उत्तीर्ण की और भिषगाचार्य परीक्षा सवत् १९८६ में। (५०–आ)

आपकी योग्यता से प्रभावित होकर स्वामी श्री लक्ष्मीरामजी ने आपको अपना उत्तराधिकारी चुना। स्वामीजी की आज्ञा को स्वीकार कर आपने भिवानी की महन्त गद्दी को छोड़ दिया और स्वामीजी की सेवा में रहने लगे।

स्वामीजी के अवकाश ग्रहण करने पर आप असिस्टेन्ट प्रोफेसर आयुर्वेद के पद पर नियुक्त हुए। आपने अपने अध्यापन क्षेत्र में विशेष ख्याति प्राप्त की। आपके अनेक शिष्य आज भी सम्पूर्ण भारतवर्ष में (विभिन्न प्रान्तों में) उच्च पदासीन हैं। स्वामीजी महाराज द्वारा संस्थापित स्थानीय श्री धन्वन्तरि औषधालय तथा श्री दादू महाविद्यालय नामक संस्थाओं का कुशलता से संचालन कार्य भी आपने किया। इसी प्रकार आपने स्वामी श्री लक्ष्मीरामनिधि रक्षण मण्डल (ट्रस्ट) की स्थापना की जो राजस्थान में सबसे प्रथम पंजीकृत ट्रस्ट है। इसके द्वारा आपने संस्कृत एवं आयुर्वेद पढने वाले अनेक विद्यार्थियों को आर्थिक सहायता देकर उनकी योग्यता में वृद्धि के लिये सहायता प्रदान की। स्वामी श्री लक्ष्मीरामजी के प्रयास से ही संस्कृत कालेज एवं आयुर्वेदिक कालेज अलग किये गये थे। १९४६ई० के बाद आयुर्वेद कालेज के प्रथम प्रिंसिपल श्री नन्दकिशोरजी नियुक्त हुए और आप प्रायोगिक विभाग के अध्यक्ष। आपके प्रयत्नों से इण्डियन मेडिसन बोर्ड के समान आयुर्वेद का भी एक बोर्ड स्थापित हुआ। १९५३ई० से आप उक्त आयुर्वेदिक कालेज के प्राचार्य बने और आपने अपने कार्यकाल में इस कालेज को उन्नति के शिखर पर पहुंचाया। आपने १९६३-६४ ई० तक उक्त पद पर सफलता से कार्य सम्पन्न किया।

आपने अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन एवं राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन को आर्थिक सहयोग प्रदान कर अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। अ०भा०सं० साहित्य सम्मेलन के आप कर्मठ सदस्यों में रहे हैं और आपकी प्रेरणा व सहयोग से ही यह सम्मेलन पुनरुज्जीवित हो सका था। सन् १९३२ ई० में संस्कृत रत्नाकर के पुनः सम्पादन-प्रकाशन में आपका आर्थिक सहयोग व मनोयोग उल्लेखनीय है। आपके ही प्रयास से इस रत्नाकर का विशेषांक–"आयुर्वेदांक" प्रकाशित हुआ था, जो एक अमूल्य ग्रन्थ हैं। इसी प्रकार अ०भा सं० साहित्य सम्मेलन के १८वें अधिवेशन को जयपुर में सफल बनाने में आपने तन, मन व धन से पूर्ण सहयोग दिया था। आप इस सम्मेलन के स्वागत मन्त्री थे। अ० भा० सं० साहित्य सम्मेलन व राज०सं०साहित्य सम्मेलन के कोषाध्यक्ष व

(५०–आ)–शास्त्रिपरीक्षोत्तीर्णच्छात्राणां नामादीनि, क्रमांक २२२ व आचार्य० क्र० ८१।

कार्यकारिणी के सदस्य के रूप में आपकी सेवायें उल्लेखनीय हैं। आपके प्रयास से ही जयपुर नगर में भारती नामक मासिक पत्रिका ने जन्म लिया। इसका "आरोग्याङ्क" आपके सम्पादन में प्रकाशित हुआ जो एक संग्रहणीय ग्रन्थ है।

भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री ने आपका चित्रण इस प्रकार किया है :—

"अपि नववयसि विराम-विद्या-विनय-विवेकभृत् ।
रंजयते जयराम-दास: स्वामिसमाजगः ।।" (जयपुरवैभवम्-पृ० २६७, पद्य ८१)।

आपका निधन १७ दिसम्बर, १९६८ को हुआ, जो एक अपूरणीय क्षति है।

---

५१. श्री जानकीलाल खाण्डल:

आपका जन्म पुरानी बस्ती जयपुर में १० अगस्त, १८८६ ई० तदनुसार श्रावण शुक्ला ११, मंगलवार संवत् १९४३ को हुआ था। (५१-अ) आप खाण्डल विप्रावतंस पण्डित श्री लक्ष्मीनारायण जी के पुत्र थे। पण्डित श्री जीवनरामजी ने आपको दत्तक रूप में ग्रहण किया था।

आप संस्कृत कालेज जयपुर के प्रवेशिका विभाग में पण्डित के पद पर कार्य करते थे। आपकी प्रथम नियुक्ति ४ मई, १९१३ को हुई थी और १६ नवम्बर, १९१६ से आपने पण्डित संस्कृत व हिन्दी के पद पर कार्य प्रारम्भ किया। आप साहित्य शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण थे। (५१-आ)

संस्कृत कालेज के अध्यापन कार्य से आप १६ मई, १९४३ ई० को सेवा निवृत्त हुए। आपने कुल ३० वर्ष ८ मास अध्यापन कार्य किया। इतने लम्बे समय तक एक कुशल अध्यापक के रूप में कार्य करते हुए अनेक योग्य शिष्यों को उत्पन्न किया, जो संस्कृत अध्यापन के क्षेत्र में कार्यरत रहते हुए सरस्वती की उपासना करते रहे।

आपका निधन फाल्गुन शुक्ला १३ संवत् २०२० तदनुसार ८ मार्च, १९६३ ई० को हुआ। आप कभी कभी पद्य रचना भी किया करते थे, परन्तु प्रकाशित रूप में उपलब्ध न होने से प्रस्तुत नहीं की जा रही है। संस्कृत कालेज के कुशल अध्यापकों में आपका नाम उल्लेखनीय है।

(५१-अ)-लिस्ट आफ एजूकेशनल आफिसर्स-करेक्टेड अपटू १ सितम्बर, १९३५-महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर ९-पण्डित-क्रमांक १८-पं० जानकीलाल शर्मा।

(५१-आ)-शास्त्रिपरीक्षोत्तीर्णच्छात्राणां नामादीनि-क्रमांक १०५-संवत् १९७०।

५२. श्री जानकीलाल चतुर्वेदी

माथुर चातुर्वेद कुलोत्पन्न पं० श्री जानकीलालजी, महामहोपाध्याय पण्डित श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी के अध्ययन काल में महाराज संस्कृत कालेज के स्कूल विभाग में व्याकरण के अध्यापक थे। यद्यपि आपका मूल निवास स्थान मथुरा था, परन्तु आपका सम्पूर्ण जीवन जयपुर में ही व्यतीत हुआ। संस्कृत कालेज में उपलब्ध प्राचीन उपस्थिति पत्रकों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि श्री चतुर्वेदी जी ने पं० किसनचन्द्रजी के स्थान पर १६ अगस्त, १८८५ से कार्य प्रारम्भ किया था और कालान्तर में प्रवेशिका विभाग की स्थापना होने पर आपने व्याकरणाध्यापन प्रारम्भ किया। सन् १९११ ई० तक आपने उक्त पद पर कार्य किया। म० म० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ने आपके सम्बन्ध में लिखा है कि आप एक महात्मा पुरुष थे तथा अपनी पत्नी के देहान्त पर आपने क्षेत्र सन्यास ले लिया था। आपके तीन पुत्र थे, जिनमें से आप केवल ज्येष्ठ पुत्र के पास ही रहते थे और सर्वदा अध्ययनरत रहते थे। आप श्रद्धास्पद विद्वान् थे। कहा जाता है आपका देहान्त मथुरा में ही हुआ था। राजवैद्य श्री कृष्णराम भट्ट ने आपका उल्लेख इस प्रकार किया है :—(५२-अ)

> "प्रशस्यते स्पष्टयथार्थभाषणस्तत्वप्रदर्शी निरहंकृतिः कृती।
> विशेषतो व्याकृतिपक्वधीर्मया स जानकीलाल इति स्म माथुरः॥"

आपने "पाणिनीय सूत्रवृत्ति" का प्रणयन किया था, जो लाहौर के मुफीद आम यन्त्रालय से प्रकाशित हुआ था। इस पर म० म० पं० शिवदत्त शास्त्री ने अपनी सम्मति दे कर प्रकाशित करवाया था। राणावत क्षत्रियवंश में उत्पन्न जयपुर नगराधीश सवाई रामसिंह द्वितीय की महाराणी रूपकुमारी देवी ने उक्त वृत्ति का प्रणयन करवाया था। उक्त ग्रन्थ के प्रास्ताविक परिचय में इस बात का उल्लेख मिलता है। उक्त महारानी की उपदेशिका गुरु गंगादेवी ने बतलाया था कि यदि व्याकरण शास्त्र के किसी ग्रन्थ को सरल रूप में उपस्थित किया जाय तो वह एक उल्लेखनीय कार्य होगा। इसीलिए श्री गंगादेवीजी ने जयपुर संस्कृत पाठशाला अध्यापक पं० जानकीलालजी चतुर्वेदी से, जो उनके गुरु थे, निवेदन कर अष्टाध्यायी पर बालकोपयोगी एक सरल वृत्ति बनाने का निवेदन किया। इस विवृत्ति का नाम राणावती विवृत्ति है। इसका प्रकाशन व्यय महारानीजी ने वहन किया था। उक्त ग्रन्थ के प्रारम्भ में लिखा है। **"चतुर्वेदी जानकीलाल-प्रणीता श्रीभगवत्पाणिनिगोत्रजेन शब्दानुशास्त्रसूत्राणां राणावतीयाभिधाना वृत्तिः प्रारभ्यते।"** इत्यादि। आप व्याकरण के प्रकाण्ड विद्वान् थे।

---

५३. श्री जीवनाथ ओझा

जयपुर संस्कृत कालेज की विभूतियों में उल्लेखनीय एवं चिरस्मरणीय विद्वान् श्री जीवनाथ ओझा संस्कृत विद्यालय की स्वतन्त्र स्थापना के समय से उक्त विद्यालय के प्रारम्भिक अध्यापकों में एक थे। संस्कृत कालेज के प्राचीन रिकार्ड सन् १८७० (उपस्थिति पत्रकों) में आपका नाम ५वें क्रम पर उपलब्ध होता है।

(५२-अ) जयपुर विलास-पंचम उल्लास- पृष्ठ ५३-पद्य संख्या ४८।

आप न्याय के प्राध्यापक थे। संस्कृत कालेज में प्राप्त उपस्थिति पत्रकों से यह कहा जा सकता है कि आपने ३० मई, १९०८ तक अध्यापन किया था। आपके साथ न्याय प्राध्यापक के रूप में श्री भाई नाथ ओझा, पं० बदरीनाथ शास्त्री, पं० कालीकुमारजी तर्कतीर्थ, ओझा बसन्त शर्मा आदि विद्वानों ने भी कार्य किया था। आपके दिवंगत होने पर पण्डित कन्हैयालाल दाधीच आपके स्थान पर न्याय प्राध्यापक नियुक्त हुए, जो आपके प्रधान शिष्य थे। उक्त कालेज में आपने ४३ वर्ष तक अध्यापन कार्य किया था।

म० म० पं श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ने अपनी आत्मकथा में आपका अनेक स्थानों पर उल्लेख किया किया है। आप श्री चतुर्वेदीजी के विद्या गुरु एवं दीक्षा गुरु थे। अपनी बाल्यकालीन शिक्षा का उल्लेख करते हुए श्री चतुर्वेदी ने लिखा है कि आप न्याय के प्राध्यापक थे और साहित्य भी पढ़ाया करते थे। आप उनके (चतुर्वेदीजी के) पितामह के दीक्षा गुरु भी थे। आप उस समय गुरुजी के नाम से विख्यात थे। न्याय के प्राध्यापक होते हुए भी साहित्य, सांख्य, वेदान्त आदि अनेक विषयों के उद्भट विद्वान् थे। श्री चतुर्वेदीजी ने आप से कुवलयानन्द, रसतरंगिणी, काव्यप्रकाश आदि अनेक ग्रन्थों का अध्ययन किया था। आपको पढाने का बहुत शौक था। यहाँ तक कि आप बाजार में भी पढाने लगते थे। (५३-आ)

राजवैद्य श्री कृष्णराम भट्ट ने जयपुर विलास में आपका सादर स्मरण किया है—

"वादिप्रौढतमिस्रखण्डनविधा" मार्तण्डबिम्बोदयः काणादादिसमस्तशास्त्रविपिन-प्रोद्दानकण्ठीरवः।
संसारव्यवहाररत्नजलधिर्वाक्सारिका-पंजरः क्षीराम्भोनिधि-फेनपाण्डुरयशाः श्रीजीवनाथो गुरुः॥

"षट्शास्त्रशिक्षाकुशलेन येन व्युत्पत्तिवादे समकारि टीका।
पाण्डित्यसीमा स गुरुर्गुरूणां श्रीजीवनाथो बुधवृन्दवन्द्यः॥" (५३-इ)

इन पद्यों की टिप्पणी में दो उल्लेखनीय संकेत हैं—(१) **एते कवेरस्यान्येषां चात्रत्यानां बहूनां श्रीगुरवः,** (२) **इयं चप्रसिद्धकृष्णंभट्टीतो (ऽ)न्या (ऽ) त्युत्तमा(ऽ) तिमहती चेदानीं जातप्रायैव। गुरूणां महापण्डितानां बहूनां श्रीनारायणभट्टादीनां राजगुरूणां च।**

इनका आशय है कि श्री ओझाजी राजवैद्य श्रीकृष्णराम भट्ट के अतिरिक्त तत्कालीन अनेक उल्लेखनीय विद्वानों के गुरु रहे हैं। यहां तक कि संस्कृत साहित्य के सुप्रसिद्ध लेखक राजगुरु पं० श्री नारायण भट्ट पर्वणीकर ने भी आपसे अध्ययन किया था। आपने श्री कृष्णम्भट्टी की टीका से भी श्रेष्ठ अत्युत्तम तथा अतिविशाल व्युत्पत्तिवाद की टीका लिखी थी, जो उस समय तक सम्पूर्ण हो चुकी थी। सम्भवतः यह टीका प्रकाशित न हो सकी और इस समय उपलब्ध नहीं है। आपके दिवंगत होने पर संस्कृत रत्नाकर में शोक संवेदात्मक विवरण प्रकाशित हुआ था जिससे आपकी उल्लेखनीयता का ज्ञान होता है। (५३-ई)

(५३-आ)—आत्मकथा और संस्मरण-श्री चतुर्वेदीजी-जन्म शिक्षा।

(५३-इ,—जयपुर विलास-पंचम उल्लास-पद्य संख्या २८ व २९-पृष्ठ ५०।

(५३-ई)—संस्कृत रत्नाकर-आश्विन कार्तिकौ ७-८ संचिका संवत् १९६५। "अहो पौषे द्वितीयो (ऽ)यमद्वितीयो वज्रपातः। अहो, गणनातीतान्तेवासिदयालुभिः समस्त-शास्त्र निष्णातैराबाल्यमातिवार्द्धक्यं चोपासितविविधविद्यैरध्यापितशिष्यैश्च गुरुभिरपि गुरु पदेनाहृतैर्मैथिलकुलकमलदिवाकरैः श्री जीवनाथ गुरुपादैरपि शून्यीकृतमद्य जयपुरम्। हा अन्याया(ऽ) च (ऽ) न्यायो, निःसहायं च साहित्यं................

आपके दिवंगत होने से न्याय तथा साहित्य के क्षेत्र में एक अपूरणीय क्षति का आभास किया गया था। यद्यपि देहावसान से दो तीन वर्ष पूर्व ही आपने पाठशाला कार्य छोड़ दिया था, परन्तु फिर भी आपका अपने निवास स्थान पर अध्यापन कार्य निरन्तर चलता ही रहा।

म० म० पं० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी से व्यक्तिगत जानकारी प्राप्त करने पर ज्ञात हुआ कि श्री ओझाजी ने उन्हें (श्रीचतुर्वेदीजी को) श्री भानुमिश्र रचित रसतरंगिणी का हिन्दी में अनुवाद लिखाया था, जो संवत् १९७१ में श्री खेमराज श्रीकृष्णदास, अध्यक्ष, श्री वेंकटेश्वर प्रेस, ७ खेतवाड़ी, बम्बई ने प्रकाशित किया था। यह पण्डित माधवप्रसाद शास्त्री के प्रयत्नों से मुद्रित हुआ था। इस ग्रन्थ के अनुवाद सहित पृष्ठों की संख्या १८४ थी, जिसकी कीमत १ रु० २ आ० निर्धारित की गई थी। यह ग्रन्थ अब अनुपलब्ध है। इसके अतिरिक्त आपके द्वारा रचित काव्य प्रकाश तथा व्युत्पत्तिवाद की टीकायें अप्रकाशित ही रहीं।
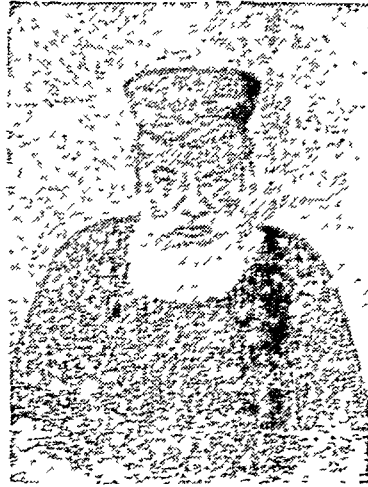
आपके उल्लेखनीय शिष्यों में राजवैद्य श्री कृष्णराम भट्ट, कविमल्ल श्री हरिवल्लभ भट्ट, स्वामी श्री लक्ष्मीरामजी वैद्य, म० म० पं० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, राजगुरु पं० चन्द्रदत्त झा, पं० गोपीनाथ सम्राट्, पं० कन्हैयालाल शर्मा न्यायाचार्य, एव राजगुरु प० नारायण भट्ट पर्वणीकर आदि स्मरणीय हैं। **शास्त्रार्थ महारथी** के रूप में आपको जयपुर का प्रत्येक विद्वान् आज भी स्मरण करता है। तत्कालीन महाराजाधिराज सवाई राम सिंह द्वितीय भी आपका सम्मान करते थे। ७० वर्ष तक निरन्तर अध्ययनाध्यापन करते हुए आपने संस्कृत भाषा की उन्नति में अभूतपूर्व योगदान दिया।

आप बहुचर्चित प्रतिभा के धनी थे और अपने समय के गुरूणाम् गुरुः होने के कारण जयपुर के संस्कृत साहित्य के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेंगे।

---

५४. श्री जीवनराम वैद्य

भट्टमेवाड़ाजातीय व्यासोपाख्य राजवैद्य भट्ट श्री लल्लूरामजी के पुत्र का नाम श्री जीवनराम वैद्य था। आप श्री कुन्दनराम वैद्य के नाम से भी विख्यात थे। श्री कुन्दनरामजी का परिचय क्रमांक १० पर प्रस्तुत किया जा चुका है। राजकीय प्राचीन सभी पत्रों में आपका नाम जीवनराम प्राप्त होता है। (५४-अ) वैद्यानन्द तरंगिणी नामक अप्रकाशित ग्रन्थ में आपका नाम जीवनराम ही प्राप्त होता है। (५४-आ)

आपका परिचय अन्यान्य ग्रन्थों से भी प्राप्त किया जा सकता है आप संस्कृत कालेज के प्रारम्भिक अध्यापकों में से एक थे।

(५४-अ)—परिशिष्ट ४, संस्कृत कालेज का प्राचीन रिकार्ड।
(५४-आ)—उक्त ग्रन्थ श्री देवेन्द्र भट्ट (वर्तमान वंशज) जयपुर के पास सुरक्षित है।

५५. पं० श्री दयाराम शर्मा.

जयपुरीय संस्कृत-संस्कृत पोषिका शिक्षा संस्था श्री दादू महाविद्यालय के शिक्षक वर्ग में पण्डित श्री दयारामजी शास्त्री साहित्याचार्य का नाम संस्कृत-साहित्य के क्षेत्र में उल्लेखनीय है। आप इस समय उक्त संस्था के प्राचार्य हैं।

आप जिला करनाल ग्राम संगरोली के निवासी है। जयपुर राज्य में शेखावाटी प्रान्त के प्रसिद्ध विद्वान् विद्याभूषण माननीय श्री रामवारीजी शास्त्री आपके भ्रातृज हैं। आप ने उन्हीं से शिक्षा प्राप्त की थी। आप व्याकरण शास्त्री एवं साहित्याचार्य हैं। उक्त विद्यालय में कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व आपने हसामपुर में अध्यापन कार्य किया था। सन् १९२८ में आप जयपुर आये। उसके पश्चात् अब तक लगभग ४१ वर्ष हो गये। आप उक्त संस्था में शिक्षण कार्य करते आरहे हैं।

श्री मंगलदासजी स्वामी (उक्त संस्था के संचालक) ने संस्था की रजत जयन्ती के अवसर पर प्रकाशित ग्रन्थ में संस्था के कर्णधारों का उल्लेख करते हुए आपके सम्बन्ध में लिखा है: "इतने लम्बे समय में कई बार ऐसे अवसर भी आये कि आप आर्थिक लाभ की दृष्टि से स्थानान्तर में जा सकते थे, पर आपने संस्था को अपनी ही संस्था समझ लिया है। आप निर्बाध रूप से व सुस्थिर गति से अपने काम का संचालन करते हैं। व्याकरण तथा साहित्य दोनों विषयों की शिक्षा बहुत उत्तम रूप से प्रदान करते हैं। आपकी पद्य रचना भी प्रशंसनीय होती है। आप प्रतिभा संपन्न विद्वान् हैं। विद्यालय आप जैसे अध्यापकों के बल पर ही अपनी इस प्रगति को प्राप्त हुआ है। संस्था आप जैसे विद्वान् के सहयोग से लाभान्वित है।" (५५–अ)

आप संस्कृत में उत्कृष्ट कोटि की पद्य रचना किया करते हैं। इसका परिज्ञान आपके एक समस्यापूर्ति रूपात्मक पद्य से स्वतः ही हो जायेगा. जो संस्कृत रत्नाकर (३।२) से उद्धृत हैं :

"कूजत्कोकिलकाकलीश्रुतिसुखा वल्ल्यश्च पुष्पोन्मुखाः
झंकुर्वन्ति मरन्दमत्तमधुपाः यस्मिन् मधौ संन्निधौ।
नीहारापचया परागनिचया राजीवजीवोदया
तत्राद्येयमनंगमंगलकरी भूतिः समुज्जृम्भताम् ॥"

आपके अन्य पद्य संस्कृत रत्नाकर के २।२, ३।३, ३।२, व ३।११ में प्रकाशित हैं। इस समय आप जयपुर नगर के उल्लेखनीय विद्वान् हैं तथा संस्कृत-साहित्य की सेवा में संलग्न हैं। (५५-आ)

(५५–अ)–आपका परिचय श्री दादूमहाविद्यालय, रजत जयन्ती ग्रन्थ सं० २००९, पृ० १५५ से उद्धृत है।

(५५–आ)–आपका वास्तविक नाम दयानन्द शास्त्री था, परन्तु आप दयाराम शास्त्री के नाम से प्रसिद्ध रहे हैं। तीन वर्ष पूर्व आपका स्वर्गवास हो गया है।

५६. श्री दामोदर शास्त्री साहित्याचार्य.

आपका जन्म आश्विन शुक्ला ११संवत् १९५८ (सन् १९०१) को जयपुर नगर में हुआ। आपके पिता का नाम श्री जगन्नाथ शर्मा वैदिक था। आपकी सम्पूर्ण शिक्षा महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर में हुई। आपके पूर्वज जयपुर से दक्षिण में विद्यमान वाटिका नामक ग्राम के निवासी थे। आपके पिता श्री जगन्नाथ जयपुर के प्रसिद्ध वेदपाठी विद्वान् थे, जिन्हें सम्पूर्ण यजुर्वेद सस्वर कंठाग्र था। (५६-अ)

आपने अपना प्राथमिक अध्ययन ऋषिकल्प विद्वान् पं० श्री गंगाधर शर्मा से किया था, जो राजवैद्य पं० नन्दकिशोरजी खाण्डल के भी गुरु रहे हैं। आपने साहित्यशास्त्री परीक्षा संवत् १९७७ में तृतीय श्रेणि से तथा साहित्याचार्य परीक्षा सवत् १९८१ में इसी श्रेणि मे उत्तीर्ण की। (५६-आ) कालेजीय शिक्षा में आपने पं० श्री विहारीलालजी दाधीच से साहित्याध्ययन किया था। कुछ दिन आपने विद्यावाचस्पति पं० मधुसूदन झा के सान्निध्य में वैदिक विज्ञान का ज्ञान प्राप्त किया था। आपके उल्लेखनीय शिष्यों में श्री मोतीलाल शास्त्री (दुर्गापुरा), पं० श्री प्रवीणचन्द्र जैन, डा० कन्हैयालाल सहल (पिलानी) आदि स्मरणीय हैं। आपने आचार्य परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद कुछ दिन श्री ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम जयपुर मे अध्यापन किया और तदनन्तर कुछ दिन चिड़ावा कालेज में चले गये। सन् १९२९ से आप जयपुरस्थ दिगम्बर जैन सस्कृत कालेज में निरन्तर अध्यापन कार्य करते आ रहे हैं और अब विश्राम ग्रहण कर चुके है।

आपको पद्य रचना का उत्कट शौक है। जयपुर में आयोजित प्रायः सभी सम्मेलनों में आप ने सुललित पद्य प्रस्तुत कर विद्वानों को रसास्वादन में अनेकशः आप्लावित किया है। आपकी भाषा बहुत ही मरल एवं सुबोधगम्य है। दो पद्य प्रस्तुत किये जा रहे हैं :–

१) "मुखं प्रसन्नं मधुरा च वाणी सदानुरक्ता सरसा च दृष्टि :।
गतिश्च धीरा ललितेति विद्वन् प्रमाणपत्रं तव सौम्यताया :।।" भारती, १४/९

२) "सद्यो ऽ नवद्यरसपूरितगद्यपद्यसंपादनैककुशल : कविचक्रवर्ती।
शृंगाररूपरसराजनवावतार : श्री मंजुनाथविबुधो ऽ द्य दिवंगतो हा।
साहित्यसूर्ये कविमंजुनाथे याते कलाभिः सकलाभिरेषः।
साकं, कलानाथ उदीयमानः कर्ता प्रकाशं जगतीति तोषः।।" भारती, शोकोद्गार. १४/११

आप अनेक कवि सम्मेलनों में पुरस्कृत किये जा चुके है तथा अभी जीवित है ❀

(५६-अ)–आपका उक्त परिचय स्वयं प्रदत्त सूचनाओं पर आधारित है।

(५६–आ)–शास्त्री परीक्षोत्तीर्णच्छात्राणां नामादीनि, क्रमांक १५६ व आचार्य० क्रमांक ५२।

❀ शोध ग्रन्थ के प्रकाशन के समय अब आप दिवंगत हो चुके हैं।

५७. श्री दीनानाथ त्रिवेदी

गुर्जरगौड़ विप्रवंशोत्पन्न, स्वर्गीय पं० घासीरामजी शर्मा के ज्येष्ठ पुत्र श्री दीनानाथ त्रिवेदी मधुप का जन्म जयपुर राज्यान्तर्गत गुहाला ग्राम (नीमका थाना) में ५ दिसम्बर, १९१४ ई० को हुआ था। आपके पिता का स्वर्गवास बाल्य काल में ही हो जाने से आप की माता श्रीमती नारायणी देवी विदुषी ने आपके पालन पोषण व शिक्षादि का समुचित प्रबन्ध किया। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही सम्पन्न हुई एवं कालेजीय शिक्षा रामगढ़ शेखावाटी के प्रसिद्ध विद्वान् श्री यमुनाधर जी शास्त्री लाटा के सान्निध्य में सम्पन्न हुई।

आपने व्याकरण मध्यमा (तीनों खण्ड) तथा साहित्योपाध्याय परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् जयपुर आकर कविशिरोमणि भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री एवं राजपण्डित श्री पुरुषोत्तम चतुर्वेदी से साहित्य का विशिष्ट अध्ययन करते हुए १९३७ ई० में काव्यतीर्थ परीक्षा उत्तीर्ण की। आपने कवित्व निर्माण शिक्षा आशुकवि श्री हरि शास्त्री से प्राप्त की।

सर्वप्रथम सन् १९३७ ई० में आपने खाण्डल विप्र विद्यालय के प्रधानाध्यापक के रूप में कार्य प्रारम्भ किया और ६ वर्ष तक कार्य करने के पश्चात् आप श्री खण्डेलवाल वैश्य हाईस्कूल में संस्कृत के प्रधान पण्डित पद पर तीन वर्ष तक कार्य करते रहे हैं। इसी बीच सन् १९४३ ई० में आपने स्वतन्त्र परीक्षार्थी के रूप में साहित्याचार्य परीक्षा उत्तीर्ण की। १९४३ ई० से १९५३ तक आप गौड़ विप्र विद्यालय के प्रधानाध्यापक रहे। सन् १९५३ में आपने राजकीय सेवा में प्रवेश किया तथा आपकी राशनिंग कार्यालय, जयपुर में लेखक के पद पर नियुक्ति हुई। यह कार्य आपकी रुचि के सर्वथा विपरीत था और परिणामतः आपने प्रयत्नपूर्वक अपना स्थानान्तरण प्रवेशिका विभाग, महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर में अध्यापक के पद पर करवा लिया। सन् १९५३ से लेकर अब तक आप इसी कालेज में अध्यापन कार्य करते आरहे हैं और इस समय कालेज विभाग में न्याय शास्त्र के व्याख्याता पद पर कार्य कर रहे हैं। इस कालेज में कार्य करते हुए ही आपने सन् १९५८ में तत्कालीन अध्यक्ष पं० चन्द्रशेखर शास्त्री से अध्ययन कर दर्शनशास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की तथा वर्तमान प्रिंसिपल श्री गोविन्दनारायणजी न्यायाचार्य से अध्ययन कर सन् १९६० में न्यायाचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण की।

आपकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर विक्रम संवत् २००१ सन् १९४४ में संस्कृत कार्यालय, अयोध्या ने आपको साहित्यालंकार की उपाधि से सम्मानित किया। आप अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन द्वारा आयोजित निबन्ध प्रतियोगिता में रजत पदक से तथा राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन की निबन्ध प्रतियोगिता में स्वर्ण पदक से सम्मानित किये जा चुके हैं। आपकी रचनायें सुललित व व्यंजनापूर्ण होती हैं। आपका उल्लेख वर्तमान पीढ़ी के संस्कृत साहित्यकारों में किया जाता है। आप विगत पांच वर्षों से संस्कृत मासिक पत्रिका भारती के सहायक सम्पादक के रूप में कार्य कर रहे हैं। आपकी रचनाओं में सागर गर्वोक्ति, गर्दभगर्वोक्ति, समस्यापूर्तियां, मनोविनोद, कथायें, अनेक लेख संस्कृत रत्नाकर तथा भारती आदि मासिक पत्रों में प्रकाशित हो चुके हैं और होते रहते हैं। आपने अपने गुरुवर पं० पुरुषोत्तम चतुर्वेदी का जीवन चरित्र, पण्डिता क्षमाराव का जीवनचरित, ईश्वरसिद्धि (हिन्दी), काव्यलतिका, संस्कृत पद्य पुष्पांजलि, संस्कृत साहित्य प्रभा आदि पाठ्य पुस्तकों का प्रामाणिक अनुवाद भी किया है, जो शारदा पुस्तक मन्दिर, जयपुर से प्रकाशित है। (५७-अ)

(५७-अ)-आपका परिचय 'राजस्थान परिचय ग्रन्थ' (राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन, रतनगढ़ अधिवेशन पर प्रकाशित, १९६२ ई०) पृष्ठ ११०-१११ पर आधारित है।

आपके रचनात्मक कार्य का उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है :—

क्रम	नाम रचना	विधा	पत्रिका	वर्ष–अंक
१.	गर्दभगर्वोक्तयः	व्यंग्य पद्य (८)	संस्कृत रत्नाकर	८।८
२.	परीक्षापंचदशी	व्यंग्य पद्य (१५)	,, ,,	९।२
३.	किन्ते जनाः सज्जनाः	व्यंग्य पद्य (४)	,, ,,	९।५
४.	दरिद्रतैकादशी	व्यंग्य पद्य (११)	,, ,,	१०।८
५.	सागरगर्वोक्तयः	व्यंग्य पद्य (११)	,, ,,	११।७
६.	कष्टोच्छ्वसितम्	व्यंग्य पद्य (१७)	,, ,,	११।८
७	शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खाः	विनोदकथा	,, ,,	१।२
८.	कोपि तार्किकस्तु नास्ति	विनोदकथा	,, ,,	१।५
९.	गर्दभक्रेता	विनोदकथा	,, ,,	११।३
१०.	विश्वासः फलदायकः	लघुकथा	,, ,,	२।४
११.	चपल : श्यालक :	लघुकथा	भारती	३ । ६
१२	गोगुरुभक्त : सत्यकाम :	,,	भारती	७ । २
१३.	सिंहकारक मूर्ख बालकत्रय कथा	,,	भारती	७ । ५
१४.	श्री : शीलञ्च	,,	भारती	८ । ११
१५.	मूर्खपण्डित चतुष्टय कथा	,,	भारती	८ । २
१६.	प्रामाणिको बालकः	,,	भारती	१२ । २
१७.	सिन्धुपतेर्महाराजस्य दादरसेनस्य बलिदानम्	गद्यलेख	भारती	२ । १०
१८.	चीनस्थ महामुक्तेरभियानम्	गद्यलेख	भारती	५ । ३
१९.	घाना (गोल्डकोस्ट) नवीनराष्ट्रस्याभ्युदय :	गद्यलेख	भारती	८ । ५
२०.	अमेरिकाया राष्ट्रपतेर्निर्वाचनम् निर्वाचन पद्धतिश्च	गद्यलेख	भारती	७ । २
२१.	अवदधतु वेदिका विद्वांस :	गद्यलेख (क्रमशः)	भारती	९ । ८,९
२२.	स्वामी श्रीमदखण्डानन्दपरिचय :	गद्यलेख	भारती	१३ । ५
२३.	स्वर्गत पं० श्री वृद्धिचन्द्रशास्त्रिणांपरिचय :	गद्यलेख	भारती	१४ । ४
२४.	श्रीजयरामदासस्वामिनो संक्षिप्तपरिचय :	गद्यलेख	भारती	१४ । ६,७
२५.	गीति : (रागात्मिका)	पद्य	भारती	१ । ५
२६.	किमस्ति तद् ब्रूत बुधा विचार्य	पद्य (२)	भारती	२ । २
२७.	परित्यज्यन्ति	पद्य (६)	भारती	९ । ७
२८.	शोकोद्गार : (पं० पुरुषोत्तमचतुर्वेदी महोदयानां निधने)	पद्य (१०)	भारती	१० । ३
२९.	राजतां कालिदास :	पद्य	भारती	१२ । २
३०.	वर्षा मन : कर्षति	(पद्य २)	भारती	१२ । १०

क्रम	नाम रचना	विद्या	पत्रिका	वर्ष-अंक
३१.	तीव्रा व्यथा वर्तते	पद्य (समस्या)	भारती	१२ । ३
३२.	संस्कृतम्	पद्य (५) (समस्या)	भारती	१२ । ११
३३.	जयतु सोमनाथ :	रूपक	भारती	२ । ११
३४.	द्वौ धूर्तौ	संवाद कथा	भारती	४ । ६
३५.	अनसूया (नारीस्तंभ)	गद्य कथा	भारती	१० । ५
३६.	मनोरमा (नारीस्तंभ)	गद्य कथा	भारती	१० । ६
३७.	जरत्कारु : (नारीस्तंभ)	गद्य कथा	भारती	१० । ७,८
३८.	अहल्या (नारीस्तंभ)	गद्य कथा	भारती	१० । ९,१०
३९.	आहुकी (नारीस्तंभ)	गद्य कथा	भारती	११ । १२
४०.	नारीमतिवैभवम्	गद्य कथा	भारती	१३ । १
४१.	सुशोभना (नारीस्तंभ)	गद्य कथा	भारती	११ । ९
४२.	वेदानां भारतीयसंस्कृतेश्चाभिनवो व्याख्याकार : स्व० मोतीलाल शास्त्री	गद्य कथा	भारती	११ । १
४३.	हास्यालापम् :	गद्य	भारती	७ । ७
४४.	गर्दभगर्वोक्ति :	व्यंग्य पद्य	भारती	९ । ३
४५.	रामचरितमानसस्य दार्शनिकं दोहापद्यम्	अनुवाद	भारती	१२ । ५

इनके अतिरिक्त आपके अनेक समस्यापूर्ति पद्य संस्कृत रत्नाकर व भारती के अंकों में प्रकाशित हुए हैं, जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं :-(१) युद्धमुद्धतम् (सं०रत्नाकर ८।१०), (२) संघः सतां' सौख्यादः (सं०रत्नाकर ८।१०), (३) देवो जगद् रक्षतात् (सं०रत्नाकर ९।१०), (४) जीवनं भारभूतम् (भारती,६।६), (५) भाति सूर्यो नवीनः (भारती,६।६) (६) भारतं भारतं न : (भारती,६।६) इत्यादि । आपने अनेक लेखों का संस्कृत में अनुवाद भी किया है । आप एक उल्लेखनीय साहित्यकार व कवि हैं । आपकी रचनाओं का समालोचनात्मक विवेचन कृतित्व खण्ड के विभिन्न अध्यायों में यथावसर प्रस्तुत किया जायेगा ।

आजकल आप 'भारती' मासिक पत्र के सम्पादक के रूप में कार्यलीन है ।

———

५८. श्री दुर्गादत्त ज्योतिषी

महाराजा संस्कृत कालेज, जयपुर में ज्योतिष के व्याख्याता पं० जगन्नाथजी (परिचय क्रमांक ४८) के एकाकी पुत्र गुर्जरगौड़ विप्र कुलावतंस पं० श्री दुर्गादत्तजी ज्योतिषाचार्य अपने पिता के सेवा निवृत होने पर उक्त कालेज में ज्योतिष के अध्यापक रहे हैं। आपका जन्म जयपुर नगर में दिनांक ८ अक्टूबर, १८८३ ई० (आश्विन शुक्ला ८, संवत् १९३९) को हुआ था। (५८-अ) आपने म० म० पं० दुर्गाप्रसादजी द्विवेदी से नियमित छात्र के रूप में अध्ययन कर ज्योतिषाचार्य परीक्षा संवत् १९८१ में उत्तीर्ण की। आपने अपने पितृचरण से भी ज्योतिष के सभी विषयों का विधिवत् अध्ययन किया था। आपकी प्रथम नियुक्ति १९ अगस्त, १९०५ ई० को हुई थी। कुछ समय तक स्कूल विभाग में कार्य करने के पश्चात् आपने सहायक प्राध्यापक के रूप में कार्य किया था। दिनांक ९ सितम्बर, १९२६ को श्री द्विवेदी के अवकाश ग्रहण करने पर आप ज्योतिष के प्राध्यापक पद पर पदोन्नत किये गये। (५८-आ) इस पद पर आपने अन्तिम समय तक कार्य किया और श्रावण शुक्ला ६ संवत् १९९५ (दिनांक १ अगस्त, १९३८) को इस लोक से प्रस्थान किया। आप उल्लेखनीय ज्योतिषी होने के साथ ही परम्परागत विद्या तन्त्र मन्त्र के भी ज्ञाता थे। आप अंग्रेजी से इन्टर परीक्षा पास थे। आपके शिष्यों में पं० श्री बदरी नारायण शर्मा भूतपूर्व व्याख्याता ज्योतिष संस्कृत कालेज, श्री भूरामलजी बाबावास आदि उल्लेखनीय हैं। कवि शिरोमणि भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री ने आपका स्मरण इस प्रकार किया है :—(५८-इ)

> "फलितोपसन्ना मतिरस्ति तव ज्योतिषे चेज्जगन्नाथज्योतिषिवरिष्ठमुपढौकय
> ज्योतिषे गृहीताचार्यपदमुपनीता (ऽ) गमं राजभाषाविज्ञमेतत्सूनुमनुमोदय।
> राजकीयशालां दर्शनोपलक्ष्ये गच्छसि चेदुत्तरदिक्कक्ष्ये तर्हि दृशमुपरोपय
> आयसशलाकान्तिके मत्तगजतुल्यस्थितं दुर्गादत्तगणकवरेन्द्रमवलोकय।।"

आपका रचनात्मक कार्य उपलब्ध नहीं है। आप जयपुर के ज्योतिषियों में उल्लेखनीय रहे हैं।

---

५९. श्री दुर्गादत्त झा मैथिलः

श्री झा राजगुरु पं० चन्द्रदत्तजी मैथिल (परिचय क्रमांक ३६) के द्वितीय पुत्र हैं। आपका जन्म आषाढ कृष्ण ३ संवत् १९७५ को जयपुर में ही हुआ था। आपने जयपुर संस्कृत कालेज में नियमित अध्ययन करते हुए व्याकरणाचार्य तथा स्वतन्त्रपाठी के रूप में साहित्याचार्य परीक्षा उत्तीर्ण की। आप अपने पितृचरण के समय में ही संस्कृत कालेज के स्कूल विभाग में व्याकरणाध्यापक के पद पर नियुक्त हुए। फिर क्रमशः व्याकरण

(५८-अ)—आपका उक्त परिचय श्री पद्मनाथ शास्त्री (वर्तमान वंशज) द्वारा प्रदत्त सूचनाओं पर आधारित है।

(५८-आ)—लिस्ट आफ एजूकेशनल आफिसर्स करेक्टेड अपटू १ सितम्बर, १९३५—म० सं० कालेज, जयपुर क्रमांक ५ ज्योतिष प्रोफेसर।

(५८-इ)—जयपुर वैभवम्—नागरिकवीथी, सुधीचत्वरः—पृष्ठ २५८-५९—पद्य संख्या ७०।

व्याख्याता और व्याकरण प्राध्यापक के पद पर पदोन्नत किये गये। कुछ समय तक आप श्री दरबार संस्कृत कालेज जोधपुर के प्राचार्य रह चुके हैं और इस समय संस्कृत कालेज जयपुर में व्याकरण के प्राध्यापक हैं।

आपने म० म० पं० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी तथा पितृचरण पं० श्री चन्द्रदत्त झा के पास नियमित रूप से तथा तत्कालीन अन्य विद्वानों के पास अध्ययन किया था। आपके शिष्यों में श्री कालीचरण भट्टाचार्य, श्री राधेश्याम कलावटिया, श्री सियाशरण शर्मा, श्री चन्द्रकान्त द्विवेदी, श्री हेमनदास, श्री प्रेमदास आदि अनेक प्रसिद्ध हैं। रचनात्मक कार्य की दृष्टि से आपके कुछ पद्य व गद्यात्मक लेख संस्कृत रत्नाकर व भारती पत्रिका में प्रकाशित हुए हैं। आप का समस्यापूर्ति रूपात्मक एक पद्य यहां प्रस्तुत किया जा रहा है:—

"धर्माधर्मनिभालनेकनिपुणो न्यायप्रियो नीतिमान्
शश्वल्लोकहितार्थकृत्सुमनसामालीभिरासेवितः ।
काले (ऽ) स्मिन्नवरंगशालिवपुषि स्वीयं वचः संस्मर-
न्नादेष्टा स यथा कथंचन महीदेवो जगद् रक्षतात् ॥" (संस्कृत रत्नाकर ६/१०)
(मई, १९४३–पृष्ठ ३१० से उद्धृत)

इस प्रकार एक अन्य पद्य भी दर्शनीय है जो छन्द की दृष्टि से भी रोचक है:—

"धनभोगविलासपराः पुरुषाः निरये (ऽ) पि पतन्ति विवादजुषः :
परमात्मनि यान्ति लयं विबुधाः स्मरणादिति ते जयमापुरमे ॥
न यया हरिकीर्तनमुच्चरितं न परोपकृतौ हितमाचरितम् ।
न सुधामयता क्वचिदर्थिजने धिगता खलु किं रसना रसना ॥"

आपके अनेक प्रकाशित लेखों का विवरण इस प्रकार है:—

क्रम	लेख विषय	पत्रिका	वर्ष/अंक
१.	पं० श्री जवाहरलाल नेहरू	भारती	१/२
२.	मदीया पत्नी	भारती	१/३
३.	तिब्बतवर्णनम्	भारती	१/४
४.	गुरु नानकः	भारती	१/७
५.	वीरवरः महाराणा सांगा	भारती	२/७
६.	वीरः सुहलदेवः	भारती	२/६
७	ऋषिराजस्य विश्वामित्रस्याश्रमः	भारती	२/१०
८	छात्रः शालीनता च	भारती	३/७
६.	श्रद्धाप्रसूनांजलिः	भारती	१४/१२
१०.	भीलवाड़ा परिचयः	संस्कृत रत्नाकर	२२/१
११.	बिजोलिया सत्याग्रहः	संस्कृत रत्नाकर	२२/१

धारावाहिक लेखों में **सरल संस्कृतशिक्षणोपायाः** तथा **व्याकरण–स्तम्भः** का उल्लेख किया जा सकता है जो बालोपयोगी लेखमाला के अन्तर्गत भारती पत्रिका के अनेक अंकों में प्रकाशित हुए हैं। आपने सन् १९६०

से लगभग दो वर्ष तक स्वर्गीय पं० श्री वृद्धिचन्दजी शास्त्री के प्रधान सम्पादकत्व में प्रकाशित होने वाले संस्कृत रत्नाकर पत्रिका के सहायक सम्पादक के रूप में कार्य किया है। आप परम्परागत रूप से व्याकरण शास्त्र के उल्लेखनीय विद्वान् हैं। आपका वंश परिचय श्री एकनाथ झा (परिचय क्रमांक २), श्री चन्द्रदत्त झा (परिचय क्रमांक ३६) श्री नरहरि ओझा (परिचय क्रमांक ७१), श्री हरदत्त ओझा (परिचय क्रमांक १४७) तथा श्री भवदत्त ओझा (परिचय क्रमांक ८५) से प्राप्त किया जा सकता है। जैसाकि प्रसिद्ध है आप राजगुरु मैथिल परिवार में व्याकरण के विद्वानों की परम्परा में इस समय अन्तिम विद्वान् हैं। (५९-अ)

---

६०. पं० दुर्गादत्त शर्मा साहित्याचार्य

युवक साहित्यकार श्री दुर्गादत्त शर्मा का जन्म २५ सितम्बर, १९१९ को जयपुर में हुआ था। आपके पिता का नाम पं० श्री रामगोपाल शर्मा था। आपकी सम्पूर्ण शिक्षा महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर में ही सम्पन्न हुई। क्रमशः प्रवेशिका, उपाध्याय, शास्त्री तथा आचार्य परीक्षायें उत्तीर्ण की। आपकी रुचि काव्य साहित्य की ओर अधिक रही है। इसीलिए कविशिरोमणि भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री के पास नियमित छात्र के रूप में पढ़ते हुए सन् १९५४ ई० में साहित्याचार्य परीक्षा उत्तीर्ण की। अपने विद्यार्थी काल में आप पद्य रचना किया करते थे, जो तत्कालीन पत्र संस्कृत रत्नाकर में प्रकाशित हुई हैं। आपने रेडियो कलाकर के रूप में आकाशवाणी, जयपुर केन्द्र से प्रसारित किए गए अनेकों नाटकों (रेडियो रूपकों) में कार्य किया है।

आचार्य परीक्षोत्तीर्ण करने के पश्चात् आपने जयपुर राज्यान्तर्गत अनेक विद्यालयों में संस्कृताध्यापन किया। आजकल आप पोद्दार उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय, जयपुर में ही संस्कृताध्यापक के पद पर कार्य कर रहे है। (६०-अ)

आपकी पद्य रचना का एक उदाहरण प्रस्तुत है :—(६०—आ)

"सर्पाणां विषयमार्जनंन हि भवेद्दुग्धस्य पानात्कथम्,
नोलूकेन विलोक्यते बत कथं भास्वद् विभास्वद्विना।
न प्राप्नोति सुखं सुखेन पयसा जातज्वरो वै कथं,
संतापं तनुते कथं विगुणिनां "संघः सतां सौख्यदः॥"

(५९-अ)—५ वर्ष पूर्व आपका अचानक स्वर्गवास हो गया। इस वंश का अन्तिम वैयाकरण दिवंगत हो गया।

(६०-अ)—यह परिचय स्वयं विद्वान् द्वारा प्रदत्त सूचनाओं पर आधारित है।

(६०-आ)—संस्कृत रत्नाकर (मासिक) वर्ष ८ अंक १०—और भी देखिये—"युद्धमुद्धतम्" ८-१० तथा "जगद् रक्ष्यतात्" ९-१० इत्यादि।

पारिवारिक परिस्थितियों के कारण आपकी प्रतिभा अपने पूर्ण रूप में प्रकाशित न हो सकी। यही कारण है कि आपका साहित्य प्रायः अप्रकाशित है।

जयपुर नगर के युवा विद्वानों में आपकी गणना है।

---

६१. म. म. पं. श्री दुर्गाप्रसाद शास्त्री (काव्यमाला सम्पादक)

भारतविख्यात महामहोपाध्याय पं० श्री दुर्गाप्रसाद शास्त्री का जन्म जयपुर नगर में ही हुआ था। आपके पितृपितामहादि संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे तथा राजसम्मानित विद्वान् भी। आपका काश्मीर नरेश से पारस्परिक वंशानुगत सम्बन्ध था। यों आपके पूर्वज नारनौल के निवासी थे। आपके पिता का नाम श्री व्रजलाल शर्मा तथा पुत्र का नाम ज्योतिर्विद् केदारनाथ शास्त्री (परिचय क्रमांक १४) था। काव्यमाला सीरीज के अनेक ग्रन्थों के मुख पृष्ठ पर अंकित—"जयपुरीय महाराजाश्रितेन पण्डित व्रजलाल सूनुना पण्डित दुर्गाप्रसादेन मुम्बापुरवासिना ....संशोधितः "पंक्तियों से सिद्ध होता है कि आप जयपुर महाराज द्वारा सम्मानित थे। श्री शास्त्री जी ने संस्कृत के अमूल्य अप्रकाशित एवं अलभ्य ग्रन्थों का प्रकाशन करने की योजना बनाकर निर्णयसागर प्रेस, बम्बई के मालिक श्री जावजी दादाजी को प्रेषित की थी। सर्वप्रथम यह योजना मासिक अंकों के रूप में प्रारम्भ की गई। इसका प्रत्येक अंक ९६ पृष्ठ का होता था और ६) रु० वार्षिक मूल्य था। काव्यमाला के प्रथम गुच्छक के प्रारम्भ में मुद्रित जावजी दादाजी का आलेख इसके प्रमाण रूप में उद्धृत किया जा सकता है, जो मराठी भाषा में है :—

"या नांवें संस्कृत मासिक पुस्त चालू महिन्यापासून आह्मी प्रसिद्ध करणार आहों, यान्त उत्तम प्राचीन संस्कृत काव्यें, नाटकें, चंपू, भाण, प्रहसनें, छन्द, अलंकार इत्यादिकांचा यथावकाश संग्रह होणार आहे, ग्रंथांच्या ज्या नाम मालिका प्रतिवर्षी सरकाराच्या आश्रयानें छापून प्रसिद्ध होत असतात, त्यावरुन जगतास विदित होतच आहे..........ही माला तयार करण्यास आमच्या पाशीं आज किनती सामग्री आहे हें सांगणें अवश्य आहे। पण्डित संस्कृत भाषेंत या विषयावंर किती ग्रन्थ आहेत हें देशोदेशींच्या पुस्तक संग्रहालयांतील. दुर्गाप्रसात या नावांचे विद्वान् बहुश्रुत आणि शोधक गृहस्थ जयपुरच्या महाराजचे आश्रयास असतात। यांनीं काश्मीर, पंजाब, बंगाल, राजपूताना, मध्यप्रदेश, तैलंगण वगैरे सर्व प्रदेश फिरून नानाप्रकारचे काव्यग्रंथ सम्पादित केले आहेत। हे सर्व ग्रंथ प्रायः दुर्मिल व प्राचीन असून ते प्राप्त करून घेण्यास त्यास फार श्रम आणि धनव्यय करावा लागला आहे..........या मालेचे अंक प्रतिमासास एजदां प्रसिद्ध होतील। प्रत्येक अंकातं डेमी अष्टपत्री सांच्याचीं ९६ पृष्ठें असतील। याची वर्षाची आगाऊ किमंत ६) रुपये..........पुस्तकें कालबादेवीच्या रस्त्यावरील निर्णयसागर छापखान्यांतून मांगवावीं।" (तारीख १–१–१८८६)

काव्यमाला सीरिज में संस्कृत साहित्य के उत्तम, प्राचीन और दुर्लभ काव्य, नाटक, चंपू, भाण, प्रहसन, छन्द, अलंकार आदि ग्रन्थों का संग्रह प्रकाशित होता था। जो ग्रन्थ सटीक प्राप्त होते थे, वे सटीक ही मुद्रित किये

जाते थे, परन्तु टीकारहित ग्रन्थो में दुर्बोध शब्दो पर टिप्पणी लेखन का कार्य स्वय प० दुर्गाप्रसाद जी किया करते थे। इसी प्रकार कवियों का देश, काल, उनकी अन्य रचनात्मक कृतियों आदि की जानकारी का उल्लेख श्री शास्त्री यथावसर प्रस्तुत किया करते थे। यह एक महत्त्वपूर्ण और उल्लेखनीय कार्य था। राजवैद्य श्रीकृष्णराम भट्ट ने काव्यमाला की प्रशंसा में एक लघुकाव्य की सी रचना कर डाली, जिसमें ४१ पद्य हैं। कुछ पद्य यहा उद्धृत किये जाते हैं :—

"अलंकृतिचमत्कृतिः स्फुरितशुद्धवर्णाकृती रसध्वनिविनोदिनी चतुरमानसामोदिनी।
मनोहरपदक्रमाऽद्भुतगभीरभावोज्ज्वला कुरंगनयनेव मां मिलतु काव्यमाला सदा ॥२९॥

उद्बिभ्रती परमचारु-कलाविलासं स्फूर्जत्सुवृ तिलकच्छविभिः स्फुरन्ती।
आविष्कृतप्रहसनैर्हृदयं हरन्ती वेश्येव पश्य भुवि नृत्यति काव्यमाला ॥३०॥"

पण्डित दुर्गाप्रसादजी के सम्बन्ध में श्री भट्ट जी ने लिखा है :—

"उत्पन्नैः कविचित्तशुक्तिकुहरे श्रीकाव्यमुक्ताफलैः
सद्गुच्छच्छटया व्यगुम्फि पटुना दुर्गाप्रसादेन या।
काशीनाथपरिष्कृतच्छविरियं सा काव्यमालाधुना
श्रीमज्जावजिना बुधोपकृतये मुद्राक्षरैर्मुद्र्यते ॥३४॥

विद्यावैशमपयोनिधीननवधीन्निर्मथ्य निष्कासितै-
र्धीशाणोल्लिखनप्रवृद्धरुचिभिः सत्काव्यरत्नव्रजैः।
यस्या गुम्फनमाचरन्ति चतुरा दुर्गाप्रसादादयः
कण्ठं प्राप्य चमत्करोतु विदुषां सा काव्यमाला चिरम् ॥३६॥"

काव्यमाला सीरीज मासिक अंकों के अतिरिक्त दो रूपों में प्रकाशित हुई है—

(1) स्वतन्त्र रूप में और (2) गुच्छक रूप में। स्वतन्त्र रूप में प्रकाशित होने वाले ग्रन्थ शताधिक हैं। ये ग्रन्थ अलग अलग ग्रन्थांकों से चिन्हित होकर प्रकाशित हुए हैं। इनका प्रकाशन १८८७ ई० से प्रारम्भ होकर १९०६-७ ई० तक निरन्तर होता रहा। कुछ अंकों के दो तीन संस्करण भी प्रकाशित हुए हैं। इस सीरिज के सम्पादकों में तीन व्यक्तियों का नाम भी उल्लेखनीय है, जिनमें (१) म० म० शिवदत्त शास्त्री, (२) पं० श्री केदारनाथ ज्योतिर्विद् तथा (३) पं० भवदत्त शास्त्री (पुत्र म० म० शिवदत्त शास्त्री) का नाम स्मरणीय है। कुछ उल्लेखनीय ग्रन्थों का संकेत इस प्रकार हैं :—(१) अनर्घराघवम्—श्री मुरारिः, ग्रन्थाङ्क ५, प्रकाशित १८८८, (2) कंसवधम्-श्री शेषकृष्ण, ग्रन्थाङ्क ६, प्रकाशित १८८८, (३) कर्णसुन्दरी—श्री बिल्हण, ग्रन्थाङ्क ७, प्रकाशित १८८८, (४) पारिजातहरणचम्पूः—श्री शेषकृष्ण, ग्रन्थाङ्क १४, प्रकाशित १८८९, (५ हरविजयम्—श्री राजानक रत्नाकर, ग्रन्थाङ्क २२, प्रकाशित १८९०, (ये ग्रन्थ ही दुर्गाप्रसाद शास्त्री द्वारा सम्पादित हैं), (६) चित्रमीमांसा—श्री अप्पयदीक्षित, ग्रन्थाङ्क ३८, प्रकाशित १८९३, (७) युधिष्ठिरविजयम्—श्री महावासुदेव, ग्रन्थाङ्क ६०, प्रकाशित १८९७, (८) जयन्तविजयम्—श्री अभयदेव, ग्रन्थाङ्क ७५, प्रकाशित १९०२, (ये ग्रन्थ म० म० शिवदत्त शास्त्री द्वारा सम्पादित हैं), (९) गंगावतरणं—श्री नीलकण्ठ दीक्षित, ग्रन्थाङ्क ७६, प्रकाशित १९०२, (१०) तिलक-

श्री धनपाल ग्रन्थाङ्क ८५, प्रकाशित १९०३, (१९) हरिहरसुभाषितम्—श्री हरिहर ग्रन्थाङ्क, ८६, प्रकाशित
मंजरी—१९०५, (ये ग्रन्थ पण्डित भवदत्त शास्त्री द्वारा सम्पादित हैं) इनके अतिरिक्त श्री केदारनाथ शास्त्री ने सन्
१९०६–७ से काव्यमाला का सम्पादन प्रारम्भ किया था, जिसमें पाण्डवचरितम् आदि अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थ प्रका-
शित हुए थे। इन ग्रन्थों की प्रतियाँ इस समय कुछ ही शोध संस्थानों में उपलब्ध हैं। ये प्रतियां राजस्थान प्राच्य-
विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर के प्रकाशित संग्रहालय में उपलब्ध हैं।

गुच्छक रूप में प्रकाशित इसी सीरिज के १४ गुच्छक प्रसिद्ध हैं। प्रत्येक गुच्छक में अनेक काव्य ग्रन्थों का संकलन किया है। इस गुच्छक माला का सम्पादन पं० दुर्गाप्रसाद जी शास्त्री ने ही प्रारम्भ किया था, जो सन् १९२९ से प्रकाशित हुई थी। इसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :—

गुच्छक क्रमांक	ग्रन्थ संख्या	प्रकाशन सन्	संस्करण	विवरण
प्रथमो गुच्छकः	१२	१८८६	तीन	तृतीय —'१९२९ ई०
द्वितीयो गुच्छकः	१३	१८८७	दो	द्वितीय — १९३२ ई०
तृतीयो गुच्छकः	५	१८८८	दो	द्वितीय — १८९९ ई०
चतुर्थो गुच्छकः	९	१८८८	तीन	तृतीय — १९३७ ई०
पंचमो गुच्छकः	८	१८८९	दो	द्वितीय — १९३७ ई०
षष्ठो गुच्छकः	९	१८९०	दो	द्वितीय — १९३० ई०
सप्तमो गुच्छकः	२३	१८९१	चार	चतुर्थ — १९२६ ई०
अष्टमो गुच्छकः	६	१८९२	दो	द्वितीय — १९११ ई०
नवमो गुच्छकः	११	१८९३	दो	द्वितीय — १९१६ ई०
दशमो गुच्छकः	४	१८९४	तीन	तृतीय — १९१५ ई०
एकादशमो गुच्छकः	७	१८९५		द्वितीय — १९३८ ई०
द्वादश गुच्छकः	४	१८९६	दो	
त्रयोदश गुच्छकः				द्वितीय — १९३८ ई०
चतुर्दश गुच्छकः	१०	१९०६	दो	

राजवैद्य श्री कृष्णराम भट्ट ने जयपुर विलास में आपका सादर स्मरण इस प्रकार किया है :—

(६१—अ)

"संगृह्य काव्यानि पुरातनानि संशोध्य येनारचि काव्यमाला।
विद्वत्सु यः स्निह्यति सोयमास्ते दुर्गाप्रसादो मयि सप्रसादः॥"

श्री भट्ट जी ने आपका स्मरण राजगुरु श्री नारायण भट्ट पर्वणीकर के वर्णनावसर पर भी किया है :—(६१—आ)

(६१–अ)—जयपुरविलास—पंचम उल्लास—पृष्ठ संख्या ५३—पद्य संख्या ४५।
(६१–आ)—जयपुरविलास—पंचम उल्लास—पृष्ठ संख्या ५१—पद्य संख्या ३५।

"सरस्वतीं यो हृदये दधाति सदा समाश्लिष्टतनुः श्रियापि।
दुर्गाप्रसादाय पुनः प्रयासी नारायणः कोपि विचित्र एवः॥"

इसकी टिप्पणी में लिखा है "एतन्नामकाय मित्राय तदर्थं पुस्तकादि-संपादने प्रयासी, श्रीकुलदेवतायाः प्रसादाय च।" अर्थात् श्री नारायण भट्ट पर्वणीकर आपके मित्रों में रहे हैं। ऐसा प्रसिद्ध हैकि आपको भारत सरकार ने महामहोपाध्याय की उपाधि जब प्रदान करने की घोषणा की थी, तब आप दिवंगत हो चुके थे।

अपने समय के अद्वितीय प्रतिभासम्पन्न बहुचर्चित ज्ञान के धनी श्री शास्त्री का उल्लेख जयपुर के संस्कृत साहित्य के इतिहास में स्वर्णाक्षिरों से उल्लेखनीय है।

---

६२. म. म. पं. श्री दुर्गाप्रसाद द्विवेदी

सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी, मनस्वी विद्वान् श्री द्विवेदी अपनी वंश परम्परा के अनुकूल सरस्वती सम्पन्न थे। आपका जन्म श्रावण कृष्णा १० शुक्रवार संवत् १९२० को अयोध्या से आठ कोस पश्चिम सरयू नदी के दक्षिण तट पर "थरेरु" नामक ग्राम में हुआ था; आप की जाति सरयूपारीण ब्राह्मण, उपाख्या द्विवेदी, गोत्र काश्यप, वेद शुक्लयजुः, शाखा माध्यन्दिनी थी। आपके पिता का नाम सत्सम्प्रदायाचार्य तन्त्रवारिधि श्री सरयू प्रसाद जी द्विवेदी था। आप अपने समय के एक परम तपस्वी शास्त्रज्ञ, तन्त्रविद्या के रहस्यज्ञ विद्वान् थे।

आपकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर महाराज सवाई रामसिंह द्वितीय ने संवत् १९३२ ईस्वी सन् १८७५ में आपको राज्याश्रय प्रदान कर सम्मानित किया था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिताजी के सान्निध्य में ही सम्पन्न हुई थी। यज्ञोपवीत संस्कार के पश्चात् आप नित्यप्रति पार्थिव शिवपूजन किया करते थे। १८ वर्ष की अवस्था में आप में कवित्व शक्ति का उद्‌भव हुआ। आपने सर्वप्रथम **प्रसन्नचण्डीपति अष्टक** बनाया। इसके पश्चात् आप ज्योतिष पढ़ने के लिये काशी चले गये। जहाँ म० म० श्री बापूदेव शास्त्री के शिष्य रूप में रह कर आपने ज्योतिष शास्त्र का अध्ययन किया। आप गवर्नमेंट संस्कृत कालेज, वाराणसी के नियमित छात्र थे। प्रतिदिन मध्यान्ह में आप म० म० श्री गंगाधर शास्त्री की सेवा में उपस्थित होकर साहित्य, दर्शन आदि विषयों का अध्ययन करते थे। सरस्वती भवन से प्रकाशित होने वाले "काशीविद्यानिधि (दी पण्डित)" नामक मासिक पत्र की देखभाल करने से आपने ग्रन्थों की सम्पादन कला का ज्ञान प्राप्त किया। आप अंग्रेजी ग्रहगणित के मार्मिक विद्वान् थे। यह ज्ञान आपने म०म०पं० श्री बापूदेव शास्त्री से प्राप्त किया था। आप यूरोपियन प्रकारों का भारतीय सिद्धान्तों के साथ तुलनात्मक विवेचन किया करते थे। इस प्रकार अंग्रेजी ग्रहगणित के मूल सिद्धान्तों का अध्ययन समाप्त कर परीक्षोत्तीर्णता के पश्चात् प्रमाण पत्र लेकर आप अपने गांव पण्डितपुरी लौट आये। साहित्य सम्बन्धी कार्यक्षेत्र का सामयिक ज्ञान होने से आप लखनऊ में मुंशी श्री नवलकिशोर सी० आई० ई० (विख्यात रईस) से मिले, जो नवलकिशोर प्रिंटिंग प्रेस के संचालक भी थे। आपने दो प्रस्ताव रखे थे-(ऋगवेद का हिन्दी अनुवाद और
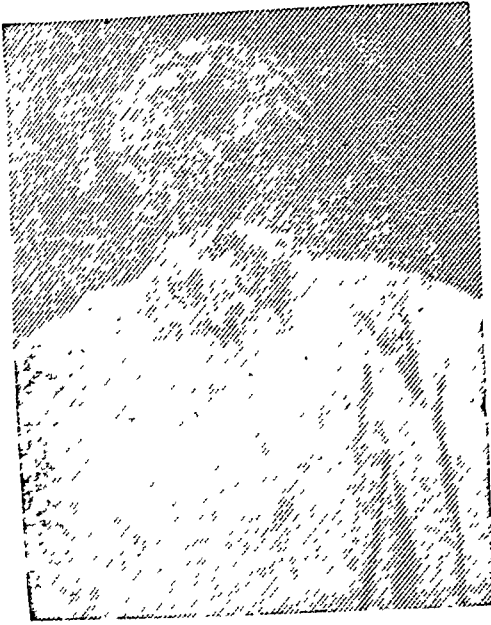
ऋग्वेद का हिन्दी अनुवाद और (२) ज्योतिष के पाठ्यगणित ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद। श्री मुंशीजी ने प्रसन्न होकर आपको ग्रन्थ सम्पादन का कार्य सौंपा था। आपने सर्वप्रथम श्री भास्कराचार्य की लीलावती और बीजगणित का क्रमशः संस्कृत टीका, भाषाभाष्य एवं गणितोत्पत्ति सहित अनुवाद किया, जो लखनऊ से ही प्रकाशित हुआ। दूसरे आपने ऋग्वेद का भी अनुवाद किया परन्तु उसके पूर्ण होने से पूर्व ही श्री मुंशीजी का निधन हो गया और यह कार्य स्थगित करना पड़ा। आप अपने पिता श्री सरयूप्रसाद जी द्विवेदी के पास जयपुर आ गए। (६२-अ)

जयपुर पहुंच कर आपने "रामगुणोदय" नामक चम्पू-काव्य लिखना प्रारम्भ किया, जिसका प्रारम्भिक उद्देश्य महाराज रामसिंह के गुणों का वर्णन करना था। चार सर्ग ही लिख पाये थे कि श्रीकृष्णराम भट्ट का जयपुर विलास प्रकाशित हुआ और आपने उक्त ग्रन्थ का नाम "दशकण्ठवध" कर दिया जिसमें भगवान् श्रीराम का जीवन चरित वर्णित है। यह ग्रन्थ राजस्थान पुरातत्वान्वेषण मन्दिर जोधपुर से प्रकाशित हो चुका है।

संस्कृत कालेज के तत्कालीन प्रिंसिपल श्री रामभज शास्त्री जो व्याकरणशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित थे, आपके व्याकरण विषयक गुरु थे। आपने उनसे महाभाष्य, मंजूषा, व्युत्पत्तिवाद आदि महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का अध्ययन प्रारम्भ किया था। इन दिनों जयपुर में म० म० श्री दुर्गाप्रसाद शास्त्री नामक विद्वान् काव्यमाला का सम्पादन कर रहे थे और आपने उनके सम्पादन कार्य में पर्याप्त सहयोग दिया। आपकी विद्वत्ता से प्रभावित तत्कालीन विद्वानों ने आपको सम्मानित पद प्रदान किया था।

संस्कृत कालेज में ज्योतिषाध्यापक की आवश्यकता होने पर उस पद पर आपकी नियुक्ति हुई। आप अध्यापन कला में प्रवीण थे और इसलिये शिष्य आपका बहुत सम्मान करते थे। अध्यापन के अतिरिक्त आप ज्योतिषशास्त्र पर शोध भी किया करते थे। उस समय 'युक्लिड' की रेखागणित उर्दू भाषा में लिखी मिलती थी। आपने उसका संस्कृत रूपान्तर किया और सम्राट् जगन्नाथ द्वारा लिखित १५ अध्यायों को रेखागणित नामक रचना का तत्कालीन उपलब्ध ग्रन्थों से मेलन कर प्रयोजनीय आवश्यक भाग को ६ अध्यायों में विभक्त किया। इसके ही दो भाग प्रकाशित किये गये जो उत्तम व सरल संस्कृत में लिखे होने के साथ ही नपपति व क्षेत्रों से भी समन्वित थे। यह रचना 'क्षेत्रमिति' के नाम से प्रसिद्ध हुई तथा अनेक स्थानों पर पाठ्यग्रन्थ के रूप में स्वीकृत भी हुई।

कुछ समय पश्चात् आप पदोन्नत होकर ज्योतिष विभाग के प्राध्यापक बने। आचार्य परीक्षा तक अनेक छात्रों ने आप से ज्योतिष का अध्ययन किया और आपकी अध्यापन कुशलता को सुन कर भारत के प्रत्येक प्रान्त से पढ़ने के लिये जयपुर आने लगे। इसी प्रसंग में आचार्य श्रेणि में पाठ्यग्रन्थ के रूप में निर्धारित 'जैमिनिसूत्र' को आपने सुन्दर श्लोकबद्ध अनेक छन्दों में निर्मित कर 'जैमिनिपद्यामृत' के नाम से प्रसिद्ध किया। इसमें जैमिनि के दुर्बोध, जटिल तथा अव्यवस्थित सूत्रों की व्याख्या (छात्रोपयोगी) प्रस्तुत की गई है।

(६२-अ)—आपका परिचय "दुर्गापुष्पाञ्जलिः" की भूमिका (पुरातत्व मन्दिर, जोधपुर से प्रकाशित) माधुरी अंक में प्रकाशित श्री महादेव प्रसाद द्विवेदी एवं श्री गंगाधर द्विवेदी के लेख पर आधारित है, जो स्वतन्त्र रूप से सन् १९४६ में लखनऊ से प्रकाशित हुआ है।

कालक्रमानुसार आप महाराज संस्कृत कालेज के प्राचार्य बनाये गये। (९२–आ) संस्कृत कालेज मे उपलब्ध प्राचीन रिकार्ड से ज्ञात होता है कि आपने मई, १९११ से इस पद पर कार्य करना प्रारम्भ किया था और सन् १९२५ तक कार्य करते रहे थे। (९२–इ) संस्कृत कालेज, जयपुर के प्राचार्य पद पर कार्य करते हुए आपकी सेवायें उल्लेखनीय एव चिरस्मरणीय हैं। इस दीर्घकालीन अवधि में आपने **चातुर्वर्ण्य शिक्षा** सदृश महत्वपूर्ण ग्रन्थ का प्रणयन किया आपने संस्कृत कालेज से सेवानिवृत्त होने पर भी सरस्वती साधना न छोड़ी जिज्ञासु छात्रों की जिज्ञासा शान्त करने में तथा विद्वानों की संगति में आप अपना जीवन बिताया करते थे। अधिक अस्वस्थता पर आप अपनी मातृभूमि पण्डितपुरी पधार गये, जहां समस्त परिवार के समक्ष ध्यानमग्न होकर चैत्र कृष्णा ८, विक्रम संवत् १९९४ में आपने ब्रह्मसायुज्य प्राप्त किया। आपका अन्तिम संस्कार भगवती वासिष्ठी सरयू नदी के तट पर किया गया।

जयपुर नगर में रहते हुए आपके जीवन की अनेक महत्वपूर्ण घटनायें उल्लेखनीय हैं। सन् १९०४ ई० में राजाज्ञानुसार आप अपने शिष्यवर्ग तथा अन्य राज्य ज्योतिषियों सहित बम्बई की 'पंचांग शोधन सभा' में सम्मिलित होने हेतु गए थे। इस सभा के अध्यक्ष थे शृंगेरी मठाधीश जगद्गुरु शंकराचार्य। इस सभा का आयोजन लोकमान्य गंगाधर तिलक व अन्य प्रसिद्ध ज्योतिषियों ने मिलकर किया था। भारत के प्रत्येक प्रान्त से अनेक प्रसिद्ध ज्योतिषी यहां उपस्थित हुए थे। यहां पंचाङ्ग विषयक संशोधन प्रस्तुत किया गया था और तदनुसार सर्वसम्मति से नवीन करण ग्रन्थ (ग्रहलाघव के नमूने पर) बनाने का निश्चय किया गया था। पुराने धार्मिक रूढिवादी और नवीन कायाकल्प के गणितज्ञों ने उदयास्त, ग्रहण आदि के दृक्प्रत्यय कारक संस्कारों का विचार विनिमय किया। यह विवादग्रस्त विषय था, अतः निर्णय न हो सका। वर्षों बाद पुनः दक्षिण देश के सांगली नामक संस्थान पर पुनः इस सम्मेलन का आह्वान किया गया परन्तु वहां भी निर्णय न हो सका और साम्प्रदायिक गुत्थियां उलझती ही गई। आपने इस अवसर पर पूर्वापर समन्वय के साथ निर्णयात्मक श्लोकवद्ध एक निवन्ध लिखा था, जो **पंचांगतन्त्र** के नाम से प्रसिद्ध है। आप के इस निबन्ध को सुनकर सभाध्यक्ष जगद्गुरु शंकराचार्य ने आपको 'ज्योतिः कविकलानिधि' की उपाधि से सम्मानित किया था। सन् १९१६ ई० में आप हिन्दू विश्वविद्यालय वनारस के शिलान्यास समारोह में जयपुर की ओर से प्रतिनिधि के रूप में सम्मिलित हुए थे। आप वहां के फैकल्टी आफ ओरियन्टल लर्निग के सभासद तथा परीक्षक थे। इसी प्रकार आप यू० पी० बोर्ड आफ संस्कृत स्टडीज के भी सदस्य बनाये गये। १९१८ में आपके द्वारा निर्मित चातुर्वर्ण्य शिक्षा की हस्तलिखित प्रति डा० वेनिस, प्रिंसिपल संस्कृत कालेज, वाराणसी को दिखाई गई, जिससे देखकर वह पाश्चात्य विद्वान् आपकी विद्वत्ता पर मुग्ध हो उठा। जब शिक्षाधिकारियों को उक्त ग्रन्थ का महत्व ज्ञात हुआ तो उक्त प्रान्त सरकार की ओर से आप को महामहोपाध्याय की पदवी देने का निश्चय किया गया। कविशिरोमणि भट्ट श्री मथुरा नाथ शास्त्री ने आपका सादर स्मरण इस प्रकार किया है :—

"ज्योतिःशास्त्रसिद्धान्ताऽवबोधनप्रसिद्धान् भूरितन्त्रमन्त्रदीक्षाऽऽगमसिद्धान्प्रसमीक्षध्वम्
दुर्गमत्रिकोणक्षेत्रमितिकलनाढ्यान् पुनश्चातुर्वर्ण्यवर्णनाप्रवीणान् सुपरीक्षध्वम्।"

(९२–आ)—संस्कृत कालेज जयपुर में उपलब्ध प्राचीन उपस्थिति पत्रकों के अनुसार आप जनवरी, १८९८ से प्राध्यापक के पद पर तथा सन् १९११ से आपका उल्लेख उक्त कालेज के प्राचार्य पद पर किया गया है।

(९२–इ)—यह उल्लेख प्राचार्य संस्कृत कालेज से प्राप्त सूचना पर आधारित है।

काव्यमर्मविज्ञान् श्राव्यरचनाचमत्कृतिकान् महामहोपाध्यायान्मुनिप्रायानपेक्षध्वस्
राजकीयपाठशालाऽध्यक्षान् स्थूललक्ष्यान् सदा श्रीदुर्गाप्रसादकृतिदक्षानभिवीक्षध्वम् ॥"

(जयपुरवैभवम्–नागरिकवीथी–सुधीचत्वरः पृ० २४६–५०, प०५८)

आपका रचनात्मक कार्य इस रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है :—

क्रम	नाम रचना	विषय	विवरण
१.	उपपत्तिन्दुशेखर :—भास्कराचार्य कृत सिद्धान्तशिरोमणि का सोपपत्तिक संस्कृत भाष्य	ज्योतिष	जयपुर से प्रकाशित
२.	लीलावती—भास्करीय पाटी गणित–विलासी नामक संस्कृत टीका व भाष्य	ज्योतिष	लखनऊ से प्रकाशित
३.	बीजगणित—भास्करीय–विलासी नामक संस्कृत टीका व भाष्य	ज्योतिष	लखनऊ से प्रकाशित
४.	क्षेत्रमिति—पं० जगन्नाथ सम्राट की रेखागणित पर आधारित	ज्योतिष	लखनऊ से प्रकाशित
५.	जैमिनि पद्यामृत—जैमिनि मुनि के सूत्रों का परिष्कार व श्लोकबद्ध निबन्ध	ज्योतिष	बम्बई से प्रकाशित
६.	सूर्यसिद्धान्त समीक्षा	ज्योतिष	बम्बई से प्रकाशित
७.	अधिमास परीक्षा	ज्योतिष	बम्बई से प्रकाशित
८.	पंचांग तत्व	ज्योतिष	लखनऊ से प्रकाशित
९.	पंचांगाभिभाषण	ज्योतिष	लखनऊ से प्रकाशित
१०.	गोलक्षेत्रमिति	ज्योतिष	अप्रकाशित
११.	गोलत्रिकोणमिति	ज्योतिष	अप्रकाशित
१२.	चतुर्वर्ण्य शिक्षा	धर्मशास्त्र	लखनऊ से प्रकाशित
१३.	वेद विद्या	धर्मशास्त्र	अप्रकाशित
१४.	ब्रह्म विद्या	धर्मशास्त्र	अप्रकाशित
१५.	साहित्य दर्पण छायाविवृत्ति	साहित्य	बम्बई से प्रकाशित
१६.	दशकण्ठवधः	चम्पूकाव्य	रा. प्रा. जोधपुर से
१७	दुर्गापुष्पाञ्जलिः	स्तोत्र साहित्य	" "
१८.	देवराजचरितम्	काव्यम्	बम्बई से प्रकाशित
१९.	भारतीयसिद्धान्तादेशः	प्रकीर्णक	बम्बई से प्रकाशित
२०.	भारतशुद्धिः	प्रकीर्णक	प्रकाशनार्थ स्वीकृत
२१.	भारतालोकः	प्रकीर्णक	" "
२२.	मनुयाज्ञवल्कीयम्	धर्मशास्त्र	अप्रकाशित
२३.	श्रीमद्भगवद्गीता सुबोधकौमुदी	दर्शन	बम्बई से प्रकाशित
२४.	ईश्वर भक्तिः (हिन्दी)	———	लखनऊ से प्रकाशित

इनके अतिरिक्त आपके द्वारा अनेक पद्य व समस्यायें आदि संस्कृत रत्नाकर के प्राचीन अंकों में प्रकाशित हुए हैं। आपकी विद्वत्ता एवं रचनाओं से संस्कृत साहित्य में पर्याप्त वृद्धि हुई है।

६३. श्री दुर्गाप्रसाद नांगल्या

श्री दिगम्बर जैन संस्कृत कालेज, जयपुर के प्रधानाचार्य के रूप में श्री नांगल्या का नाम प्रसिद्ध है। आप इस कालेज के स्थायी प्रिंसिपलों में से एक है। स्वर्गीय पं० श्री चैनसुखदासजी न्यायतीर्थ के पश्चात् जिनने ३८ वर्ष इस कालेज में रहकर इसके स्तरवर्द्धन में पर्याप्त श्रम किया, आपका ही नाम लिया जाता है। जैन संस्कृत कालेज से प्राप्त रिकार्ड के आधार पर कहा जा सकता है कि आपने उक्त कालेज में १ मार्च, १९०० से २३ अगस्त, १९२४ तक प्रधानाचार्य का कार्य किया। (६३-अ) इस अवधि में जयपुर नगर संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में पूर्ण युवावस्था में था। अनेक सुप्रसिद्ध विद्वानों विद्यावाचस्पति मधुसूदन झा, म० म० पं, श्री दुर्गाप्रसाद शास्त्री, म० म० पं० श्री दुर्गाप्रसाद द्विवेदी, म० म० पं० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, राजवैद्य श्री कृष्णरामभट्ट, पं० सूर्यनारायणजी शास्त्री, भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री, श्री वीरेश्वर शास्त्री द्राविड़, श्री लक्ष्मीरामजी स्वामी प्राणाचार्य प्रभृति का कार्यक्षेत्र था। इस समय में आपने भी पं० श्री इन्द्रलालजी शास्त्री जैन, श्री भंवरलाल न्यायतीर्थ प्रभृति अनेक उद्भट विद्वानों की सर्जना की। आपने २४ वर्ष की अवधि में अनेक जैन विद्वानों को साहित्य मर्मज्ञ बनाया। इस लिए जैन सम्प्रदाय तथा विशेषत: दिगम्बर जैन संस्कृत कालेज के कार्यकर्त्ता आपके चिर ऋणी हैं। आपका नाम जैन संस्कृत कालेज के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से उल्लेखनीय हैं।

आप जाति से दाधीच ब्राह्मण थे तथा जयपुर के स्थायी निवासी थे। आप साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान् श्री गोपीनाथ शास्त्री दाधीच के सम्बन्धी थे। आपके जीवन चरित्र के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी प्राप्त नहीं होती। आपका रचनात्मक कार्य भी उपलब्ध नहीं है।

---

६४. श्री दुर्गाप्रसाद वैद्य

आपका जन्म जयपुर नगर में ही आश्विन कृष्णा १३ संवत् १९६२ को हुआ था। आपके पिता श्री महादेवजी शर्मा जयपुर नगर के सुप्रसिद्ध वैद्य थे। श्री महादेवजी के संरक्षण में ही आपकी शिक्षा-दीक्षा हुई। आप प्राणाचार्य स्वामी श्रीलक्ष्मीरामजी महाराज के प्रथम शिष्य थे। आपने सवत् १९४९ में प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त कर

(६३-अ)—परिचय खण्ड में प्रदत्त जैन संस्कृत कालेज का परिचय। यह परिचय पं० श्री चैनसुख दास न्यायतीर्थ, तत्कालीन प्रिंसिपल द्वारा भेजा गया था।

प्रवेशिका परीक्षा उत्तीर्ण की। श्री लक्ष्मीरामजी महाराज के गुरु राजवैद्य श्री कृष्णरामजी भट्ट की सेवा में रहकर आपने आयुर्वेद का अध्ययन किया। संवत् १९५२ में आपने भिषक् उपाध्याय परीक्षा उत्तीर्ण की। यों तो आप स्वामीजी महाराज के मित्र थे तथा उनकी मित्रमण्डली में रहते थे, परन्तु श्री कृष्णरामजी भट्ट के दिवंगत होने के कारण उनके शिष्य के रूप में रह कर संवत् १९५४ में भिषग्वरशास्त्री तथा संवत् १९५८ में भिषगाचार्य उत्तीर्ण की। (६४–अ) आप शास्त्री में प्रायोगिक परीक्षा में विशिष्ट घोषित किए गए थे, अतः स्वर्णपदक से सम्मानित किये गये थे। आचार्य में भी आपकी योग्यता से प्रभावित होकर परीक्षक ने निम्नलिखित पद्य द्वारा आपका सम्मान किया था—

"विप्रो दुर्गाप्रसादाख्यो व्युत्पत्तिं वैद्यकेऽगमत्।
सुखं हितं चिरं जीव्यात् तथा न्हन् जीवयत्यसौ॥"

आपकी ग्रन्थाध्ययन प्रणाली से प्रभावित होकर स्वामी श्री लक्ष्मीरामजी ने आपको वैद्यभूषण की उपाधि से सम्मानित किया। म० म० श्री चतुर्वेदीजी ने अपनी आत्मकथा में आपका उल्लेख किया है। आपके कनिष्ठ भ्राता पं० श्री लक्ष्मीनारायणजी वैद्य इस समय धन्वन्तरि औषधालय जयपुर में मैनेजर (व्यवस्थापक) के पद पर कार्य कर रहे हैं। भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री ने आपका स्मरण इस प्रकार किया है :—

"आयुर्वेदतन्त्रे प्राप्य मान्यमिहाचार्यपदं कार्यनैपुणों यो बहिर्भ्रान्त्वा परिचीयताम्
नव्यरीतिभव्यभेषजालयमुदंचन्निह दीर्घरोगदावदढाऽऽघाती संनिधीयताम्।
अर्थेऽवदधानः क्षेमेन्द्रोक्तिचंचरीको भृंशं जोषं प्राप्य भूरिवैखरीकोऽसौ समीयताम्
औषधालयैकनिलयत्वाच्चारुचर्यः सदा श्रीदुर्गाप्रसादवैद्यवर्यः परिचीयताम्॥" (६४–आ)

आपका एक लेख आयुर्वेदांक वर्ष २ संख्या १२ सन् १९३४ में प्रकाशित हुआ था जो स्वामी श्रीलक्ष्मीरामजी के जीवनपरिचय व अध्यापन पद्धति से संबद्ध था। आप अपने समय के उल्लेखनीय वैद्यों में स्मरणीय हैं।

———

६५. श्री देवेन्द्र भट्ट

भट्टमेवाड़ा जातीय प्रसिद्ध राजवैद्यवंशज श्री देवेन्द्र भट्ट का जन्म श्रीकृष्णराम आयुर्वेद भवन, गणगौरी बाजार जयपुर में फाल्गुन कृष्णा २ संवत् १९८१ तदनुसार १० फरवरी, १९२५ को हुआ था। आप राजवैद्य श्री कृष्णराम भट्ट के प्रपौत्र, राजवैद्य श्री गंगाधर भट्ट के पौत्र तथा राजवैद्य श्री नरहरि भट्ट के सुपुत्र हैं।

(६४–अ)—शास्त्रिपरीक्षोत्तीर्णच्छात्राणां नामादीनि क्रमांक २३, आचार्य० क्र० ४।
(६४–आ)—जयपुरवैभवम्–नागरिकवीथी–सुवीचत्वरः पृष्ठ २६४, पद्य संख्या ७६।

आपने कुल परम्परागत आयुर्वेदविद्या का अध्ययन कर सन् १९६१ में भिषगाचार्य परीक्षा उत्तीर्ण की आप इस समय राजकीय आयुर्वेदिक महाविद्यालय, जयपुर में ही अध्यापन करते हैं। आपने आयुर्वेद शिक्षाभ्यास अपने पितृचरण श्री नरहरि भट्ट तथा तत्कालीन प्राध्यापक श्री कल्याणप्रसादजी शर्मा (काली पहाड़ी वाले) से किया था। आपका अधिकांश समय पारिवारिक सम्पत्ति के सुव्यवस्थित एवं स्थिरीकरण में लगा। (९५–अ)

जयपुर में विद्यमान अनेक संग्रहालयों में राजवैद्य महाकवि भट्ट श्री कृष्णराम संग्रहालय का नाम उल्लेखनीय है। इसकी दो विशेपतायें हैं। एक तो इसमें श्री कृष्णराम भट्ट प्रभृति विद्वान् लेखकों के हस्तलेख प्रकाशित तथा अप्रकाशित रूप में सुरक्षित हैं। इसकी सुरक्षा का श्रेय श्री देवेन्द्रजी को दिया जाना चाहिये। अनेक जीर्णशीर्ण हस्तलेखों को व्यवस्थित कर आप उनके प्रकाशन में व्यस्त हैं। उक्त महाकवि की एक बहुमूल्य कृति "कच्छवंश महाकाव्य' जिसमें २० सर्गो में कछवाहों (आमेर–जयपुर के शासकों) का सम्पूर्ण इतिवृत्त वर्णित है, अभी अप्रकाशित है। आप उसके प्रकाशन की व्यवस्था में सलग्न है। अभी हाल ही में आपने अपने प्रपितामह श्री कृष्णराम भट्ट विरचित "सिद्धभैषजमणिमाला" नामक सिद्ध आयुर्वेद ग्रन्थ के प्रयोग खण्ड की मणिप्रभा नामक हिन्दी व्याख्या कर प्रकाशित की है। यह एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसी प्रकार आपने "प्रतापप्रताप" नामक हिन्दी काव्य की पूर्ति की है। आप सामयिक लेख भी लिखते रहते हैं। इस संग्रहालय की दूसरी विशेषता है आयुर्वेद के अलभ्य ग्रन्थों की प्राप्ति। यहां सर्वाधिक ग्रन्थ आयुर्वेद के हैं तथा सभी महत्वपूर्ण एवं व्यस्थित हैं।

पुस्तकालय एवं संग्रहालय का संरक्षण भी संस्कृत साहित्य के विकास में योग का एक बिन्दु है। आपका प्रयास इसी दृष्टि से स्तुत्य है। आजकल आप आयुर्वेद कालेज उदयपुर में व्याख्याता हैं।

———

९६. श्रीधन्नालाल भट्ट

आप तार्जीमी सरदार कथाभट्ट श्री हरगोविन्दजी नामावाल (श्रीछोटेलालजी) के प्रपौत्र, श्रीवृन्दावनजी कथाभट्ट के पौत्र, श्री हीरालालजी के सुपुत्र थे। आपने स्वतन्त्र रूप से विद्वानों के सम्पर्क में रहकर ज्ञानोपार्जन किया था। उल्लेखनीय विद्वानों में जिन्हें गुरु की संज्ञा दी जा सकती है, विद्यावाचस्पति श्री मधुसूदन ओझा का नाम स्मरणीय है। आपने वैदिक शास्त्र समीक्षा के साथ ही वर्ण विज्ञान में विशेष ज्ञान प्राप्त किया था। श्री ओझाजी की 'वर्णमातृका' पर विशेष अध्ययन व शोध कार्य किया था। इस विज्ञान के विशेषज्ञों का इस समय अभाव ही है। वर्णविज्ञान के अतिरिक्त आप 'स्वरशास्त्र' के भी विशेषज्ञ थे। आपने स्वरों की साधना की थी। आपको योगी की संज्ञा दी जाती थी। आपने स्वरशास्त्र का ज्ञान श्री बुधरामजी को दिया था, जो आपके शिष्य हैं।

(९५–अ)—आपका परिचय स्वयं द्वारा प्रदत्त तथ्यों पर आधारित है।

यों जीवन में आपने अपने वंशपरम्परागत कथावाचन के कार्य को ही बड़ी कुशलता से सम्पन्न किया । आपकी गणना श्रेष्ठ कथावाचकों में की जाती रही है । आप कभी-कभी लेख भी लिखा करते थे । भारती मासिक पत्र में प्रकाशित आपका लेख 'गणपति चतुर्थी' तन्त्रशास्त्र एवं स्वरशास्त्र के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हुए गणपति के दिवस का महत्व प्रकट करता है । इसका प्रारम्भिक पद्य है :—

"गंबीजं ऋद्धिसिद्धि च लक्ष्यलाभं स्मराम्यहम् ।
गणपतिचतुर्थीयं धनलाभकरी भव ।।" (भारती पत्रिका, वर्ष १ अंक ११)

आप कविता भी किया करते थे । आपके कुछ पद्य संस्कृत रत्नाकर व भारती में प्रकाशित हुए हैं । संस्कृत रत्नाकर में प्रकाशित समस्या पूर्ति का एक पद्य दर्शनीय है ।—

'हस्थानमाद्यं प्रददाति हिन्दी तत्रैव भात्या भवतीति हिन्दू ।
ज्ञात्वाक्षरं त्वंधन निर्भयोऽवनेः प्रकर्षमीयाद् भरतस्य वर्षम् ।। (सं० रत्नाकर १३।२)

इस पद्य पर सम्पादक की टिप्पणी है—"समस्यापूर्ति प्रकाशनावसरेऽवशिष्टासु विलेक्षणैका पूर्तिः मनोवृद्धि-विनोदाय समुपस्थाप्यते पाठकानां पुरस्तात्" । इसमें जो भी विलक्षणता है, वह स्वर विज्ञान से सम्बन्ध है । हिन्दी हिन्द हिन्दुस्तान आदि शब्दों में अक्षर 'ह' कार है । शब्द की उत्पत्ति से पूर्व हकार की उत्पत्ति होती है । आकाश का बीज ह है, आकाशबीज होने से ही हकार की उत्पत्ति हुई है । हं ह अर्थात् हकार रूप शिव को प्रदान करने वाली हिन्दी सबका कल्याण करे इत्यादि व्याख्या दर्शनीय है । आप वर्णमालाचार्य के नाम से विख्यात विद्वान् रहे हैं ।

---

६७. श्री नन्दकिशोर खाण्डलः (वैद्यः)

राजस्थान प्रान्त में आयुर्वेद विभाग के प्रथम निदेशक स्वर्गीय श्री नन्दकिशोरजी वैद्य अपने समय के सफल चिकित्सक रहे हैं । आयुर्वेद विद्या आपके कुल परम्परा से चली आ रही निधि है । आपके पितामह श्री आनन्दीलालजी महाराज जयपुर राज्य के परम सम्माननीय वैद्य थे । इनके कनिष्ठ भ्राता श्री सुखलालजी के सन्तति न होने पर आपने जयपुर से कुछ दूर चौमूं नामक ग्राम में लब्धजन्मा श्री श्यामलालजी को दत्तक रूप में स्वीकार कर लिया । श्री सुखलालजी के अल्पावस्था में ही दिवंगत होने पर आपने ही श्री श्यामलालजी का पालन पोषण किया । और शिक्षित भी किया श्री श्याम लालजी आयुर्वेद तथा यूनानी दोनों ही चिकित्सा पद्धतियों में निष्णात थे । आपके दो पुत्र हुए, जिनमें प्रथम हमारे चरित्रनायक श्री नन्दकिशोरजी थे तथा द्वितीय श्रीयुगलकिशोरजी शर्मा जो संस्कृत परीक्षाओं के रजिस्ट्रार व निरीक्षक आदि रहे । आपका वंशवृक्ष इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है । (६७–अ)

(६७–अ)—राजस्थान आयुर्वेद दर्शन, १९६६–राजस्थान प्राच्यविद्या समिति का वार्षिक प्रकाशन–व्यक्ति और व्यक्तित्व–चिकित्सा चूड़ामणि श्री श्यामलालजी महाराज लेख के आधार पर–लेखक श्री रविशंकरजी शास्त्री ।

उपर्युक्त विवरण से सिद्ध होता है कि आपका जन्म चिकित्सा प्रणाली के नवीन आविष्कर्ता चिकित्सा चूड़ामणि राजवैद्य पं० श्यामलालजी महाराज के ज्येष्ठ पुत्र के रूप में हुआ। आप जयपुरीय संभ्रान्त खाण्डल विप्र परिवार के सदस्य थे। आपके पिता जयपुर नरेश महाराज माधवसिंह द्वितीय के निजी चिकित्सक थे। श्री श्याम लालजी प्राणाचार्य श्री स्वामी लक्ष्मीरामजी के सतीर्थ्य थे तथा समवयस्क भी। दोनों ही व्यक्ति अपने समय के सुप्रसिद्ध चिकित्सक रहे हैं।

श्री नन्दकिशोरजी की प्रारम्भिकी शिक्षा इस राजवैद्य परिवार के कुलगुरु तपोनिष्ठ महात्मा पं० गंगाधरजी शास्त्री देखरेख में हुई। तदनन्तर आपने अपनी कुलपरम्परागत वैद्य विद्या में निपुणता प्राप्त करने हेतु महाराज संस्कृत कालेज की आयुर्वेदोपाध्याय कक्षा में प्रवेश लिया। प्रारम्भ से ही आप मेधावी तथा कुशाग्रबुद्धि थे। इस परीक्षा में आपने भट्टमेवाड़ाजातीय वैद्य श्री गंगाधरजी के चरणों में रहकर सफलता प्राप्त की। (६७-आ) उपाध्याय परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् आपने नियमित छात्र के रूप में संस्कृत कालेज से संवत् १९७५ में आयुर्वेदशास्त्री प्रथम श्रेणि में तथा संवत् १९७८ में आयुर्वेदाचार्य परीक्षा द्वितीय श्रेणि में उत्तीर्ण की। कालान्तर में श्री गंगाधर भट्ट के सेवा निवृत्त होने पर आपको उनके स्थान पर कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ। आपकी प्रथम नियुक्ति ३० अक्टूबर, १९२४ ई० को हुई थी। (६७-इ) आपकी विशिष्ट प्रतिभा से प्रभावित होकर महामना मदनमोहन मालवीय ने आपको हिन्दू विश्वविद्यालय के लिये आमन्त्रित किया। आपने कुछ समय तक वहां कार्य किया, परन्तु स्थायी रूप से रहना समयोचित न जानकर जयपुर लौट आये। इसके पश्चात् स्वामीजी महाराज के सेवामुक्त होने पर आप आयुर्वेद विभाग के प्राध्यापक बने। इस पद पर आपने १ अक्टूबर, १९३३ से सन् १९४५-४६ तक कार्य किया। आयुर्वेद विभाग के संस्कृत कालेज से स्वतन्त्र हो जाने पर आप उक्त आयुर्वेद कालेज के प्रथम प्राचार्य बने। कालान्तर में आयुर्वेद का अलग विभाग स्थापित किया गया और उसके सर्वप्रथम निदेशक नियुक्त किये गये। आयुर्वेद के विकास में आपका महत्वपूर्ण योगदान है। आपका जन्म १९ नवम्बर, १९०१ को हुआ था। (६७-ई)

(६७-आ)—रा० आयुर्वेद दर्शन–जयपुर के तीन आयुर्वेद शिक्षाशास्त्री पृष्ठ ७८-८०।

(६७-इ)—लिस्ट आफ एजू० आफिसर्स–म० सं० कालेज–क्रमांक ७ आयुर्वेद प्राध्यापक।

(६७-ई)—लिस्ट आफ एजू० आफिसर्स–म० सं० कालेज–क्रमांक ७ तथा उपर्युक्तलेख पृ० ७९।

कविशिरोमणि भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री ने आपका उल्लेख इस प्रकार किया है :—

"चरकादिपुराणभिषङ्निगमे भृशमेतमुपेतमति हृद्यवगच्छत
गुरुदत्तसमस्तभिषग्भवं नृपवंशचिकित्सकमच्छलमृच्छत ।
सरलस्मितभाषिणमृद्धमिमं गुणिगायकगीतिगुणानपि पृच्छत
तनुशोषक-रुक्परिशोषपटुं ननु नन्दकिशोरभिषङ्मणिमिच्छत ।।" (६७-उ)

आप चरक के प्रकाण्ड पण्डित एवं विशेषज्ञ माने जाते थे। जयपुर के आयुर्वेदीय साहित्य को आपका अभूतपूर्व योगदान रहा है।

---

६८. श्री नन्दकिशोर शर्मा नामावालः

श्री नामावाल के पूर्वज पं० जगन्नाथजी पोकरण ठिकाने के राजपुरोहित थे जो ठाकुर श्री श्यामसिंह के के साथ जयपुर आये थे। ठाकुर साहब श्री सलीमसिंहजी (पोकरण) की पुत्री जयपुर नरेश महाराज सवाई जगत् सिंह की पत्नी थी, जो चांपावतजी चन्द्रकुंवरजी के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध हैं। इन्होंने संवत् १८६४ में श्री छोटेलालजी नामावाल को एक मन्दिर बनाकर भेंट किया था, जो आज भी इनके अनुवंशजों के अधीन है। श्री छोटेलालजी नामावाल का परिचय इसी खण्ड के परिचय क्रमांक ४५ पर प्रस्तुत किया जा चुका है। आप उनके प्रपौत्र हैं।

आपका जन्म ३ दिसम्बर, १६०४ को जयपुर में ही हुआ था। (६८-अ) आपकी शिक्षा-दीक्षा महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर में ही सम्पन्न हुई। आपने साहित्य विषय से शास्त्री परीक्षा प्रथम श्रेणि में संवत् १६८१ में तथा साहित्याचार्य परीक्षा संवत् १६८३ में द्वितीय श्रेणि में उत्तीर्ण की थी। (६८-आ) आपकी यह शिक्षा पं० श्री बिहारीलालजी दाधीच प्राध्यापक साहित्य के सान्निध्य में हुई थी।

महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर से साहित्याचार्य परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् आप जयपुर स्टेट द्वारा नियमित शोध छात्र के रूप में छात्रवृत्ति प्राप्त कर गवर्नमेंट संस्कृत कालेज, वाराणसी गये। वहां आपको पुस्तकालय की शिक्षा प्राप्त करनी थी तथा संस्कृत की अग्रिम योग्यता के साथ शोध कार्यों में भी प्रगति भी करनी थी। आप साढ़े पांच वर्ष तक वाराणसी में रहे। आपके शोध निदेशक महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज थे, जो उस समय गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज, के प्रिंसिपल तथा संयुक्त प्रान्त के संस्कृत अध्ययन के अधीक्षक भी थे। वाराणसी में रहते हुए आपने जो ज्ञानार्जन किया उसका उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है :—

१. पुरालेख तथा पुरालिपिशास्त्र, (Epigraphy and Palaeography)

आपने प्राचीन भारतीय शिलालेखों का अध्ययन किया तथा उनसे ऐसे तथ्य प्रस्तुत किये जो सर्वथा नवीन थे। ये शिलालेख सम्राट अशोक के पश्चात् से लेकर गुप्तकाल और परवर्ती शासकों से सम्बन्ध थे। ये अधिकांश रूप में ब्राह्मी लिपि में लिखे हुए थे।

(६७-उ)—जयपुर वैभवम्-नागरिकवीथी-सुधीचत्वरः-पृष्ठ २६५-पद्य संख्या ७७।
(६८-अ)--लिस्ट आफ एजू० आफिसर्स-संस्कृत कालेज-क्रमांक २१-पण्डित व्याकरण।
(६८-आ)—शास्त्रीपरीक्षोत्तीर्णच्छात्राणां नामादीनि क्रमांक १६१ तथा आचार्य क्र० ६३।

२. मुद्राशास्त्र अथवा टंक विज्ञान, (Numismatics)

आपने उत्तरी भारत में प्राप्त विभिन्न सिक्कों (Coins) का विश्लेषण किया था, जो मुगलकाल से पूर्ववर्ती समय के माने जाते थे।

३. सूचीपत्र निर्माण. (Catalogue Making)

आपने हस्तलिखित ग्रन्थों के सूचीपत्र निर्माण में तकनीकी योग्यता प्राप्त की थी तथा अनेक ग्रन्थों का सूचीपत्र निर्माण भी किया था।

४. संदर्भ ग्रन्थसूची. (Bibliography)

आपने संस्कृत कालेज, वाराणसी में विद्यमान काव्य साहित्य (गद्य चम्पू आदि) तथा वैष्णव सम्प्रदाय *(सभी अवान्तर सम्प्रदायों सहित)* के उपलब्ध सभी ग्रन्थों का पूर्ण सूचीपत्र तैयार किया था। वाराणसी के शोध-पत्र 'सारस्वतालोक' में आपने संस्कृत कवि परिचय नामक शीर्षक से एक लेख प्रकाशित करवाया था।

धर्मशास्त्र. (Dharmshasastra)

आपने हिन्दू नियम शास्त्र (Hindu Laws) का नवीन दृष्टि से अध्ययन करते हुए किन्हीं विशेष दृष्टियों से विश्लेषण प्रस्तुत किया था। आपने इसी दृष्टि से 'प्रायश्चित' पर एक शोधपूर्ण ग्रन्थ भी लिखा था।

६ सामान्य कार्य. (Miscellaneous work)

आपने अपने शोधपूर्ण लेख भी लिखे हैं, जिनका माध्यम संस्कृत तथा हिन्दी रहा है। इन लेखों का विवरण इस प्रकार है :--(६८-इ)

(१) माधुर्यादिगुणाः शृगांरादिरसाणां धर्माः (जुलाई-अगस्त, १९२८)
(२) व्याकरणे प्रश्नाः (सितम्बर, १९२८)
(३) मुद्राराक्षस नाटक में राक्षस के नामकरण का कारण (दिसम्बर, १९२८)
(४) म० म० पं० शिवदत्त शर्मा दाधिमथः का संक्षिप्त विवरण (जनवरी, १९२९)
(५) ए रिक्वेस्ट टू दी राजाज (अंग्रेजी में) अगस्त-सितम्बर, १९२९)
(६) ए रिजल्ट आफ अकच प्रत्यर्थ (अक्टूबर, १९२९)
(७) डेबलेपमेंन्ट आफ रस (दिसम्बर, १९३० व जनवरी-फरवरी, १९३१)
(८) प्राकृत आफ पंचीकरण इन दी रस (मार्च, १९३१)
(९) आशोच व्यवस्था (ज्येष्ठ पूर्णिमा संवत् १९८८)
(१०) जीवनधर चम्पू और उसके लेखक हरिचन्द्र (ज्येष्ठ पूर्णिमा संवत् १९८९)

(६८-इ)--इन लेखों के क्रमांक १ से ८ तक के लेख सुप्रभातम् संस्कृत पत्रिका, काशी संस्कृत समाज, क्रमांक ९ व १० भारत धर्म महामण्डल, बनारस के पत्र सूर्योदय में, तथा क्रमांक ११ से १६ तक के लेख दधिमथी पत्रिका, जोधपुर में प्रकाशित हुए हैं। क्रमांक १ से १० तक के लेख संस्कृत माध्यम से तथा शेष हिन्दी माध्यम से प्रकाशित हुए हैं।

(११) दाहिमा ब्राह्मण जाति के उज्ज्वल रत्नों का विशेष परिचय (दधिमथी पत्रिका, दिस० १६२६)
(१२) पोकरण की प्राचीनता (अक्टूबर, १६३०)
(१३) मिश्रराजा माधवराय जी का शिलालेख (नवम्बर, १६३१)
(१४) आचार्य हृषीकेशजी धन्वन्तरि (दिसम्बर, १६३१)
(१५) श्रीकिशनलालजी आसोपा (अगस्त, १६३२)
(१३) जोधपुर महाराज बखतसिंहजी के पट्टे (मार्च, १६३३) इत्यादि।

७. **सम्पादन कार्य** (Editorial Work) :—आपने निम्नलिखित ग्रन्थों का व्याख्यात्मक रूप में सम्पादन किया था, जिनकी प्रस्तावना महत्त्वपूर्ण है। इनमें दो ग्रन्थ (एन्सियन्ट संस्कृत टेक्स्टस्) प्रिन्सेस ऑफ वेल्स संस्कृत भवन संस्कृत टेक्स्टस् सीरिज के अन्तर्गत प्रकाशित हुए हैं। (१) नृसिंहप्रसाद—प्रायश्चित्तसार (धर्मशास्त्रीय ग्रन्थ) लेखक दलपतिराय, (२) हर्ष चरित (साहित्य) लेखक बाणभट्ट। इसके अतिरिक्त आपने जयदेवमिश्र की रचना **'चन्द्रालोक'** का प्रकाशन काशी संस्कृत सीरिज, वाराणसी से करवाया था। यह ग्रन्थ संस्कृत की अनेक परीक्षाओं में पाठ्यग्रन्थ के रूप में निर्धारित है। **आनन्दकन्द चम्पू** का प्रकाशन भी वाराणसी से ही करवाया, जो वीरमित्रोदय नामक धर्मशास्त्र ग्रन्थ के लेखक श्री मित्र मिश्र का साहित्यिक ग्रन्थ है। धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में श्री रघुनाथ भट्ट कृत **कालतत्त्व विवेचन** का सम्पादन उल्लेखनीय है, जो दो भागों में प्रकाशित हुआ है। इसी प्रकार श्री त्रिविक्रम भट्ट की साहित्यिक रचना **नल चम्पू** का सम्पादन भी उल्लेखनीय है। यह ग्रन्थ भी प्रकाशित हो चुका है।

आपने हिन्दू विश्वविद्यालय में कुछ समय तक साहित्य विभाग के व्याख्याता के रूप में कार्य किया था। आपके इस महत्त्वपूर्ण कार्य का फल यह हुआ कि आपको भारतधर्म महामण्डल ने 'वेदान्त भूषण' की उपाधि से सम्मानित किया। आप हिन्दू विश्वविद्यालय के बोर्ड ऑफ स्टडीज के सदस्य भी रह चुके हैं। जयपुर राज्य से स्वीकृत छात्रवृत्ति के अतिरिक्त आपको गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज, बनारस ने साधोलाल रिसर्च स्कालरशिप भी प्रदान की थी। वाराणसी से लौटने के पश्चात् जयपुर संस्कृत कालेज में दिनांक २१ दिसम्बर, १६३३ से व्याकरण के पण्डित के पद पर कार्य करना प्रारम्भ किया। कालान्तर में कुछ ही वर्षों के पश्चात् आप इसी कालेज में साहित्य-व्याख्याता बनाए गये, जहां आपने बड़ी कुशलता से अध्यापन कर छात्र वत्सलता प्राप्त की। भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री के अवकाश ग्रहण करने पर आप साहित्य विभाग के प्राध्यापक नियुक्त हुए। आपका अचानक देहावसान हो जाने से आपके पश्चात् इस पद पर श्री जगदीश शर्मा की नियुक्ति हुई। आप बहुत ही सरल स्वभाव के विद्वान् पुरुष थे। आपकी ऐतिहासिक शोध के प्रति विशेष रुचि रही है। कवि शिरोमणि भट्ट मथुरानाथ शास्त्री ने आपका स्मरण निम्नलिखित पद्य द्वारा किया है :—

"यस्य मनसि घनघोर-यत्नो वसति यशःकृते।
नन्दति नन्दकिशोरनामा नामावलवरः॥" (जयपुर वैभवम् पृ० सं० २७३ पद्य ६८)

आपके अनेक समस्यापूर्ति रूपात्मक पद्य संस्कृत रत्नाकर के प्राचीन अंकों में प्रकाशित हुए हैं। उदाहरण के लिए एक पद्य प्रस्तुत है :—

"तनोति जापानमितस्ततो भयं तथेटली राज्यमपि प्रभावति।
यूरोपदेशे विकटं प्रवर्तते समन्ततो जर्मन-युद्धमुद्धतम्॥" (संस्कृत रत्नाकर ८-११)

आप उल्लेखनीय विद्वान् थे। आपके पुत्र श्री महेशचन्द्र शर्मा एम० ए० हैं।

———

६९. श्री नन्दकिशोर शर्मा नैयायिकः

श्री नैयायिकजी के पितृचरण श्री कल्याणबख्शजी शर्मा जयपुर के निवासी थे तथा विद्वत्समाज में दुर्गापाठी ब्राह्मण के रूप मे विख्यात थे। श्री नैयायिकजी का जन्म वैशाख शुक्ला १० विक्रम सवत् १९५० तदनुसार १४ मई, १८९४ को जयपुर मे हुआ था। (६९-अ) आपकी शिक्षा जयपुर मे ही सम्पन्न हुई। आपने पण्डित कन्हैयालालजी न्यायाचार्य की सेवा में रहकर न्याय विषय से शास्त्री परीक्षा सवत् १९७३ मे तथा न्यायाचार्य संवत् १९७९ मे उत्तीर्ण की। आपने १६ दिसम्बर १९२० से असिस्टेन्ट प्रोफेसर न्याय के पद पर कार्य करना प्रारम्भ किया। दिनांक १ अप्रेल, १९४३ को आप न्यायशास्त्र के प्राध्यापक पद पर पदोन्नत हुए।

आपके शिष्यों मे श्री स्वरूपनारायण शास्त्री दाधीच, श्री हरिकृष्ण शर्मा गोस्वामी, श्री रूपनारायण शर्मा न्यायाचार्य, श्री गोविन्दनारायण शर्मा न्यायाचार्य, श्री कृष्णदत्त शर्मा न्यायाचार्य, श्री दीनानाथ त्रिवेदी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

आप मोदमन्दिर धर्मसभा के सम्मानित सदस्य रहे हैं और अन्तिम समय तक इस पद पर कार्य करते रहे है। आपका निधन मार्गशीर्ष शुक्ला १३ विक्रमाब्द २०२३ को जयपुर मे ही हुआ था। आपके निधन से न्याय शास्त्र को अपूरणीय क्षति हुई। आप सरल एवं गम्भीर प्रकृति के विद्वान् थे। आपका रचनात्मक कार्य अनुपलब्ध है।

---

७०. श्री नन्दकुमार शर्मा नामावालः
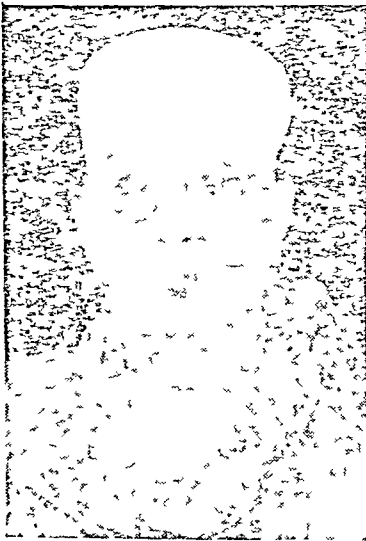
जयपुर ताजीमी सरदार राजगुरु कथाभट्ट पं० श्री हरगोविन्दजी नामावाल (छोटेलालजी, परिचय क्रमांक ४५) के प्रपौत्र श्री नन्दकुमार शर्मा इस समय जयपुर के मूर्धन्य विद्वान् है।* आपके पितृचरण प० श्री घीसीलालजी (प० श्री जयचन्द्रजी) म० म० प० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी के सहाध्यायी थे। आपका जन्म कार्तिक शुक्ला ६ रविवार, सवत् १९५८ तदनुसार १७ नवम्बर, १९०१ को जयपुर मे हुआ था। आपके मातामह दाधीच जाति के पच एव राज्य सम्मानित कथा-व्यास वंशज सूंटवाल अवटक श्री किशनलालजी व्यास भी उल्लेखनीय विद्वान् थे।

आपका विवाह ९ वर्ष की आयु मे ही अर्थात् आषाढ़ कृष्णा २ संवत् १९६७ को जयपुरस्थ दाधीच श्री कन्हैयालाल इनाणिया व्यास बूंदी वालो की ज्येष्ठपुत्री श्रीमती चन्द्रकलाबाई के साथ सम्पन्न हुआ। आपका दाम्पत्य जीवन एक आदर्श व अनुकरणीय माना जाता है।

(६९-अ)-लिस्ट ऑफ एजूकेशनल आफिसर्स—करेक्टेड अपटू १ सितम्बर, १९३५—संस्कृत कालेज, जयपुर, क्रमांक ११-७ असिस्टेन्ट प्रोफेसर्स।

* आपका निधन दिनांक १ अगस्त, १९७९ को हो गया।

आपके ६ पुत्र तथा ४ पुत्रियां हैं। सभी पुत्र योग्य एवं उच्च स्थानों पर प्रतिष्ठित हैं। आपका प्रारम्भिक अध्ययन विवाह के उपरान्त प्रारम्भ हुआ और इसकी देखरेख आपके पितामह श्री नारायणजी किया करते थे। कालान्तर में आप महाराज संस्कृत कालेज के नियमित छात्र बने और आपने प्रवेशिका परीक्षा सन् १९१७ ई० में प्रथम श्रेणी में, उपाध्याय परीक्षा सन् १९२१ में द्वितीय श्रेणी में, साहित्यशास्त्री परीक्षा सन् १९२४ में तृतीय श्रेणि में तथा साहित्याचार्य सन् १९२६ में द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण की।

इनके अतिरिक्त आपने हिन्दी एडवान्स परीक्षा सन् १९३४ में द्वितीय श्रेणी से उत्तीर्ण की। आप अपनी विद्वत्ता के कारण भारतधर्म महामण्डल द्वारा 'साहित्यभूषण' की उपाधि से सम्मानित किये गए थे। (७०–अ)

आपके गुरुओं में पं० श्री बिहारीलाल दाधीच का नाम विशेषतः स्मरणीय है। यों आपने श्री मदनलाल शास्त्री प्रश्नवर से व्याकरण तथा म० म० पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी से दर्शनशास्त्र व पं० श्री चन्द्रदत्तजी ओझा से कविता निर्माण की शिक्षा प्राप्त की थी।

साहित्याचार्य परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् आप बड़े-बड़े विभिन्न जागीरदारों व राजकुमारों के अध्यापक एवं संरक्षक रहे। आपकी सेवायें (इस क्षेत्र में) आज भी उल्लेखनीय हैं। राजकीय सेवा में आपकी सर्वप्रथम नियुक्ति १२ अक्टूबर, १९२७ ई० को हुई थी। आप शिक्षा विभागान्तर्गत संस्कृत–हिन्दी के मुख्य अध्यापक नियुक्त हुए थे। सर्वप्रथम आप दरबार मिडिल स्कूल, चांदपोल में अध्यापक हुए, जहाँ आपने ७ वर्ष तक बड़ी योग्यता से कुशलतापूर्वक कार्य सम्पादन किया। इसके पश्चात् महाराजा हाईस्कूल में हिन्दी संस्कृत के प्रधान अध्यापक रहे। ७ वर्ष तक कार्य करने के पश्चात् आप महाराजा संस्कृत कालेज, जयपुर में अध्यापक रहे। सन् १९४३ के लगभग साहित्य के व्याख्याता पद पर पदोन्नत किये गये, जहां १ जुलाई, १९५७ तक बड़ी कुशलता से अपना अध्यापन कार्य किया। राजस्थान सरकार ने आपकी योग्यता से प्रभावित होकर आपको अतिरिक्त अध्यापन सेवा का अवसर भी प्रदान किया तथा ३ वर्ष तक आपकी सेवायें प्राप्त कीं। इस प्रकार ३० अप्रैल, १९५९ को सेवामुक्त हुए। आपके उल्लेखनीय छात्रों में भट्टराजा श्री रविशंकर शास्त्री, श्री कलानाथ शास्त्री, श्री शिवदत्त चतुर्वेदी, श्री रामनारायण चतुर्वेदी, श्री ईश्वरप्रसाद चतुर्वेदी, श्री नारायण शास्त्री कांकर, श्री रामपाल शास्त्री के साथ ही इन पंक्तियों के लेखक का भी नाम प्रस्तुत किया जा सकता है।

आप उदार प्रकृति-सम्पन्न, सच्चरित्र एवं महामना कुलीन विद्वान् हैं। इस वृद्धावस्था में भी आप विद्याव्यसनी हैं तथा विद्वानों का सत्संग प्राप्त कर प्रसन्नता का अनुभव करते हैं। जयपुर के संस्कृत साहित्य के इतिहास के मर्मज्ञ होने के साथ ही जयपुर के इतिहास के भी एकमात्र प्रामाणिक विद्वान् हैं। प्रस्तुत शोधकार्य में आपका सहयोग व मार्गदर्शन उल्लेखनीय है। आप प्रकीर्णक पद्य रचना में अत्यन्त कुशल हैं। आपके अनेक चमत्कारी पद्य पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं। आप अपने कनिष्ठ भ्राता प० नन्दकिशोरजी के सम्पादन कार्य में सहयोग प्रदान किया करते थे। आपका नरसिंहप्रसाद कृत प्रायश्चित्तसार का संपादन दर्शनीय है।

(७०–अ)–हितैषी 'जयपुर अंक' १९४० में आपको प्रदत्त साहित्यरत्न उपाधि का उल्लेख भी है (पृष्ठ १६५)।

७१. श्री नरहरि ओझा

श्री ओझाजी मिथिला के निवासी थे तथा जयपुर के प्रतिष्ठित राजगुरु श्री उग्रदत्तजी के वंशज श्री गंगेशजी झा के दौहित्र एवं उत्तराधिकारी के रूप में स्मरणीय हैं। आप के पिता का नाम श्री एकनाथ ओझा (परिचय क्रमांक २) था, जो महाराजा संस्कृत-कालेज, जयपुर के प्रथम अध्यक्ष थे। आपका वंश परिचय श्री एकनाथ ओझा के परिचय से ज्ञातव्य है।

श्री ओझाजी 'चुम्बन चौधरी' के नाम से विख्यात थे। आपकी वंशोपाधि या अवटंक चौधरी था। आप अपने पिता व मातामह के समान ही व्याकरणशास्त्र एवं मन्त्र शास्त्र के प्रगाढ विद्वान् थे। आपका अध्ययनादि कार्य संस्कृत कालेज, जयपुर में ही सम्पन्न हुआ था। अपने पिता श्री एकनाथ ओझा के देहावसान पर सन् १८६६ में आप संस्कृत कालेज के व्याकरण विभाग में द्वितीय अध्यापक के रूप में नियुक्त हुए। आपके अनेक शिष्य उल्लेखनीय रहे हैं, जिनमें म० म० पं० शिवदत्त शास्त्री, श्री जानकीलाल चतुर्वेदी, पं० विजयचन्द्र शास्त्री (प्रधान पण्डित नोवल स्कूल), पं० हरदत्तजी (ज्येष्ठ पुत्र) पं० रामदयालुजी, पं० गंगावल्लभजी दाधीच, पं० रूपनारायणजी मुखिया, आदि विद्वान् प्रसिद्ध हैं। संस्कृत कालेज में प्राप्त प्राचीन उपस्थिति पत्रकों से ज्ञात होता है कि आपने संवत् १९२७ से अध्यापन प्रारम्भ किया था और संवत् १९५२ तक व्याकरणाध्यापक के रूप में कार्य करते रहे थे। (७१-अ)

राजवैद्य पं० श्री कृष्णराम भट्ट ने अपने समकालीन विद्वानों में आपका सादर स्मरण किया है :—(७१-आ)

"सिद्धान्तकौमुद्युचितो बुधाग्रणीः समुच्छलच्चामरवीजितच्छविः।
सन्मैथिलः सौम्यपवित्रदर्शनो राज्ञो गुरुः श्री नृहरिर्विराजते।।"

इसकी टिप्पणी में लिखा है—'श्री नरहरिरित्यप्येषां नाम।' अर्थात् आप का नाम नरहरि भी था। आप बड़े प्रभावशाली और गम्भीर विद्वान् पुरुष थे। आपकी मूर्ति में सौम्यता होने पर भी इतना तेज और गाम्भीर्य था कि कोई भी व्यक्ति सहसा सम्मुख जाने का साहस नहीं करता था। आपके पांच पुत्र थे, जिनमें जेष्ठ श्री हरदत्त ओझा आपके पश्चात् उक्त कालेज में व्याकरणाध्यापक रहे तथा द्वितीय पुत्र श्री चन्द्रदत्त ओझा श्री हरदत्तजी के पश्चात् उक्त पद पर आसीन हुए। आपके पुत्र पं० श्री दुर्गादित्त ओझा इस समय उक्त कालेज में व्याकरण के प्राध्यापक हैं।* श्री ओझाजी का रचनात्मक कार्य उपलब्ध नहीं है। आप उल्लेखनीय विद्वान् थे।

———

(७१-अ)-परिशिष्ट ४ संस्कृत कालेज के उपस्थिति पत्रक व राज० अभिलेखागार का रिकार्ड, १८७३/१३८
(७१-आ)-जयपुरविलास—पंचम उल्लास—पृष्ठ ५१ पद्य ३१।
* श्री दुर्गादत्त जी का भी अब निधन हो चुका है।

७२. श्री नरहरि भट्ट (राजवैद्यः)

आयुर्वेद—विद्यानिधि राजवैद्य पं० श्री गंगाधर भट्ट (परिचय क्रमांक ३२) के ज्येष्ठ पुत्र श्री भट्ट का जन्म कार्तिक कृष्णा २ संवत् १९५० दिनांक २५ नवम्बर, १८९३ को जयपुर में ही हुआ था। आप जयपुर में विख्यात भट्टमेवाड़ा जातीय वैद्य श्री जीवनरामजी (श्री कुन्दनरामजी, परिचय क्रमांक १०) के प्रपौत्र तथा राजवैद्य श्री कृष्णराम भट्ट (परिचय क्रमांक ११) के पौत्र थे। आयुर्वेद विद्या आपकी वंशानुगत विद्या है। आपने अपने पितृचरण एवं अन्यान्य ख्यातनामा विद्वानों की सेवा में रह कर साहित्य, व्याकरण एवं आयुर्वेद का अध्ययन किया था। संवत् १९७४ में अपने पितृचरण के आकस्मिक निधन के पश्चात् आप संस्कृत कालेज में २३ मई, १९१८ को आयुर्वेदाध्यापक के रूप में नियुक्त हुए। (७२-अ)
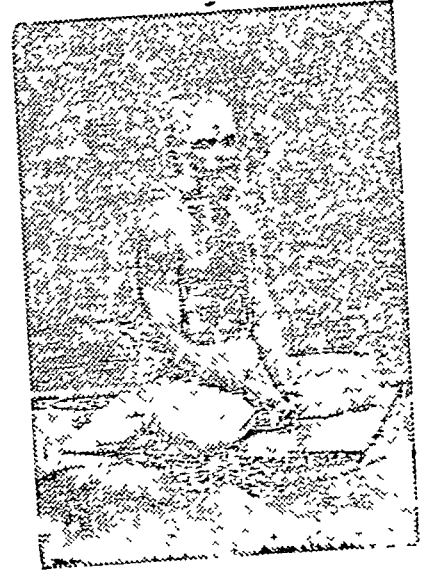
जयपुर के प्लेगजन्य दारुण कुलक्षय से आप बहुत प्रभावित हुए तथा अध्यात्मपथ के पथिक बन गए। आपकी अध्यापनकुशलता उल्लेखनीय मानी जाती थी। आपकी चिकित्सा शैली भी विलक्षण एवं चमत्कारपूर्ण थी। सभी रोगों के लिये आपके द्वारा एकमात्र औषधि प्रदान करना तथा औषधपात्र 'टूटी हुई कुल्हड़िया' आज भी वैद्यों की चर्चा का विषय है। उस औषध की मात्रा एक चांवल से भी न्यून और दिन में दो बार देते थे। आपकी विलक्षणता वहाँ दृष्टिगोचर होती थी, जब आप रक्तपित्त, रक्तचाप की उग्रावस्था में भी अपथ्य माने जाने वाले पदार्थ तैल की पकौड़ी व हरीमिर्च की सब्जी आदि खाने का आदेश देकर भी रोगी को व्याधिमुक्त किया करते थे।

कालान्तर में लगभग १० वर्ष अध्यापन करने के पश्चात् दिनांक १५ जुलाई, १९२८ को असिस्टेन्ट प्रोफेसर आयुर्वेद के पद पर नियुक्त किये गये। आपको पद्य रचना का भी अच्छा अभ्यास था। जयपुर प्लेग में हुए अपने वंश की भयंकर व करुणाजनक स्थिति का वर्णन करते हुए आपने लिखा है :—(७२-आ)

"रामतातस्सुतस्नेहे धर्मे राम इवाऽपरः। भविके नाम सदृशस्तातो गंगाधरो गुरुः॥
बाबूरावोऽनुजश्चैव रमणस्तस्य चानुजः। शीलदाक्षिण्यसम्पन्नौ भीमकान्तौ मनोहरौ॥
कूटकालप्रहारेण छिन्नपक्षक्षतव्यथा। वत्सं विहाय मामेकं सर्वस्वं प्राणवल्लभम्॥
प्लेगविक्लवदुष्काले शैवभावमुपागताः। वेदना निग्रहे शक्तिर्महत्योजस्विनी सती॥
धैर्यगाम्भीर्यशीलेऽयं विपद्वीरप्रबोधिनी। सात्विकी सत्यसन्धाना वीतरागा पतिप्रिया॥
कुलधर्मप्रवीणा च दत्वा सत्यं बटुं पटुम्। धर्मपत्नी मदीयापि शैवमन्त्रसमाधिता॥
शैवभावे समालीना पुण्यकर्मावलम्बिनी। मातृसम्पर्कसौख्यस्य पिपासुं शुष्कतेजसम्॥
बालप्रकरणाद्धीनं दैवाधीनं निरन्तरम्। सन्ताप-सहने शीलं गूढवाक्यविवेचकम्॥
ग्रासं विभज्य भोक्तारं पितृभक्तबटुं पटुम्। विलपन्तं शिशुं पश्यन् गंगाधर! करोमि किम्॥"

(७२-अ)—लिस्ट आफ एजूकेशनल आफिसर्स—करेक्टेड अपटू १ सितम्बर, १९३५—संस्कृत कालेज, जयपुर—क्रमांक १६—असिस्टेन्ट प्रोफेसर आयुर्वेद।

(७२-आ)—सिद्धभेषजमणिमाला मणिच्छटा टीका की प्रस्तावना में साभार।

आपकी समस्यापूर्तियाँ भी बड़ी रोचक होती थीं। एक पद्य है—

"इच्छन्तं शुभकामनां नरपतेः श्रीमानभूपस्य वै
गोविन्दादथ माधवाच्च गुरुतो गंगाधरात्स्वेष्टतः।
तैर्निर्दिष्टमतानुगीतविधिना सन्मार्गमालम्बितं
सर्वत्रैव शिवप्रदं नरहरिं कस्तं निरोद्धुं क्षमः॥" (संस्कृत रत्नाकर २।२)

कविशिरोमणि भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री ने आपका इस प्रकार स्मरण किया है :—

"यस्य हि पितामहोऽगदंकारेषु कीर्तिमधात्काव्यकलालंकारेषु चाऽगाद्रुपश्लोक्यताम्।
भंगारससेवकोऽपि गंगाधरस्तातो यस्य वैदुष्याऽनुषंगाद्ययौ सद्भिरुपढौक्यताम्।
मंजुनाथशकटिनिधानतोऽतिहानिं गतो विग्रहं विधाय वंशतोऽयात्खलभोग्यताम्।
परिहरणीयेष्वपि पर-हरिभावाऽऽकुलो नरहरिभट्टः सैष सादरं विलोक्यताम्॥" (७२–इ)

आप जयपुर के आयुर्वेद वेत्ताओं में उल्लेखनीय रहें हैं।

---

७३. श्री नवलकिशोर काङ्कर:

आप जयपुर के प्रसिद्ध कथावाचक एवं ज्योतिर्विद् पण्डित श्री जमनालालजी काङ्कर के सुपुत्र हैं। आपका जन्म आषाढ़ कृष्णा १३ संवत् १९६७ को जयपुर में ही हुआ। आप जाति से गौड ब्राह्मण हैं। बाल्यकाल में ही माता-पिता के वियोग से आपको बहुत बड़ी विपत्ति का सामना करना पड़ा। आपने अपने पिताजी के जीवनकाल में संस्कृत, व्याकरण व साहित्य की साधारण शिक्षा प्राप्त करली थी। आपके पितृव्य पं० गणेशनारायणजी जयपुर तहसील में सिरस्तेदार थे। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा अग्रवाल मिडिल स्कूल में हुई। षष्ठ कक्षा तक अध्ययन कर परिस्थितियों के कारण आपको स्कूल छोड़ना पड़ा और शेष सम्पूर्ण शिक्षा स्वतन्त्र रूप से प्राप्त की। आपकी शिक्षण योग्यता का विवरण इस प्रकार है :—

(७२–इ)—जयपुरवैभवम्—नागरिकवीथी सुधीचत्वरः, पृष्ठ संख्या २७५, पद्य संख्या १०२।

१. संस्कृत (क) साहित्य काव्यतीर्थ	—	कलकत्ता (बंगाल)	प्रथम श्रेणी
(ख) व्याकरणशास्त्री	—	पंजाब	प्रथम श्रेणी
(ग) साहित्याचार्य	—	राजस्थान शिक्षा विभाग	द्वितीय श्रेणी
२. हिन्दी (घ) साहित्यरत्न	—	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग	द्वितीय श्रेणी
(ङ) साहित्यरत्नाकर	—	राजस्थान विश्वविद्यालय	द्वितीय श्रेणी
(च) प्रभाकर	—	पंजाब	प्रथम श्रेणी
(छ) हिन्दी एडवांस	—	उत्तर प्रदेश	द्वितीय श्रेणी
३. अंग्रेजी (ज) इन्टरमीजियेट	—	पंजाब	—

आपने समीक्षाचक्रवर्ती पण्डित मधुसूदनजी ओझा के पास रह कर लगभग १२ वर्ष तक व्याकरण, निरुक्त, शतपथ आदि ब्राह्मण एवं वैदिक विज्ञान का विशेष अध्ययन किया। अलवर राज्य में संस्कृत कालेज की स्थापना के समय राजकीय राजगढ़ संस्कृत कालेज के पाठशाला विभाग के प्रधानाध्यापक रहे। कुछ समय बाद आप पारीक हाईस्कूल जयपुर में हिन्दी अध्यापक बने और इस समय आप पारीक कालेज, जयपुर में संस्कृत विभाग के अध्यक्ष पद पर कार्य कर रहे हैं (७३–अ)। इस पद पर कार्य करते हुए आपकी सेवायें उल्लेखनीय हैं।

आपको आपके जीवनकाल में अनेक स्थानों से उल्लेखनीय सम्मान प्राप्त हुआ है :—

(१) राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन द्वारा आयोजित निबन्ध प्रतियोगिता में प्रथम।
(२) स्काउटिंग संस्था द्वारा पदक प्रदान से पुरस्कृत।
(३) पारीक कालेज की प्रबन्ध समिति द्वारा सुवर्ण पदक से पुरस्कृत।
(४) बिहार के भूतपूर्व राज्यपाल लोकनायक डा० एम० एस० अणे द्वारा भा० वि० प्र० समिति द्वारा आयोजित अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन के मुजफ्फरनगर के अधिवेशन में 'कवि-शिरोमणि' की उपाधि से सम्मानित।
(५) कांकरोलीस्थ विद्या भवन की रजत जयन्ती के अवसर पर लखनऊ के श्री दुलारेलाल भार्गव की अध्यक्षता में आयोजित कवि सम्मेलन में 'कवि-भूषण' की उपाधि से विभूषित।
(६) प्रादेशिक ब्रह्म सभा के द्वितीय अधिवेशन (मलारना) में सभापति बने।
(७) इसी प्रकार मुजफ्फरनगर (उ० प्र०) में भा० वि० प्र० समिति के तत्त्वावधान में अखिल भारतीय संस्कृत सम्मेलन के पञ्चम अधिवेशन के सभापति बने।
(८) देहरादून में आयोजित ब्राह्मण सम्मेलन के सभापति बनाये गये। इत्यादि

सन् १९६९ में भारतीय विद्या प्रचार समिति, गोंडा (उ० प्र०) ने "विद्यावाचस्पति" और योगिराज स्वामी श्री माधवानन्द महाराज प्रतिष्ठापित ज्ञानपीठ, जयपुर ने "कविचक्रवर्त्ती" की उपाधि से आपको सम्मानित किया है। आपने सन् १९७२ में राजस्थान संस्कृत संसद्, जयपुर द्वारा आयोजित अ० भा० प्रौढ़ संस्कृत गद्य लेखन प्रतियोगिता में 'यात्रा-विलासम्' पुस्तक प्रस्तुत करके सर्वप्रथम स्थान प्राप्ति के उपलक्ष्य में "गद्य-सम्राट्" की सम्मानोपाधि प्राप्त की है। महामना मदनमोहन मालवीय द्वारा स्थापित अ० भा० सांस्कृतिक संस्था 'भारती परिषद्, प्रयाग' ने संस्कृत वाङ्मय के विशिष्ट वैदुष्य के निमित्त आपको सन् १९७३ में "महामहिमोपाध्याय"

(७३–अ)— अब आपने दिसम्बर सन् १९७४ में उक्त पद से विश्राम ग्रहण कर लिया है और वर्तमान में आप श्रौत-मुनि-निवास, वृन्दावन में वेदों का समन्वय भाष्य लिख रहे हैं।

का अलङ्करण प्रदान किया है। राजस्थान सरकार से आपको सन् १९७१ में शोधकार्य योजना में ५००) का और सन् १९७५ में उत्तरप्रदेश राज्यपाल ने 'यात्रा-विलासम्' पर १०००) का और सन् १९७५ में ही राजस्थान सरकार से "यात्रा-विलासम्" पर २५००) का पुरस्कार प्राप्त हुआ है। सन् १९७७ में आपको राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर से "प्रबन्धगद्यमाधुरी" पुस्तक पर ३०००) का माघस्मृति-पुरस्कार भी मिला है। सन् १९७९ में मार्च में उक्त अकादमी के भरतपुर में हुए वार्षिक समारोह में आपको विशिष्ट साहित्यकार के रूप में सम्मानित किया गया है। राजस्थान संस्कृत परिषद् ने भी अपने जयपुर अधिवेशन में सन् १९७७ में आपको सम्मानित किया था।

आप जयपुर असोसियेशन के डिस्ट्रिक्ट स्काउट मास्टर रहे तथा वर्तमान में रोवर लीडर हैं। आपके उल्लेखनीय शिष्यों में श्री दुर्गालाल बाढदार, श्री भंवरलाल शर्मा (७३-आ), श्री घनश्याम गोस्वामी, श्री गोपाल-नारायण पारीक, श्री मणिशंकर शर्मा, श्री राधागोविन्द शर्मा, श्री ईश्वरप्रसाद चतुर्वेदी, श्री नन्दकिशोर गौतम तथा इन पंक्तियों के लेखक का नाम भी सम्मिलित किया जा सकता है। आपकी निम्नांकित रचनायें प्रकाशित हो चुकी हैं :—

(१) द्विजदशाप्रकाशः, (२) सरल-शिवराजविजयः, (३) कृति-परिचयः, (४) संस्कृत-साहित्यं हिन्दी-कवयश्च, (५) यज्ञोपवीतविज्ञानम्, (६) आयुर्वेदविमर्शः (संस्कृत रत्नाकर ८।३), (७) हिन्दी-कवीनां संस्कृतभाव-सञ्चितिः (सं० रत्नाकर १७।१), (८) महाकवि-कुमारदासः, (९) पूर्वं संस्कृतभाषा लोकभाषा आसीत्, (१०) संस्कृत-साहित्ये हास्यरसः इत्यादि (७३-इ)।

आप समस्यापूर्तियाँ भी किया करते हैं। एक पद्य उद्धृत है :—

मुम्बापुरी-वर्णनम्— **"इभ्यैरलभ्यैरथ भव्यसभ्यैराकीर्ण-मार्गा भुवनप्रसिद्धा।**
अलौकिकाऽऽलोकवती सतीव 'मुम्बापुरी' कापि जयत्यलं पूः॥
महान्धकारावृतपण्यपङ्क्तिषु तडित्प्रदीपाभिनयेन भास्करः।
मिषेण विद्युद्व्यजनस्य चानिलः प्रीत्याऽथवा यामधितिष्ठतः सदा॥"

आपकी अनेक रचनायें संस्कृत-रत्नाकर व भारती पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी हैं। इनका संक्षिप्त उल्लेख इस प्रकार है—(१) एका स्मृतिः (सं०र० २४।१२), (२) मुम्बापुरी-वर्णनम् (सं०र० २४।१०), (३) सुकन्या (भारती १।९) (४) महाकवि-तुलसीदासः (भारती १।१०), (५) आरोग्यं भास्करादिच्छेत् (भारती ११।४-५), (६) स्वतन्त्रभारते संस्कृतह्रासः (भारती १३।१)।

आपकी समस्यापूर्तियां संस्कृत रत्नाकर २।२, २।३, ३।२, ३।३ में प्रकाशित हैं। आप संस्कृत भाषा के घोर पक्षपाती विद्वान् हैं।

(७३-आ)—वर्तमान में ये ही राजस्थान के शिक्षामन्त्री हैं।

(७३-इ)— सन् १९६५ के पश्चात् आपकी प्रकाशित कुछ प्रमुख कृतियाँ ये हैं :—सरल संस्कृत व्याकरण, स्वागत-मङ्गल-प्रशस्ति, धर्मकर्मसर्वस्वम्, स्वामिश्रीमाधवानन्दमहाराजानां जीवनदर्शनम्, आधुनिककाव्यमञ्जरी, शास्त्रसर्वस्वम्, नवलसतसई, प्रबन्धमकरन्दः, प्रबन्धामृतम् और यात्रा के सुखद क्षण। कुमार सम्भव के पञ्चम सर्ग की और किरातार्जुनीय के प्रथम सर्ग की आपकी लिखी संस्कृत हिन्दी व्याख्या भी छात्रों एवं शिक्षकों में विशेष प्रिय रही है। आपके सम्पादित ग्रन्थों में शालिहोत्र ग्रन्थ, विज्ञानविद्युत्, पितृसमीक्षा, गीताविज्ञानभाष्यभूमिका, श्रीमधुसूदनग्रन्थमाला, पारीक कॉलेज पत्रिका के ३७ अङ्क और स्व० श्री विहारीलालदाधीचानां व्यक्तित्व-कृतित्व-परिचायिका विहारि-स्मारिका।

७४. श्री नारायण भट्ट पर्वणीकर

श्री पर्वणीकरजी के पूर्वज जयपुर नगर की स्थापना से भी पूर्व आमेर राजधानी के समय से ही यहां के निवासी है। जयपुर संस्थापक सवाई जयसिंह द्वितीय के पिता महाराजा विष्णुसिंह (विशनसिंह १६८८–१६९९ ई०) की सभा मे महाराष्ट्रीय विद्वान् श्री माधव भट्ट शर्मा आमेर पहुंचे थे। आप ही जयपुरस्थ पर्वणीकर वंश के मूल पुरुष थे। श्री विष्णुसिंह ने अपने दोनों पुत्रों सवाई जयसिंह व श्री विजयसिंह को पढ़ाने के लिए श्री माधव भट्ट को नियुक्त किया था। इसके अनुवंशजों में श्री सखाराम भट्ट, श्री सीताराम भट्ट व हमारे चरित्र नायक श्री नारायण भट्ट पर्वणीकर का नाम उल्लेखनीय माना जाता है। श्री सखाराम भट्ट सवाई जयसिंह तृतीय (१८१८–१८३४ ई०) के गुरु थे तथा श्री सीताराम भट्ट उनके कनिष्ठ भ्राता थे। श्री सीताराम भट्ट द्वारा की गई संस्कृत साहित्य की सेवा से प्रायः सभी परिचित है, जो कुमारसभव महाकाव्य के ८वें सर्ग से १७वें सर्ग तक के प्रथम टीकाकार हैं।* यों भी इनकी रचनायें बहुत अधिक संख्या में होने के साथ ही महत्त्वपूर्ण भी है।

श्री सखाराम भट्ट पर्वणीकर के पुत्र का नाम श्री गंगाराम भट्ट था। आपके सन्तान न होने से आपने ग्वालियर नगर के निवासी स्वगोत्रीय पं० महादेव शर्मा के प्रपौत्र श्री किशन भट्ट के पौत्र तथा श्री गोविन्द भट्ट के पंचम पुत्र श्री नारायण भट्ट को दत्तक रूप में स्वीकार कर लिया। दत्तक रूप मे स्वीकार करने के पश्चात् आपका नाम परिवर्तन किया गया था। आपका नाम श्री लक्ष्मीनारायण भट्ट था।

जीवन परिचय

श्री नारायण भट्ट का जन्म ग्वालियर नगर में आश्विन कृष्णा ५ संवत् १९१२ सन् १८५५ को प्रातःकाल ८ बजे हुआ था। आपके पिता श्री गोविन्द भट्ट तथा माता श्रीमती चिन्नादेवी थी। माताजी सुप्रसिद्ध विश्वरूप परिवार की एक कुलीना तथा विदुषी स्त्री थी। आपके पूर्वज किसी समय मे दक्षिणी हैदराबाद प्रान्त मे विद्यमान 'पाथरी-परभणी' नामक स्थान के रहने वाले थे। आपके जनक श्री गोविन्द भट्ट ग्वालियर मे पहले झांसी रहे थे। उन्हे झांसी से ग्वालियर लाने का श्रेय तत्कालीन शासक श्री आलीजा बहादुर (जयाजी राव सिन्धिया) को था, जो उनका शिष्य था।

आप जयपुरस्थ विद्वान् जयराम भट्ट पर्वणीकर के ज्येष्ठ पुत्र श्री शिवराम भट्ट के ज्येष्ठ पुत्र श्री महादेव भट्ट के प्रपौत्र थे। आपका वंश वृक्ष इस प्रकार प्रस्तुत किया जा रहा है :—

---

* इनके द्वारा रचित महाकाव्यों में से नलविलास, नृपविलास, राघवचरित्र, जयवंश एवं लघुरघु काव्य का ससम्पादन समालोचनात्मक अध्ययन हो रहा है। इनमें प्रथम चार शोध-प्रबन्ध पी-एच०डी० उपाधि हेतु तथा अन्तिम एम. फिल्. के लिए स्वीकृत है। यह कार्य इस शोध-प्रबन्ध के लेखक के निर्देशन मे हो रहा है।
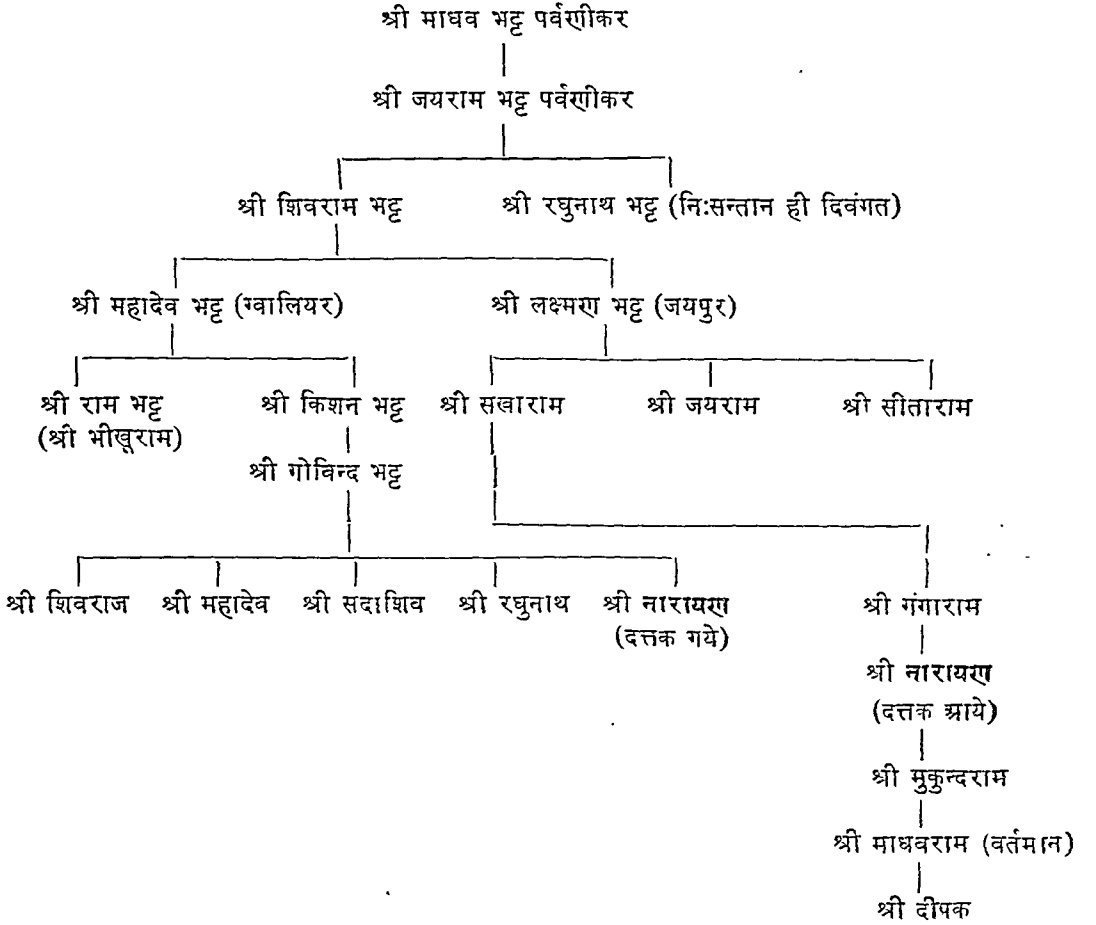
शिक्षा-दीक्षा

प्रतिभा-सम्पन्न श्री नारायण शास्त्री ने बाल्यकाल में पंडितराज श्री धान्धू शास्त्री बाबा महोदय से व्याकरण शास्त्र का अध्ययन किया था। जब आपका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ था, अथवा आठवें वर्ष तक आपने लघुकौमुदी, शब्दधातुरूपावलिः, रघुवंश (१२ सर्ग), पुरुषसूक्त, अप्सूक्त तथा श्रीसूक्त आदि ग्रन्थों का अध्यापन समाप्त कर लिया था। आपका बाल्यकालीन मित्रों से जीवन पर्यन्त सौहार्द बना रहा, जिन मित्रों में श्री काशीनाथ शास्त्री द्राविड़, (जयपुर), श्री त्र्यम्बक शास्त्री (धाराकोट), श्री बल्लू शास्त्री (लश्कर) आदि मुख्य हैं। आप भी अपने पिता के समान ही स्वाभाविक प्रतिभा सम्पन्न थे। १४ वर्ष की आयु में ही आपने ग्वालियर के किले में लगे एक प्राचीन शिलालेख को पढ़ डाला था तथा इसका अनुवाद किया था। इसे पढ़ने में ६ दिन लगे थे। अंग्रेज लोग इसे पढ़ने के लिए प्रयत्न कर रहे थे, परन्तु इनकी बुद्धिमत्ता से सन्तुष्ट होकर इन्हें १०० रुपये का पुरस्कार प्रदान किया था। श्री नारायण भट्ट ने १५वें वर्ष में अपने वृद्ध पिता से भी अध्ययन किया था। आप श्री गोविन्द भट्ट की द्वितीय पत्नी से उत्पन्न पुत्रों में से थे। पिता से दिवंगत होने पर आपका अध्ययन क्रम ज्येष्ठ भाई के संरक्षण में होने लगा। १६वें वर्ष में आपने 'रसिकाष्टकम्' तथा 'दुर्गास्तोत्रम्' का प्रणयन कर डाला। ये दोनों रचनायें निर्णय सागर प्रेस, बम्बई से प्रकाशित हो चुकी हैं।

जयपुर आगमन

राजगुरु भट्ट श्री गंगाराम पर्वणीकर ने निःसंतान होने पर श्री नारायण शास्त्री को अपना उत्तराधिकारी बनाने का निर्णय किया था और इसी विचारधारा से अपनी 'विल' बनाई थी। दैवदुर्विपाक से श्री गंगाराम भट्ट का असामयिक निधन हो गया और तदुपरान्त पीठाधिकारी के लिए चर्चा प्रारम्भ हुई। जब उनकी 'विल' सामने आई तो श्री नारायण भट्ट को ग्वालियर से जयपुर ले आये तथा राजगुरु के पद पर समासीन कर दिया। गद्दी पर बैठने पर आपका नाम श्री नारायण भट्ट के स्थान पर श्री लक्ष्मीनारायण भट्ट कर दिया गया, परन्तु फिर भी लोक प्रचार में आप नारायण भट्टजी के नाम से ही विख्यात रहे।

जयपुर आने पर आपने वैयाकरण पं० श्री जानकीलाल चतुर्वेदी से सिद्धान्तकौमुदी, लघुशब्देन्दुशेखर, परिभाषेन्दुशेखर, महाभाष्य, वैयाकरणभूषणसार आदि व्याकरण शास्त्र के दुरूह ग्रन्थों का अध्ययन किया। तत्कालीन विद्वान् न्यायकेसरी श्री जीवनाथ ओझा से आपने न्यायशास्त्र का अध्ययन किया। इसके पश्चात् सांख्य योग का अध्ययन भी इन्हीं ओझा महोदय से किया। श्री चिमनजी शास्त्री आपके ज्योतिषशास्त्र के गुरु थे। राजवैद्य गंगाबक्स महोदय से आपने आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त किया। धर्मशास्त्र का अध्ययन स्वतन्त्र रूप में किया और क्रमशः अपने वंशपीठ की परम्परा के अनुसार तन्त्रमन्त्र का भी अध्ययन स्वतः ही किया।

मित्र-मण्डली

आपकी मित्रमण्डली में भारत प्रख्यात विद्वान् थे। इनमें भी म० म० श्री दुर्गा प्रसाद द्विवेदी (जयपुर संस्कृत कालेज के प्राचार्य), म० म० श्री शिवदत्त शास्त्री दाधिमथः (लाहौर), श्री काशीनाथ शास्त्री द्राविड़ तथा राजवैद्य श्री कृष्णराम भट्ट तथा म० म० श्री दुर्गाप्रसाद शास्त्री काव्यमाला सम्पादक का नाम विशेषतः उल्लेखनीय है। श्री कृष्णराम भट्ट ने जहाँ समकालीन विद्वानों का एक पद्य में वर्णन प्रस्तुत किया है, वहां आपके लिए ६ पद्य प्रस्तुत किये हैं, जो अविकल रूप में यहाँ उद्धृत किये जाते हैं : (७४-अ)

"दुर्गास्तवं सरसिकाष्टकमुज्ज्वलाभं निर्माय यो जयपुरे प्रददौ बुधेभ्यः।
साहित्यविच्चटुलचामरचर्चितश्रीः नारायणो जयति राजगुरुर्गरीयान् ॥ ३३ ॥
माराङ्कृतिर्निजगभीरतयाऽस्तपारावाराशयः स्फुरदशेषगुणौघकारा।
धारा गिरां वहति यस्य मुखादुदारा नारायणः स समुपैतु मुदः सुसाराः ॥ ३४ ॥
सरस्वतीं यो हृदये दधाति सदा समाश्लिष्टतनुः श्रियापि।
दुर्गाप्रसादाय पुनः प्रयासी नारायणः कोपि विचित्र एषः ॥ ३५ ॥
अभिलपति वैनतेयं चामरमहितः ससत्यभामो यः।
नारायणः स साक्षात्कृतिं मदीयामशोधयत्कृपया ॥ ३६ ॥
गंगां धारयते कदापि न पदा नाधो विधत्ते द्विजं
नो वैकुण्ठ इति श्रुतो जलनिधेः संगे न यः स्निह्यति।
सच्चक्रं क्वचिदेव न क्षिपति नो शंखेन शं खेलति
श्रीमन्तं वयमन्वहं कमपि तं नारायणं मन्महे ॥ ३७ ॥

(७४-अ)—जयपुर विलास—पंचम उल्लास—पद्य संख्या ३३ से ३८—पृष्ठ संख्या ५१-५२।

सन्त्येव प्रतिभाजुषोऽत्र शतशः प्रौढ़प्रभावा बुधा
येषां बुद्धिसमृद्धिरप्रतिहता जागर्ति वेदेष्वपि ।
किं त्वेषोहमचिन्त्यचित्रचरितं सच्चक्रचंचद्रुचिम्
श्रीनारायणमेकमेव विबुधं वन्देऽरविन्देक्षणम् ।। ३८ ।।"

इस प्रकार आप राजगुरु होने से समकालीन विद्वानों में वन्दनीय थे ।

रचनात्मक कार्य

जयपुर के संस्कृत साहित्य के इतिहास में पर्वणीकर वंश का बहुत बड़ा योगदान है । आपकी कृतियों का वर्गीकृत विवेचन इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :—

क्रम	नाम रचना	विषय	विवरण
१.	पद्यपंचाशिका	साहित्य	अप्रकाशित
२.	संस्कृतश्लोकशतसंग्रहः	,,	,,
३.	स्वमित्रश्लोकसंग्रहः	,,	,,
४.	नवीनश्लोकसंग्रहः	,,	,,
५.	काव्यविभूषणशतकम्	,,	,,
६.	चतुर्दश सूत्री व्याख्या	व्याकरण	,,
७.	श्लोकबद्धा सिद्धान्तकौमुदी	,,	,,
८.	परिभाषा प्रतिच्छविः	,,	,,
९.	शब्दशास्त्रप्रशस्तिः	,,	प्रकाशित
१०.	आपस्तम्बाह्निकपद्धतिः	धर्मशास्त्र	अप्रकाशित
११.	प्रयोगरत्नम्	,,	,,
१२.	और्ध्वदेहिकपद्धतिः	,,	,,
१३.	तुलादान-पद्धतिः	,,	,,
१४.	धर्मकल्पलतावृत्तिः	,,	,,
१५.	तर्ककन्दुकम्	न्यायशास्त्र	,,
१६.	ज्यौतिष-शास्त्रार्थ-संग्रहः	ज्योतिष	,,
१७.	अनंगरंगोदयस्थलम्	कामशास्त्र	,,
१८.	वाञ्छाकल्पलतावृत्तिः	तन्त्रमन्त्र साहित्य	,,
१९.	उमालुप्तोपमाष्टकम्	स्तोत्र	,,

उपर्युक्त रचनाओं का विवेचन कृतित्व खण्ड में यथास्थान प्रस्तुत किया जायेगा । आप समस्यापूर्तियां भी किया करते थे । एक पद्य यहां प्रस्तुत हैं :—

"धर्म्यां धियं वितनुते तनुतेऽर्थजातं वामानपि स्वरिव पूरयते च कामान् ।
किं वान्यदन्त्यमपि यच्छति पूरुषार्थं संसेविता फलति कल्पलतेव विद्या ।।" (सं०र० १।२)

आपके सन्तान न होने से आपने अपने ज्येष्ठ भ्राता श्री सदाशिव के तीन पुत्रों में से श्री मुकुन्दराम भट्ट को दत्तक पुत्र रूप में स्वीकार किया। आपका देहावसान जयपुर में ही कार्तिक शुक्ला १४ संवत् १९७२ को हुआ। आप उल्लेखनीय विद्वान् थे।

---

७५. श्री नारायण शास्त्री काङ्कर

श्री काङ्कर का जन्म जयपुर के ही प्रसिद्ध विद्वान् श्री नवलकिशोरजी काङ्कर (परिचय क्रमांक ७३) के ज्येष्ठ पुत्र के रूप में १३ जुलाई, १९३० ई० को हुआ था। आपकी शिक्षा-दीक्षा अपने पिता श्री नवलकिशोर काङ्कर की देखरेख में हुई। आप महाराज संस्कृत कालेज के स्नातक रहे हैं। आपकी शैक्षणिक योग्यता का विवरण इस प्रकार है :—

१. व्याकरणाचार्य	द्वितीय श्रेणी
२. साहित्याचार्य	प्रथम श्रेणी
३. सांख्ययोगदर्शनाचार्य	द्वितीय श्रेणी
४. एम० ए० (संस्कृत)	प्रथम श्रेणी (राजस्थान विश्वविद्यालय)
५. एम० ए० (हिन्दी)	पूर्वार्द्ध (राजस्थान विश्वविद्यालय)
६. साहित्य रत्न	द्वितीय श्रेणी (प्रयाग)
७. प्रभाकर	द्वितीय श्रेणी (पंजाब)

आपने प्रथमा, प्राज्ञ, मध्यमा तथा शास्त्री परीक्षाओं में भी प्रथम श्रेणी प्राप्त की है। आप डा० सुधीर कुमार गुप्त, प्रवाचक, संस्कृत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय के निर्देशन में "तैत्तिरीय संहिता का एक अध्ययन" विषय पर पी–एच० डी० की उपाधि के लिये शोध प्रबन्ध लिख रहे हैं (७५ अ)। आप अपने विद्यार्थी जीवन से ही अच्छे लेखक तथा कार्यकर्त्ता रहे हैं। आपको अपने जीवन में अनेक स्थानों से पुरस्कार प्राप्त हुए हैं, जिनका उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है :—

(१) संस्कृत अकेडेमी, मद्रास द्वारा अ० भा० संस्कृत कथालेख प्रतियोगिता में प्रथम।
(२) अखिल भा० सं० साहित्य सम्मेलन, दिल्ली द्वारा अ० भा० निबन्ध लेख प्रतियोगिता में प्रथम।
(३) राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन द्वारा अ० भा० निबन्ध लेख प्रतियोगिता में प्रथम।
(४) द्वितीय विश्वकथा प्रतियोगिता के अन्तर्गत संस्कृत कथा प्रतियोगिता में षष्ठ।
(५) 'दिव्यज्योतिः' शिमला द्वारा आयोजित अ० भा० संस्कृत लघुकथा प्रतियोगिता में प्रथम। (७५–आ)

(७५–अ) —सन् १९७५ में आपने यह प्रबन्ध प्रस्तुत कर पी–एच० डी० की उपाधि प्राप्त करली है।

(७५–आ)—सन् १९७७ में आपको 'संस्कृत-भवितव्यम्' नागपुर द्वारा आयोजित संस्कृत लघुकथा प्रतिस्पर्धा में भी प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

(६) छात्रावस्था मे जयपुर के कवि सम्मेलन मे स्वर्ण पदक ।

आपकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर म० म० प० श्री कालीप्रसाद शास्त्री (अयोध्या) ने आपको "विद्यालङ्कार" की उपाधि से सम्मानित किया (७५–इ)। आपने एक 'सस्कृत वाग् विवर्द्धिनी परिषद्' नामक संस्था का सचालन किया था, जिसमे समय समय पर सस्कृत-सस्कृति के जागरण हेतु अनेक विशिष्ट कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता रहा है। आप इसके अवैतनिक मन्त्री रहे हैं। इसी सस्था के अन्तर्गत रात्रि संस्कृत पाठशाला का भी प्रारम्भ किया गया था। इस सस्था का परिचय, परिचय खण्ड तृतीय अध्याय (घ) मे प्रस्तुत किया जा चुका है।
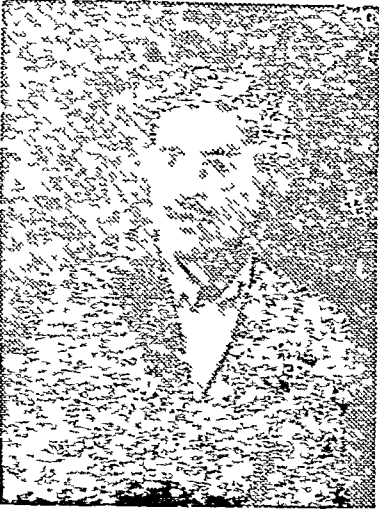
आपके गुरुजनों मे श्री दीनानाथ त्रिवेदी मधुप, श्री केदारनाथ ओझा, श्री गोपीनाथ शास्त्री धर्माधिकारी, श्री दुर्गादत्त मैथिल तथा पितृचरण श्री नवलकिशोर काङ्कर का नाम उल्लेखनीय है। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा खाण्डल विप्र विद्यालय मे हुई, जहाँ आपने प्रथमा (वाराणसी) परीक्षा तक अध्ययन किया। इससे पूर्व आप अग्रवाल मिडिल स्कूल के विद्यार्थी थे।

आपकी प्रकाशित रचनाओ मे—(१) व्याकरण साहित्य प्रकाश (बी० ए० आनर्स व एम० ए० मे सहायक ग्रन्थ), (२) आदर्श सस्कृत प्रवेशिका (जोधपुर व राज० विश्वविद्यालयों की प्री-युनिवर्सिटी कक्षा मे नियत), (३) छन्द अलकार प्रवेश (हाईस्कूल मे नियत), (४) अभिनव सस्कृत माधुरी, (५) शुकनासोपदेश—सस्कृत हिन्दी टीका, (६) सक्षिप्त कादम्बरी हिन्दी टीका, (७) द्विजदशाप्रकाश हिन्दी व्याख्या, (८) सरल काव्य प्रवेश (७५–ई)। उल्लेखनीय है।

आपके अनेक पद्य, लेख, एकाङ्की नाटक, समस्यापूर्तियाँ आदि अनेक पत्र पत्रिकाओ मे प्रकाशित हैं। जयपुर से प्रकाशित होने वाली भारती मे प्रकाशित आपकी कतिपय रचनाये इस प्रकार हैं :—

(१) **जीवनदर्शन**—(क) श्री रामकृष्ण परमहसः (१।५) (ख) श्री शंकराचार्य (१।७) (ग) लोकमान्य-तिलकस्य बाल्यकालः (१।१०) (घ) भ्रातृभक्तो भरत (३।४) (ङ) स्वामी दयानन्दः (१।१२) (च) प्रणवीर. महाराणा प्रतापः (४।४) (छ) श्री कृष्णद्वैपायनः (६।६) (ज) जयन्तविष्णुनार्लिकर· (१४।१०)।

(७५–इ) —सन् १९६९ मे भारतीय विद्या प्रचार समिति, गोंडा (उ० प्र०) ने 'वैयाकरण-केसरी' और योगिराज-स्वामि श्री माधवानन्द महाराज प्रतिष्ठापित ज्ञानपीठ, जयपुर ने 'विद्यावारिधि' की सम्मानोपाधि से आपको अलकृत किया है। सन् १९७६ से पाँच वर्ष के लिये राजस्थान सरकार आपको 'व्याकरण साहित्य प्रकाश' पुस्तक पर प्रतिमास १५०) रु० का एक विशिष्ट योग्यता पुरस्कार प्रदान कर रही है।

(७५–ई) —सन् १९६५ के अनन्तर आपकी ये कृतियाँ प्रकाशित हुई हैं— विनायकानामभिनन्दनम् सरल-शिवराज-विजयः, संक्षिप्त-लघुकौमुदी, आदर्श संस्कृत शब्दधातु रूपावलि एकाङ्कि-सस्कृत-नवरत्न-सुषमा, सुबोधशब्दधातुरूपावलि और नवल सतसई की व्याख्या। आपकी सम्पादित पुस्तको मे अभिनव काव्यसंग्रह और अभिनवकथासंग्रह भी हैं।

(२) लेख—(क) राष्ट्रस्य उन्नतिमूलम् (१।३) (ख) अमेरिकादेशे क्रिसमसदिवसः (२।५) (ग) स्वधर्मः परिपाल्यताम् (३।११) (घ) शतं जीवेम शरदः सर्ववीराः (११।६)।

(३) कथा—(क) त्यागः (२।६–१०) (ख) जीवितशवः (११६)।

(४) पद्य (क) अभिनन्दन-प्रसूनाञ्जलिः (श्री जयरामदास०) (१४।६–७), (ख) प्रणामाञ्जलिः (श्री चन्द्रशेखर शास्त्री०) (१४।६) इत्यादयः।

आपने-सस्कृत रत्नाकर में 'स्वातन्त्र्ययज्ञाहुतिः' शीर्षक से एकाङ्की नाटक (१८।१) प्रकाशित करवाया था (७५–उ)। इसी प्रकार आपका 'संस्कृतभाषायाः अन्ताराष्ट्रियं महत्त्वम्" शीर्षक लेख संस्कृत रत्नाकर (१७।६–१०) में प्रकाशित हुआ है, जो सम्मेलन के २२वें अधिवेशन में पुरस्कृत किया गया था। (७५–ऊ) इस समय आप राजकीय आयुर्वेद कालेज, जयपुर में संस्कृत प्राध्यापक हैं। आप अभी संस्कत-संस्कृति की सेवा में संलग्न हैं (७५–ऋ)।

---

७६. श्री (पी० एन०) पट्टाभिराम शास्त्री

पदुक्कोटय नत्तर श्री पट्टाभिराम शास्त्री के पिताजी का नाम श्री पी० एन० कृष्णाराव था। आपका जन्म ३० नवम्बर, १६०८ ई० को पलाशपुरम् उत्तर आकार्ट जिल्ला, मद्रास स्टेट (तमिलनाडु) में हुआ था। यद्यपि आपका जयपुर नगर से सम्बन्ध केवल ७ वर्ष ही रहा, परन्तु आपके इस अल्पकालीन निवास ने संस्कृत साहित्य को महत्त्वपूर्ण व उल्लेखनीय योग प्रदान किया हैं।

आपकी प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही सम्पन्न हुई थी और उसके पश्चात् आपने ६ वर्ष तक संस्कृत महाविद्यालय, तिरुपति (आन्ध्र में अध्ययन किया। अध्ययन समाप्त कर आप उच्च शिक्षा प्राप्त करने हेतु वाराणसी चल गये, जहां आपने हिन्दू विश्वविद्यालय में १० वर्ष तक अध्ययन किया। मीमांसा विभाग के अध्यक्ष, भारत प्रख्यात विद्वान् म०म० पं० श्री चिन्नस्वामी शास्त्री आपके गुरु थे। गुरु की कृपा एवं स्वयं की प्रतिभा से आपने महाराजा संस्कृत कॉलेज, जयपुर का प्राचार्य पद प्राप्त किया। यह पद श्री धूटर झा शास्त्री के देहावसान से रिक्त हुआ था।

(७५–उ) —आपके अनेक संस्कृत एकाङ्की नाटक 'संस्कृतम्' अयोध्या, 'भारतीविद्या' अलमोड़ा (उ०प्र०) और 'भवितव्यम्' नागपुर में प्रकाशित हो चुके हैं।

(७५–ऊ) —आपकी दो दर्जन पुस्तकें अभी प्रकाशन की प्रतीक्षा में हैं। किन्तु चार दर्जन से भी अधिक पत्र-पत्रिकाओं में आपकी सहस्राधिक रचनायें प्रकाशित हो चुकी हैं। निबन्ध, कथा, संस्मरण, पत्र, नाटक, कविता, समीक्षा, जीवनी आदि सभी प्रकार की विधायें इन रचनाओं में मिलती हैं।

(७५–ऋ) – और विगत ६–१० वर्षों से आप दैनिक हिन्दी पत्र 'अधिकार' जयपुर–३ में 'संस्कृत-समाचारः' स्तम्भ के प्रवर्त्तक एवं अवैतनिक नियमित लेखक तथा सम्पादक भी हैं।

विशिष्ट श्रोत्रिय कुल में उत्पन्न श्री शास्त्री ने उपनयनानन्तर तैत्तिरीयशाखा का अध्ययन किया। काव्य, नाटक एवं व्याकरण आदि विषयों के ग्रन्थों का अध्ययन आप तिरुपति में समाप्त कर चुके थे। वाराणसी में आपने मीमांसा, न्याय एवं साहित्य के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का अध्ययन किया था। अध्ययन समाप्ति पर अर्थात् सन् १९३४ में आप हिन्दू विश्वविद्यालय में मीमांसा के व्याख्याता नियुक्त हुए तथा सन् १९३९ में मीमांसा विभाग के अध्यक्ष। महाराज संस्कृत कालेल, जयपुर में प्राचार्य के रिक्त स्थान पर लोक सेवा आयोग द्वारा चयनित होकर आप जयपुर आये और आपने २ अप्रेल, १९४५ ई० को उक्त पद का कार्यभार सम्भाला (७६-अ)। इस पद पर आपने २५ फरवरी, १९५२ ई० तक बड़ी ही कुशलता व तत्परता से कार्य किया। आपके पद त्याग करने के पश्चात् संस्कृत कालेज की स्थिति ह्रासोन्मुख होने लगी। छात्रों की संख्या में पर्याप्त न्यूनता हो गई और कई उल्लेखनीय पद समाप्त हो गये। आप जयपुर के पश्चात् कलकत्ता विश्वविद्यालय में मीमांसा के व्याख्याता पद पर गये थे, जहां १९६० ई० में पदोन्नत होकर रीडर (प्रवाचक) बने। विगत तीन वर्षों से वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय में साहित्य विभाग के अध्यक्ष एवं प्राध्यापक हैं।

आपकी प्रतिभा एवं विद्वता से प्रभावित होकर जयपुर महाराज ने सन् १९४८ में आपको **विद्यासागर**' की उपाधि से सम्मानित किया। इसी प्रकार कांचीकामकोटि पीठाधीश वष्ल्गुरु शंकराचार्य ने सन् १९४६ ई० में **शास्त्र-रत्नाकर** की उपाधि तथा सन् १९६६ में अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन ने '**विद्यावाचस्पति**' की उपाधि से सम्मानित किया। आप राजस्थान विश्वविद्यालय द्वारा शोध निर्देशक के रूप में स्वीकृत किये गये थे, जब राजस्थान विश्वविद्यालय के अन्तर्गत ओरियन्टल फैकल्टी के खुलने की योजना थी। आपके निर्देशन में श्री मदनलाल शर्मा, (डा० मण्डन मिश्र) व्याख्याता हिन्दी विभाग (तत्कालीन) ने 'मीमांसा दर्शन का समालोचनात्मक अध्ययन' विषय पर वाचस्पति की उपाधि के लिये शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया था, जिस पर राजस्थान विश्वविद्यालय ने पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की थी। जयपुर निवास के समय आप के उल्लेखनीय शिष्यों में श्री मण्डन मिश्र, पं० रामगोपाल शास्त्री, पं० वेणीमाधव धर्माधिकारी, पं० मधुकर शास्त्री (श्री नाथूलाल) आदि स्मरणीय है। यों आपके अनेक शिष्य हैं, जिनमें श्री श्यामसुन्दर पाण्डेय (उत्तर प्रदेश), श्री कुलानन्द मिश्र (बिहार), श्री टी० वेंकटाचारी (दक्षिण भारत) (जो आजकल टोरन्टो में ईस्ट एशियन स्टडीज विभाग के असिस्टेन्ट प्रोफेसर हैं), श्री भवानी भट्टाचार्य (जादवपुर विश्वविद्यालय), श्रीमती रमा चौधरी आदि हैं, जो भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

कलकत्ता विश्वविद्यालय में आपके निर्देशन में श्री वाचस्पति उपाध्याय मीमांसा विषय पर डी० फिल्० के लिये शोध प्रबन्ध लिख रहे थे और श्री भवानी भट्टाचार्य "आश्वलायन श्रौतसूत्र" पर। सुश्री शिप्रा बन्द्योपाध्याय साहित्य विषय में शोध छात्रा थीं।

(७६-अ)—सिविल लिस्ट—करेक्टेड अपटू ३१ जुलाई, १९४६—एजूकेशन डिपार्टमेंट—महाराज संस्कृत कालेज एण्ड स्कूल—पृष्ठ ५६ अध्यक्ष पी० एन० पट्टाभिराम शास्त्री।

रचनात्मक कार्य

आपने केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्ति प्राप्त कर "कुतूहलवृत्ति" नामक ग्रन्थ का सम्पादन किया। आपके अन्यान्य ग्रन्थों में—(१) शतपथ ब्राह्मण, (२) ताण्ड्य महाब्राह्मण, (३) वेद प्रकाश, (४) ध्वन्यालोक, (५) मीमांसा कौस्तुभ, (६) जैमिनी न्यायमाला उल्लेखनीय हैं, जिनका सवृत्ति प्रकाशन चौखम्बा संस्कृत विद्या भवन, वाराणसी द्वारा हो चुका है। श्री रामायण संग्रह नामक एक लघुकाय रचना भी महत्त्वपूर्ण है, जो भगवान् श्री रामचन्द्र के इतिहास (रामायण कथा) को संस्कृत पद्यों में प्रस्तुत करती है। मीमांसा दर्शन के विभिन्न विषयों में आपका अभीष्ट विषय "भट्ट प्रभाकर मतभेद" है। आप इस समय शाबर भाष्य की व्याख्या लिख रहे हैं।

भारत की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं (१) संस्कृत रत्नाकर, (२) संस्कृत प्रणवपारिजातः, (३) मं [illegible]गा, (४) भारतश्रीः, (५) संस्कृत साहित्य परिषद् पत्रिका में आपके लगभग २५ शोध लेख प्रकाशित हो चुके हैं, जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। संस्कृत रत्नाकर में आपका एक लेख—"विद्वत् कवयः कवयः केवलं कवयस्तु कपय एव" (११वें वर्ष की प्रथम संचिका में) प्रकाशित हुआ है। इसी प्रकार भारती पत्रिका में 'अध्यायोपाकर्म' (१।१०), 'स्वामी रामतीर्थः' (२।१), 'लक्ष्मण' (३।१), 'अस्मच्छाशकेभ्यः कश्चन लेखः' (३।३) प्रकाशित हुए हैं। आपने तन्त्रसिद्धान्तरत्नावली (पूर्व मीमांसा प्रकरण ग्रन्थ) जो आपके गुरु म० म० श्री चिन्नस्वामी शास्त्री का लिखा हुआ था, परिशिष्ट जोड़कर संशोधन पूर्वक सम्वत् २००१ में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रेस से मुद्रित करवाया था। यह एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।

आप संस्कृत साहित्य सम्मेलन के अनेक अधिवेशनों में परिषदों के अध्यक्ष रहे हैं। आपका एक उल्लेखनीय भाषण संस्कृत रत्नाकर (२२।२) में प्रकाशित हुआ है।

आपका नाम जयपुर के संस्कृत-साहित्य के इतिहास में महाराजा संस्कृत कॉलेज के उन्नायक आचार्यों की श्रेणी में परिगणनीय है। आजकल आप वाराणसी में निवास कर रहे हैं।

---

७७. श्री परमानन्द शास्त्री

महाराज संस्कृत कॉलेज, जयपुर के भूतपूर्व साहित्य विभागाध्यक्ष पं० श्री जगदीश शर्मा साहित्याचार्य (परिचय क्रमांक ४६) के पितामह तथा पं० श्री बिहारीलाल शर्मा दाधीच (परिचय क्रमांक १२७) के पितृचरण श्री परमानन्द शास्त्री अपने समय के उल्लेखनीय विद्वान् रहे हैं। आप जयपुर राज्यान्तर्गत 'समेल्या' ग्राम के निवासी थे। आपने महाराजा संस्कृत कॉलेज, जयपुर के प्रवेशिका विभाग में कुछ समय तक काव्य साहित्य का अध्यापन किया था। इससे पूर्व आप जयपुर राज्यान्तर्गत हिण्डोन ग्राम में संस्कृत पाठशाला में अध्यापक थे। आपने कुछ दिन चांदपोल मिडिल स्कूल, जयपुर में भी शिक्षण कार्य किया था। आपका जन्म सम्वत् १९०९ अर्थात् १८५२ ई० में जयपुर में ही हुआ था। अनुमानतः सन् १९२५ तक आप अध्ययनाध्यापन कार्य करते रहे। आपके उल्लेखनीय शिष्यों में कथाभट्ट पं० श्री नन्दकुमार शर्मा साहित्याचार्य का नाम स्मरणीय है। आप ७५ वर्ष की अवस्था में कार्तिक कृष्णा १ सम्वत् १९८४ को दिवंगत हुए। (७७–अ)

आपका रचनात्मक कार्य उपलब्ध नहीं है। आप अपने समय के उल्लेखनीय विद्वान् थे।

(७७-अ) —आपका उक्त परिचय महामहोपाध्याय पं० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी तथा पं० श्री नन्दकुमार शास्त्री कथाभट्ट के सौजन्य से उपलब्ध होने पर प्रस्तुत किया गया है।

७८. श्री परमसुख शास्त्री

श्री शास्त्री का जीवन परिचय उपलब्ध नहीं होता। केवल राजवैद्य श्री कृष्णराम भट्ट ने जयपुर विलास काव्य में समकालीन विद्वानों की श्रेणि में आपका उल्लेख किया है। इस उल्लेख से सिद्ध होता है कि आप उस समय विद्यमान थे और तत्कालीन विद्वन्मण्डली में उल्लेखनीय भी थे।(७८-अ)

"अनंगविच्छित्तिरनंगशास्त्रे बबन्ध यो बन्धमनर्घबन्धम्।
स सत्यसंघस्ततकीर्तिगन्धः सुखी सुखोऽयं परमादिरास्ताम्॥"

श्री नारायण भट्ट पर्वणीकर के संग्रहालय में आपके तीन ग्रन्थों की प्रतियाँ सुरक्षित हैं, जिनका उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है :—

१. रसार्णवोल्लोलमाला—साहित्यशास्त्र बन्ध संख्या ८—पत्र ३
२. कामरंगोदय—कामशास्त्र—बन्ध संख्या १ अपूर्ण—पंचम प्रहर्ष मात्र (७८-आ)
३. नीतिप्रजागरं नाम दण्ड माहात्म्यम्—नीतिशास्त्र—बन्ध संख्या १ पत्र ४।

उपर्युक्त पद्य में श्री कृष्णराम भट्ट ने आपके कामरंगोदय ग्रन्थ का संकेत दिया है। रसार्णवोल्लोलमाला नामक ग्रन्थ की उपलब्ध प्रति में उसका लेखन काल सम्वत् १९१८ है, अतः आप इसी समय के आसपास विद्यमान थे, ऐसा सिद्ध होता है। इसका प्रथम पद्य आपके वैदुष्य प्रदर्शनार्थ प्रस्तुत किया जाता है :—

"कदाचित् क्राम्यन्ती परिशिवमसख्येऽस्ववपुषि,
स्वबिम्बं पश्यन्ती भुवि निपतिता स्विन्नवदना।
अथास्मिन् स्वीयास्यं कलयति जलैः पांसुरहितं,
भवद्ध—गलां भयविगतरोषाऽवतु शिवा॥"

इस ग्रन्थ के अन्त में लिखा है—

"श्रीमद्राजाधिराजेन्द्र रामसिंहेन्द्रतुष्टये।
श्लोकं प्रेमसुखः कृत्वा तिलकेनाप्यभूषयत्॥
वस्विन्द्वंकेन्दुभिर्वर्षे भाद्राद्यद्वादशी तिथौ।
रसार्णवोल्लोलमाला प्रेमानन्देन निर्मिता॥

इतिश्री प्रेमसुख प्रेमानन्दपरपर्याय परमसुखपंडितविरचिता रसार्णवोल्लोलमाला समाप्ता।"

आप उल्लेखनीय विद्वान् थे।

(७८-अ)—जयपुर विलास—पंचम उल्लास—पद्य संख्या ५५—पृष्ठ ५४।
(७८-आ)—इस ग्रन्थ की एक प्रति भारतीय शोध प्रतिष्ठान, बीकानेर में विद्यमान है।

७६. डा० प्रभाकर शर्मा शास्त्री

इन पंक्तियों के लेखक का जन्म वैशाख कृष्णा दमी सम्वत् १६६६ तदनुसार १३ अप्रैल, १६३६ ई० को राजस्थान की राजधानी जयपुर में हुआ। मेरे पितृचरण स्वर्गीय पं० श्री वृद्धिचन्द्रजी शास्त्री, व्याकरणधर्मशास्त्राचार्य (परिचय क्रमांक १२६) थे, जो महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर में धर्मशास्त्र विभाग के अध्यक्ष व प्राध्यापक रहे हैं। जाति से श्रीमाली ब्राह्मण, काश्यप, नैध्रुव, वत्स, (त्रिप्रवर) सामवेद की कौथुमी शाखाध्यायी, उपाध्या व्यासपुरेचा, गौत्र काश्यप है।

मेरे पूर्वज राजस्थान व गुजरात प्रान्त के सीमावर्ती ग्राम 'धाणेराव' के निवासी थे, जो कालान्तर में जोधपुर तथा बरार (विदर्भ) में भी रहे। आप लोग जयपुर राज्य के शासकों द्वारा सम्मानित राज्य ज्योतिषी के पद पर रहे हैं। जयपुर नरेश सवाई प्रतापसिंहजी के समय से लेकर अब तक आप लोगों का जयपुर नगर ही स्थायी निवास रहा है। अपने कुल पम्परागत संस्कृत-संस्कृति की परम्परा को निरन्तर गति प्रदान करने की दृष्टि से ही श्रद्धेय पितृचरण ने मुझे संस्कृत विषय पढ़ाया। मेरी प्रारम्भिक शिक्षा महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर में प्रारम्भ हुई और मैंने १५ वर्ष तक नियमित छात्र के रूप में अध्ययन करते हुए सामवेद प्रवेशिका, धर्मशास्त्र उपाध्याय, धर्मशास्त्र एवं धर्मशास्त्राचार्य परीक्षायें अबाध गति से उत्तीर्ण कीं। मैंने संस्कृत परीक्षाओं के साथ ही राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर से हाईस्कूल, इन्टरमीजियेट, बी० ए० तथा एम० ए० परीक्षायें भी उत्तीर्ण कीं। अपना शैक्षणिक योग्यता-विवरण इस प्रकार प्रस्तुत है :—

क्रम	नाम परीक्षा	वर्ष	विषय	श्रेणि	विवरण
१.	प्रवेशिका	१६५४	सामवेद	द्वितीय	संस्कृत कालेज, जयपुर
२.	हाईस्कूल	१६५५	संस्कृत	द्वितीय	स्वयंपाठी
३.	उपाध्याय	१६५६	धर्मशास्त्र	द्वितीय	संस्कृत कालेज, जयपुर
४.	इन्टरमीजियेट	१६५७	संस्कृत	द्वितीय	अध्यापक
५.	शास्त्री	१६५८	धर्मशास्त्र	द्वितीय	सर्वप्रथम
६.	बी० ए०	१६५६	संस्कृत	द्वितीय	पारीक कालेज, जयपुर
७.	आचार्य	१६६०	धर्मशास्त्र	प्रथम	सर्वप्रथम—स्वर्णपदकी
८.	एम० ए०	१६६१	संस्कृत	प्रथम	सर्वप्रथम—स्वर्णपदकी
९.	आचार्य	१६६४	साहित्य	द्वितीय	दरभंगा विश्वविद्यालय
१०.	पी-एच० डी०	१६६५	संस्कृत	—	१७ जनवरी, १६६५
११.	एम० ए०	१६६७	हिन्दी	प्रथम	तृतीय स्थान

एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् राजस्थान कालेज, जयपुर में १३ जुलाई, १६६१ से संस्कृत व्याख्याता के पद पर कार्य प्रारम्भ किया और इसके पश्चात् राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटा, राजकीय कन्या महाविद्यालय, श्रीगंगानगर, महाराज कालेज, जयपुर, महारानी कालेज, जयपुर, स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बीकानेर तथा श्री कल्याण कालेज, सीकर में क्रमशः परिवर्तित (स्थानान्तरित) होते हुए संस्कृत का अध्यापन किया।

राजस्थान विश्वविद्यालय के संस्कृत विभागाध्यक्ष डॉ० श्री पुरुषोत्तमलाल भार्गव के निर्देशन में सर्वप्रथम शोधछात्र के रूप में 'जयपुर की संस्कृत-साहित्य को देन—१६९९–१८३४ ई०' पर शोध-ग्रन्थ प्रस्तुत कर राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर के १७वें दीक्षान्त समारोह (१७ जनवरी, १९६५) में पी–एच० डी० की उपाधि से सम्मानित हुआ। अब श्रद्धेय पितृचरण की आज्ञा से उक्त विषय के अवशिष्ट समय १८३५ से १९६५ ई० का जयपुर के संस्कृत विद्वानों का ऐतिहासिक विवेचनात्मक शोध प्रबन्ध प्रस्तुत करने के लिए कार्यरत हूँ।

रचनात्मक कार्य

मैंने अपने श्रद्धेय पितृचरण की आज्ञा से 'याज्ञवलक्यस्मृति:' के आचाराध्याय का हिन्दी अनुवाद (विशिष्ट व्याख्या सहित) प्रकाशित कर उन्हें ही समर्पित किया। वे अपने जीवनकाल में इस ग्रन्थ को प्रकाशित नहीं देख सके थे। इसके अतिरिक्त दूसरी रचना 'संस्कृत गद्य प्रभा' है, जो राजस्थान विश्वविद्यालय के बी० ए० के पाठ्यक्रम में निर्धारित है। इसका उद्देश्य वर्तमान गद्य साहित्यकारों को संस्कृत छात्रों से सुपरिचित करवाना है। तीसरी रचना 'इन्दुमती स्वयंवर वर्णन' के नाम से विख्यात है, जो महाकवि कालिदास के महाकाव्य रघुवंश के छठे सर्ग का सव्याख्या हिन्दी अनुवाद है।

विश्वभारती शोध प्रतिष्ठान, बीकानेर से प्रकाशित होने वाले शोधपत्र 'विश्वम्भरा' के सम्पादक एवं प्रबन्ध सम्पादक के रूप में किया गया कार्य शोध-क्षेत्र में स्मरणीय है। मेरे अनेक लेख जिनकी संख्या लगभग ७० है—विश्वम्भरा (बीकानेर), शोधपत्रिका (उदयपुर), मरुभारती (पिलानी), अनेकान्त (दिल्ली), मधुमती (उदयपुर), नागरी प्रचारिणी पत्रिका (काशी), अन्वेषणा (उदयपुर), राजस्थान भारती (बीकानेर), सागरिका (सागर विश्वविद्यालय), ज्योतिष्मती (सोलन), आयुर्वेद ज्योति (जयपुर), भारती (जयपुर) आदि उल्लेखनीय पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। धर्मशास्त्र के विख्यात लेखक श्री वाचस्पति मिश्र द्वारा लिखित 'कृत्यमहार्णव' नामक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का सम्पादन डॉ० श्री पुष्करदत्त शर्मा (डूंगर कालेज, बीकानेर) के साथ सम्पन्न किया जा रहा है। मुझे संस्कृत क्षेत्र में कार्य करने की प्रेरणा देने वाले श्रद्धेय पितृचरण ही रहे हैं। यह शोध-प्रबन्ध विद्वानों के समक्ष मूल्यांकन हेतु प्रस्तुत करते हुए हर्ष है। (७९–अ)

(७९-अ)— इस शोध-प्रबन्ध पर राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर ने सन् १९७० के दीक्षान्त समारोह में 'डी० लिट्०' की उपाधि प्रदान की थी। सीकर के बाद महाविद्यालय, कोटा, प्रतापगढ़ तथा अजमेर में ८ वर्ष (कुल १७ वर्ष) अध्यापन करने के बाद २५ जुलाई, १९७८ से राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर के संस्कृत विभाग में 'प्रवाचक' (रीडर) के पद पर कार्य कर रहा हूँ। चार शोध-छात्रों को उपाधि प्राप्त हो चुकी है, तथा इस समय ७ कार्यरत हैं।

८०. श्री प्रवीणचन्द्र जैन

आपका जन्म जयपुर के प्रसिद्ध समाज सेवी जैन परिवार में दिनांक १६ अप्रैल, १९०९ को हुआ था। (८०–अ) आपके पिताजी का नाम श्री लक्ष्मणलालजी जैन था। आप घर से वहुत ही सामान्य श्रेणी के व्यक्ति थे। आपकी प्रारम्भिकी शिक्षा-दीक्षा अत्यन्त कठिनाई के साथ सम्पन्न हुई थी। सारी शिक्षा आपने अपने वलवूते पर पुरुषार्थ से प्राप्त की। आपका स्थायी पता—सरस्वती सदन, किशनपोल वाजार, जयपुर–1 एवं वर्तमान पता—वी–२० गणेश मार्ग, वापू नगर, जयपुर है।

हाई स्कूल, इन्टरमीजियेट, वी० ए० आदि परीक्षायें उत्तीर्ण कर आपने परिस्थितिवश अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया। सन् १९२७ ई० में आपने शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की। (८०–आ) आपका हाईस्कूल तक की कक्षाओं के अध्यापन का अनुभव १० वर्ष का रहा है। क्रमशः उन्नति करते हुए एक सामान्य अध्यापक के पद से उन्नत होते हुए स्नातकोत्तर कालेज के प्राचार्य का पद प्राप्त करना आपकी योग्यता, कर्मठता एवं कार्यकुशलता का ही सूचक है।

आपने राजकीय सेवा में १ अगस्त १९३२ को प्रवेश किया। १० वर्ष तक हिन्दी शिक्षक रहने के वाद एक वर्ष के लिए आपने पोदार कालेज, नवलगढ़ में हिन्दी के प्रवक्ता के रूप में कार्य किया। इसके वाद आप सन् १९४३ में महाराज कालेज जयपुर के प्रोफेसर एवं संस्कृत विभागाध्यक्ष के पद पर नियुक्त किये गये। सन् १९४७ से १९५२ तक आपकी सेवायें वनस्थली विद्यापीठ के आचार्य पद पर कार्य करने के लिए आपसे प्राप्त की गई। वहाँ से पुनः अपने पद पर महाराज कालेज, जयपुर में कार्य करने लगे। इसके वाद आप महारानी श्री जया महाविद्यालय के प्रिन्सीपल रहे। वहाँ से आपका स्थानान्तरण राजकीय महाविद्यालय, कोटा में वाइस प्रिन्सीपल के पद पर हुआ। वहाँ दो वर्ष तक कार्य करने के वाद आप डूंगर कालेज, वीकानेर के आचार्य वने। आपने सन् १९६५ में सेवा मुक्ति के लिए प्रार्थना पत्र देकर राज्य सेवा से मुक्ति प्राप्त कर ली तथा राजस्थान के उपनगर वनस्थली विद्यापीठ में ज्ञान-विज्ञान महाविज्ञान के आचार्य के पद पर १९७२ ई० तक कार्य किया। १९७२ ई० से १९७७ ई० तक आपने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के द्वारा शिक्षण के लिए राजस्थान विश्वविद्यालय से सम्पर्क किया। वर्तमान में आप उच्चस्तरीय अध्ययन अनुसंधान संस्थान जयपुर के कार्याध्यक्ष व निर्देशक हैं।

शिक्षक रहते हुए आपने वी० ए०, एम० ए० तथा साहित्यरत्न की परीक्षायें उत्तीर्ण कीं। संस्कृत में एम० ए० में प्रथम स्थान के साथ प्रथम श्रेणी भी प्राप्त की। आप प्रारम्भ से अध्ययन में अध्यवसायी रहे हैं। इसलिए एक सफल शिक्षक के रूप में आप लोकप्रिय हैं।

आपके संस्कृताध्यापकों में सर्वश्री दुर्गाप्रसाद जी नांगल्या, स्व० पं० वृद्धिचन्द्रजी शास्त्री व्याकरण धर्मशास्त्राचार्य, स्व० भट्टश्री मथुरानाथ शास्त्री, श्री गोपीनाथ शास्त्री, श्री हरि शास्त्री दाधीच, श्री रामचन्द्र जी साहित्याचार्य, श्री दामोदर जी साहित्याचार्य, श्री गोपीनाथ जी सम्राट् तथा श्री नन्दकिशोर जी न्यायाचार्य का नाम विशेषतः उल्लेखनीय है। (८० इ)

आपके निर्देशन में अब तक १० व्यक्तियों को पी–एच० डी० उपाधि प्राप्त हो चुकी है, जिनमें श्री मनमोहनलाल शर्मा, श्री गंगाधर भट्ट, श्री श्यामशंकर दीक्षित, श्रीमती श्यामा भटनागर, श्री दिवाकर शर्मा,

---

(८०–अ) —सिविल लिस्ट (जयपुर स्टेट) करेक्टेड अपटू ३१।७।४६ पेज ५२ क्रमांक ९ म० कालेज, जयपुर।

(८०–आ)—शास्त्रिपरीक्षोत्तीर्णच्छात्राणां नामादीनि क्रमांक २२०—सम्वत् १९८३।

(८०–इ) —यह विवरण लेखक द्वारा प्रदत्त सूचनाओं पर आधारित है।

श्री पुष्करदत्त शर्मा, श्री छोटेलाल जैन, श्रीमती सतीश सूरि (जैरथ), कु० भारती पांडेय और कु० कुसमलता आर्य के नाम उल्लेखनीय हैं। इन समय आपके निर्देशन में ७ शोध विद्यार्थी कार्यरत हैं।

आप विगत तीस वर्षों से शोध निर्देशक हैं। इसके अतिरिक्त आपको प्रशासनिक अनुभव भी पर्याप्त है। इनका उल्लेख इस प्रकार है—

(१)	विश्वविद्यालय की फैकल्टी आफ आर्ट्स, बोर्ड आफ स्टडीज, एकेडेमिक कौन्सिल, रिसर्च बोर्ड आदि की सदस्यता, संयोजकता आदि।	३० वर्ष
(२)	माध्यमिक शिक्षा मण्डल की प्रायः सभी समितियों की सदस्यता, संयोजकता आदि।	३० वर्ष
(३)	प्राचार्य डिग्री (स्नातक) कालेज	६ वर्ष
(४)	उपाचार्य पोस्ट ग्रेजुएट (स्नातकोत्तर कालेज)	२ वर्ष
(५)	आचार्य पोस्ट ग्रेजुएट (स्नातकोत्तर कालेज)	१४ वर्ष
(६)	आचार्य एवं अध्यक्ष संस्कृत विभाग	३० वर्ष

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर की स्थापना अर्थात् १९४७ से लेकर अब तक आप इसकी सभी समितियों के सम्मान्य सदस्य रह चुके हैं। विश्वविद्यालय की सिन्डीकेट तथा माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान के आप दो बार सदस्य रहे हैं।

आप राजस्थान एवं अन्य प्रान्तों के अनेक विश्वविद्यालयों व बोर्डो के परीक्षक व पाठ्यग्रन्थ निर्माण समितियों के संयोजक सदस्य रहे हैं। आपने अनेक पुस्तकों का सम्पादन व समालोचन किया है। जयपुर स्टेट के शिक्षक संघ तथा राजस्थान शिक्षक संघ के आप संस्थापक सदस्य हैं। आपने उच्चस्तरीय अध्ययन अनुसंधान संस्थान की स्थापना की है। इस समय इस संस्था के कार्य में विशेष रूप से संलग्न हैं और इस प्रकार संस्कृत साहित्य की सेवा में संलग्न हैं। पौराणिक गद्य साहित्य के समीक्षात्मक कार्य में विशेष रुचि ले रहे हैं। आप राजस्थान संस्कृत मण्डल, राजस्थान संस्कृत आयोग तथा राजस्थान शिक्षक सलाहकार बोर्ड के सदस्य भी रहे हैं।

शोध कार्य के क्षेत्र में तथा कुशल अध्यापक के रूप में आपका कार्य स्मरणीय है।

---

८१. डा० श्री पुरुषोत्तम लाल भार्गव

डा० भार्गव के पितामह श्री शालिग्राम भार्गव रिवाड़ी, हरियाणा से सर्वप्रथम राजस्थान प्रान्त में आये थे। सर्वप्रथम आपने जोधपुर में राज्य सेवा प्राप्त की थी। आपके दो पुत्र थे, जिनमें ज्येष्ठ पुत्र श्री अयोध्याप्रसादजी भार्गव ने नोवल्स स्कूल के प्रधानाध्यापक के पद पर कार्य किया था तथा कालान्तर में जसवन्त कालेज, जोधपुर में भी प्राध्यापक रहे थे। कनिष्ठ भ्राता श्री मुकुट बिहारीलालजी ने अलवर में राज्य सेवा प्राप्त कर वहाँ निवास किया था। डा० भार्गव श्री मुकुट विहारीलाल जी के ही तीन पुत्रों में ज्येष्ठ हैं। आपका जन्म अलवर में ही हुआ था। कुछ दिन अलवर निवास के पश्चात् श्री मुकुटविहारीलालजी लखनऊ चले गये और वहीं एक बड़ी पुस्तक कम्पनी के मैनेजिंग डाइरेक्टर (प्रबन्ध निदेशक) नियुक्त हो गए। डा० भार्गव की अधिकांश शिक्षा लखनऊ में ही हुई। श्री मुकुटविहारीलाल स्वयं भी लेखक रहे हैं जिनने लेनिन, कमालपाशा आदि महापुरुषों की जीवनियों का लेखन किया और प्रकाशन भी। 'इन्डियास् सर्विसेज इन दी वार' आपकी महत्त्वपूर्ण रचना है।

डा० भार्गव का जन्म २२ मई, १९०९ को अलवर में हुआ था। आपने लखनऊ विश्वविद्यालय से बी० ए० (संस्कृत, इतिहास व अंग्रेजी विषय लेकर) सन् १९२९ में उत्तीर्ण किया तथा संस्कृत में सर्वप्रथम घोषित किये जाने के कारण स्वर्णपदक से सम्मानित किये गए। सन् १९३१ में आपने संस्कृत में एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की। एक वर्ष बाद शास्त्री परीक्षा भी लखनऊ विश्वविद्यालय से ही उत्तीर्ण की, जिसमें भी आप सर्वप्रथम रहे। सन् १९४१ ई० में आगरा विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की। अध्यापन कार्यरत रहते हुए आपने सन् १९४८ ई० में आगरा विश्वविद्यालय से ही पी-एच० डी० की उपाधि भी प्राप्त की।

आपके गुरु का नाम श्री सुब्रह्मण्य अय्यर (मेजर बेंकस् रोड, लखनऊ) है, जो संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् हैं। *आप लखनऊ विश्वविद्यालय के संस्कृत विभागाध्यक्ष और कुलपति तथा संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी के कुलपति* रह चुके हैं।

राजस्थान में शिक्षा विभागीय सेवा के अन्तर्गत आपने सन् १९३७ में प्रवेश किया। सर्वप्रथम आपकी नियुक्ति सनातन धर्म कालेज, ब्यावर में हिन्दी व्याख्याता के रूप में हुई थी। आपके अध्यापन अनुभव का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :—

१. श्री सनातन धर्म प्रकाशक कालेज, ब्यावर—सत्र १९३७-१९३९—दो वर्ष—व्याख्याता
२. श्री जसवन्त कालेज, जोधपुर—सत्र १९३९-१९५३—१४ वर्ष—व्याख्याता
३. महाराज कालेज, जयपुर—सत्र १९५३—१९५७—४ वर्ष—प्राध्यापक
४. राजस्थान कालेज, जयपुर—सत्र १९५७-१९६१—४ वर्ष—प्राध्यापक
५. राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर—सत्र १९६१-१९७२—११ वर्ष—अध्यक्ष संस्कृत विभाग
६. राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर—सत्र १९७२-१९७४—२ वर्ष—वरिष्ठ प्राध्यापक संस्कृत विभाग
७. मैक्सास्टर विश्वविद्यालय, हैमिलन कनाडा—सत्र १९७४-१९७६—२ वर्ष प्राध्यापक, धार्मिक अध्ययन विभाग

इस प्रकार आपने विगत ३९ वर्षों तक अध्यापन कार्य किया, जिसमें से ३७ वर्ष राजस्थान राज्य में, २१ वर्ष जयपुर में और ८ वर्ष विदेश में। इस समय आप जयपुर में स्थायी रूप में रह रहे हैं।

आपके शोध-प्रबन्ध का विषय 'वैदिक युग में भारत' था, जो एक महत्त्वपूर्ण शोध-प्रबन्ध होने के साथ ही उल्लेखनीय भी है। यह लखनऊ से प्रकाशित हो चुका है। यों तो आपने विगत ३९ वर्षों के अध्यापन काल में अनेक छात्रों को शिक्षित किया है, जो विभिन्न प्रान्तों में उच्च पदासीन हैं जिनका उल्लेख सम्भव नहीं है। फिर भी शोध-कार्य के क्षेत्र में १५ विद्यार्थियों ने आपके निर्देशन में कार्य करते हुए पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की है। इन पंक्तियों के लेखक को सर्वप्रथम शोध-छात्र के रूप में आपके निर्देशन में कार्य करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, यह गौरव का विषय है।

आपके शोध-छात्रों का पूर्ण विवेचन परिचय खण्ड के तृतीय अध्याय (ग) में प्रस्तुत किया जा चुका है। १९६४ में सम्पन्न अखिल भारतीय शिक्षा सम्मेलन के प्राच्य विभाग के अध्यक्ष के रूप में आपका निर्वाचन हुआ था। इसी प्रकार से आप १९६७ में राजस्थान विश्वविद्यालय के प्रतिनिधि के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय प्राच्यविद्या सम्मेलन 'एन आर्बर' (अमेरिका) में सम्मिलित हुए थे जहाँ आपने आर्यों का आदि निवास स्थान विषय पर एक शोध-लेख प्रस्तुत किया था। आप अनेक समितियों के उपाध्यक्ष अथवा सदस्य रह चुके हैं। आपकी तीन पुस्तकें तथा ५० से अधिक शोध-लेख हैं जो भारत तथा विदेशों की विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। इनमें से अधिकतर लेख

अंग्रेजी तथा हिन्दी भाषा के माध्यम से लिखे गये हैं। संस्कृत भाषा के माध्यम से प्रकाशित लेखों में (१) भारतीया उत्सवा: (२) महर्षिवाल्मीकि. (३) पुराणानां कर्तृत्वं विषयाश्च (४) विद्याधर ग्रंथावली समीक्षा उल्लेखनीय हैं। आप एक कुशल अध्यापक के रूप में स्मरणीय हैं।

———

८२. श्री बदरीनाथ शास्त्री

जयपुर नगर के मूल निवासी, परन्तु कालान्तर में लखनऊ प्रवासी श्री बदरीनाथ शास्त्री का इस प्रकरण में उल्लेख इसलिए किया गया है कि आपने जयपुर में शिक्षा-दीक्षा ग्रहण की थी तथा कुछ समय तक महाराज कालेज, जयपुर में अध्यापन किया था। आप सदृश मेधावी नररत्नों को प्राप्त कर यह नगर धन्य है।

आपका जन्म जयपुरीय गौड़ ब्राह्मण परिवार में हुआ था। आपका अवंटक बावल्या था। आप बाल्यकाल से ही प्रतिभा सम्पन्न थे। आपने संस्कृत कालेज, जयपुर में शिक्षा प्राप्त की थी। नियमित छात्र के रूप में आपने सम्वत् १९५१ (१८९४ ई०) में न्यायशास्त्री परीक्षा द्वितीय श्रेणि में उत्तीर्ण की। (८२-अ) आप प्रसिद्ध नैयायिक विद्वान् ओझा जीवनाथजी तथा ओझा भाईनाथजी के प्रधान शिष्य थे। किन्हीं कारणों से आप आचार्य परीक्षा उत्तीर्ण न कर सके। आपने आंग्ल भाषा का अध्ययन किया तथा विधिवत् महाराज कालेज में अध्ययन करते हुए इन्टरमीजियेट, बी० ए० तथा एम० ए० परीक्षा (संस्कृत) उत्तीर्ण की। आप जनवरी, १८९८ में संस्कृत कालेज में न्याय विभाग के अध्यापक थे। (८२-आ) इसके पश्चात् आप लखनऊ के ओरिन्यट विभाग (प्राच्यविद्या विभाग) में अध्यक्ष बन कर चले गये, जहाँ कुशलता से अध्यापन किया था। आपका समय प्राचीन विद्वानों के साथ रहा है। अब आप दिवंगत हैं। संस्कृत रत्नाकर मासिक पत्र के प्राचीनतम अंकों में आपकी एक समस्या प्रकाशित हुई है, जिससे संकेत मिलता है कि आप १९०४ तक जयपुर में ही अध्यापक थे।

समस्यापूर्ति रूपात्मक पद्य है :—(८२-इ)

> **सुपुत्रे श्रीरामे नृपति-पदवीरोहणविधौ प्रवृत्ते कैकेय्या प्रतिहतवचा भूपतिलकः।**
> **जहौ प्राणान्रामस्त्वगमदरिहा दण्डकवनं सतां म्लाने माने मरणमथवा दूरसरणम् ॥"**

(राजकीय पाठालय संस्कृताध्यापक पं० श्री बदरीनाथशास्त्रिणाम्)

इसके पश्चात् उपलब्ध रचनाओं में आपका संकेत लखनऊ का मिला है। उदाहरण के लिए संस्कृत रत्नाकर का समस्यापूर्ति रूपात्मक पद्य, जो ८ वर्ष संचिका ११ जून, १९४२ तथा वर्ष ९ सचिका १० मई, १९४३ में प्रकाशित हुआ है, प्रस्तुत किया जा सकता है :—

(८२-अ) —शास्त्रिपरीक्षोत्तीर्णच्छात्राणां नामादीनि, क्रमांक १० बदरीनाथ शर्मा (गौड़) :—सं० १९५१।

(८२-आ)—प्राचीन रजिस्टर उपस्थिति पत्रक संस्कृत कालेज, जयपुर में उपलब्ध रिकार्ड के आधार पर।

(८२-ई) —संस्कृत रत्नाकर आकर १ रत्नम् ७ आश्विन शुक्ला १५ शाके १८२६ ईसवी १९०४ के प्राचीनतम अंक से उद्धृत।

१. (क) "एकतन्त्रप्रजातन्त्रराष्ट्रयोः कतरद्वरम् ।
ज्ञातुमित्येव किं भूमौ प्रवृत्तं युद्धमुद्धतम् ।।"

(ख) "युद्धव्यापृतसर्वसभ्यजनता चिन्तातुरा दृश्यते
किं भावीति न निश्चितं विधिवशात् केनाप्युपायेन चेत् ।
तर्ह्यापद्विनिवृत्तये सुमतिभिः संसेव्यतां सादरं
सर्वं भेदमपास्य कार्यकुशलैः संघः सतां सौख्यदः ।।"

(पं० बदरीनाथ शास्त्री एम० ए०, लखनऊ विश्वविद्यालयाध्यापकः)

ये समस्यापूर्ति रूपात्मक पद्य महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर के वार्षिकोत्सव पर समायोजित कवि सम्मेलनों में प्रस्तुत किये गये हैं। इसी प्रकार आपके अन्य दो पद्य 'देवो जगद् रक्षतात्' समस्यापूर्ति रूपात्मक हैं, जो संस्कृत रत्नाकर के अंकों में प्रकाशित हुए हैं।

कविशिरोमणि भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री ने आपका उल्लेख किया है :—

"संस्कृतसरस्वतीप्रविष्टोपि रसातिशयांदिग्लिशपयस्वतीनिविष्टोऽसौ निरीयते
गौडब्राह्मणेषु 'बावलया' प्रसिद्धियुक्तोऽप्येष विद्याग्रहणे तु सावधानो व्यवसीयते ।
लक्ष्मणपुरस्थराजकीयांगलविद्यालयेध्यापनं प्रणीयाऽधुना सुस्थमवस्थीयते
पूर्वं न्यायशास्त्रीभवन् एम० ए० पदजुष्टस्ततो बद्रीनाथशास्त्री सप्रशंसं संनिपीयते ।।"

(जयपुरवैभवम्—नागरिकवीथी—सुधीचत्वरः—पृष्ठ २६१–६२, पद्य ७३)

आपकी प्रतिभा तथा विद्वत्ता उपर्युक्त समस्यापूर्ति रूपात्मक पद्यों से स्पष्ट है। आपकी सेवायें संस्कृत अध्यापक के रूप में उल्लेखनीय हैं।

---

८३. श्री बालचन्द्र शास्त्री

श्री शास्त्री जी का जन्म पौष शुक्ला चतुर्थी संवत् १९१२ को जयपुर में ही हुआ था। आप जाति से गौड़ ब्राह्मण थे। आपने महाराज संस्कृत कालेज के प्राचीनतम प्राध्यापक श्री जीवनाथजी ओझा तथा श्री भाईनाथजी ओझा से न्यायशास्त्र का अध्ययन किया था। आप उक्त कालेज के नियमित छात्र रहे हैं। आपने धार्मिक जनता में धर्मविरोधी विचारों के अपसारणार्थ तत्कालीन विद्वानों की सहायता से "रामसभा" नामक एक संस्था की स्थापना थी। उसी समय आपने 'सदाचार मार्तण्ड' नामक हिन्दी में एक मासिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया था। इस सभा में धार्मिक विषयों पर विभिन्न विद्वानों के भाषण हुआ करते थे (८३–अ)। उक्त 'रामसभा' का उल्लेख करते हुए म० म० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है :—"जयपुर के एक विद्वान्

(८३–अ) —आपका संक्षिप्त परिचय भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री ने जयपुरवैभवम् नागरिकवीथी सुधीचत्वरः पृष्ठ २६२–२६३ पर प्रस्तुत किया है। उसी आधार पर यहां दिया गया है।

श्री बालचन्द्र शास्त्रीजी ने जयपुर में ही "रामसभा" नाम से एक संस्था बना रखी थी। वहां के सुप्रसिद्ध वकील श्री मथुराप्रसादजी, जो कि अंग्रेजी और संस्कृत दोनों के विद्वान् थे, उनका भी उनमें पूर्ण सहयोग था। उनके अनुरोध से उसी सभा में मैंने 'भगवान् का नाम और रूप' विषय पर व्याख्यान दिया। बड़ी सभा में भाषण करने का यह मेरा पहला ही अवसर था।" (आत्मकथा और संस्मरण—पृष्ठ १९—'भाषण देने का अभ्यास')।

आप खेतड़ी नरेश तथा अन्यान्य अनेक सामन्तों के मन्त्रदाता गुरु थे। आपने ही सर्वप्रथम सन् १९०३ में जयपुर में मुद्रणालय स्थापित किया था, जो 'बालचन्द्र यन्त्रालय' के नाम से प्रसिद्ध था। आप जाति परिस्कारक भी थे। आपने अपनी जाति में विद्यमान कुरीतियों का समापन करने के लिये सबसे पहले कदम उठाया था।

संस्कृत रत्नाकर के प्रकाशन का निःशुल्क कार्य भी आपने ही प्रारम्भ किया था, जो एक स्तुत्य प्रयास था। म० म० श्री चतुर्वेदी ने लिखा है :— (८३-आ)

"अब पत्र निकालने के लिये प्रारम्भिक द्रव्य कहां से प्राप्त हो, इस समस्या को हल करने के लिये **श्री बालचन्द्र शास्त्रीजी** से, जो कि सुविख्यात मोतीलाल शास्त्री के पिता थे और जिन्होंने जयपुर में उन दिनों ही एक नये प्रेस की स्थापना की थी, मिलने पर उन्होंने एक वर्ष तक अपने प्रेस की ओर से इस पत्र का प्रकाशन स्वीकार किया। इस प्रकार 'संस्कृत रत्नाकर' नाम के मासिक पत्र का विक्रम संवत् १९६१ में जयपुर में जन्म हुआ।"

श्री शास्त्री जी संस्कृत रत्नाकर के प्रकाशन स्तम्भ थे, जब जब इस पर आपत्तियां आईं, तब तब आपने पर्याप्त सहायता की। इन सभी का संकेत संस्कृत रत्नाकर के प्राचीनतम अंकों में (आकर ७ रत्न १ अभिनवमावेदनम् तथा 'रत्नाकरस्यात्मकथा' वर्ष १ अंक १ जनवरी, १९३३ में) उपलब्ध होता है।

ऐसे विद्वान् का स्मरण कविशिरोमणि भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री ने 'छप्पय' छन्द से किया है :— (८३-ई)

"धीरभावमयमुक्तिनिकरमधिसभमुपयुंजन्। संततसुजनसभासु साधुसहभावं युंजन्॥
मुद्रयन्त्रयुतोऽपि शिथिलतन्त्रं मुहुरंचन्। चतुरतया तु धनस्य सूलतंत्रं न विमुंचन्॥
रामसभासंयोजनात्प्रकृतधर्ममल्लो जयति।
सपदि तु जपमालां करे बालचन्द्रशास्त्री नयति॥"

आपका देहावसान श्रावण शुक्ला १२ संवत् १९९१ को हुआ था। उस समय आपकी आयु ८० वर्ष की थी। आपके दो पुत्रों में श्री हरिश्चन्द्र शर्मा ज्येष्ठ तथा पं० मोतीलाल शास्त्री वेदवीथीपथिक (कनिष्ठ) (परिचय क्रमांक १०२) जयपुर के संस्कृत विद्वानों में प्रसिद्ध थे।

आपके स्वर्गवास पर भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री ने एक शोक संदेश प्रकाशित किया था, जिसके अवलोकन से आपका पूर्ण परिचय प्राप्त हो जाता है। वह इस प्रकार है :—

(८३-आ)—आत्मकथा और संस्मरण—श्री चतुर्वेदी—पृष्ठ संख्या २३—'संस्कृत पत्रिका प्रकाशन'।

(८३-इ)—जयपुर वैभवम्—नागरिकवीथी—सुधीचत्वरः—पृष्ठ २६२—पद्य संख्या ७४।

"धर्मवीरस्य श्रीबालचन्द्रशास्त्रिणः स्वर्गवासः यो बाल्यादेव निरन्तरं विद्यार्जने धर्मानुष्ठाने च प्रवृत्तोऽभवत्। अदम्योत्साहो यो जातिसेवार्थं धर्मप्रचारार्थं देशोद्धारार्थं च सततं बद्धपरिकोऽभवत्। यो दायानन्दानां सनातनधर्मविरुद्ध-दुर्भावप्रचारनिरोधार्थं युक्तिप्रमाणद्वारा तन्मतखण्डनार्थं च राम्रसभामस्थापयत्। येन च सनातनधर्मस्य-गूढरहस्यपूर्णवैज्ञानिकसिद्धान्तप्रकाशनार्थं धर्ममार्तण्डनामकं मासिकपत्रमपि प्रकाशितमभूत्। येन लोकानां पत्रपुस्तकादि-मुद्रणौसकर्यार्थं बालचन्द्रयन्त्रालयस्य स्थापना कृता। प्रायः पंचविंशतिवत्सरेभ्यः पूर्व यस्य परमोत्साहेन संस्कृतभाषा-सेवनोत्कण्ठया च प्रारम्भे संस्कृत-रत्नाकरस्य प्रकाशनं प्रारब्धमभूत्। यां धर्मरक्षार्थं रात्रावपि स्मृतो जरामवधूय नवयुवक इव तत्क्षणात् प्रातिष्ठत, तादृशस्य सर्वत्र लब्धप्रतिष्ठस्य श्रीबालचन्द्रशास्त्रिणो गतश्रावणशुक्लद्वादश्यां प्रातर्नववादनसमये देहावसानमभूत्। अहो! जयपुर जनतायाः पुरातनो धर्मोपदेशको नष्टः। अहो गौड़जातेः सत्यसेवको निश्लिष्टः। अहो! कुप्रथानिवारको वीरो लोकान्तरं प्रस्थितः।..........." इत्यादि (८३-ई)।

आपका रचनात्मक कार्य उपलब्ध नहीं है। आप जयपुरीय संस्कृत विद्वत् समाज में समाजसेवी के रूप में प्रसिद्ध हैं।

---

८४. श्री ब्रह्मचारी

आप महाराजाधिराज सवाई माधवसिंह द्वितीय के गुरु थे। ऐसा उल्लेख मिलता है कि श्री माधवसिंह (कायमसिंह) अपनी माता के साथ वृन्दावन गये थे, वहीं आपने भविष्यवाणी की थी कि ये राजा बनेंगे। इनका सौतेला भाई श्री प्रतापसिंह ईशरदा का स्वामी बना हुआ था और इन्हें कष्ट दिया करता था। परस्पर सम्पन्न युद्ध में इनकी वीरता से प्रभावित होकर महाराज सवाई रामसिंह ने इन्हें अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया था। इस प्रकार श्री ब्रह्मचारीजी की भविष्यवाणी की सत्यता से महाराज ने इनका बहुत सम्मान किया तथा गुरु स्वीकार किया। कहा जाता है आप जयपुर भी पधारे थे, परन्तु अधिक समय वृन्दावन ही रहे थे (८४-अ)।

राजवैद्य श्री कृष्णराम भट्ट ने आपका विवरण इस प्रकार प्रस्तुत किया है :—(८४-आ)

"विद्वद्विहारी विभवाधिकारी विपद्विदारी दुरितप्रहारी।
गोपालधारी स्वयशःप्रसारी श्रीब्रह्मचारी सुकृतप्रचारी॥

(८३-ई) —संस्कृत रत्नाकर द्वितीय वर्ष अष्टम संचिकी, अगस्त १९३४ संवादाटिप्पण्यञ्च।

(८४-अ) —हितैषी—जयपुर अंक—पृष्ठ ९५ के अनुसार।

(८४-आ)—जयपुरविलास—पंचम उल्लास—पृष्ठ ५१—पद्य संख्या ३०।

इसकी टिप्पणी में लिखा है—"**एते च महात्मानो वर्तमानमहाराजानां परमपूज्याः श्रीवृन्दावनकृतस्थितयः शापानुग्रहसमर्थमन्याः श्रीगोपालचरणारविन्दमकरन्दमिलिन्दमानसाः श्रीभागवतैकनिष्ठाः श्रीगुरवो विराजन्ते।**" इससे प्रतीत होता है कि आप अपने समय के प्रख्यात विद्वान् रहे हैं। चूंकि श्री भट्टजी ने आपका नाम उल्लेखनीय विद्वानों में रखा है, यहां भी उल्लिखित कर दिया गया है।

---

८५. श्री भवदत्त ओझा

जयपुर के प्रसिद्ध राजगुरु परिवार में लब्धजन्मा श्री झा का जन्म ३ जून, १९१७ को जयपुर में ही हुआ था। आपके पिता का नाम स्वनामधन्य पं० चन्द्रदत्तजी व्याकरणाचार्य वाबूजी महाराज (परिचय क्रमांक ३९) था। आप उनके ज्येष्ठ पुत्र थे। आपने महाराज संस्कृत कालेज में नियमित अध्ययन कर सन् १९४२ ई० में व्याकरणाचार्य परीक्षा तथा सन् १९४८ में साहित्याचार्य परीक्षा उत्तीर्ण की थी। सन् १९५१ में आपने साहित्यरत्न (हिन्दी) की परीक्षा में सफलता प्राप्त की। व्याकरणाचार्य की परीक्षा में आप सर्वप्रथम रहे थे जिसके परिणाम स्वरूप आपको महाराणा भूपालसिंह स्वर्णपदक प्राप्त हुआ था। आपके प्रधान गुरु पितृचरण श्री चन्द्रदत्तजी ओझा तथा म० म० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी रहे हैं।

व्याकरणाचार्य परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् आप स्थानीय माधव संस्कृत विद्यालय में प्राधानाध्यापक के रूप में कार्य करने लगे थे, जहां १९५२ ई० तक कार्य किया था। इसके पश्चात् १९५४ तक आप खाण्डल विप्र विद्यालय में प्रधानाध्यापक रहे। १९५४ में आपने सुबोध जैन महाविद्यालय (कालेज) में हिन्दी-संस्कृत विषय का अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया था, जहां आपके जीवन के अन्तिम वर्ष तक कुशल अध्यापक के रूप में कार्य किया। आपके अनेक शिष्य रहे हैं, परन्तु संस्कृत जगत् में विख्यात् शिष्यों में श्री माधवराम भट्ट पर्वणीकर, श्री नारायण त्रिपाठी, श्री शिवदत्त चतुर्वेदी, श्री ईश्वरप्रसाद चतुर्वेदी, श्री रमेश चन्द्र चतुर्वेदी, श्री रविदत्त शर्मा दाधीच तथा श्री ताराप्रकाश जोशी के नाम विशेषतः स्मरणीय हैं।

आप जयपुर महाराज द्वारा संस्थापित मोदमन्दिर धर्मसभा के सम्मानित सदस्य भी रहे हैं। आपके अभिन्न मित्रों में राजगुरु कथाभट्ट श्री जगदीशचन्द्र शास्त्री, पं० रविशंकर भट्टराजा, पं० श्री देवीदत्त शर्मा चतुर्वेदी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। आप फुटबाल के उच्च श्रेणि के खिलाड़ी थे तथा क्रिकेट मैच के बड़े शौकीन। संस्कृत भाषाविज्ञों में खेलों के प्रति प्रायः उदासीनता ही देखी जाती है, आप उसके अपवाद स्वरूप थे (८५-अ)।

आपका असामयिक निधन दिनांक २८ जून, १९६७ को हुआ था। आपके चार पुत्र श्री भानुदत्त, श्री ज्वालादत्त, श्री गुरुदत्त तथा श्री अशोककुमार हैं।

(८५-अ)—आपका उक्त परिचय स्थानीय दैनिक पत्र राष्ट्रदूत में प्रकाशित हुआ था, जिसके लेखक श्री ईश्वरप्रसाद चतुर्वेदी 'सरल' हैं। देखिये राष्ट्रदूत २२ जून, १९६८—"स्वर्गीय राजगुरु भवदत्त शर्मा मैथिल" शीर्षक लेख।

श्री ओझा एक विद्वान् पिता के पुत्र होने के कारण स्वयं भी वैदुष्य सम्पन्न व्यक्ति थे। आपने संस्कृत पाठशाला तथा सरल संस्कृत शिक्षा नामक दो पुस्तकों की रचना की थी। ये दोनों रचनायें प्रकाशित हैं तथा संस्कृत भाषा के प्रारभिक ज्ञान के लिये अत्यन्त उपयोगी हैं। आप संस्कृत भाषा में बालोपयोगी लेख लिखा करते थे, जो विशेषकर 'भारती' पत्रिका में प्रकाशित हुए हैं। आप के कतिपय लेखों का उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है :—

क्रम	लेख विषय	पत्रिका	वर्ष।अंक
१.	दीपावली महोत्सवः	भारती	११११
२.	लाला लाजपतरायः	भारती	११२
३.	श्री सुभाषचन्द्रबोसः	भारती	११४
४.	श्री महाराणाप्रतापसिंहः	भारती	११५
५.	श्री विश्ववन्द्यः कविः श्रीरवीन्द्रनाथटैगोरः	भारती	११७
६.	राजा राममोहनरायः	भारती	३११
७.	देवदत्त, पुत्रस्ते जातः कन्या ते गर्भिगणी	भारती	१४।८
८.	हस्तिनो दन्ताः	संस्कृत रत्नाकर	२११३
९.	अध्यक्ष-परिचयः	संस्कृत रत्नाकर	२२।१

आप समस्यापूर्ति करने में भी मार्मिक विद्वान् माने जाते थे। आपकी दो महत्त्वपूर्ण समस्या पूर्तियां यहां प्रस्तुत की जा रही हैं :—

(१) "सोमः सर्वसुखावहोऽपि निरतां सोमं न सूतेऽनिशं
सन्तानोऽपि स दिष्टसाधनपरः संप्रार्थितो ह्यर्थिनाम्।
सान्द्रां साधुनिसर्गजां रससुधां स्नेहेन सिंचन् सदा
शश्वद्दानतिरस्कृतामरतरुः संघः सतां सौख्यदः॥"

(२) "संघे शक्तिरुदीरिता कलियुगे संघस्य किं दुष्करम्
संघादेव हतो दशास्यहतकः संघाय सर्वे नताः।
संघेनैव जिता निशाचरचमूः संघं भजे कामदं
सर्वानन्दकरः सदैव सरसः संघः सतां सौख्यदः॥"

आपके उक्त पद्य अत्यन्त सरल संस्कृत में निबद्ध हैं। आपकी रचनाओं में सरलता के साथ माधुर्य अत्यन्त मात्रा में प्राप्त होता है। आप व्याकरण के मार्मिक विद्वान् थे।

८६. श्री भाईनाथ ओझा

श्री ओझा महोदय का जन्म सन् १८४४ ई० में बिहार प्रान्त के चानपुरा ग्राम में हुआ था। १८ वर्ष तक आपने न्यायशास्त्र का अध्ययन अपने जन्म स्थान उक्त ग्राम में ही किया। इसके पश्चात् विशिष्ट ज्ञान प्राप्ति के लिये आप बंगाल चले गये। बंगाल प्रान्त में नवद्वीप नामक ग्राम के सुप्रसिद्ध भट्टाचार्य विद्वान् से आपने ७ वर्ष तक न्यायशास्त्र के ग्रन्थों का अध्ययन किया। श्री भट्टाचार्य ने आपकी विलक्षण प्रतिभा देखकर आपको 'न्यायरत्न' की उपाधि से अलंकृत किया। २५ वर्ष की अवस्था मे आप अपने देश विहार को लौट आये। ३ वर्ष तक वहीं अध्यापन कार्य करने के पश्चात् आप देशान्तर भ्रमण के लिए निकले। सर्वप्रथम आप काश्मीर गये। वहां आपका वहुत अधिक सम्मान हुआ, परन्तु आपका स्वास्थ्य जलवायु के अनुकूल न रहा और आपको काश्मीर छोड़ना पड़ा। विहार लौटते समय आप जयपुर रुके। उस समय सवाई रामसिंह द्वितीय का शासन काल था और संस्कृत कालेज की स्थापना हुई ही थी। श्री रामसिंह द्वितीय ने आपकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर उक्त कालेज में न्यायशास्त्र के प्राध्यापक रूप में आपकी नियुक्ति कर दी, जहाँ आपने सन् १९०५ ई० तक कार्य किया। ग्रीष्मावकाश में (ज्येष्ठ मास) आप अपने देश मिथिला (विहार) गये थे, वहीं भाद्रपद कृष्णा ७ सम्वत् १९६२ सन् १९०५ को ६१ वर्ष की अवस्था में परलोक प्रस्थान कर गये। आपके दिवंगत होने पर सस्कृत रत्नाकर के प्राचीनतम अंक में शोक समाचार प्रकाशित किया गया। यह अविकल रूप से यहाँ उद्धृत किया जा रहा है —(उद्धरणीय अश)

"....यावच्च नितान्ततान्तस्वान्तानां भारतीयानां हृदयेभ्यो नागतं तदोयं शोकवृत्तं हा हन्त, तावदेवेदमपरमपि समुपस्थितम्—यन्मैथिलकुलकैरवकलानिधि–जयपुरराजकीय–पाठशालाध्यापक–नैयायिकप्रवर-न्यायरत्न-श्रीभाईनाथशर्ममहाशया अपि नितान्ततरलतामस्य संसारस्याकलयन्तो विचारयन्तश्चानित्यतां विषयास्वादानामवगच्छन्तः कलिकलाक्रान्तत्वमस्य कालस्य भाद्रपदकृष्ण–सप्तम्यां पुरुहूतपुरविलासिनीलोचनातिथयः समभूवन्। एते हि पूर्वं स्वकीये चानपुराभिधे ग्रामे न्यायशास्त्रं यथावदधीत्याष्टादशवर्षदेशीयास्ततोऽप्यधिकमवगन्तुमनसो बंगदेशमगच्छन्। बंगदेशे हि महानेवादरस्तर्कविद्यायाः। भूयांसो विद्वांसश्च तर्कनिष्णातबुद्धयो भवन्तीति नापरोक्षं शास्त्रेक्षणानाम्। तत्र च नवद्वीपग्रामे सप्तवर्षपर्यन्तमधीत्य तत्रत्यैर्भट्टाचार्यैरेतेषामलौकिकीं प्रतिभामनुपमम् च शास्त्रप्रावीण्यमवलोक्यदर्भिन्यायरत्नोपाधिना समलंकृताः पुनः स्वदेशमलंचक्रुः। स्वग्राम एव च शिष्यानध्यापयद्भिरेभिः वर्षत्रयं यावद् गृहस्थाश्रमखसुमन्वभावि। ततश्च 'स्वदेशे पूज्यते मूर्खः परदेशे तु पण्डिता' इति वाक्यमनुसरन्तः काश्मीरमुपागमन्। तत्रत्येन च नरेश्वरेणाधिकं समादृता अपि तत्रत्यौ जलवायू स्वप्रकृतेः प्रतिकूलौ समाकलयन्तो नैवान्वमन्वत तत्र स्थितिम्। समागतश्चैतद् जयपुरनगरम्। अत्रत्यैश्च तदानीन्तनैर्महाराजैर्राजराजेन्द्रश्रीरामसिंहमहोदयैः सत्कृत्य नूतनायां स्वनिर्मितपाठशालायामध्यापकपदे नियुक्ता इदानीन्तनपर्यन्तमध्यापयामासुः शिष्यनिवहान्। त इमे गतज्येष्ठमासि स्वजन्मभूमिं मिथिलां गता आसन्। कष्टम्, तत्रैव केवलमेकषष्टितमे वयसि वर्तमाना अनाश्वास्यैव जयपुरीयशिष्यान् सन्त्यज्य कुटुम्बेऽकृत्रिमं स्नेहं विस्तार्य भूवलयेऽनश्रशोतीकरण-ज्योत्स्नासमुज्ज्वलं यशस्तन्मात्रशेषाः समभवन्। एतेषां त्रिषु तनयेषु ज्येष्ठोऽनिरुद्धशर्मा सर्वथा योग्यो न्यायसहित्ये, यः कृतातिपरिश्रमः। द्वितीयश्चन्द्रभूषणशर्मा त्वधिगताांग्लभाषाप्रावीण्यो बी० ए० परीक्षायां समुत्तीर्णः। उभावपि इमावत्रैवेदानीमासाते। तृतीयस्तु वर्षद्वयदेशीयो बालः शशिभूषणः

मिथिलायामास्ते।.......'' इति सम्पादक समितिः। (संस्कृत रत्नाकार द्वितीय वर्ष ६ रत्न भाद्रपद शुक्ला १५, शाके १८२७ सम्वत् १९६२—जयपुरनिवासि विद्वन्मण्डल द्वारा सम्पादित प्राचीनतम ग्रंक।)

ग्रापके उल्लेखनीय शिष्यों के कतिपय के नाम इस प्रकार हैं, जिन्होंने ग्राप से नियमित ग्रध्ययन कर न्यायशास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की थी—(१) श्री बदरीनाथ शर्मा गौड़ (परिचय क्रमांक ८२) शास्त्री, द्वितीय श्रेणि सम्वत् १९५१, (२) श्री हरिवंश शर्मा मैथिल, शास्त्री द्वितीय श्रेणि सम्वत् १९५२, (३) श्री कन्हैयालाल शर्मा दाधीच (परिचय क्रमांक ४) शास्त्री, द्वितीय श्रेणि सम्वत् १९६०। यों ग्राप स्वतन्त्र रूप से ग्रनेक छात्रों को न्यायदर्शन पढ़ाया करते थे। पं० श्री जीवनाथ ग्रोझा तथा पं० बदरीनाथ शास्त्री ग्रापके सहयोगी ग्रध्यापक रह चुके हैं। ग्रापके समकालीन विद्वानों में पं० श्री रामभज सारस्वत, पं० शिवरामजी गुलेरी, ग्रोझा नरहरि, पं० गोपीनाथ शास्त्री दाधीच, श्री भैयाजी ग्रोझा, म० म० पं० शिवदत्त शास्त्री, राजवैद्य पं० श्री कृष्णराम भट्ट के नाम स्मरणीय हैं। श्री कृष्णराम भट्ट ने ग्रपने समकालीन विद्वानों में ग्रापका सादर स्मरण इस प्रकार किया है :—

"यो जागदीशीं सगदाधरीं विदन्नैयायिको मैथिलविप्रपुंगवः।
प्रियाद्वयीलालितपादपल्लवः स भायिनाथोऽस्ति सभासभाजितः॥"

(जयपुरविलास–पंचम उल्लास–पृष्ठ ५२–पद्य ४४)

ग्रापके ज्येष्ठ पुत्र श्री ग्रनिरुद्ध ठाकुर म० म० श्री चतुर्वेदीजी के सहाध्यायी के रूप में प्रसिद्ध रहे हैं, जिनका उल्लेख श्री चतुर्वेदी ने ग्रपनी ग्रात्मकथा में किया है।

जयपुर के न्यायशास्त्र के विद्वानों में ग्राप मूर्धन्य थे ग्रौर कुशल ग्रध्यापक के रूप में ग्राज भी स्मरण किये जाते हैं।

---

८७. श्री भास्कर

महाराज सवाई रामसिंह द्वितीय के शासन काल में ऐसे ग्रनेक विद्वान् जयपुर में रहे हैं, जिनके विषय में ग्रब कोई जानकारी प्राप्त नहीं है। केवल तत्कालीन विद्वान् राजवैद्य श्री कृष्णराम भट्ट ने ग्रपने 'जयपुर विलास' में उनका ससम्मान उल्लेख किया है, जिससे इतना सा कहा जा सकता है कि ग्राप उस समय उल्लेखनीय विद्वान रहे हैं। इन विद्वानों में एक श्री भास्कर भी हैं। ग्राप दाक्षिणात्य विद्वान् थे—इतना ही परिचय प्राप्त होता है। ग्रापके विषय में राजवैद्य श्री कृष्णराम भट्ट ने लिखा है :—(८७–ग्र)

"विदुषि नम्रतरः करुणाकरः स्वमहसा महता जितभास्करः।
श्रयति यस्य सदा कमला करद्वयमयं स विराजति भास्करः॥"

इसमें वर्तमानकालिक क्रिया का प्रयोग हुग्रा है। इसका तात्पर्य है कि ग्रन्थ के रचनाकाल ग्रर्थात् महाराज माधवसिंह द्वितीय के समय ग्राप जयपुर में रहते थे।

(८७–ग्र) —जयपुर विलास–पंचम उल्लास–पद्य संख्या ६७–पृष्ठ संख्या ५५।

आपके सम्बन्ध में कोई विशेष जानकारी उपलब्ध न होने से केवल नामतः ही परिगणित किये गए हैं। अपने समय के उल्लेखनीय विद्वान् रहे हैं, जिनका उल्लेख श्री कृष्णराम भट्ट ने इस प्रकार किया है। इनके लिए दो पद्यों का प्रयोग यह सिद्ध करता है कि ये वास्तव में उल्लेखनीय विद्वान् रहे हैं। दूसरा पद्य है :—(८७-आ)

"सर्वाणि गौराणि दिगन्तराणि भाभिर्निजाभी रचयन्समन्तात्।
बुधैः स्तुतो विष्णुपदावलम्बी श्रीभास्करो भास्करवद्विभाति॥"

इन्हें सूर्य के समान तेजस्वी बतलाया गया है।

---

८८. श्री भैयाजी ओझा

महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर के पुरातत्व व स्थिति स्थापक स्तम्भों में से श्री ओझाजी भी एक थे। आप मिथिला प्रान्त के निवासी थे तथा ज्योतिष के प्रकाण्ड विद्वान् थे। कहा जाता है कि आपकी दीक्षा बिहार तथा वाराणसी में सम्पन्न हुई थी। आपको सवाई रामसिंह द्वितीय ससम्मान जयपुर लाये थे। आपने बड़ी योग्यता से अध्यापन किया। आप ज्योतिष विभाग के अध्यक्ष थे। सन् १८९४ ई० तक आप का ज्योतिष प्राध्यापक के रूप में होना सिद्ध होता है। आपके पश्चात् ही महामहोपाध्याय पं० श्री दुर्गाप्रसादजी शास्त्री (द्विवेदी) पं० श्री जगन्नाथजी शर्मा को कालेज विभाग में कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ था।

यों तो आपके पास अध्ययन करने वाले शताधिक छात्र हैं, परन्तु संस्कृत कालेज के ही अध्यापक पण्डित श्री रामचन्द्रजी शास्त्री जो संस्कृत कालेज के प्रथम शास्त्री हैं तथा जिनने अत्यन्त वृद्धावस्था तक अध्यापन किया था, आपके शिष्य थे। महामहोपाध्याय पं० श्री दुर्गाप्रसाद शर्मा (काव्यमाला सम्पादक) ने भी आप से ज्योतिष का ज्ञान प्राप्त किया था।

राजवैद्य श्री कृष्णरामजी भट्ट ने आपके विषय में एक पद्य प्रस्तुत किया है :—(८८-अ)

शिरोमणिव्यापृतबुद्धिवैभवः शनैः शनैः पाठयति द्विजात्मजान्।
सदाऽग्रगण्यो गणितज्ञसंसदि महामनस्वी स भैयाजिदेधते॥

आप मैथिल थे। आपको गणितज्ञों की संसद् में अग्रणी माना है। आपका विशेष परिचय उपलब्ध नहीं होता। आप उल्लेखनीय विद्वान् थे।

---

८९. श्री मगनीरामजी श्रीमाली

आपने श्रीमाली ब्राह्मण परिवार में जन्म लेकर जयपुर के ही महाराज संस्कृत कालेज के स्कूल विभाग में अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया था। आपने अनेक विद्यार्थियों को दीक्षा भी दी थी।

(८७-आ)—जयपुर विलास-पंचम उल्लास-पद्य संख्या ६८-पृष्ठ संख्या ५५।
(८८-अ) —जयपुर विलास-पंचम उल्लास-पद्य संख्या ५२-पृष्ठ संख्या ५३।

संस्कृत कालेज, जयपुर के प्राचीन रिकार्ड (उपस्थिति पत्रक) से ज्ञात होता है कि आपने १ जुलाई, १८८८ ई० से संस्कृत कालेज, जयपुर में अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया था। आपका कार्यकाल १६ फरवरी, १९१४ तक रहा था। इसका आशय यह है कि आपने २६ वर्ष तक अध्यापन किया था। इसी रिकार्ड के अनुसार यह भी सिद्ध होता है कि आपने पं० श्री मांगीलालजी शर्मा के पश्चात् उन्हीं के स्थान पर कालेज विभाग में वेद व्याख्यता के रूप में भी कार्य किया था। (८९-अ)

आपके प्रधान शिष्यों में श्री हरिनारायण दाधीच नामावाल, जो आशुकवि श्री हरि शास्त्री के नाम से प्रसिद्ध रहे हैं तथा स्वर्गीय श्री विजयचन्द्रजी वेदाचार्य का नाम भी स्मरणीय है। आप ज्योतिष के भी प्रकाण्ड पण्डित थे। इस समय आपके अनुवंशजों में कोई अवशिष्ट नहीं है। आप श्रीमाली जाति के रत्न थे।

आपकी रचना 'श्रीकपिंजलसदाचार' नाम से सम्वत् १९७३ में प्रकाशित हुई थी, जिसमें कपिंजल गोत्री द्विवेदी श्रीमाली ब्राह्मणों के कुल में प्रचलित सात्त्विक बलिदान की व्यवस्था को शास्त्र सम्मत सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। इस रचना का प्रकाशन ज्योतिर्विद् पं० गोकुलचन्द्रात्मज ज्योतिषी मुकुन्दरामजी ने किया था। इस ग्रन्थ का मंगलाचरणात्मक पद्य प्रस्तुत किया जा रहा है, जिससे आपकी काव्यनिर्माणक्षमता का भी परिज्ञान होता है :—

"कान्त्या कांचनसन्निभां हिमगिरिप्रस्थैश्चतुर्भिर्गजैः
हस्तोत्क्षिप्तहिरण्मयाभृतघटैरासिच्यमानां श्रियम्।
बिभ्राणां वरमब्जयुग्ममभयं हस्तैः किरीटोज्ज्वलां
क्षौमाबद्धनितम्वबिम्वललितां वन्देऽरविन्दस्थिताम्॥"

आप शान्त तथा विद्वान् व्यक्ति थे।

---

९०. डा० श्री मदनलाल शर्मा–'मंडन मिश्र'

डा० मिश्र जयपुर जिले के ही एक छोटे से ग्राम 'हण्यूत्या' में गौड़ ब्राह्मण परिवार में ७ जून, १९२९ को उत्पन्न हुए थे। आपके पिताश्री पं० श्री कन्हैयालालजी मिश्र साधारण श्रेणि के व्यक्ति हैं। श्री मिश्र ने अपने ज्येष्ठ पुत्र श्री मदनलाल शर्मा को प्रतिभा सम्पन्न देखकर महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर में अध्ययनार्थ भेजा। आपकी पूर्ण शिक्षा इसी कालेज में सम्पन्न हुई। कालेज विभाग में शिक्षा प्राप्त करते समय आपका परिचय तत्कालीन प्राचार्य श्री पी० एन० पट्टाभिराम शास्त्रीजी से हुआ। आप उनकी सेवा में रहने लगे। श्री शास्त्रीजी ने आपको पुत्रवत् स्नेह प्रदान किया तथा समय-समय पर सब प्रकार की सुविधायें प्रदान करते हुए अध्ययन के लिए प्रोत्साहित किया। परिणामस्वरूप आपने मीमांसा जैसे कठिन विषय में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त कर आचार्य परीक्षा उत्तीर्ण की। कुछ ही समय में आपकी महाराज संस्कृत कालेज के स्कूल विभाग में अध्यापक के रूप में नियुक्ति हो

(८९-अ) —जयपुर संस्कृत कालेज में उपलब्ध प्राचीन उपस्थिति पत्रकों के आधार पर (सत्र दिसम्बर, १८८४ ई० से मई १८८९ ई० तथा जुलाई, १८८९ से सितम्बर, १८९१ व जनवरी, १९१४ के पत्रक)।

गई । आपने अपनी प्रतिभा व अध्यवसाय से अनेक पदों पर कार्य किया है तथा क्रमशः उन्नत होते हुए आप हिन्दी विभाग के अध्यक्ष भी रहे । (९०–अ)

डा० मिश्र एक सवर्वतोमुखी प्रतिभा वाले व्यक्ति हैं । आपका सार्वजनिक जीवन शिक्षा-क्षेत्र से प्रारम्भ होता है । सन् १९४६ में आपने जयपुर में 'भारतीय साहित्य विद्यालय' नामक संस्था का संस्थापन किया, जिसके माध्यम से आप निःशुल्क राष्ट्रभापा हिन्दी की सेवा करते थे । भारतवर्ष के विभाजन के अवसर पर लगभग ९० हजार पुरुषार्थी भाई-बहिनों को राष्ट्रभाषा हिन्दी की शिक्षा देकर न केवल राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रसार में ही योग दिया, अपितु राजस्थान के लोगो मे भावनात्मक एकता का भी प्रचार किया ।

अपने अध्ययनकाल के अतिरिक्त आप सदा ही अन्य सार्वजानिक कार्यो में रुचि लेते रहे हैं । इसी संदर्भ में आपने 'भारत सेवक समाज' को भी आपकी सेवाओं से लाभान्वित किया था । आपने जयपुर में रहकर इस संस्था के मन्त्री पद का कार्यभार बड़ी कुशलता से चलाया । सर्वप्रथम आप तहसील के संयोजक रहे तथा क्रमशः प्रदेश मन्त्री तथा सूचना समिति के अध्यक्ष आदि अनेक रूपों में आपने समाज को प्रगति प्रदान की थी । आपके मन्त्रित्वकाल में राजस्थान के अनेको भागो मे आपने अनेक शिक्षण संस्थानों एवं समाज सुधारक सगठनों को जन्म दिया । एक सहस्र के लगभग समाज सेवा शिविरों के माध्यम से आपने ५० हजार के लगभग व्यक्तियों को लोक सेवा का प्रशिक्षण दिया ।

आपने श्री पी० एन० पट्टाभिराम शास्त्रीजी के निर्देशन में कार्य कर करते हुए 'मीमांसा दर्शन का समालोचनात्मक इतिहास' शोधग्रन्थ प्रस्तुत कर राजस्थान विश्वविद्यालय से पी–एच० डी० की उपाधि प्राप्त की थी । यह शोध-प्रबन्ध प्रकाशित हो चुका है तथा डा० श्री सम्पूर्णानन्द के प्राक्कथन से संवलित है । उत्तर प्रदेश सरकार ने इस पर ५०० रुपये का पुरस्कार प्रदान किया है । आप पजाब शास्त्री, साहित्याचार्य तथा मीमासांचार्य की परीक्षाओं में सर्वप्रथम रहने के कारण स्वर्ण पदक द्वारा सम्मानित है । हिन्दी की परीक्षाओं मे प्रभाकर और साहित्यरत्न परीक्षोत्तीर्ण होने के साथ ही आप एम० ए० सस्कृत भी है ।

सुरभारती संस्कृत के उत्थानार्थ आप प्रारम्भ से ही प्रयत्नशील रहे है । आप राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन के संयुक्त मंत्री और अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन के महामंत्री रह चुके है । उक्त पदों पर कार्य करते हुए आपकी सेवायें संस्कृत साहित्य के इतिहास में उल्लेखनीय है । सम्मेलन के महामत्री पद की बागडोर सन् १९५९ में सभालने के पश्चात् आपने इसमें जीवन संचार किया । २०० से भी अधिक शाखायें व केन्द्र खोलकर आपने इसे सम्पूर्ण भारत में विख्यात कर दिया । शताब्दी ग्रन्थ योजना आपकी ही बुद्धिमत्ता का परिणाम है, जिसके अन्तर्गत काश्मीर भाग प्रकाशित हो चुका है और राजस्थान भाग प्रकाशनाधीन है । आपके महामंत्री पद ग्रहण करने के पश्चात् प्रथम अधिवेशन सन् १९६१ मे कलकत्ता में हुआ था, जिसका उद्घाटन महामहिम राष्ट्रपति डा० श्री राजेन्द्रप्रसादजी ने किया था । आपके ही प्रयत्नों से श्री लालबहादुर शास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ की स्थापना दिल्ली मे हुई । सम्मेलन के स्थायित्व के लिये आपने अनेक महत्त्वपूर्ण प्रकाशन भी किये । आप इस समय उक्त विद्यापीठ के निदेशक के पद पर कार्य कर चुके है तथा इस समय इस संस्थान के प्राचार्य पद प्रतिष्ठित हैं ।
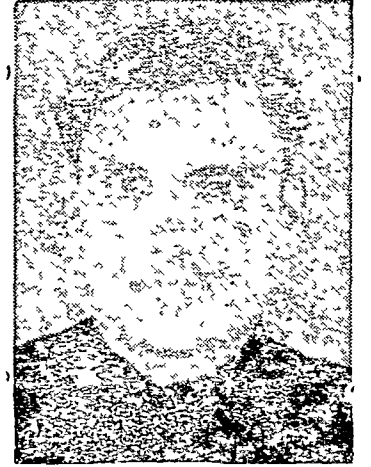
(९०–अ) —आपका परिचय 'राजस्थान संस्कृत परिचय ग्रन्थ' पृष्ठ ९०–९१ पर आधारित है ।

संस्कृत रत्नाकर के प्रकाशन का कार्य भी जो विगत वर्षो मे शिथिल हो रहा था, पुनः आपने प्रारम्भ किया। अब यह कार्य पुनः शिथिल हो गया है। आपने विद्यावाचस्पति मधुसूदन ओझा व्याख्यानमाला के अन्तर्गत अनेक उद्भट विद्वानों के भाषण आयोजित किये थे। अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन के स्वर्ण जयन्ती महोत्सव पर भारत प्रख्यात ६ विद्वानों को विद्यावाचस्पति की उपाधि से सम्मानित करने की योजना का श्रीगणेश आप ही की बुद्धि का परिणाम माना जाता है।

आप सदृश नवयुवक व होनहार कार्यकर्त्ता को जन्म देने पर जयपुर भूमि गौरवान्वित है। आप संस्कृत भाषा के उत्थान के लिए अपना जीवन सर्वस्व समर्पित कर चुके है। आप उत्साही-कार्यकर्त्ता के रूप मे उल्लेखनीय है।

---

६१. कविशिरोमणि भट्ट श्रीमथुरानाथ शास्त्री

संस्कृत साहित्य के उद्भट विद्वान्, स्वर्गीय भट्ट श्रीमथुरानाथ शास्त्री जयपुर के संस्कृत-साहित्य के इतिहास में उल्लेखनीय व्यक्ति रहे है। आपका जन्म जयपुर नगर मे देवर्षि प० श्री द्वारकानाथ भट्ट (जनक) के घर आषाढ कृष्णा सप्तमी सवत् १६४६ को हुआ था। आपके दत्तक पिता श्री सुन्दरलालजी राजकीय सम्मानित व्यक्ति थे। आपके पूर्वज कविकलानिधि श्रीकृष्ण भट्ट जयपुर सस्थापक महाराज सवाई जयसिंह द्वितीय के समय जयपुर के विद्वानों मे उल्लेखनीय व्यक्ति थे। आपके पूर्वजो मे श्री द्वारकानाथ भट्ट, श्री मण्डन भट्ट आदि अनेक प्रतिभाशाली व्यक्तियो ने जन्म लिया था। इस शताब्दी के मूर्धन्य विद्वान् के रूप में श्री भट्टजी का सादर स्मरण किया जाता है।
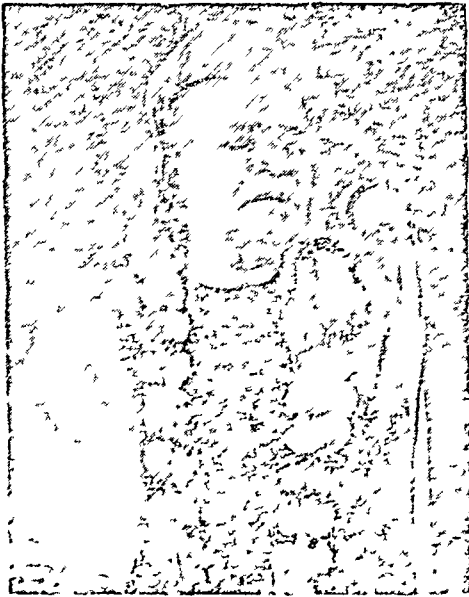
आपका बाल्यकाल जयपुर में ही बीता। आप भारत प्रसिद्ध महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर के स्नातक रहे है। आपके गुरुजनो मे श्री लक्ष्मीनाथ शास्त्री द्राविड़, श्री गोपीनाथ शास्त्री दाधीच, श्री हरदत्त ओझा तथाभारत विख्यात वैदिक विज्ञानविद् विद्यावाचस्पति मधुसूदन ओझा आदि के नाम स्मरणीय हैं। आपके मित्रो मे म०म० पं० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, स्वामी श्री लक्ष्मीरामजी वैद्य, राजगुरु पं० चन्द्रदत्त ओझा, श्री कन्हैयालालजी न्यायाचार्य, प० श्री सूर्यनारायणजी व्याकरणाचार्य आदि के नाम उल्लेखनीय है। आपके शिष्यो मे न केवल जयपुर मे ही, अपितु सम्पूर्ण भारत मे अनेक विद्वान् उच्च पदासीन है। श्री हीरालालजी शास्त्री (प्रथम मुख्यमन्त्री, राजस्थान), श्री वृद्धिचन्द्रजी शास्त्री, श्री कन्हैया-लालजी निवाटी, श्रीप्रवीणचन्द्रजी जैन, श्रीगोपालनारायणजी बहुरा, श्री हरिकृष्णजी गोस्वामी आदि विख्यात व्यक्तित्व सम्पन्न विद्वान् आपके शिष्य होने मे गौरवान्वित है।

आपने पंजाब विश्वविद्यालय मे सन् १६०६ मे साहित्यशास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की, जिसमे आप सर्वप्रथम रहे। इसके पश्चात् सन् १६०७ मे आप ने व्याकरणशास्त्री तथा सन् १६०६ मे साहित्याचार्य परीक्षा उत्तीर्ण की। गुरुजनों के आशीर्वाद से सन् १६२२ मे आप महाराज संस्कृत कालेज मे द्वितीयाध्यापक नियुक्त हुए। दो वर्ष पश्चात् ही सन् १६२४ मे आप महाराजा कालेज, जयपुर मे संस्कृत के व्याख्याता बने। सन् १६३० मे आप संस्कृत

पाठशालाओं के निरीक्षक नियुक्त किये गये, जिस पद पर कार्य करते हुए भी आपने संस्कृत-साहित्य के रचनात्मक कार्य को न छोड़ा। ४ वर्ष तक इस कार्य को कुशलतापूर्वक सम्पन्न कर सन् १९३४ ई० में आप पुनः महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर में साहित्य विभाग के अध्यक्ष बने। इस पद पर कार्य करते हुए सन् १९४२ में आपने विश्राम ग्रहण किया।

देवर्षि श्री सुन्दरलालजी ने आपको दत्तक पुत्र के रूप में ग्रहण किया था। आप के जनक का नाम श्री द्वारकानाथजी भट्ट तथा माता का नाम श्रीमती जानकीदेवी था। सबसे पहले आपने उर्दू का अध्ययन प्रारम्भ किया था। आपके पितामह श्री लक्ष्मीनाथ भट्ट न्यायालय में लेखक थे। संस्कृत कालेज में प्रवेश प्राप्त करने के उपरान्त प्रवेशिका अध्यापक पण्डित-वरेण्य श्री काशीनाथ शास्त्री आपके प्रथम गुरु थे, जिन्होंने आपको व्याकरणशास्त्र का प्रारम्भिक ज्ञान करवाया था। आपने व्याकरणशास्त्र परीक्षा में भी सर्वप्रथम स्थान प्राप्त किया था। म० म० पं० श्री शिवकुमार मिश्र आपके मुख्य परीक्षक थे, जिन्होंने आपको 'लेखपटुरयं बटुः' प्रमाण पत्र के साथ अपना अभिशंसा पत्र प्रदान किया था।

आपने तीन विवाह किये थे, जिनमें प्रथम मध्यप्रदेश की ओरछा राजधानी तथा द्वितीय मध्यप्रदेश के किसी स्थान विशेष में सम्पन्न हुए थे। आपने तृतीय विवाह ३५ वर्ष की अवस्था में जयपुर के समीपवर्ती महापुरा ग्राम में किया था, जिनसे आपके दो पुत्र और दो पुत्रियों ने जन्म लिया। आपके ज्येष्ठ पुत्र श्री कलानाथ शास्त्री को आपने संस्कृत भाषा के शिक्षण के साथ ही अंग्रेजी विषय से एम० ए० करवाया। यों श्री शास्त्री संस्कृत कालेज के नियमित छात्र के रूप में अध्ययन कर साहित्याचार्य प्रथम श्रेणि उत्तीर्ण हैं। आपका परिचय क्रमांक ६ पर प्रस्तुत किया जा चुका है। द्वितीय पुत्र श्री कमलानाथ शर्मा इस समय मालवीया रीजनल इन्जीनियरिंग कालेज, जयपुर में व्याख्याता पद पर कार्य कर रहे हैं। आप एम० ई० (सिविल) उत्तीर्ण हैं।

आपका देहावसान ४ जून, १९६४ को जयपुर में हुआ, जो जयपुर के संस्कृत–साहित्य के लिए एक अपूरणीय क्षति थी।

रचनात्मक कार्य

अपने अध्ययन काल से ही श्री शास्त्री संस्कृत साहित्य के विकासार्थ प्रयत्नशील रहे हैं। जयपुर निवासी विद्वन्मण्डल द्वारा सन् १९०४ ई० से प्रकाशित होने वाले संस्कृत रत्नाकर नामक मासिक पत्र के आप सहायक सम्पादक रहे हैं। यद्यपि संस्कृत रत्नाकर के प्रचीनतम अंकों में आपका नाम सहायक सम्पादक के रूप में प्राप्त नहीं होता है, फिर भी म० म० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी के आत्मकथा और संस्मरण में प्रकाशित विवरण के अनुसार यह कहा जा सकता है कि आप उसके प्रकाशन में पूर्ण सहयोग प्रदान किया करते थे। यों सन् १९३३ से जब संस्कृत रत्नाकर का पुनः प्रकाशन प्रारम्भ हुआ, आप उसके प्रधान सम्पादक रहे और आपने जब तक संस्कृत रत्नाकर जयपुर से प्रकाशित होता रहा, अर्थात् सन् १९४८–४९ तक प्रधान सम्पादक रहे।

जयपुर नगर से प्रकाशित होने वाले 'भारती' नामक मासिक पत्रिका के प्रधान सम्पादक का कार्य संवत् २०१० से संवत् २०२१ तक सफलतापूर्वक सम्पन्न किया। इन दोनों पत्रिकाओं के विकास में आपके उल्लेखनीय योगदान का उल्लेख परिचय खण्ड तृतीय अध्याय (ङ) में प्रस्तुत किया जा चुका है। संस्कृत पत्रकारिता के इतिहास में आपका उल्लेख एक महत्त्वपूर्ण घटना है।

आपने 'संस्कृत मृत भाषा नहीं है' इस विषय पर जीवन पर्यन्त आन्दोलन किया। अनेक स्थानों पर आयोजित सम्मेलनों में आपने उक्त प्रश्न पर धाराप्रवाह रूप में भाषण देकर सिद्ध दिया। विंटरनिट्ज ने अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में, डा० पी० के० गोडे ने अपने शोधपत्र में एवं डा० राघवन् ने अभी प्रकाशित आधुनिक भारतीय साहित्य नामक ग्रन्थ के 'संस्कृत साहित्य' शीर्षक निबन्ध में आपके मत का समर्थन किया है।

सन् १६३० में अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन के १२ वें अधिवेशन वाराणसी में आपने यह घोषणा की थी कि संस्कृत मृत भाषा बतलाने वाले व्यक्ति यहां उपस्थित हों और अपने कथन को सिद्ध करें। इससे भी पूर्व सन् १६१५ में आपने जयपुरीय विद्वानों की सभा में भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से अनेक महत्त्वपूर्ण तर्कों के साथ यह सिद्ध किया था कि संस्कृत मृत भाषा नहीं है।

संस्कृत भाषा की गतिशीलता एवं सजीवता सिद्ध करने के लिये आपने इस युग में साहित्य जगत् को एक नयी देन प्रदान की थी। यह है उनका विभिन्न भाषात्मक छन्दों का संस्कृत भाषा में प्रयोग। उर्दू भाषा के छन्द आदि इसी प्रकार पंजाबी भाषा के छन्द, हिन्दी एवं व्रज भाषा के छन्दों का संस्कृत भाषात्मक पद्यों में उपस्थापन आपकी बुद्धि की विलक्षणता प्रकट करता है। आपने अनेक सम्मेलनों में अपने सुललित पद्यों को सुना कर श्रोताओं को चमत्कृत किया था। 'जयपुरवैभवम्' नामक ग्रन्थ रचना की प्रस्तावना में म० म० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी का आपकी उक्त कविता के सम्बन्ध में आलेख यहां प्रस्तुत किया जा रहा है, जिससे उक्त कथन की पुष्टि होती है :—

"विविधच्छन्दसां निर्माणेऽपि च ततः प्रेमृत्येवायं महाभागो व्यापृत आसीत्। १६०४ खिस्ताब्दादेव मित्रमण्डलयाऽस्माकं "संस्कृतरत्नाकरः" (संस्कृत-मासिकपत्रम्) जयपुरात्प्रकाशयितुमुपक्रान्तः। तस्य संपादनभारः कियत्कालान्तरमेव मम भट्टमहाशयस्य च शिरसि विन्यस्तोऽभवत्। तस्मिन् पद्यानीव गीतिका अपि नवैनशैलीसंदृब्धाः (गजलप्रभृतयः) एतद्रचिताः प्रकाश्यन्त। तत एव कवित्वख्यातिरस्य जनेषु प्रसृता। स्वल्पकालानन्तरमेव व्रजभाषाप्रसिद्धेषु प्रलम्बेषु छन्दस्सु संस्कृतकाव्यनिर्माणरुचिरस्य प्रवृत्ता प्रवृद्धा च। एतद्रचितानि घनाक्षरीप्रभृतीनि च्छन्दांसि श्रावं श्रावं सर्वेऽपि विद्वांसः कमपि विचित्रं चमत्कारमन्वभवन्।"

(जयपुरवैभवम्—किमपि प्रास्ताविकम्—पृष्ठ ४३)

बहुप्रतिभा के धनी श्री शास्त्री जी ने सन् १६२२ से सन् १६५७ तक इतना अधिक साहित्य सर्जन किया कि उस सम्पूर्ण का उल्लेख यहां सम्भव नहीं है। उन्होंने कहा था कि मैंने श्रृङ्गार रस से परिपूर्ण अनेक रचनायें प्रस्तुत की हैं। "जयपुरवैभव" नामक ग्रन्थ में राजाओं का, महापुरुषों का, उल्लेखनीय विशिष्ट व्यक्तियों का, उल्लेखनीय संस्कृत विद्वानों का परिचय प्रस्तुत किया है। उन्होंने लिखा है—'मैंने सांसारिकी चर्चा में भी पर्याप्त भाग लिया है। अब मैं इससे विरक्त होकर गोविन्द भगवान् के वर्णन से अपने आपको सफल बनाना चाहता हूं।' और इसीलिए आपने "गोविन्दवैभवम्" नामक रचना का प्रणयन किया।

आपने सर्वप्रथम 'संस्कृत सुबोधिनी' नामक पुस्तक लिखी थी, जो दो भागों में प्रकाशित हो चुकी है। यह पुस्तक राज्य शिक्षा विभाग द्वारा पाठ्यपुस्तक के रूप में निर्धारित थी। आपके द्वारा लिखित संस्कृतगाथा-सप्तशती तथा साहित्यवैभवम् आदि ग्रन्थों का प्रकाशन निर्णयसागर प्रेस, बम्बई से हुआ है। आप संस्कृत रत्नाकर के वेदांक, आयुर्वेदांक, शिक्षांक तथा दर्शनांक के सम्पादक रह चुके हैं, जो संग्राह्य अङ्क हैं। आपके रचनात्मक कार्य का उपलब्ध विवरण इस प्रकार प्रस्तुत किया जा रहा है :—

(क) प्रकाशित ग्रन्थ	विवरण
१. साहित्यवैभवम्	सन् १६३०
२. जयपुरवैभवम्	सन् १६४७
३. गोविन्दवैभवम्	सन् १६५७

४. कादम्बरी (चषकवृत्ति) — सन् १९४१
५. रसगंगाधरः (टीका) — सन् १९३९
६. संस्कृतगाथासप्तशती (व्याख्या) — सन् १९३३
७. गाथारत्नसमुच्चयः — सन् १९३५
८. संस्कृत सुबोधिनी (दो भाग) — सन् १९३९
९. संस्कृत सुधा — सन् १९५८
१०. ईश्वरविलासकाव्यम् — सन् १९५८ (विलासिनी टीका संवलित)
११. पद्यमुक्तावलिः — सन् १९५९ (गुणगुम्फनिका टीका)
१२. वृत्तमुक्तावलिः — सन् १९६३ (टीकासमेतम्)
१३. गीत-गोविन्दम् — सन् १९३७ (टीका)
१४. आदर्श रमणी (लघूपन्यासः) — सन् १९०६ (सर्वप्रथम रचना)
१५. सुलभं संस्कृतम् — सन् १९६० (पाठ्य ग्रन्थ)

(ख) अप्रकाशित ग्रन्थ

१. धातुप्रयोगपारिजातः — व्याकरणविषयक ग्रन्थ
२. भारतवैभवम् — ऐतिहासिक गद्यकाव्य
३. आर्याणाम् आदिभाषा — शोधपूर्ण लेख
४. महाकविर्बिल्हणः — परिचयात्मक शोध लेख
५. समस्या-विलासः — मुक्तक रचना
६. काव्य-कुंजम् — कविता संग्रहः
७. व्युत्पत्ति-विकासः — व्याकरणविषयक ग्रन्थ
८. निबन्ध त्रिद्या — निबन्ध
९. काव्य-कला — मुक्तक रचना
१०. रस-सिद्धान्तः — रसों का छात्रोपयोगी विवेचन
११. कथानिकुंजः — संस्कृत कथाओं का संकलन (स्वरचित)
१२. भकार-महामेलकम् — ललित निबन्ध

(ग) कहानियाँ—

क्रम	कहानी शीर्षक	विधा	पत्रिका	वर्ष	अंक
१.	अंगुलिमालः	ऐतिहासिक	सं० रत्नाकर	१०	१
२.	पुरुराजस्य पौरुषम्	ऐतिहासिक	सं० रत्नाकर	९	५
३.	भारतध्वजः (बालवीरः)	ऐतिहासिक	सं० रत्नाकर	१०	११
४.	विजयि–घण्टा	ऐतिहासिक	सं० रत्नाकर	१२	११
५.	अत्याचारिणः परिणामः	ऐतिहासिक	सं० रत्नाकर	९	२
६.	पृथ्वीराजपौरुषम्	ऐतिहासिक	सं० रत्नाकर	१०	२
७.	आल्हा च ऊदलश्च	ऐतिहासिक	सं० रत्नाकर	१०	५
८.	सिंहदुर्गे सिंहवियोगः	ऐतिहासिक	सं० रत्नाकर	९	३

९.	वीर–वाणी	ऐतिहासिक	सं० रत्नाकर	१२	१२
१०.	कृत्रिम–वून्दी	ऐतिहासिक	सं० रत्नाकर	११	६
११.	चिरममरे द्वे वलिदाने	ऐतिहासिक	सं० रत्नाकर	१०	६
१२.	सामन्त–संग्राम:	ऐतिहासिक	सं० रत्नाकर	१०	८
१३.	अनुताप:	ऐतिहासिक	सं० रत्नाकर	१२	२
१४.	एकवारं दर्शनम् (दो अंकों में)	सामाजिक	सं० रत्नाकर	१	४,५
१५.	दयनीया	सामाजिक	सं० रत्नाकर	२	४
१६.	अनाहृता	सामाजिक	सं० रत्नाकर	३	१०
१७.	प्रेम्ण: प्रतिदानम्	प्रेम सम्वन्धी	सं० रत्नाकर	३	४
१८.	दीक्षा	प्रेम सम्वन्धी	सं० रत्नाकर	१०	७
१९.	सत्यो वालचर:	मनोवैज्ञानिक	सं० रत्नाकर	१३	९
२०.	विपमा समस्या	मनोवैज्ञानिक	सं० रत्नाकर	११	८
२१.	वालभृत्य: (दो अंकों में)	मनोवैज्ञानिक	सं० रत्नाकर	२	७,८
२२.	लाला–व्यायोग:	हास्यात्मक	सं० रत्नाकर	—	—
२३.	चपण्डुक: (दो अंकों में)	हास्यात्मक	सं० रत्नाकर	८	५,६
२४.	शिष्या	हास्यात्मक	सं० रत्नाकर	—	—
२५.	दानी दिनेश:	विविध	सं० रत्नाकर	९	६
२६.	चन्द्रहास:	विविध	सं० रत्नाकर	११	४
२७.	न्यायाधिकारी (दो अंकों में)	विविध	सं० रत्नाकर	१२	५,६
२८.	दन्तकथा (औरंगजेव पत्रम्)	विविध	सं० रत्नाकर	१०	१०
२९.	धन्योऽसि धर्मवीर	विविध	सं० रत्नाकर	८	१२
३०.	धन्योऽसि भारतीयवीर !	विविध	सं० रत्नाकर	१३	१२
३१.	पुरुप–परीक्षा	विविध	सं० रत्नाकर	१४	१२
३२.	सत्यो वालचर:	विविध	सं० रत्नाकर	१३	९
३३.	वीरो वालचर:	विविध	सं० रत्नाकर	९	१२
३४.	मृगयु:	विविध	सं० रत्नाकर	८	२
३५.	फाल्गुन गोष्ठी	विविध	सं० रत्नाकर	९	८
३६.	प्रेम्णो विजय:	विविध	सं० रत्नाकर	९	१०
३७.	सरला (सन् १९०४ में प्रकाशित)	विविध	सं० रत्नाकर	१	९
३८.	निराशप्रणय: (सन् १९०७ में प्रकाशित)	विविध	सं० रत्नाकर	३	७
३९.	राजपुत्र: (सन् १९११ में प्रकाशित)	विविध	सं० रत्नाकर	९	२
४०.	करुणा कपोती च युवती च	विविध	सं० रत्नाकर	१३	८

(घ) निवन्ध —

क्रम	रचना शीर्पक	पत्रिका	वर्प	अंक
१.	गाथासप्तशती अमरुकश्च	सं० रत्नाकर	१	४
२	प्राकृत भापा कै: कारणै: संस्कृततो मधुरा	सं० रत्नाकर	१	५

३.	गाथासप्तशती विहारी सतसई च	सं० रत्नाकर	१	६
४.	संस्कृत-साहित्य-गौरवम्	सं० रत्नाकर	१	६
५.	किन्तोः कुटिलता (चार अंकों में)	सं० रत्नाकर	१	७,८,९,१०
६.	वर्तमानयुगस्य परीक्षा प्रणाली संस्कृत शिक्षा च	सं० रत्नाकर	२	१,२,३
७.	वियोगिनो विप्रलाभाः	सं० रत्नाकर	२	३
८.	निबन्धलेखस्य विराट् प्रवाहः (चार अंकों में)	सं० रत्नाकर	३	२,३,४,५
९.	व्याकृति–चत्मकृतिः	सं० रत्नाकर	८	५
१०.	अपि सत्येयं कोकिलानां परपुष्टता	सं० रत्नाकर	९	४
११.	भारते संस्कृतभारती राष्ट्रभाषा प्रश्नं च	सं० रत्नाकर	९	४
१२.	अपि नासाभूषणमिदमासां यवनजातीनां सहवासादनुकृतम् (चार अंकों में)	सं० रत्नाकर	९	६,७,८,९
१३.	धर्मधनयोर्युद्धं धर्मस्य विजयश्च	सं० रत्नाकर	९	१२
१४.	हंसवाहना सरस्वती मयूरवाहना कथ जाता	सं० रत्नाकर	१०	३
१५.	पशुपक्षिषु मनुष्यस्य सभ्यता	सं० रत्नाकर	१०	६
१६.	प्रत्युत्पन्नमतिर्हालिकः	सं० रत्नाकर	११	११
१७.	द्वे स्पर्द्धे	स० रत्नाकर	१२	११
१८.	सांख्य-शास्त्रस्य चिरविस्मृतो ग्रन्थकारः	सं० रत्नाकर	१२	३
१९.	अमरकण्टकः	सं० रत्नाकर	१२	७
२०.	आगरा नगरस्येतिहासिकता	सं० रत्नाकर	१२	१०
२१.	पी० के० गोड़े महोदयस्य गवेषणाकार्यम्	सं० रत्नाकर	१२	११
२२.	प्राणानां भाषा	सं० रत्नाकर	१३	५
२३.	ब्रज-विहारिणा विहारिणो द्वन्द्वम्	सं० रत्नाकर	१३	११
२४.	वर्तमान-युगस्यापेक्षा संस्कृतभाषा च (दो अंकों में)	सं० रत्नाकर	१७	६,७
२५.	श्रीहनुमतः आदर्शचरितम्	भारती	१	१
२६.	महाकवेः कालिदासस्य काव्य-रचना	भारती	१	९
२७.	सत्यम्	भारती	३	२
२८.	मृत्यो ! त्वमागतोऽसि	भारती	३	४
२९.	परोपकारः	भारती	३	५
३०.	प्राचीनभारते पोतनिर्माणकला	भारती	३	८
३१.	प्रतिशोधः	भारती	३	१०
३२.	चलचित्रपटे समुद्रगर्भस्य चिह्नानि	भारती	३	१२
३३.	भारतस्य भविष्यत्—भारतीयदर्शनसंस्कृति–आदर्शेषु	भारती	१२	१०
३४.	अस्माकं भारतभूमिः	भारती	१४	४
३५.	भारतस्येतिहासे बौद्धकालिकं दृश्यम्	—	—	—
३६.	संस्कृत-सेवाकुंजः (अनेक अंकों में)	सं० रत्नाकर	—	—

(ङ) पद्य साहित्य

साहित्यवैभवम्, जयपुरवैभवम्, गोविन्दवैभवम् आदि पद्य साहित्य के प्रकाशित ग्रन्थों के अतिरिक्त संस्कृत रत्नाकर और भारती मासिक पत्रिका में आपने अनेक शीर्षकों से पद्य साहित्य का निर्माण कर प्रकाशित किया है। अपने सम्पादकत्व में प्रकाशित अंकों के प्रारम्भ में प्रस्तुत किया जाने वाला मंगल आपके द्वारा ही रचा हुआ होता था। इसी प्रकार प्रत्येक ऋतु के वर्णन में भी आपने अनेक बार नवीन पद्यों का निर्माण किया है। समस्या पूर्ति रूपात्मक पद्यों की तो संख्या ही नहीं है। जितने भी कवि सम्मेलन हुए सभी में आपकी समस्या पूर्ति रूपात्मक रचनायें सुनाई देती थीं और वे संस्कृत रत्नाकर के अंकों में प्रकाशित हुई हैं। कुछ उल्लेखनीय काव्य साहित्य में आपकी रचनायें इस प्रकार हैं—(१) सुजनदुर्जनसन्दर्भः, (२) सुरभारती, (३) मनोलहरी, (४) कपिलार्याष्टकम्, (५) वियोगिनो विप्रलापाः, (६) देश उन्नीयतां कथम्, (७) सती सप्तदशी, (८) युद्धमुद्धतम् इत्यादि। आपकी रचनायें न केवल संस्कृत रत्नाकर और भारती में ही प्रकाशित हुई हैं, अपितु—अमरभारती, (वाराणसी), सूर्योदय (वाराणसी), संस्कृत प्रतिभा (मद्रास), सारस्वती सुषमा (वाराणसी), आदि पत्रों में भी प्रकाशित होती रही है। आपने अनेक हिन्दी निबन्ध लिखे हैं जिनमें (१) काव्य साहित्य में अलंकारों का स्थान, (२) संस्कृत में बिहारी, (३) राजपूती रक्त, (४) भक्त के भगवान्, (५) कवित्त छन्द आदि उल्लेखनीय हैं।

संस्कृत रत्नाकर और भारती में प्रकाशित आपकी रचनाओं की संख्या लगभग २५० से भी अधिक है जिनमें से कुछ का उल्लेख ऊपर किया गया है जिन्हें महत्त्वपूर्ण समझा गया है। आपके काव्य साहित्य एवं कथाओं की समीक्षा अग्रिम खण्ड में प्रस्तुत की जायेगी।

आप बहुचर्चित प्रतिभा के धनी थे और संस्कृत साहित्य के उद्भट विद्वान्। आपके रचनात्मक कार्य का मूल्यांकन विद्वानों का विषय है। आपका नाम एक कुशल अध्यापक, कुशल सम्पादक, श्रेष्ठ रचनाकार, कहानीकार, सुप्रसिद्ध लेखक एवं संस्कृत-संस्कृति के रक्षक के रूप में जयपुर के संस्कृत-साहित्य के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से उट्टंकनीय है। (९१-अ)

---

९२. श्री मथुरानाथ व्यास दाधिमथः

जयपुर संस्थापक सवाई जयसिंह द्वितीय ने अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया था और उस समय भारत प्रसिद्ध अनेक विद्वान् उसमें सम्मिलित हुए थे। उन सम्मिलित होने वाले विद्वानों में कुछ विद्वान् यज्ञ समाप्ति पर अपने निवास स्थान को लौट गये थे और कुछ राज्य सम्मान प्राप्त कर यहीं बस गये थे। उन बसने वाले परिवारों में से एक परिवार कथाव्यासों का भी था, जिनका मुख्य कार्य कथावाचन कर महाराज व महारानियों को प्रसन्न करना होता था। यह 'कथाव्यास' इन लोगों को महाराजाओं द्वारा दी हुई उपाधि थी। महाराज जगत्सिंह के समय इस वंश में श्री नयनसुख नामक व्यास ने जन्म लिया, जिनके पुत्र थे श्री मथुरानाथ व्यास। अपने पिता के समान आप भी साहित्य के अच्छे विद्वान् थे। आपका वंशवृक्ष श्री कन्हैयालाल व्यासोपाह्व (परिचय क्रमांक ५) के परिचय से साथ दिया जा चुका है।

(९१–अ) —कवि शिरोमणि भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री : 'व्यक्तित्व एवं कृतित्व' विषय पर श्रीमती उषा भार्गव को लेखक के निर्देशन में सन् १९७५ ई० में राज० विश्वविद्यालय से पी–एच० डी० की उपाधि प्राप्त हो चुकी है। यह शोध प्रबन्ध अभी अप्रकाशित है।

श्री मथुरानाथ षट्शास्त्र पारगंत थे तथा अपने समय के सुविख्यात् विद्वान्। संस्कृत कालेज, जयपुर के प्रथम प्राचार्य श्री एकनाथ ओझा आपके गुरु थे। आपने गुरु दक्षिणा के रूप में 'कुवलयानन्द' का शिखरिणी छन्द में अनुवाद कर श्री झा को भेंट किया था। कहा जाता है आपकी कविता मार्मिक तथा विद्वत्तापूर्ण होती थी। आप एक घंटे में ३०० पद्य बना लिया करते थे। (९२-अ) आपके सहपाठियों में चिड़ावा शेखावाटी के श्री स्नेहीराम, श्री जीवनराम चतुर्वेदी, संस्कृत कालेज के भूतपूर्व अध्यापक श्री गंगावल्लभजी प्रश्नवर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। मुंशी श्री जयलालजी, मुंशी श्री स्वरूपनारायणजी, लाला छीतरमल आदि व्यक्तियों ने आपके पास स्वतन्त्र रूप से अध्ययन किया था। कहा जाता है सुप्रसिद्ध काव्यवित् प० श्री गोपीनाथ शास्त्री दाधीच भी आपके शिष्य थे। आपकी कथावाचन शैली अद्वितीय थी। सवाई जयसिंह तृतीय की माता माजी श्री सुजानोतजी आपकी कथा नियमित रूप से सुनती थीं। सवाई रामसिंह द्वितीय ने आपको पर्याप्त सम्मान व आजीविका के लिये कई ग्राम जागीर में प्रदान किये थे। आपके तीन पुत्रों में श्री बालाबक्सजी संगीत विद्या में निपुण थे। आपके द्वितीय पुत्र श्री किशनलालजी श्रीमाधवसिंह द्वितीय के मनोविनोदार्थ नित्यप्रति रात्रि में धार्मिक कथायें सुनाया करते थे। इनके पुत्र श्री रामगोपालजी तथा पौत्र श्री गोपीचन्दजी राज-सान्निध्य में उक्त कार्य करते रहे। श्री गोपीचन्दजी के दो पुत्रों में से ज्येष्ठ श्री प्यारे मोहन शर्मा सस्कृत कालेज, कालाडेरा में प्राचार्य हैं तथा द्वितीय पुत्र श्री राधामोहन शास्त्री राजकीय संस्कृत कालेज, बगरू में संस्कृताध्यापक हैं। आप पुरातनकालीन विद्वानों की परम्परा में स्मरणीय है।

---

९३. श्री मदनलाल प्रश्नवर

जयपुर नगर में गुजरात से आये हुए गुजराती औदीच्य परिवारों में से आपका भी परिवार था। आपके पिता पं० दामोदरजी प्रश्नवर राजगुरु श्री मन्वाजी महाराज के कामदार थे। आपका जन्म ३१ जुलाई, १८७७ को जयपुर नगर में ही हुआ था। (९३-अ)

आपकी शिक्षा-दीक्षा महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर में हुई थी। आपने नियमित छात्र के रूप में व्याकरण विषय से शास्त्री परीक्षा सम्वत् १९५८ में द्वितीय श्रेणि में तथा व्याकरणाचार्य सम्वत् १९६६ में प्रथम श्रेणि में उत्तीर्ण की थी। (९३-आ) म० म० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ने आत्मकथा में लिखा है – "प्रश्नवर जाति के श्री मदनलालजी शर्मा भी मित्रमंडली में एक विख्यात पुरुष थे। अध्ययन काल में उपाध्याय परीक्षा से ही इनका मेरा साथ रहा।" (९३-इ) आपके गुरु का नाम श्री लक्ष्मीनाथ शास्त्री द्राविड़, श्री हरदत्त ओझा, श्री नरहरि ओझा तथा पं० जीवनाथ ओझा था। आपके उल्लेखनीय शिष्यों में पं० श्री वृद्धिचन्द्रजी शास्त्री, व्याकरण-धर्मशास्त्राचार्य तथा श्री मोतीलाल जी का नाम उल्लेखनीय है।

आपने सर्वप्रथम महाराज कालेज, जयपुर में संस्कृत व्याख्याता के रूप से कार्य करना प्रारम्भ किया था। आपका राजकीय सेवा में प्रवेश का दिनांक ३० जून, १९१० है। कुछ समय तक आप राजकीय संस्कृत विद्यालयों

(९२-अ) —उक्त विवरण स्व० पं० नन्दकिशोरजी कथाभट्ट के लेख–'श्रीनयनसुख व्यास का वंश' पर आधारित है।

(९३-अ) —लिस्ट आफ एजू० आफिसर्स—सं० कालेज, जयपुर—क्रमांक ४—प्रोफेसर धर्मशास्त्र।

(९३-आ)—शास्त्रिपरीक्षोत्तीर्णच्छात्राणां नामादीनि—क्रमांक ३८ व आचार्य—क्रमांक १९।

(९३-इ) —आत्मकथा और संस्मरण—श्री चतुर्वेदीजी—पृष्ठ १३-१४—जन्म और शिक्षा।

के निरीक्षक भी रहे। इसके पश्चात् महाराज संस्कृत कालेज जयपुर में धर्मशास्त्र के प्राध्यापक बन कर आये। यों आपने अपनी राजकीय सेवा संस्कृत कालेज से ही प्रारम्भ की थी। प्राचीन उपस्थितिपत्रकों से ज्ञात होता है कि आपने पं० श्री चन्द्रदत्त ओझा (व्याकरण विभाग के अध्यक्ष व प्राध्यापक) के सहयोगी के रूप में व्याकरण का अध्यापन किया था। मार्च, १९११ में आपके परिवर्तन पर (स्थानान्तरण पर) श्री सोमदेव शर्मा गुलेरी की नियुक्ति हुई। इनके पश्चात् सन् १९१९ में आपने पं० मुकुन्दराम शर्मा के अधीन रहकर धर्मशास्त्र का अध्यापन किया था। आपको धर्मशास्त्र विषय के अध्यक्ष पद पर पदोन्नति १० सितम्बर, १९३० को प्राप्त हुई। (९३-ई)

संस्कृत रत्नाकर के सम्पादन व प्रकाशन में आपका सहयोग भी उल्लेखनीय है। आपकी रचनायें प्रकाशित हुई हैं। आप सुन्दर पद्य रचना करते थे। समस्यापूर्ति रूपात्मक अनेक पद्य प्रकाशित हैं, जिनका विवरण इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :—

क्रम	शीर्षक	पत्रिका	वर्ष	अंक	तिथि
१.	विद्यार्जने के गुणाः	सं० रत्नाकर	१	१	वैशाख शुक्ला १५, सं १९६१
२.	भवति विकृतिर्नैव महताम्	सं० रत्नाकर	१	२	ज्येष्ठ संवत् १९६१
३.	कल्पलतेव विद्या	सं० रत्नाकर	१	२	द्वितीय ज्येष्ठ १९६१
४.	संघः सतां सौख्यदः	सं० रत्नाकर	८	९	अप्रेल, सन् १९४२
५.	युद्धमुद्धतम्	सं० रत्काकर	८	९	अप्रेल, सन् १९४२
६.	भारतीयाणां राजभक्तिः	सं० रत्नाकर	६		संवत् १९९९
७.	वर्तमाने युरोपीययुद्धे भारतीयाः	सं० रत्नाकर	५	१-२	

उदाहरण के लिये दो पद्य प्रस्तुत हैं :—

"भ्रान्ति नाशयते मतिं वितनुते वादे विधत्ते जयं
सम्पत्तिं तनुते विपत्तिमखिलामुन्मूलयेन्मूलतः।
सायुज्यं सह ब्रह्मणा च कुरुते भूवल्लभाराध्यतां
सत्स्वेतेषु गुणेषु केन गदितं विद्यार्जने के गुणाः? ॥" (१।१) (१९०४ ई०)

"धनार्जनाभिलाषिणा कुनीतिमार्गचारिणा जनापमानकारिणा स्ववीरताभिमानिना।
सुशर्मदेशवासिना प्रचारितं निरन्तरं विलोक्य युद्धमुद्धतम् भवेन्न कस्य भो! भयम् ॥" (८।९)

कविशिरोमणि भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री ने आपका स्मरण इस प्रकार किया है :—

"व्याकरणाचार्यतया व्याकुर्वन् सुरत्नमिव सूत्रवृत्तिसाधनिकासाधनेऽद्वितीयताम्
शुद्धतया यत्किंचिन्मुखाग्रगतमुच्चारयन् धारयन्निजाऽधिकृतकार्ये माननीयताम्।
मंजुनाथ पण्डितेषु पंचरंगहस्तिसमो रक्तहस्तिमन्दिरसमीपे परिचीयताम्
प्रख्यापितप्रश्नवरपण्डितसमाजोन्मेष एव हि मदनमहाराजोऽमन्दमीयताम् ॥"

(जयपुरवैभवम्—नागरिकवीथी—सुधीचत्वरः—पद्य ७९—पृष्ठ २६५)

(९३-ई)—लिस्ट ऑफ एजू० आफिसर्स—सं० कालेज, जयपुर—क्रमांक ४।

आपका स्वर्गवास माघ शुक्ला एकादशी संवत् १९९९ तदनुसार जनवरी, १९४३ को ६५ वर्ष की अवस्था में जयपुर में हुआ था। संस्कृत रत्नाकर नवम वर्ष सप्तम संचिका में आपके दिवगंत होने के समाचार का प्रकाशन हुआ है—"**अहो खेद:! महाराजसंस्कृतकालेजस्य धर्मशास्त्रप्रधानाध्यापनकार्यात् संप्रति विश्रममुपसेवमाना व्याकरणाचार्य श्रीमदनलालशर्मप्रश्नवर-महाभागो माघशुक्लैकादश्यां सावधीनं हरिनामाऽनुध्यायन्नेव लोकान्तरमुपारोहरिति सर्वेऽपि सहृदया विषीदन्ति।**"..........इत्यादि।

आप एक कुशल अध्यापक के रूप में स्मरणीय विद्वानों में से एक रहे हैं।

---

६४. श्री मधुसूदन ओझा—समीक्षा चक्रवर्ती

जयपुर राजसभा प्रधान, समीक्षा चक्रवर्ती, महामहोपदेशक, स्वर्गीय पण्डित प्रवर विद्यावाचस्पति श्री मधुसूदन ओझा जयपुर के संस्कृत साहित्याकाश में देदीप्यमान सूर्य हैं। वस्तुविज्ञान इस शताब्दी के वैज्ञानिकों का विशेषत: विवेच्य रहा है और इसी वस्तुविज्ञान का विवेचन वैदिक ग्रन्थों के उद्धरणों से प्रस्तुत करने का श्रेय श्री ओझाजी को रहा है। प्रवर्तमान इस शताब्दी के वैज्ञानिकों को स्वप्न में भी नहीं था कि आधुनिक वस्तुविज्ञान की बहुत सी उलझनें वैदिक साहित्य के माध्यम से भी सुलझ सकती हैं। श्री झा ने अपना पूर्ण जीवन वैदिक विज्ञान एवं वैदिक इतिहास के अन्वेषण में लगा दिया था।

श्री झा का जन्म मिथिला देश के मुजफ्फर जिले में 'गाढा' नामक ग्राम में भाद्रपद कृष्णाष्टमी (जन्माष्टमी) संवत् १९२३ को हुआ था। (६४-अ) यह ग्राम रेलवे स्टेशन सीतामढी से दक्षिण की ओर करीब १० मील की दूरी पर विद्यमान है। आपके पिता का नाम पं० श्री वैद्यनाथ झा था। आपके पितामह पं० देवनाथ झा मझोलिया राज्य के प्रधान पण्डित थे। आपका कुल एक विद्वत् कुल रहा है। आपके कुटुम्ब में सन्निहित पितृव्य पं० श्री तुलसीदत्त झा भी एक प्रकाण्ड पण्डित थे, जो काशी में रहते थे। व्याकरण में नवीन युग के निर्माता दाक्षिणात्य विद्वान् श्री काशीनाथ शास्त्री भी श्री तुलसीदासजी को ही विशिष्ट विद्वान् मानते थे। आप मन्त्रशास्त्री भी थे। आपने 'शारदा तिलक' पर एक टिप्पणी भी लिखी थी। आपके पितृव्य श्री राजीवलोचन झा जयपुर राज्य में सम्मान प्राप्त कर चुके थे (६४-आ)।

(६४-अ)—म० म० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी का 'विद्यावाचस्पति पं० श्री मधुसूदन झा' शीर्षक लेख 'सुधा' पत्रिका वर्ष २ ख० १ संख्या १ श्रावण ३०६ तुलसी संवत् पृष्ठ १११ (पूर्वार्द्ध व उत्तरार्द्ध) पर आधारित है।

(६४-आ)—देखिये राजीवलोचन ओझा का परिचय, क्रमांक १०६—सम्प्रदायों का शास्त्रार्थ।

श्री राजीवलोचन झा के कोई पुत्र न था, अतः उन्होंने श्री मधुसूदनजी झा को अपना पुत्र स्वीकार किया और आपका ९ वर्ष की अवस्था में संवत् १९३२ में जयपुर आगमन हुआ। उस समय तक आपने कोष आदि की साधारण शिक्षा प्राप्त की थी। जयपुर आकर पहले आप भाषा ज्ञान के उद्देश्य से प्राइवेट अंग्रेजी व फारसी का अध्ययन करते रहे। इन भाषाओं के साधारण ज्ञान के पश्चात् आपने नियमित रूप से संस्कृत पढ़ना प्रारम्भ किया। आपको बहुत ही विद्वान् व्यक्तियों से पढ़ने का सौभाग्य मिला। मिथिला के सुप्रसिद्ध एवं लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् पं० विश्वनाथ झा जो सभी शास्त्रों के ज्ञाता होने के साथ ही मन्त्रशास्त्र में भी अप्रतिहत शक्ति रखते थे, आपको व्याकरण पढ़ाते थे। आपने महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर में प्रवेश प्राप्त किया और तत्कालीन अध्यक्ष काशी के सुप्रसिद्ध भाष्यब्रह्मचारी श्री विभवरामजी के सुयोग्य पुत्र श्री रामभजजी सारस्वत से सिद्धान्तकौमुदी का अध्ययन किया। आप जन्मतः ही प्रौढ़ तथा अध्ययनशील होने के साथ-साथ प्रतिभाशाली भी थे। १४–१५ वर्ष की अवस्था में जब आप सिद्धान्तकौमुदी पढ़ रहे थे उसी समय आपके पितृव्य पं० श्री राजीवलोचन ओझा का स्वर्गवास हो गया। इस दुर्घटना से आपका जीवन परिवर्तित हो गया। आपको अपनी पितृव्यपत्नी के साथ संवत् १९३९ में अपनी जन्मभूमि मिथिला लौटना पड़ा। आपने अपना शेष अध्ययन काशी में प्रारम्भ किया। आपके दरभंगा पाठशाला में स्वनामधन्य म० म० पं० श्री शिवकुमार मिश्र के पास रहकर विद्याध्ययन किया। आपकी विचित्र प्रतिभा और मिश्रसदृश अलौकिक विद्वान् गुरु का योग 'रत्नं समागच्छतु कांचनेन' का निर्देशन उपस्थित करने में सहायक हुआ। श्री शास्त्रीजी सदृश विद्या-कल्पतरु का आश्रय प्राप्त कर आपकी प्रतिभा-वल्लरी असाधारण रूप से विस्तृत एवं विकसित होने लगी। आपका असाधारण अध्यायनोत्साह एवं चमत्कृत बुद्धिवैभव देखकर श्री शास्त्रीजी ने आपको अपना पट्टशिष्य बना लिया। आपने उनके सान्निध्य में रहकर मनोयोगपूर्वक शास्त्राध्ययन किया। इस प्रकार व्याकरण, न्याय, साहित्य, मीमांसा, वेदान्त आदि मुख्य-मुख्य सभी ग्रन्थों का न केवल गुरुमुख से अध्ययन ही किया, उन पर पूर्ण रूप से अधिकार भी प्राप्त कर लिया। काशी में रहते हुए ही आपके शास्त्रार्थ व विषयनिरूपण शैली आदि की अच्छी प्रसिद्धि हो गई थी। सुप्रसिद्ध विद्वान् भी आपको सम्मान की दृष्टि से देखते थे। एक बार मिथिला के सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री बच्चा झा के साथ आपका 'खण्डनखाद्य' पर विचार-विमर्श हुआ था और आपकी विजय हुई थी। उन दिनों आर्यसमाज अपना प्रभाव चारों ओर फैला रहा था। आर्यसमाज के प्रचारक व्याख्यानों द्वारा सनातन धर्म के सिद्धान्तों का खण्डन करने में सलग्न थे। विक्रम संवत् १९४५ की बात है आपके गुरु पं० श्री शिवकुमार मिश्र एक सभा से लौटकर आये और उन्होंने शास्त्रीजी को आदेश दिया में आज बहुत खिन्न हूँ। तुम सत्य वैदिक सिद्धान्तों को प्रकाश में लाने का कार्य करो। तुममें इस काम की शक्ति है। हम आशीर्वाद देते हैं कि तुम्हें वैदिक अर्थो का यथार्थ प्रतिभान होगा। आपने भी उन्हीं के समक्ष वैदिक विवेचन में जीवन लगाने की प्रतिज्ञा की।

आप पं० राजीवलोचन झा के उत्तराधिकारी थे, अतः जीविका-सम्बन्ध होने के कारण आपको जयपुर आना पड़ता था। अध्ययन समाप्त कर जब आप एक बार जयपुर आये तो सुप्रसिद्ध बंगाली विद्वान् पं० हरिदास बाबू ने, जो तत्कालीन शिक्षा विभागाध्यक्ष थे, आपको महाराजा कालेज में संस्कृत का प्रोफेसर नियुक्त करना चाहा, किन्तु आपकी ज्ञान-पिपासा अभी शान्त नहीं हुई थी और इसीलिये आपने उक्त पद को स्वीकार करने में आना-कानी की। आप चुपचाप भ्रमण करने चल दिये। सर्वप्रथम बूंदी पहुंचे, जो उस समय छोटी काशी के नाम से विख्यात थी। वहां आप विद्यावाचस्पति प० गंगासहायजी से मिले, जो तत्कालीन अमात्य थे। वहां एक तैलंग भट्ट नैयायिक से आपका शास्त्रार्थ भी हुआ। वहां से पूर्ण सम्मानित होकर आप कोटा, झालरापाटन, नीमच, रतलाम आदि अनेक स्थानों पर गये। रतलाम में प्रवास कर रहे जगद्गुरु शंकराचार्य द्वारिकापीठाधीश्वर श्री माधवतीर्थजी महाराज को 'पर्यटन-मीमांसा' नामक ग्रन्थ लेखन में आपने पर्याप्त सहायता की। यह ग्रन्थ विलायत यात्रा की व्यवस्था के सम्बन्ध में लिखा जा रहा था। जयपुर राज्य के विशेष अनुरोध पर आप १९४६ विक्रम संवत् में पुन.

जयपुर आये। जयपुर पहुंचते ही आप महाराजा कालेज में संस्कृत प्रोफेसर नियुक्त हुए। श्री हरिदास शास्त्री ने आपकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर आपको एक महत्त्वपूर्ण कार्य सौंपा। वह था, सिंहली लिपि के लिखित जानकी-हरण नाटक (कवि कुमारदास) को संस्कृत में अनूदित कर सम्पादित करना, जो सिंहली भाषा की ही टीका से युक्त था। इसके आधार पर आपने मूल ग्रन्थ का सम्पादन किया। इस कार्य में बहुत अधिक परिश्रम किया गया। परिणामस्वरूप आप अस्वस्थ हो गये। यह टीका केवल १५ सर्ग की ही थी और टीका के आधार पर १५ सर्गात्मक मूल ग्रन्थ का सम्पादन किया गया था। यही आपका प्रथम कार्य था। दुर्भाग्यवश इसके प्रकाशन से पूर्व ही श्री हरिदास बाबू का देहावसान हो गया और अन्त में श्री कालीपद वन्द्योपाध्याय ने सन् १८९३ ई० में इसे कलकत्ते से प्रकाशित करवाया। (६४-इ) श्री कालीपदजी के समय महाराजा कालेज में एम० ए० की कक्षायें खोली गई और आपको उसका अध्यक्ष नियुक्त किया गया। उसके पश्चात् कुछ दिन आप संस्कृत कालेज में स्थानान्तरित किये गये और वहां वेदान्त आदि पढ़ाते रहे, परन्तु फिर आप महाराजा कालेज में ही ले लिए गए।

आप अध्ययनव्यसनी तथा वैदुष्यसम्पन्न वृहस्पति के अवतार रूप माने जाते थे। आपकी विषय प्रतिपादन शैली इतनी उत्तम तथा प्रभावयुक्त थी, जो सर्वसामान्य विद्वानों में भी परिलक्षित नहीं होती। आपके गुरु श्री शिवकुमार शास्त्री ने आपके सम्बन्ध में कहा था :—"मधुसूदन तो दर्शनों में इतना प्रौढ हो गया है कि वह कितनी जल्दी क्या-क्या गूढ़ बातें कह जाता है, इसका अनुसंधान रखना हमें भी कठिन पड़ता है।" विद्या के इतने अगाध समुद्र होने पर भी आप निरभिमानी तथा सौजन्यपूर्ण विद्वान् थे। महाराज माधवसिंह पर आपकी विद्वत्ता की छाप तब पड़ी जब कि तत्कालीन राजज्योतिषी श्री केवलराम श्रीमाली द्वारा निर्णीत वृन्दावन में बनाये गये मन्दिर की प्रतिष्ठा के मुहूर्त पर आपने तत्कालीन ज्योतिष प्राध्यापक श्री भैया झा का समर्थन किया था तथा उसमें ४० दोष निकाले थे। इसके बाद आप अनेक बार महाराज के साथ वृन्दावन भी गये, जहां आपने वैष्णव सम्प्रदायाचार्यो से अनेक विषयों पर शास्त्रार्थ भी किया था। संवत् १९५१ में आप महाराज के प्रधान राजपण्डित बनाये गये। महाराज ने आपको अपना निजी संग्रहालय 'पोथीखाना' सौंप दिया और आप इसके अधीक्षक के रूप में कार्य करने लगे। सवत् १९५८ में सम्राट् एडवर्ड सप्तम के राज्याभिषेक के समय आप महाराज के साथ विलायत भी गये। यद्यपि विदेश यात्रा (समुद्र यात्रा) करना तत्कालीन सामाजिक नियमों की परिधि से बहिर्भूत था, तथापि आपने 'प्रत्यन्त-प्रस्थान-मीमांसा' नामक ग्रन्थ द्वारा इस यात्रा को करणीय सिद्ध कर दिया। इंगलैण्ड में आक्सफोर्ड तथा केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के संस्कृत विद्वान् आपकी विद्वत्ता से बहुत ही अधिक प्रभावित हुए। आप अंग्रेजी भाषा विज्ञ नहीं थे, अतः श्री सत्येन्द्रनाथ मुकर्जी आपको उसका अर्थ समझाकर प्रत्युत्तर दिया करते थे। आक्सफोर्ड के विद्वान् श्री मेक्डोनाल्ड, केम्ब्रिज के विद्वान् श्री बैंडाल तथा इण्डिया आफिस लाइब्रेरी के अध्यक्ष श्री टोनी व टामस आप से बहुत ही अधिक प्रभावित थे। श्री टामस एक रसिक विद्वान् थे और पद्य रचना में भी बहुत ही पटु थे। एक दिन वार्तालाप के प्रसंग में यह प्रश्न किया था कि मधुसूदन यहां आए, परन्तु लक्ष्मी को कहां छोड़ आये ? श्री ओझाजी ने तुरन्त ही पद्यमय उत्तर दिया था :—

"मधुसूदनस्य दृष्ट्वा सरस्वतीलालने विशेषरुचिम्।
रोषात् क्वचिदपसृतां लक्ष्मीमनुनेतुमत्र सोऽभ्यगात्॥"

(मधूसूदन की सरस्वती में विशेष आसक्ति देकर लक्ष्मी रूठ कर चल दी, उसे ढूंढने तथा मनाने के लिए ही मधुसूदन यहाँ आये हैं।)

(६४-इ) - श्री वन्द्योपाध्याय ने उक्त ग्रन्थ के प्रकाशन पर सम्पादक के रूप में श्री हरिदास शास्त्री का नाम लिखा है तथा प्रकाशक स्वयं को। श्री झा को भूमिका में केवल धन्यवाद मात्र दिया था, जबकि श्री झा को सारा श्रेय प्राप्त होना चाहिये। श्री चतुर्वेदीजी का लेख-सुधा पत्रिका-२।१।१-पृष्ठ १११ से प्रारम्भ।

आपने इण्डिया आफिस में वेद तथा धर्म के सम्बन्ध में एक वक्तृता दी थी। यह वक्तृता 'संस्कृत-रत्नाकर' के प्राचीन अंकों में प्रकाशित भी हुई थी। यह शास्त्रों का रहस्य प्रकट करने वाली वक्तृता अत्यन्त ही अद्भुत थी। वहाँ के समाचार पत्रों में आपके सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा गया था, जिसका हिन्दी अनुवाद यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है :—

"लन्दन में राज्याभिषेक के अवसर पर जितने विशेष व्यक्ति उपस्थित हुए हैं, उनमें एक अद्भुत हिन्दू विद्वान् की उपस्थिति भी स्मरण योग्य है, जो कि भारत को उज्ज्वल करने वाला एक देदीप्यमान प्रकाश है और जो मनुष्य रूप में वैदिक विज्ञान और दर्शनों की एक निधि है। यह व्यक्ति है 'श्री मधुसूदन ओझा', जो कि संस्कृत विद्या के एक अद्वितीय विद्वान् हैं। कैम्ब्रिज में अब तक जितने पूर्व देश के आए हैं, उनमें (सब में) उक्त पंडितजी का धाराप्रवाह संस्कृत में बातचीत करना यहाँ के प्राच्यविद्या विभाग के विद्वानों के लिये अधिक मनोरंजक हुआ है।" (वेस्ट मिनिस्टर गजट २६ जुलाई, १९०२)

"पंडित मधुसूदन ओझा आक्सफोर्ड के प्रोफेसर मेक्डोनाल्ड से मिले, जो कि पंडितजी का परिचय प्राप्त कर अत्यन्त आनन्दित हुए हैं। गत शनिवार को कैम्ब्रिज के प्रोफेसर सी० बैंडाल ने पंडितजी को निमंत्रित किया और अपनी पत्नी सहित बैंडाल साहब ने उनका प्रेमपूर्ण स्वागत किया। पंडितजी का धाराप्रवाह भाषण कैम्ब्रिज के प्राच्य विद्या विभाग के विद्वानों के लिये अत्यन्त मनोरंजक था जैसा कि आजकल भारतवर्ष में बहुत कम मिलता है। इनके गम्भीर पांडित्य का यहाँ के विद्वानों पर गहरा प्रभाव पड़ा है।" ('दी सन्' २३ जुलाई, १९०२)

वहाँ के विद्वानों ने ओझाजी से जर्मनी में जाकर व्याख्यान देने का बहुत अनुरोध किया किन्तु जयपुर महाराज आपको पृथक् करना नहीं चाहते थे, अतः आप न जा सके।

आपने सम्राट् एडवर्ड सप्तम के राज्याभिषेक के समय कुछ पद्य सम्राट् को भेंट किए थे जिनका अंग्रेजी अनुवाद श्री सत्येन्द्रनाथ मुकर्जी ने किया था। वे पद्य संस्कृत रत्नाकर के विशेषांक वेदांक में पृष्ठ २३४–३५ पर प्रकाशित हो चुके हैं। एक पद्य यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है :—

"प्राज्यं राज्यं यदेतद् ब्रिटिशपदमिहाराध्यते विश्वनाथः
सौरे वारेऽथ, नेह व्रजति च भगवानस्तमर्कः कदाचित्।
सूर्यं संस्थाप्य मध्ये क्षितितलमखिलं तद्वशेऽत्राभिनीतं
भ्रान्तेः कृच्छादनन्तादपि ननु तपनो मोचितः सर्वथैव॥" (इत्यादि)

इनके उत्तर में सम्राट् की ओर से धन्यवाद सहित आपको कोरोनेशन मेडल प्रदान किया गया था। सन् १९०६ में काशी कांग्रेस और प्रयाग कुम्भ के अवसर पर, जो श्री भारत धर्म महामण्डल के महाधिवेशन हुए थे, उनमें जयपुर के राजप्रतिनिधि के रूप में आप सम्मिलित हुए और आपने प्रयाग में 'देवता और पितृ' विषय पर एक महत्त्वपूर्ण भाषण दिया था। श्री भारत धर्म महामण्डल ने आपको विद्यावाचस्पति और महामहोपदेशक दो पदाधियाँ उपायन की थीं। विक्रम सम्वत् १९६२ में आपकी धर्मपत्नी का स्वर्गवास हो गया। उस समय आपकी आयु ४० वर्ष से भी कम थी, किन्तु आपने दूसरा विवाह नहीं किया। शास्त्र विचार में ही पूर्ण रूप से शेष समय बिताना निश्चित किया।

आत्मविज्ञान, परलोकविज्ञान आदि के कारण तो वेद का महत्त्व सभी विद्वान् मानते हैं, किन्तु आपकी सम्मति में वेद का वस्तुविज्ञान भी एक अत्युच्च कोटि पर पहुँचा हुआ है जिनके सामने इस बीसवीं शताब्दी का

बढ़ा हुआ विज्ञान भी एक कलामात्र है। प्राणविज्ञान वैदिक वस्तुविज्ञान का मुख्य आधार है, देवविज्ञान, पितृविज्ञान आदि उसकी शाखायें हैं और यज्ञविज्ञान फलस्वरूप है। आरम्भ में यास्क कृत निरुक्त व शौनकोक्त बृहद्देवता आदि के आलोचन से आपका यह विश्वास अंकुरित हुआ और धीरे-धीरे ब्राह्मण ग्रन्थों के आलोचन से परिपुष्ट होता गया।

वैदिक विज्ञान रूपी प्रासाद का द्वारोद्‌घाटन कर आपने उसमें केवल प्रवेश ही नहीं किया, अपितु वहाँ अपना पूर्ण अधिकार भी जमाया और दूसरों को भी प्रविष्ट होने की सुविधा प्रदान करने में सफल हुए। आपके पास रह कर अनेक विख्यात विद्वानों ने इस सम्बन्ध में ज्ञानार्जन किया, जिनमें (१) राजगुरु पं० श्री चन्द्रदत्तजी ओझा, (२) पं० श्री सूर्यनारायण आचार्य, (३) श्री कन्हैयालालजी न्यायाचार्य, (४) पं० श्री मदनलालजी व्याकरणाचार्य, (५) पं० मथुरानाथजी भट्ट, (६) पं० जयचन्द्रजी झा, (७) मोतीलालजी शास्त्री, (८) स्वामी श्री सुरजनदासजी, (९) श्री केदारनाथजी ज्योतिर्विद्, (१०) पं० श्री वृद्धिचन्द्रजी शास्त्री, (११) श्री नवलकिशोरजी कांकर के अतिरिक्त म० म० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिन्होंने ४० वर्ष तक आपके चरणों में बैठकर वैदिक विज्ञान के रहस्यों का अध्ययन किया था।

आपका दृढ़ विश्वास था कि ब्राह्मण ग्रन्थों, पुराणों और वेदांगों का आधार लिये बिना वैदिक विज्ञान में गति नहीं हो सकती। मन्त्र तो केवल संकेत मात्र हैं। ब्राह्मणों से ही उनका स्पष्टीकरण होता है। "इतिहास-पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्" सिद्धान्त पर भी आपका दृढ़ विश्वास था।

आपकी एक प्रकृति थी कि आप बहुत से ग्रन्थों का लिखना साथ-साथ प्रारम्भ किया करते थे। यही कारण था कि आपके अनेक ग्रन्थ अपूर्ण हैं। इस सम्बन्ध में आप से जब निवेदन किया गया था तो आपने उत्तर दिया था कि एक विज्ञान दूसरे विज्ञान की अपेक्षा रखता है। एक विषय का प्रतिपादन करते-करते उससे सम्बन्ध रखने वाले दूसरे विषय की आवश्यकता प्रतीत हो जाती है और इसीलिए उसका विवेचन करना आवश्यक हो जाता है। आपने वेद और वेदांगों पर समीक्षा नाम से अनेक ग्रन्थों का लेखन प्रारम्भ किया था क्योंकि उपलब्ध ग्रन्थ वैदिक विज्ञान की शैली से बहुत दूर चले गये थे। हम यहाँ आपके स्वर्गवास के पश्चात् जो ग्रन्थ उपलब्ध हुए उनका उल्लेख अग्रिम पृष्ठों में प्रस्तुत कर रहे हैं, जिनकी समीक्षा पर अनेक शोध प्रबन्ध लिखे जा सकते हैं।

विक्रम सम्वत् १९९३ में अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन की ओर से जयपुर के गण्यमान्य सरदारों व विद्वानों और सेठ साहूकारों की स्वागत समिति के तत्वावधान में आपके ७०वें वर्ष के उपलक्ष में आचार्य प्रवर गोस्वामी श्री गोकुलनाथजी महाराज शुद्धाद्वैत सम्प्रदायाचार्य बम्बई के सभापतित्व में रामनिवास बाग के अलबर्ट हाल में 'हीरक जयन्ती' मनाई गई थी। इस अवसर पर संस्कृत रत्नाकर का एक विशेषांक वेदांक और अभिनन्दन पत्र आप को समर्पित किया गया था। वास्तव में आप इस सम्मान के योग्य थे।

विक्रम सम्वत् १९९९ भाद्रपद शुक्ला १५ को केवल दो तीन दिन ही अस्वस्थ रह कर श्री ओझाजी का अचानक स्वर्गवास हो गया। स्थानीय सिविल सर्जन का कथन था कि यह दिमागी उत्कट परिश्रम के हृदय पर आघात होने के कारण हुआ था। आपके एकमात्र पुत्र श्री प्रद्युम्न झा उन दिनों अलवर नरेश के पास थे। आप ने अपने अन्तिम समय में स्वरचित ग्रन्थों के प्रकाशित करने की एकमात्र इच्छा अपने पुत्र से प्रकट की थी। श्री प्रद्युम्न झा ने कुछ ही ग्रन्थों का प्रकाशन करवाया और उनके दिवंगत होने के पश्चात् अब उनकी अप्रकाशित रचनायें अस्त-व्यस्त हो गई हैं। जिस दिन आपका स्वर्गारोहण हुआ था अनेक पत्रों में 'वैदिक विज्ञान का सूर्य अस्त' शीर्षक से समाचार प्रकाशित हुए थे।

विद्यावाचस्पति श्री ओझाजी के सम्पूर्ण ग्रन्थ दो महाखण्डों में विभक्त हैं :—(१) निगम तथा (२) आगम। निगम के अन्तर्गत चार महाग्रन्थ हैं—(१) ब्रह्मविज्ञान, (२) यज्ञविज्ञान, (३) पुराण-समीक्षा और

(४) वेदांगसमीक्षा। इनके अन्तर्गत क्रमशः सात, चार, तीन और चार कुल अठारह महाग्रन्थ हैं। इन महाग्रन्थों के अन्तर्गत क्रमशः, चालीस, बीस, अठारह और तीस इस प्रकार कुल १०८ ग्रन्थ हैं। आगम खण्ड के अन्तर्गत आगम रहस्य शीर्षक के अन्तर्गत ६ महाग्रन्थ हैं जिसके अन्तर्गत १२० अवान्तर ग्रन्थ हैं। आगम और निगम दोनों महाखण्डों के अवान्तर ग्रन्थों सहित कुल ग्रन्थों की संख्या २८८ हैं। इनका उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है :—

निगम महाखण्ड

१. ब्रह्मविज्ञान–७ महाग्रन्थ–अवान्तर ४० ग्रन्थ

(क) दिव्यविभूतिः (महाग्रन्थ)—विज्ञानेतिवृत्तपंजिका (५)

(१)	जगद्गुरुवैभवम् (ब्रह्मरहस्यम् भौमब्रह्मोपाख्यानम्)	प्रकाशित
(२)	महर्षिकुलवैभवम् (ऋषिरहस्यम् भौमार्षेयोपाख्यानम्)	प्रकाशित
(३)	स्वर्गसन्देशः (देवरहस्यम् भौमदेवोपाख्यानम्)	अप्रकाशित
(४)	इन्द्रविजयः (भारतवर्षीयार्योपाख्यानम्)	प्रकाशित
(५)	दशवादरहस्यम् (दैवयुगीय दशविज्ञानोपपादनम्)	अप्रकाशित

(ख) उक्थवैराजिकम् (महाग्रन्थ)—दैवयुगीय विज्ञानदशिका (१०)

(१)	सदसद्वादः	प्रकाशित
(२)	रजोवादः	अप्रकाशित
(३)	व्योमवादः	प्रकाशित
(४)	अपरवादः	प्रकाशित
(५)	आवरणवादः	प्रकाशित
(६)	अम्भोवादः	प्रकाशित
(७)	अमृतमृत्युवादः	अप्रकाशित
(८)	अहोरात्रवादः	प्रकाशित
(९)	दैववादः	अप्रकाशित
(१०)	संशयतदुच्छेदवादः	प्रकाशित

(ग) आर्यहृदयसर्वस्वम् (महाग्रन्थ)—हृदयपंचिका (५)

(१)	ब्रह्महृदयम् (आर्षेयी वेदसंहिता १८ विधा)	अप्रकाशित
(२)	ब्राह्मणहृदयम् (ब्राह्मणोक्तविज्ञानसमुच्चय)	अप्रकाशित
(३)	उपनिषद्हृदयम् (उपनिषत् परिष्कारः) (गीताविज्ञान भाष्य)	अप्रकाशित
(४)	गीताहृदयम् (भगवद्गीतोपनिषद् विज्ञानभाष्यम्) (दो भागों में)	प्रकाशित
(५)	ब्रह्मसूत्रहृदयम् (शारीरक-विज्ञानम्) (दो भागों में)	प्रकाशित

(घ) निगमबोधशिक्षा (महाग्रन्थ)—शिक्षापंजिका (५)

(१)	निगद्वती	अप्रकाशित
(२)	गाथावती	अप्रकाशित
(३)	आख्यानवती	अप्रकाशित
(४)	निरुक्तिमती	अप्रकाशित
(५)	पथ्यास्वस्तिर्वेदमातृका	प्रकाशित

(ङ) विज्ञानप्रवेशिका (महाग्रन्थ)—उपदेशपंचिका (५)

(१)	ब्रह्मद्रवी	अप्रकाशित
(२)	ब्रह्मधारा	अप्रकाशित
(३)	विज्ञानविद्युत्	प्रकाशित
(४)	विज्ञानपरिष्कारः	अप्रकाशित
(५)	दर्शनपरिष्कारः	अप्रकाशित

(च) विज्ञानमधुसूदनः (महाग्रन्थ)—विज्ञानपंचिका (५)

(१)	ब्रह्मविनयः	अप्रकाशित
(२)	ब्रह्मसमन्वयः	प्रकाशित
(३)	ब्रह्मप्राजापत्यम्	अप्रकाशित
(४)	ब्रह्मोपपत्तिः	अप्रकाशित
(५)	ब्रह्मचतुष्पदी	प्रकाशित

(छ) सायिंसप्रदीपः (महाग्रन्थ) — पाश्चात्यविज्ञान पंचिका (५)

(१)	भौतिकसायिन्सप्रदीपिका, अग्निविद्युत्ईथरविज्ञान	अप्रकाशित
(२)	यौगिकसायिन्सप्रदीपिका, मौलिकपदार्थविद्या फिजिक्स	अप्रकाशित
(३)	शारीरिकसायिन्स (रासायनिक-पदार्थविद्या-कैमिस्ट्री)	अप्रकाशित
(४)	दृग्विज्ञान-प्रदीपिका	अप्रकाशित
(५)	वस्तुसमीक्षा	अप्रकाशित

२. यज्ञविज्ञान—४ महाग्रन्थ—अवान्तर २० ग्रन्थ

(क) निवित् कलापः (महाग्रन्थ)—निवित् पंचिका (५)

(१)	वैश्वरूप-निवित्	अप्रकाशित
(२)	ऋषि-निवित्	अप्रकाशित
(३)	देवता-निवित्	प्रकाशित
(४)	आत्म-निवित्	अप्रकाशित
(५)	यज्ञ-निवित्	अप्रकाशित

(ख) यज्ञमधुसूदनः (महाग्रन्थ) — यज्ञानुबन्धपंचिकादि (८)

(१)	यज्ञविहाराध्याय	अप्रकाशित
(२)	स्मार्त्तकुण्ड समीक्षाध्याय	प्रकाशित
(३)	यज्ञोपकरणाध्याय	प्रकाशित
(४)	मन्त्रप्रचरणाध्याय	अप्रकाशित
(५)	आत्माध्याय	अप्रकाशित
(६)	देवताध्याय	अप्रकाशित
(७)	यज्ञविटपाध्याय	प्रकाशित
(८)	कर्मानुक्रमणिकाध्याय (छन्दोऽभ्यस्ताध्याय)	प्रकाशित

(ग) यज्ञविनय-पद्धतिः (महाग्रन्थ)—उपदेशिकद्वयी (२)

(१)	यज्ञकौमुदी (सोमाध्याय-यजुःसंहिता दशाध्यायी-मधुवृत्तिः)	प्रकाशित
(२)	चयनाध्याय (यजुः संहिता-अष्टाऽध्यायी चयनविद्या)	अप्रकाशित

(घ) प्रयोगपारिजातः (महाग्रन्थ)—प्रकृति पंचिका (५)

(१)	आधान-प्रक्रिया	अप्रकाशित
(२)	प्राक् सौमिक-प्रक्रिया	अप्रकाशित
(३)	एकाह-प्रक्रिया	अप्रकाशित
(४)	अहीन-प्रक्रिया	अप्रकाशित
(५)	सत्त्रप्रक्रिया	अप्रकाशित

सूचना :—यज्ञविज्ञान पद्धति (१) यज्ञसरस्वती और (२) छन्दोभ्यस्ता तथा प्रयोगपारिजात में शुल्वसूत्र आदि ११ ग्रन्थों का उल्लेख सूची-पत्र पृष्ठ ३–४ (अमुद्रित) पर अंकित है।

३. पुराण समीक्षा—३ महाग्रन्थ—अवान्तर १८ ग्रन्थ

(क) विश्वविकासः (महाग्रन्थ)—पूर्वषड्लक्षणी (६)

(१)	मन्वन्तर-निर्णयः (कालविभाग)	प्रकाशित
(२)	विश्वसृष्टि सन्दर्भः (सृष्टिप्रसंग)	अप्रकाशित
(३)	आर्य भुवनकोश (भूगोलविद्या)	अप्रकाशित
(४)	ज्योतिश्चक्रसंस्थानम् (विज्ञान–खगोलविद्या)	अप्रकाशित
(५)	वैज्ञानिकोपाख्यान (विज्ञान)	अप्रकाशित
(६)	वंशमातृका (सूर्यचन्द्रादि राजवंशानुक्रमणिका)	अप्रकाशित

सूचना:—वंशमातृका के अन्तर्गत ९ ग्रन्थों का उल्लेख सूची-पत्र (मुद्रित ग्रन्थसूची) पृष्ठ ४ पर है।

(ख) देवयुगाभासः (महाग्रन्थ)—मध्यषड्लक्षणी (६)

(१)	देवासुरख्याति (देवासुर द्वादश युद्ध प्रसंग)	अप्रकाशित
(२)	यादवख्याति (यदुवंशीय कृष्णशाखा राजचरित)	अप्रकाशित
(३)	राघवख्याति (सूर्यवंशीय महाराजचरित)	अप्रकाशित
(४)	हैहयख्याति (यदुवंशीय हैहयशाखा राजचरित)	अप्रकाशित
(५)	पौरवख्याति (पुरुवंशीय राजचरित)	अप्रकाशित
(६)	अक्रमख्याति (विप्रकीर्ण-राजादि-चरित-सचय)	अप्रकाशित

सूचना :—अत्रिख्याति नामक एक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है।

(ग) प्रसंगचर्चितकम् (महाग्रन्थ)—उत्तरषड्लक्षणी (६)

(१)	कथानकसमुच्चय (ख्यातिका संग्रह)	अप्रकाशित
(२)	दैवतमीमांसा (भावस्फोट)	अप्रकाशित
(३)	वेदपुराणादि-शास्त्रावतारः (शास्त्रनिर्माणेतिहास)	अप्रकाशित
(४)	कल्पशुद्धिप्रसंगः (धर्मपरिष्कार)	अप्रकाशित
(५)	परीक्षाप्रसंगः (शिल्पकला-प्रचार)	अप्रकाशित
(६)	पुराणपरिशिष्ट (संकीर्ण नामाविषयाख्यानम्)	अप्रकाशित

सूचना :—अमुद्रित ग्रन्थसूची पृष्ठ ५ में ९ ग्रन्थों का उल्लेख है—(१) कथानक समुच्चय, (२) दैवत-मीमांसा, (३) वेदपुराणादिशास्त्रावतार, (४) पुराण निर्माणाधिकरणम्, (५) वेदशाखोत्पत्तिक्रमः, (६) संक्षिप्त पुराणावतरण, (७) प्रकारान्तरेण पुराणावतरण, (८) पुराणपरिशिष्ट और (९) पुराणसार।

४. **वेदांगसमीक्षा—४ महाग्रन्थ—अवान्तर ३० ग्रन्थ**

(क) **वाक् पदिका** (महाग्रन्थ)—वर्णाक्षरपदवाक्यभाषानिरुक्ति पंचिका (५)

(१)	वर्णसमीक्षा (पथ्या स्वस्ति)	प्रकाशित
(२)	छन्दः समीक्षा	अप्रकाशित
(३)	वैदिक कोश	प्रकाशित
(४)	वैदिकशब्दतालिका	अप्रकाशित
(५)	व्याकरणविनोद	अप्रकाशित

(ख) **ज्योतिश्चक्रधर** (महाग्रन्थ)—ताराग्रहगोलहोरागोचरनिरुक्ति पंचिका (५)

(१)	ताराविज्ञान	अप्रकाशित
(२)	गोलविज्ञान	अप्रकाशित
(३)	होराविज्ञान	अप्रकाशित
(४)	कादम्बिनी-सौदामिनीव्याख्यासहितृ (वृष्टिविद्या)	प्रकाशित
(५)	लक्षणविज्ञान	अप्रकाशित

(ग) **आत्मसंस्कारकल्पः** (महाग्रन्थ)—स्मार्त्तसामयाचारिकधर्मप्रयोगनिरुक्ति दशिका (१०)

(१)	शुद्धिविज्ञान पंचिका (आसोच पंचिका)	प्रकाशित
(२)	धर्मविज्ञान पंचिका	अप्रकाशित
(३)	व्रतपंचिका	अप्रकाशित
(४)	व्यवहार व्यवस्थापिका	अप्रकाशित
(५)	श्राद्ध परिष्कारः	अप्रकाशित

सूचना :—इस आत्मसंस्कारकल्प के उपर्युक्त प्रथम चार ग्रन्थों में पांच-पांच अवान्तर ग्रन्थ हैं और संख्या पांच श्राद्ध परिष्कार के तीन अवान्तर ग्रन्थ। इस प्रकार इस महाग्रन्थ के २३ अवान्तर ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है पर नाम निर्देश नहीं।

(घ) **परिशिष्टानुग्रहः** (महाग्रन्थ)—विप्रकीर्णविषयसंग्रह दशिका (१०)

(१)	शास्त्र परिचय (कौषीतकोपनिषद् व ऐतरेयोपनिषद्)	प्रकाशित
(२)	वेदार्थभ्रमनिवारण	प्रकाशित
(३)	वेदधर्मव्याख्यान पंचिका	प्रकाशित
(४)	प्रत्यन्तप्रस्थानमीमांसा (समुद्र यात्रा निर्णय)	प्रकाशित
(५)	गोत्रप्रवर-पताका	अप्रकाशित
(६)	जातिपंचिका	अप्रकाशित
(७)	सम्प्रदायपंचिका	अप्रकाशित
(८)	इन्द्रध्वजोत्थापन पद्धति	अप्रकाशित
(९)	धर्मतत्वसमीक्षा (धर्मसम्बन्धी व्याख्या) इत्यादि	अप्रकाशित

आगम महाखण्ड

इस महाखण्ड में ६ महाग्रंथ हैं जिनमें १२० अवान्तर ग्रंथ हैं। इन १२० ग्रंथों की विस्तृत सूची उपलब्ध नहीं है। केवल ६ महाग्रंथों का ही नामोल्लेखन प्राप्त होता है। इनका विवरण इस प्रकार है :—

१. सिद्धान्तागमरहस्यम्	(महाग्रन्थ)	चतुर्दशधाविभक्त	(१४)
२. संहितागमरहस्यम्	(महाग्रन्थ)	अष्टादशधाविभक्त	(१८)
३. डामरागमरहस्यम्	(महाग्रन्थ)	अष्टविभागोपेत	(८)
४. यामलागमरहस्यम्	(महाग्रन्थ)	दशविभागोपेत	(१०)
५. कल्पागमरहस्यम्	(महाग्रन्थ)	षड्विधम्	(६)
६. तन्त्रागमरहस्यम्	(महाग्रन्थ)	चतुःषष्टिविधम्	(६४)
			(१२०)

इस प्रकार आपके कुल २५४ ग्रन्थों का उल्लेख वेदांक (संस्कृत रत्नाकर विशेषांक) संवत् १९९३ में प्रकाशित तथा 'श्री मधुसूदन वैदिक विज्ञान प्रकाशक कार्यालय' के सूचीपत्रानुसार किया गया है।

इनके अतिरिक्त आपके अनेक महत्वपूर्ण लेख पदनिरुत्तम् तथा शब्दविकृतिहेतवः शीर्षकों से संस्कृत रत्नाकर के प्राचीनतम अंकों (१९०४ ई०) में प्रकाशित हुए हैं। आप बहुर्चचित प्रतिभा के धनी होने के साथ ही इस युग के अद्वितीय विद्वान् थे। आपके अप्रकाशित ग्रन्थों का प्रकाशन अत्यावश्यक है, जिनकी समीक्षा कर आपके विज्ञान को सही रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

---

९५. श्री मनोहर शुक्ल

श्री शुक्ल का जन्म जयपुर नगर में ही कार्तिक कृष्णा ९ संवत् १९६१ तदनुसार १ नवम्बर, १९०३ को हुआ था। आपके पिता श्री गौरीलालजी शुक्ल राज्य सम्मानित कवीश्वर थे। भारद्वाज गोत्रीय कान्यकुब्ज द्विज श्री शुक्ल के पूर्वज भी जयपुर नगर में राज सम्मानित रहे हैं। महाराजाधिराज सवाई प्रतापसिंह के समय श्री भोलानाथ शुक्ल नामक विद्वान् ने सर्वप्रथम राज्याश्रय प्राप्त किया था, जो संस्कृत के साथ ही अन्यान्य १६ भाषाओं के ज्ञाता बताये जाते हैं। इनकी रचनायें—कर्णकुतूहलम् (नाटक) तथा श्रीकृष्णलीलामृतम् राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर से प्रकाशित हो चुकी है। इसी प्रकार महाकवि चैनराम भी इन्हीं के वंश में हुए हैं, जिनका नाम हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में विख्यात है। इनके पूर्वज सनातन धर्म के अन्तर्गत स्मार्त परम्परा के अनुयायी रहते आये हैं। आप भी उस परम्परा का निर्वाह करते रहे हैं।

आपका अध्ययन महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर में ही हुआ। आपने बनारस से प्रथम परीक्षा, व्याकरण से मध्यमा तथा व्याकरण से उपाध्याय व शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की। हिन्दी की योग्यता के लिए आपने एडवांस हिन्दी (इलाहाबाद) तथा साहित्य सम्मेलन, प्रयोग से साहित्यरत्न परीक्षायें भी उत्तीर्ण की। जयपुर के सम्मान्य राजगुरु तथा महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर के व्याकरण प्राध्यापक पं० चन्द्रदत्त ओझा व श्री चन्द्रशेखर शास्त्री प्रश्नवर आपके गुरु थे। आपके उल्लेखनीय शिष्यों में श्री चन्द्रनारायण शर्मा, श्री नवलकिशोर शर्मा काङ्कर, श्री रामप्रपन्न शर्मा, पं० गिरिराज शास्त्री, श्री गोपीनाथ भट्ट, श्री माधवलाल वैद्य, श्री सुरेन्द्रनाथ गर्ग आदि है। आपने महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर के स्कूल विभाग मे अध्ययन कार्य भी किया है। इसके अतिरिक्त आपने

जयपुर के कतिपय विद्यालयों को अपनी सेवायें अर्पित की हैं। आपका विषय संस्कृत तथा हिन्दी रहा है। आप संस्कृत भाषा का अध्यापन इतने सरल तरीके से करते हैं कि प्रत्येक छात्र को सरलता से समझ में आ जाता है।

आपने अपने पूर्वजों की कृतियों का सम्पादन तथा सुरक्षा की है। आपके द्वारा लिखित सामग्री अभी अप्रकाशित है। आप जयपुर के उल्लेखनीय विद्वान् रहे हैं। सेवानिवृत होकर आप भगवती सरस्वती की साधना में लीन रहे। अब आप दिवंगत हैं।

---

९६. श्री के० माधवकृष्ण शर्मा

राजस्थान प्रान्त के प्रथम संस्कृत शिक्षा निदेशक श्री शर्मा सन् १९५२ से सन् १९५५ तक तीन वर्ष महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर के स्थानापन्न प्राचार्य रह चुके हैं। आपका जन्म कान्हगढ़ केरल राज्य के एक ब्राह्मण परिवार में २९ मार्च, १९१२ को हुआ था। आपने राजाज् कालेज आफ संस्कृत एण्ड तामिल स्टडीज तिरुवाडी में अध्ययन किया और सन् १९३३ में व्याकरण शिरोमणि तथा इन्डो-यूरोपियन तुलनात्मक भाषाशास्त्र की परीक्षायें उत्तीर्ण कीं। मद्रास विश्वविद्यालय से आप ओरियन्टल कान्फ्रेंस पुरस्कार से पुरस्कृत भी हुए। इसके पश्चात् आपने मद्रास विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर विभाग में रिसर्च स्कालर के रूप में कार्य किया। आपके निदेशक थे श्रीयुत् सी० कुन्हनराजा। आपने उनके दो प्रसिद्ध सम्पादन कार्यों में भी सहयोग दिया। आपने पाणिनीय व्याकरण पर शोध किया, जो अभी अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन के तत्वावधान में प्रकाशित हुआ है। यह अंग्रेजी भाषा में है। अतः संस्कृत विद्वानों के लिये अनुपयोगी है। १९४० में आपने मद्रास विश्वविद्यालय से मास्टर आफ ओरियन्टल लर्निग (एम० ओ० एल०) की उपाधि प्राप्त की। तदनन्तर थियोसोफिकल सोसायटी द्वारा संचालित अडयार पुस्तकालय में ५ वर्ष तक वैदिक पाण्डुलिपियों का डिस्क्रिप्टिव केटलाग बनाया। इसी प्रकार आपने अनूप संस्कृत पुस्तकालय बीकानेर में रह कर वहां के ग्रन्थों का सूची-पत्र तैयार किया। इस पुस्तकालय में अनेक दुर्लभ एवं प्राचीनतम पाण्डुलिपियों का संग्रह है। आपने इन ग्रन्थों का अध्ययन कर अनेक लेख प्रकाशित किये हैं, जो हिन्दी, अंग्रेजी एवं संस्कृत भाषा में हैं। आपके अधिकांश लेख अंग्रेजी भाषा में हैं, जो दक्षिण भारतीय पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। आपके अनेक लेख एक दूसरे लेखों का अनुवाद है। आपका राजस्थान (बीकानेर) में प्रवेश १ नवम्बर, १९४२ में हुआ था।

कालान्तर में आप संस्कृत विभाग के निरीक्षक बनाये गये और क्रमशः उपनिदेशक और निदेशक के पदों पर पदोन्नत किये गये। यद्यपि आपका सेवा विश्राम काल सन् १९६७ में प्राप्त हो गया था, परन्तु विशेष परिस्थितियों में सरकार ने आपको दो वर्ष कार्य करने का अवसर प्रदान किया है। आपने श्री पी० एन० पट्टाभिराम शास्त्री के कलकत्ता गमन पर २५ फरवरी, १९५२ से २५ फरवरी, १९५५ तक तीन वर्ष अपने निरीक्षक पद के साथ ही संस्कृत कालेज का प्राचार्यत्व भी किया। उक्त तीन वर्ष का समय संस्कृत कालेज के इतिहास में विशेष उल्लेखनीय नहीं है, क्योंकि आप अपना अधिकांश समय पाठशालाओं के निरीक्षण कार्य में किया करते थे। आप ज्योतिष के भी विद्वान् माने जाते हैं तथा अब दिवंगत हैं।

---

६७. श्री माधवप्रसाद शास्त्री

स्वर्गीय श्री शास्त्रीजी का जन्म जयपुर के एक ब्राह्मण गौड़ परिवार में २५ जनवरी, १८८४ को हुआ था। (६७–अ) आपके पिता पं० श्री भूरामलजी सामान्य श्रेणि के व्यक्ति थे तथा ज्योतिष तथा कर्मकाण्ड के विद्वान् थे। कनिष्ठ भ्राता पं० श्री लादूरामजी प्रसिद्ध संगीताचार्य थे, जो सहोदर भ्राता न होते हुए भी भ्रातृवत् सम्मान करते थे। आपकी शिक्षा-दीक्षा संस्कृत कालेज, जयपुर में ही सम्पन्न हुई थी। आपने नियमित छात्र के रूप में साहित्य विषय से संवत् १९५९ में प्रथम श्रेणि से शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की थी। (६७–आ) आप श्री मदनलाल प्रश्नवर, श्री दुर्गादत्त ज्योतिषी, श्री गिरिजाप्रसाद द्विवेदी प्रभृति विद्वानों के सहाध्यायी थे। प्रसिद्ध साहित्यशास्त्री पं० कृष्ण शास्त्री तथा पं० श्री गोपीनाथ शास्त्री दाधीच आपके गुरु थे।

आपने संस्कृत रत्नाकर के प्रकाशन पर म० म० श्री चतुर्वेदीजी को पर्याप्त सहयोग प्रदान किया था। आपके लेख भी प्रकाशित हुए है। आपका एक महत्त्वपूर्ण लेख 'साहित्य-विषयः' शीर्षक से रत्नाकर के प्राचीनतम अनेक अंकों में प्रकाशित हुआ है। आपकी रचना का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

"ज्ञानादित्रिपथस्थधार्मिकलुरस्रोतस्विनी संगतः
सौवीराश्रपिलूर्यसंततिवचोवीचीभिरान्दोलितः।
श्रीमत्कृष्णकृपाकटाक्षकलितः पीयूषपूरोल्लसत्
सत्साहित्यसरस्वतीविलसितो रत्नाकरो मोदताम् ॥"

(संस्कृत रत्नाकर द्वि० ज्येष्ठ शुक्ला १५ शाके १८२६ आकर १ रत्न ३)

आपने २ जनवरी, १९२५ से संस्कृत कालेज, जयपुर में साहित्य के असिस्टेन्ट प्रोफेसर के रूप में अध्यापन किया है। आपने समाज सेवा भी की है। आपने अपने घर पर अनेक छात्र-छात्राओं को निःशुल्क अध्यापन भी किया था। छात्राओं व महिलाओं के शिक्षा की दृष्टि से बहुत ही श्लाघनीय कार्य किया था। महिलाओं के लिये 'महिला संस्कृत पाठशाला' तथा पुरुषो के लिये 'साहित्य सेवक विद्यालय' की स्थापना भी की थी। इसके अतिरिक्त आपने 'भारती सर्वस्व' नामक हिन्दी मासिक पत्र का प्रारम्भ भी किया था। यह संकेत पं० मथुरानाथ शास्त्री ने किया है :—

"पूर्वं भारतीसर्वस्वमंगीकृत्य, रत्नाकरे जयपुरवस्तुसंगी कुम्भजमुनीयते
शब्दोच्चारणेषु बहिरंगीकृतरेफगणो भंगश्लेषभंगीदत्तचित्तोऽसौ समीयते।
पिंगलादधिकमेव डिंगलानुरागी, सभामंगलाय पाण्डवीयस्यनन्दन उदीर्यते
कार्यसाधनाऽभिधमबाधवनमालोडयन्माधवमहोदयोऽयमारात्परिचीयते ॥"

(जयपुरवैभवम्–पद्य ६६–पृ० २७३–७४)

आपका देहान्त १६ सितम्बर, १९४५ को हुआ था। आप उल्लेखनीय विद्वान् थे।

———

(६७–अ)—लिस्ट आफ एजू० आफिसर्स—संस्कृत कालेज, जयपुर—क्रमांक १३–७ असि० प्रोफेसर्स।
(६७–आ)—शास्त्रीपरीक्षोत्तीर्णच्छात्राणां नामादीनि-क्रमांक-३६ संवत् १९५९।

९८. श्री माधवराम पर्वणीकर

जयपुर के राजगुरु एवं दीक्षागुरु प्रसिद्ध विद्वत्परिवार में लब्धजन्मा श्री माधवराम भट्ट पर्वणीकर स्वर्गीय पण्डित नारायण भट्ट पर्वणीकर के, जो अन्धे गुरुजी के नाम से विख्यात थे तथा अपने समय के प्रख्यात विद्वान् थे, पौत्र हैं तथा उनके दत्तक पुत्र श्री मुकुन्द शास्त्री पर्वणीकर के पुत्र हैं। आपका जन्म २८ जनवरी, १९३० को भट्टों का रास्ता, विधान सभा भवन के सामने (पर्वणीकरजी की हवेली में) जयपुर में ही हुआ था। आपकी शिक्षा-दीक्षा घर पर ही हुई। सर्वप्रथम आपने पं० श्री गुलाबचन्द्रजी चतुर्वेदी से अध्ययन प्रारम्भ किया था तथा बाद में राजगुरु स्वर्गीय पण्डित भवदत्तजी ओझा आपके गुरु रहे। ओझाजी श्री मुकुन्द शास्त्रीजी द्वारा संचालित माधव विद्यालय के प्रधानाचार्य भी थे। इस संस्था का परिचय, परिचय खण्ड में पृष्ठ ६२ पर प्रस्तुत किया जा चुका है। आपने साहित्य विषय से शास्त्री परीक्षा का प्रथम खण्ड सन् १९४८ ई० में उत्तीर्ण किया था। किन्हीं अपरिहार्य-परिस्थितियों के कारण आपका अध्ययन क्रम रुक गया और फिर आगे न चल सका।

आपने अपने घर पर ही चलने वाली "माधव संस्कृत विद्यालय" नामक संस्था का संचालन सन् १९४९ से सन् १९५२ तक किया था। बाद में इस संस्था को किन्हीं परिस्थितियों वश बन्द करना पड़ा था। आपको 'साहित्यालंकार' की मानद पदवी से भी सम्मानित किया गया है।

आपका जयपुर की संस्कृत-साहित्य को देन के अन्तर्गत सबसे बड़ा योगदान है—अपने पूर्वजों की रचनाओं एवं अन्य ग्रन्थों की पाण्डुलिपियों तथा प्रकाशित रचनाओं का सुव्यवस्थितिकरण तथा शोध छात्रों को सुविधापूर्वक सहयोग करना। श्री सीताराम भट्ट पर्वणीकर, श्री नारायण भट्ट पर्वणीकर, श्री सखाराम भट्ट पर्वणीकर, श्री गंगाराम भट्ट प्रभृति विद्वानों की अमूल्य रचनायें अन्यत्र उपलब्ध नहीं हो सकती, यदि आप उन्हें सुव्यवस्थित न करते। इस दृष्टि से आपका योगदान स्तुत्य है। उक्त पर्वणीकर संग्रहालय का परिचय भी परिचय खण्ड के तृतीय अध्याय (च) अनुभाग में देखियेगा।

आप संगीत व पक्षीपालन के बहुत शौकीन रहे हैं। आपने अनेक विदेशी पक्षियों को अपने यहां पालकर अपने यहां अच्छा खासा 'पक्षीकक्ष' स्थापित किया था। पत्नी के अल्पावस्था में देहावसान हो जाने से उत्पन्न विषम परिस्थितियों के कारण आपके सारे शौक समाप्त हो गए। आप क्रिकेट के भी अच्छे खिलाड़ी रहे हैं।

आप अध्ययनशील तथा राजगुरु पदभाक् विद्वान् व्यक्ति हैं।

---

९९. श्री मांगीलाल वैदिक

श्री वैदिकजी का जन्म जयपुर में ही एक मध्यम श्रेणि के ब्राह्मण परिवार में हुआ था। आप जाति से दाधिमथ (दाहिमा) ब्राह्मण थे। आपकी शिक्षा-दीक्षा महाराज संस्कृत कालेज में ही हुई थी। आपने कोई परीक्षा उत्तीर्ण नहीं की थी। आप वेद विभाग के प्रधान वैदिक श्री हरिलालजी औदीच्य के शिष्य थे। उस समय केवल यजुर्वेद का ही अध्यापन होता था।

आपके पिता का नाम श्री रामचन्द्रजी था। ये भी महाराज संस्कृत कालेज के स्कूल विभाग में अध्यापक थे तथा 'वैदिक' कहलाते थे। प्राचीन परम्परा थी कि पिता के सेवा निवृत्त या दिवंगत होने पर उसका पुत्र उसके

उत्तराधिकारवत् उस स्थान पर नियुक्त किया जाता था। संस्कृत कालेज, जयपुर में प्राप्त प्राचीन उपस्थिति पत्रकों से यह ज्ञात होता है कि श्री रामचन्द्रजी ने नवम्बर १८८९ तक कार्य किया और तदनन्तर २ मास के लिये श्री गोकुल चन्द्रजी की नियुक्ति हुई। तत्पश्चात् यह पद इनके पुत्र श्री मांगीलालजी को प्राप्त हो गया। आप पहले प्रवेशिका विभाग में थे तथा १९११ ई० में श्री हरिलालजी के अवकाश ग्रहण करने पर कालेज में वेद अध्यापक बनाये गये। आपने पौष शुक्ला पंचमी संवत् १९७१ ई० अर्थात् १ जनवरी, १९१४ तक कार्य किया था। आपके स्थान पर पं० जानकीलालजी तथा रामकिशोरजी गौड़ वैदिक ने कार्य किया था। इससे पूर्व श्री मगनीरामजी श्रीमाली के भी कार्य करने का उल्लेख मिलता है।

राजवैद्य श्री कृष्णराम भट्ट ने अपने समकालीन होने से आपका स्मरण इस प्रकार किया है :— (९९–अ)

श्रीवागीशसमश्रुतो मखलसच्छागीसुतालम्भन–
क्रीडागीतसुधांशुसुन्दरयशा भागीरथीभाक्शुकः।
नागीनन्दितयौवनोन्नतिरलं रागी कवीनां कृतौ
मांगीलालबुधो विराजतु सदा भागीरमारङ्गभूः ॥"

आप उस समय तक वर्तमान थे। श्री शिवप्रताप शर्मा जो कालान्तर में वेद के प्राध्यापक थे, आपके ही प्रधान शिष्य थे। आपके उल्लेखनीय अन्य शिष्यों में श्री हरि शास्त्री दाधीच तथा श्री विजयचन्द्र चतुर्वेदी का नाम भी उल्लेखनीय है। आप उल्लेखनीय विद्वान् रहे हैं।

———

१००. श्री मुकुन्दराम भट्ट पर्वणीकर

श्री पर्वणीकरजी का जन्म लश्कर में हुआ था। आप जयपुर नगर में विख्यात राजगुरु पर्वणीकर श्री सखाराम भट्ट के प्रपौत्र, राजगुरु श्री गंगाराम भट्ट के पौत्र तथा राजगुरु पं० श्री नारायण भट्ट के दत्तक पुत्र थे। आपके जनक (जन्मदाता) का नाम पं० सदाशिव था। सम्बन्ध की दृष्टि से आप श्री नारायण भट्ट के भ्रातृज थे, चूंकि श्री गंगारामजी भट्ट भी निःसन्तान ही दिवंगत हुए और उनने अपने पुत्र के रूप में श्री नारायण भट्ट को निर्वाचित किया था, आपका वंश परिवर्तन हो गया था। इसका उल्लेख श्री नारायण भट्ट पर्वणीकर (परिचय क्रमांक ७४) के परिचय के साथ प्रस्तुत किया जा चुका है।

श्री बी० एल० वाजपेयी भीमपुरे ने राजगुरु नारायण भट्ट की जीवनी लिखी थी (अंग्रेजी में), जिसे श्री मुकुन्दरामजी ने ही सन् १९१६ में प्रकाशित करवाया। (१००–अ) उससे सिद्ध होता है कि आप श्री सदाशिव के कनिष्ठ पुत्र थे तथा श्री नारायण भट्टजी द्वारा दत्तक रूप में गृहीत थे। आपके पुत्र श्री माधवराम भट्ट हैं, जो इस समय वर्तमान हैं। आपने अपने पूर्वजों के साहित्य को सुरक्षित करने के लिये जो भी प्रयास किया है, वास्तव में बहुत स्तुत्य है। श्री सीताराम भट्ट तथा श्री नारायण भट्ट की रचनाओं की 'प्रेस कापी' बनवाने का आपका कार्य

(९९–अ) —जयपुरविलास–पंचम उल्लास–पद्य सं० ५८–पृष्ठ ५४—टिप्पणी भी दर्शनीय है।

(१००–अ) –ए बायोग्राफी आफ् जयपुर राजगुरु पं० नारायण शास्त्री भट्टजी पर्वणीकर रिटन इन इंगलिश बाइ हिज सन इन ला–बी० एल० वाजपेयी भीमपुरे–इलाहाबाद।

प्रशंसा योग्य है। आपने संस्कृत भाषा के प्रचारार्थ अपने ही निवास स्थान पर 'माधव संस्कृत विद्यालय' की स्थापना भी की थी, जिसके द्वारा अनेकानेक छात्रों ने योग्यता प्राप्त की। आपका देहान्त २२ अगस्त, १९४९ को हुआ था। उसके पश्चात् यह विद्यालय २–३ वर्ष तक कार्य करने के पश्चात् चिर निद्रा में सो गया। इसका उल्लेख परिचय खण्ड के तृतीय अध्याय (ख) अनुभाग में पृष्ठ ६२ पर किया गया है।

आप संस्कृत कालेज के स्नातक रहे हैं तथा आपने साहित्य शास्त्री परीक्षा सम्वत् १९६१ (१९०४ ई०) में द्वितीय श्रेणि से उत्तीर्ण की थी। (१००–आ) आपके गुरु पं० श्रीकृष्ण शास्त्री द्राविड़, श्री काशीनाथ शास्त्री द्राविड़ तथा श्री लक्ष्मीनाथ दाधीच रहे हैं। आपके अनेक छात्र शिष्य रहे हैं। श्रीमाधवराम भट्ट ने भी आप से ही अध्ययन किया था। आपके उल्लेखनीय शिष्यों में श्री चन्द्रिकाप्रसाद चतुर्वेदी का नाम भी स्मरणीय है।

आप शान्त तथा गम्भीर प्रकृति के उल्लेखनीय विद्वान् थे।

---

१०१. श्री मुरारि

जयपुर नगर के पुरातन अर्थात् महाराज रामसिंह द्वितीय कालीन विद्वानों में श्री मुरारि का नाम विख्यात रहा है। इसीलिये राजवैद्य पं० श्री कृष्णराम भट्ट ने आपका वर्णन प्रस्तुत करते हुए लिखा है—(१०१–अ)

"प्रोत्सारी विपदां प्रशस्तकविताधारी प्रहारी द्विषत्
संहारी कमनीययौवनलसन्नारीविहारी सदा।
संभारी गुणसम्पदां खलतिरस्कारी स्मरारिस्मृतिः
सत्कारी विदुषां मनोभवमनोहारी मुरारिः सखा॥"

इस पद्य के विवेचन से ज्ञात होता है कि आप कविता निर्माण करने में विख्यात थे। आप अत्यन्त सुन्दर थे और आपको देखकर कामदेव की कमनीयता का स्मरण किया जा सकता था। आप विद्वानों का सत्कार किया करते थे और दुर्जनों का तिरस्कार। गुणसम्पदा से युक्त आप राजवैद्य श्री कृष्णराम भट्ट के परम मित्रों में से रहे हैं।

आपका रचनात्मक कार्य उपलब्ध नहीं है। 'प्रशस्तकविताधारी' विशेषण से यह ज्ञात होता है कि आप सुन्दर कविता निर्माण किया करते थे, परन्तु आपका संग्रह अप्रकाशित होने से उपलब्ध न हो सका है। अतः विवेचनीय नहीं हो सका।

(१००–आ)-शास्त्रिपरीक्षोत्तीर्णच्छात्राणां नामादीनि–क्रमांक ४७।
(१०१–अ)-जयपुरविलास—पंचम उल्लास—पद्य संख्या ६६–पृष्ठ संख्या ५५।

१०२. श्री मोतीलाल शास्त्री (वेदवीथीपथिक)

समाज सुधारक, संस्कृत-संस्कृति के अनन्य उपासक पं० श्री बालचन्द्र शास्त्री (परिचय क्रमांक ८३) के कनिष्ठ पुत्र के रूप में आपका जन्म हुआ था। आपका जन्म श्रावण शुक्ला तृतीया, सम्वत् १९६५ को हुआ था। जयपुर संस्कृत कालेज के स्नातक रह कर आपने शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की। (१०२-अ) आप व्याकरण के विद्यार्थी थे तथा प्रसिद्ध राजगुरु पं० श्री चन्द्रदत्तजी ओझा के प्रमुख शिष्यों में रहे हैं। यों आप महामहोपाध्याय पं० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी तथा पं० श्री चन्द्रशेखर शास्त्री प्रश्नवर के भी शिष्य थे। आपने विद्यावाचस्पति श्री मधुसूदनजी ओझा से वैदिक विज्ञान का अध्ययन किया था और अपना सम्पूर्ण जीवन इसी विज्ञान के प्रकाशनार्थ लगा दिया था।

सहस्रों वर्षों से अविद्या-आसक्ति एवं अस्मितादि बुद्धिमालिन्यों से आवृत्त भारतीय मानव के वैदिक ज्ञान-विज्ञान को आलोकित एवं उद्भासित करने का जो ज्ञान-बीज प्रातःस्मरणीय विद्यावाचस्पति श्री मधुसूदनजी ओझा ने डाला था, उसे अपने कठोर परिश्रम, दैवी प्रतिभा एवं सत्यनिष्ठा से राष्ट्र के जीवन में प्रसरित, पल्लवित एवं प्रोद्भासित करने वाले, भारत की मूल संस्कृति को अश्रद्धा एवं अज्ञान के द्विमुखी गम्भीर गर्तों से सुरक्षित रख कर, प्रखर प्रोज्ज्वल ज्ञान के भण्डार को वृद्धि प्रदान करने वाले, वेदवीथी-पथिक ऋषि पं० श्री मोतीलालजी शास्त्री का नाम जयपुर के संस्कृत साहित्येतिहास में स्वर्णाक्षरों में उट्टंकित है।
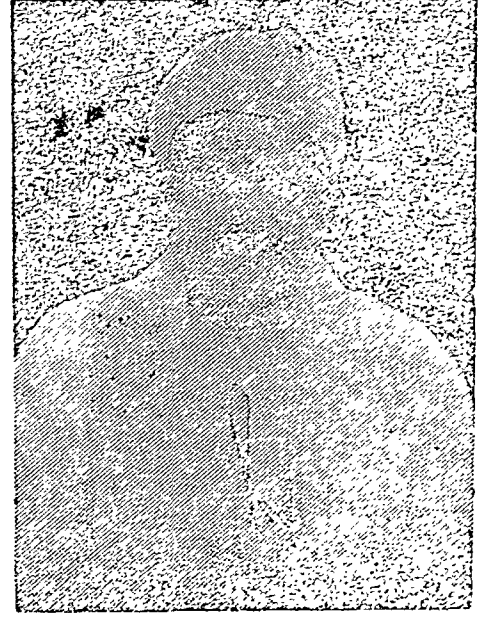
आपके पितृचरण आपकी प्रतिभा से परिचित थे तथा सुखदकल्पना में लीन थे कि एकाएक आपका सान्निध्य समीक्षा-चक्रवर्ती श्री ओझाजी से हुआ। वास्तव में यह सान्निध्य अथवा सम्मेलन भारतीय सांस्कृतिक पुनर्जागरण की एक ऐतिहासिक घटना बन गया। लगभग २० वर्ष तक आपने श्री ओझाजी की सेवा में रह कर भारतीय वैदिक साहित्य के विविध अंगों का पर्याप्त स्वाध्याय किया। इनमें भी शतपथ ब्राह्मण का ज्ञानविज्ञानात्मक अध्ययन प्रमुख था अथवा यों कहिए मूलाधार था। आपने यात्रायें करना प्रारम्भ किया और साथ ही भाषणों के भी कार्यक्रम आदि में विद्वत् समाज व श्रेष्ठिसमाज को अपने प्रभावशाली भाषणों से चमत्कृत कर दिया। धर्मनिष्ठ भारतीय जनता सयुक्तिक व चमत्कृति उत्पन्न करने वाले आपके व्याख्यानों से आन्दोलित हो उठी। भारतीय ज्ञान-विज्ञानात्मक आर्ष साहित्य के अनेकानेक रहस्य आपकी अपनी सहज सुबोधता के साथ जब श्रोताओं के समक्ष स्पष्ट होने लगे तो अविद्याजनित आशंकायें तथा अज्ञानजनित अश्रद्धा स्वतः ही विगलित होने लगी। (१०२-आ)

कहा जाता है कि आपने अपने जीवन के तीस वर्षों में प्रतिदिन १८-२० घण्टे कठोर परिश्रम कर गीता, उपनिषद् एवं शतपथब्राह्मण की विज्ञानात्मक परिभाषाओं से परिपूर्ण आर्ष साहित्य तथा भारतीय हिन्दू मानव

(१०२-अ)-शास्त्रिपरीक्षोत्तीर्णच्छात्राणां नामादीनि—क्रमांक २४५ सम्वत् १९८५।

(१०२-आ)-आपका यह परिचय "राजस्थान संस्कृत परिचय ग्रन्थ" राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन के रतनगढ़ अधिवेशन पर सन् १९६२ में प्रकाशित परिचय ग्रन्थ पर आधारित है; पृ० ८०-८१।

के सांस्कृतिक उद्बोधन से प्रेरित कुल लगभग साठ हजार पृष्ठों का साहित्य उपनिपद् किया है। इनके अवलोकन के पश्चात् भारत के राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद ने कहा था—"ये ग्रन्थ भारतीय संस्कृति की कुंजी हैं और भारतीय विद्वानों को देखना चाहिए कि इनमें कितना सार है।" आपके लिखित साहित्य का १।६ भाग प्रकाशित भी हो चुका है।

आपने स्वर्गीय गुरुवर्य श्री झा महोदय की वैदिक विज्ञान पद्धति को पठन-पाठन द्वारा प्रचारित करने की दृष्टि से तथा अपने ग्रन्थों के प्रकाशन के विचार से 'मानवाश्रम' नाम रख कर एक संस्थान का उद्घाटन किया। इस संस्थान का शुभारम्भ १२ जून, १६४३ ई० को हुआ। अनेक विद्वानों ने इस कार्य का अनुमोदन किया। श्री शास्त्री ने अपने पितृचरण द्वारा संस्थापित श्री बालचन्द्र यन्त्रालय की सेवाओं का पर्याप्त लाभ प्राप्त किया तथा जयपुर नगर से ४ मील दक्षिण में विद्यमान इस मानवाश्रम (दुर्गापुरा) संस्थान में ही स्थायी निवास बनाकर स्वयं को उद्देश्य पूर्ति में संलग्न कर लिया। (१०२–इ)

हिन्दू विश्वविद्यालय के भूतपूर्व प्राध्यापक, 'भारती भवन' के अध्यक्ष वयोवृद्ध विद्वान् स्वर्गीय डा० श्री वासुदेवशरण अग्रवाल ने आपकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर प्रसंगानुसार आपका उल्लेख महामहिम राष्ट्रपति डा० श्री राजेन्द्रप्रसादजी से कर दिया था, तो उनकी भी इच्छा हुई कि श्री शास्त्री के व्याख्यान सुने जाँय। उनकी इच्छानुसार श्री शास्त्री को सम्मानपूर्वक दिल्ली बुलाया गया तथा डा० श्री अग्रवाल के साथ ही आप १४ दिसम्बर, १६५६ को राष्ट्रपति भवन पहुंचे। स्थानीय विद्वानों के समक्ष राष्ट्रपति भवन में १४ दिसम्बर, १६५६ से १८ दिसम्बर, १६५६ तक (पांच दिन) आपके धारावाहिक भाषण आयोजित किये गए। आपने प्रथम भाषण 'सवत्सरमूला अग्निषोमविद्या', द्वितीय 'पंचपर्वा विश्वविद्या', तृतीय 'मानवस्वरूपस्य परिचयः', चतुर्थ 'अश्वविद्या का स्वरूपपरिचय', पंचम 'वेदशास्त्रेण सह पुराणशास्त्रस्य समन्वयः' विषयों पर प्रस्तुत किये। ये पांचों भाषण राष्ट्रपति महोदय की इच्छा से 'सांस्कृतिक-व्याख्यान-पंचकम्' नाम से प्रकाशित हो चुके हैं। इसकी भूमिका में राष्ट्रपति जी ने अपनी सम्मति व शुभाशंसा इस प्रकार प्रकट की है—"मैंने पं० मोतीलाल शास्त्री के ५ व्याख्यान अपने ही निवास स्थान पर करवाये थे। इनके लिये मैंने अन्य विद्वानों को भी बुलाया था। शास्त्रीजी के विषय में मैंने सोचा था कि कोई नई बात सुनूंगा, जो मेरे मन को लाभप्रद होगी। परन्तु जब मैंने भाषण सुने तो मैंने अनुभव किया कि जितना अनुमान किया गया था, उससे भी अधिक व्याख्यायें प्रस्तुत की गई थीं।...... श्री वासुदेवशरण अग्रलाल ने मुझे बताया कि देश-विदेश में कहीं भी वैदिक साहित्य के सम्बन्ध में ऐसा अनुसंधान कार्य नहीं हो रहा है, ऐसा भी सुना कि श्री शास्त्रीजी ने इस साहित्य पर ८० हजार पृष्ठ लिख डाले हैं। यह निधि अवश्य ही संरक्षणीय है। आशा है शासन (सरकार) इस सम्बन्ध में अपना कर्त्तव्य निर्वाह करेगा।" (१०२–ई)

श्री शास्त्रीजी ने वैदिकसृष्टिविद्या विषय पर अनेक बातें प्रस्तुत कीं। आप एक प्रभावशाली वक्ता थे तथा साथ ही लेखन कला में भी पण्डित। आपके द्वारा शतपथब्राह्मण की प्रभावशाली व्याख्या १८००० पृष्ठों में की गई हैं, जिनमें से १५००० पृष्ठ ही प्रकाशित हो सके हैं। शतपथब्राह्मण की भूमिका में राजस्थान के राज्यपाल डा० सम्पूर्णानन्द ने लिखा है—"शास्त्रीजी द्वारा विरचित यह व्याख्या अत्यन्त सरल एवं अद्वितीय है।" आपने गीताभाष्य भी आठ खण्डों में प्रकाशित किया तथा उपनिषदों का भाष्य भी महत्वपूर्ण है।

(१०२–इ) –संस्कृत रत्नाकर वर्ष ६ सचिका ११ जून, १६४३ संवादाः–'मानवश्रम सभारम्भः'।

(१०२–ई) –"वेदानां भारतीयसंस्कृतेश्चाभिनवो व्याख्याकारः स्वर्गत प० श्री मोतीलाल शास्त्री शीर्षक लेख भारती मासिक वर्ष ११ अंक १ कार्तिक नवम्बर, १६६० पृष्ठ २०–२१–संस्कृत से हिन्दी में अनूदित।

आपके सम्बन्ध में अनेक विद्वानों के शुभाशंसन प्राप्त होते हैं। कुछ यहां प्रस्तुत हैं :—

१. **स्व० डा० भगवानदास**—"श्री शास्त्रीजी के साहित्य को देखकर मैं विश्वास करता हूं कि वेद के शब्दों व मन्त्रों के जो अर्थ श्री शास्त्रीजी द्वारा प्रस्तुत किए गए हैं, वे विचारशील विद्वानों के द्वारा माननीय, प्रकाशनीय तथा संरक्षणीय हैं।"

२. **वेदमूर्ति श्री सातवलेकर**—"श्री शास्त्रीजी की लेखनशैली अत्यन्त उत्तम है, जिसके प्रभाव से नास्तिक भी वेद में श्रद्धा रखने के लिये परवश हो जाता है।"

३. **स्व० श्री मदनमोहन मालवीय**—"श्री शास्त्रीजी के सभी भाषण शास्त्रीय प्रकरणों से विभूषित हैं, साथ ही युक्तियुक्त भी तथा रुचिकर भी।"

४. **'आज' पत्र के सम्पादक श्री पराडकर**—"श्री शास्त्रीजी का व्याख्यान जिसने एक बार भी सुन लिया, उसे कभी भी नहीं भूल सकता।"

५. **फ्रांस के विद्वान् मि० पी० लेबेस्टिन**—"सांस्कृतिक संघर्ष के लिए आमन्त्रण" (फ्रेंच ग्रन्थ)।

इस प्रकार श्री शास्त्रीजी के सतत कार्य संलग्न रहने से शरीर जर्जरित हो गया था और आपने ५२ वर्ष की अवस्था में २० सितम्बर, १९६० को महाप्रयाण किया। आपके निधन पर डा० राजेन्द्रप्रसाद ने अपने उद्गार इस प्रकार प्रकट किये थे—"मुझे पण्डित मोतीलालजी शास्त्री के निधन का समाचार सुनकर बहुत दुख: हुआ। वे वैदिक साहित्य के प्रकाण्ड पण्डित थे और अपने जीवन काल में उन्होंने इस प्राचीन साहित्य को अपनी टीकाओं तथा अपने विशेष लेखों द्वारा बहुत समृद्ध किया। वेदों पर व्याख्यान सुनने का अवसर मुझे भी मिला है और इस प्रकार में उनकी प्रतिभा से व्यक्तिगत रूप से परिचित हो सका।........"(१०२–उ)

कविशिरोमणि भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री ने आपका उल्लेख इस प्रकार किया है :—(१०२–ऊ)

"श्रीमधुसूदनदत्त वैदिकविज्ञानोदये।
साशं दृशमुपदत्त मोतीलालमहोदये॥"

आपके सम्बन्ध में एक विद्वान् की शुभाशंसा यहां उद्धृत की जा रही है :—

"श्रौतप्रपंचशतपत्रसहस्ररश्मिः प्रौढ़प्रतापविभवोद्भवमंजुलश्रीः।
विज्ञानशेवधि समस्तजगत्प्रसिद्ध-श्रीमोतीलालविबुधः सुचिरं चकास्तु॥"

आपके सहपाठियों में स्व० पं० श्री वृद्धिचन्द्रजी शास्त्री, व्याकरणधर्मशास्त्राचार्य का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। आपके प्रकाशित रचनात्मक कार्य का विवरण इस प्रकार है :—

क्रम	ग्रन्थ नाम	विवरण	मूल्य
१.	गीता विज्ञान भाष्य भूमिका	बहिरंग परीक्षा (प्रथम खण्ड)	१५ रु.
२.	गीता विज्ञान भाष्य भूमिका	आत्म परीक्षा (द्वितीय खण्ड) (क)	२० रु.
३.	गीता विज्ञान भाष्य भूमिका	ब्रह्मकर्म परीक्षा (तृतीय खण्ड) (ख)	२० रु.
४.	गीता विज्ञान भाष्य भूमिका	कर्मयोग परीक्षा (चतुर्थ खण्ड) (ग)	२० रु.

(१०२–उ)—राजस्थान सस्कृत परिचय ग्रन्थ—पृष्ठ ८१ रतनगढ़ से प्रकाशित।

(१०२–ऊ)—जयपुरवैभवम्—नागरिकवीथी—सुधीचत्वरः—पृष्ठ २७४—पद्य संख्या १०१।

५.	गीता विज्ञान भाष्य भूमिका	ज्ञानयोग परीक्षा (पंचम खण्ड) (घ)	३ रु.
६.	गीता विज्ञान भाष्य भूमिका	भक्तियोग परीक्षा (पूर्व खण्ड षष्ठ खण्ड) (क)	२० रु.
७.	गीता विज्ञान भाष्य भूमिका	भक्तियोग परीक्षा (उत्तर खण्ड सप्तम खण्ड) (ख)	२० रु.
८.	गीता विज्ञान भाष्य भूमिका	बुद्धियोग परीक्षा (अष्टम खण्ड) (ग)	२० रु.
९.	उपनिषद् विज्ञान भाष्य भूमिका	प्रथम खण्ड	२० रु.
१०.	उपनिषद् विज्ञान भाष्य भूमिका	द्वितीय खण्ड	१५ रु.
११.	उपनिषद् विज्ञान भाष्य भूमिका	तृतीय खण्ड	१५ रु.
१२.	ईशोपनिषत् हिन्दी विज्ञान भाष्य	प्रथम खण्ड	१५ रु.
१३.	ईशोपनिषत् हिन्दी विज्ञान भाष्य	द्वितीय खण्ड	१५ रु.
१४.	श्राद्धविज्ञान ग्रन्थानुगत	आत्मविज्ञानोपनिषत् (प्रथम खण्ड)	२० रु.
१५.	श्राद्धविज्ञान ग्रन्थानुगत	सापिण्ड्यविज्ञानोपनिषत् (तृतीय खण्ड)	१५ रु.
१६.	भारतीय हिन्दूमानव और उसकी भावुकता	विश्वरूप मीमांसा (प्रथम खण्ड)	१५ रु.
१७.	संस्कृति और सभ्यता शब्दों का चिरन्तन इतिवृत्त एवं भारतीय सांस्कृतिक आयोजनों की रूपरेखा		२५ रु.
१८.	दिग्देशकालस्वरूप मीमांसा		२५ रु.
१९.	शतपथब्राह्मण हिन्दी विज्ञान भाष्य	प्रथम काण्डानुगत (प्रथम खण्ड)	२५ रु.
२०.	शतपथब्राह्मण हिन्दी विज्ञान भाष्य	प्रथम काण्डानुगत (द्वितीय खण्ड)	३० रु.
२१.	भारतीय दृष्टिकोण से विज्ञान शब्द का समन्वय		१.५० पैसे
२२.	क्या हम मानव हैं (सांस्कृतिक आमन्त्रण)		२.५० पैसे
२३.	वेद का स्वरूप विचार		२ रु.
२४.	वेदस्य सर्वविद्यानिधानत्वम् (भारती १०।४ से ११।३ व ११।७ से १२।२ में प्रकाशित)		१.५० पैसे
२५.	राष्ट्रपति-भवनानुगतव्याख्यानपंचकम्		६ रु.

आप बहुचर्चित प्रतिभा के धनी तथा स्मरणीय विद्वान् थे।

---

१०३. श्री रघुनाथ कान्यकुब्ज

राजवैद्य कवि श्री कृष्णराम भट्ट के समकालीन विद्वानों मे श्री रघुनाथ कान्यकुब्ज का नाम भी उल्लेखनीय है। जयपुरविलास में श्री भट्ट ने आपका संकीर्तन किया है, इससे सिद्ध होता है कि आप तत्कालीन विख्यात विद्वान् रहे है। वर्तमानकालिक 'विलसति' क्रिया आपका उस समय विद्यमान होना सूचित करती है। लिखा है :—(१०३–अ)

(१०३–अ)—जयपुरविलास—पंचम उल्लास—पद्य संख्या ५७–पृष्ठ संख्या ५४।

"विलसति रघुनाथः पुत्रपंक्त्या सनाथः
सकलविबुधगोष्ठीगीतसौजन्यगाथः।
हृदि कृतरघुनाथः पण्डितव्रातनाथः
स्वकुलजलधिवृद्धौ रोहिणीप्राणनाथः॥"

इस पद्य की टिप्पणी में श्री भट्टजी ने आपको 'कान्यकुब्ज' बतलाया है।

ऐसा प्रतीत होता है कि आपके अनेक पुत्र थे तथा आप विद्वानों को गीत सुनाया करते थे। श्री रामचन्द्र के भक्त तथा अपने कुल में चन्द्रमा के समान आह्लादक रहे हैं।

आपके विषय में कोई विशेष जानकारी प्राप्त नहीं है।

---

१०४. श्री रघुवर धर्मशास्त्री

महाराजाधिराज सवाई रामसिंह द्वितीय ने "धर्मशास्त्र" के एक पद की स्थापना की थी, जिस पर श्री रघुवर की नियुक्ति की गई थी। इसे न्यायाधिकरण या अदालत भी कहते हैं। अदालत में भी विशेषतः वह कार्य सम्पन्न होता था, जिसका सम्बन्ध धार्मिक क्रिया-कलापों से होता था। श्री रघुवर मैथिल ब्राह्मण थे तथा अपने समय में विद्वानों से पूर्णतः समादृत थे। इसी विचार की पुष्टि के लिये राजवैद्य पण्डित भी श्री कृष्णराम भट्ट ने आपका परिचय प्रस्तुत किया है :—(१०४–अ)

"यो धर्मशासनपदाधिकृतोऽधिकश्री–
र्भासा दिशो दशरथप्रवणः पिधत्ते।
सल्लक्ष्मणांचिततनुर्ननु सोऽपि चारु–
च्चर्यापरो रघुवरो वत मैथिलोऽस्ति॥"

(धर्म०—अदालत नामके पदेऽधिभृतः, पक्षे धर्मरक्षणास्पदे। दशरथ०—दशदिशो भासा पिधत्ते–रथस्थितश्च, पक्षे दशरथसेवको भासा दिशः पिधत्ते। सल्लक्ष्मण०—सच्चिह्नेनाञ्चितकायः, पक्षे सता लक्ष्मणेनाञ्चिता पूजिता तनुर्यस्य। रघुवर०—एतन्नामा पण्डितः, पक्षे श्रीरामचन्द्रः। वत—खेदे हर्षेच। मैथिल—पक्षे श्रीरामचन्द्रस्य राघवत्वेऽपि मैथिलत्वमिति महदाश्चर्यम्।)

आपके विषय में विशेष जानकारी प्राप्त नहीं है। आपका रचनात्मक कार्य भी उपलब्ध नही है।

(१०४–अ)—जयपुर विलास–पंचम उल्लास–पृष्ठ संख्या ५३–पद्य संख्या ५४।

१०५. श्री रामकिशोर शर्मा

श्री रामकिशोर शर्मा संस्कृत साहित्य के प्रच्छन्न रत्न हैं। आपके पूर्वज रेवासा नामक ग्राम के निवासी थे। आपके मूलपुरुष श्री नवलकिशोर थे। आपका वंशवृक्ष इस प्रकार है :—

श्री नवलकिशोरजी का देहान्त श्री व्रजकिशोरजी की वाल्यावस्था में ही हो गया था। श्री व्रजकिशोरजी अपनी पितृस्वसा (भूवाजी) के पास मुरसीदावाद चले गये। वहां से अध्ययनार्थ नदिया शान्तिपुर (प० बंगाल) के विद्यालय में भिजवाये गए। यह विद्यालय न्यायशास्त्र के अध्यापन में विख्यात था। श्री व्रजकिशोरजी ने १५-२० वर्ष तक न्यायशास्त्र का पूर्ण अध्ययन किया। पाठशाला के अध्यक्ष न्यायशिरोमणि श्री वापूदेव शास्त्री थे, जिनके पास रह कर आपने विशेष अध्ययन किया और उनके प्रिय शिष्य वन गए। उनके देहान्त पर विद्यालय के अध्यक्षत्व का प्रश्न उपस्थित हुआ। न्यायशास्त्र के किसी विषय पर ७ दिन तक शास्त्रार्थ चला। विजेता को ही पाठशाला का अध्यक्ष नियत करना था। शास्त्रार्थ में श्री व्रजकिशोरजी विजयी हुए। इन्हें 'तर्कामृत', 'न्यायवागीश' आदि उपाधियां मिली और पाठशाला का अध्यक्षत्व भी। कुछ वर्ष तक वहां कार्य करने पर फिर आप मुरसीदावाद आ गए। आपके तीन पुत्र हुए—(१) श्री रामकिशोरजी, (२) श्री कृष्णकिशोरजी और (३) श्री जोधराजजी। श्री रामकिशोरजी ने न्यायशास्त्र का अध्ययन अपने ही पिताजी से किया था। मुरसीदावाद के जगत्सेठ श्री लक्ष्मी-चन्द्र ने श्री व्रजकिशोरजी को अपना गुरु वना लिया था। उसने इन्हें वहुत आर्थिक सहायता प्रदान की थी।

श्री व्रजकिशोरजी ने रेवासा ग्राम संवत् १८२५ में छोड़ा था। कहा जाता है कि जयपुर के राजा जगत्सिंह ने जब नदिया शान्तिपुर के शास्त्रार्थ का हाल सुना तो उनने श्री व्रजकिशोरजी को जयपुर बुलवाया। श्री राम-किशोरजी भी साथ ही आये थे। यहां भी एक न्याय विषयक शास्त्रार्थ रखा गया था। संवत् १८७१ (१८१४ ई०) में विजय प्राप्त की थी। महाराजा जगत्सिंह ने उन्हें २ ग्राम जीविका के लिए प्रदान किये थे। इन्हें भट्टाचार्य की पदवी भी इसी अवसर पर मिली थी। जो भी धर्मार्थ कार्य होता था, आपकी देखरेख में होता था। आप दाधीच ब्राह्मण थे तथा राज्य सम्मानित विद्वान्।

आपकी अनेक रचनायें वतलाई जाती हैं, जिनमें से केवल "रुक्मिणी स्वयंवर" नाटक ही प्राप्त हो सका है, जो नागपुर विश्वविद्यालय के हस्तलिखित पुस्तकालय में सुरक्षित है। इसके अतिरिक्त अन्य किसी रचना की

उपलब्धि नहीं होती। श्री रामकिशोर शर्मा का समय महाराज सवाई रामसिंह द्वितीय के शासन काल तक रहा है। अतः इसी दृष्टि से यहां उनका उल्लेख किया गया है। (१०५–अ)

आपका "रुक्मिणी स्वयंवर" नाटक नाटक-साहित्य में विवेच्य है। उसकी विवेचना से ही आपका वैदुष्य परिलक्षित होगा।

आप प्राचीन विद्वानों में उल्लेखनीय थे।

---

१०६. श्री राजीवलोचन ओझा

जयपुर राज्य के प्रधान पण्डित विद्यावाचस्पति पं० मधुसूदन ओझा का नाम जयपुर के इतिहास में उल्लेखनीय है। आपके ही पितृव्य (चाचा) श्री राजीवलोचन झा थे। वास्तव में श्री झा के कारण ही पं० मधुसूदनजी ने राज्य आश्रय प्राप्त किया था तथा इतने यशस्वी बने।

श्री राजीवलोचन झा के पिता पं० श्री देवनाथ झा मझोलिया ग्राम के प्रधान पण्डित थे। आप सभी शास्त्रों के गम्भीर विद्वान् थे। राज्यसम्मान में उन्हें बहुत बड़ी जागीर मिली थी। आपके कुटुम्ब में सन्निहित पितृव्य पं० श्री तुलसीदत्त झा काशी रहते थे तथा व्याकरण में नवीन युग उत्पन्न करने वाले दाक्षिणात्य विद्वान् पं० श्री काशीनाथ शास्त्री, श्री तुलसीदत्तजी को ही एकमात्र विद्वान् मानते थे। आपने 'शारदातिलक' पर एक टिप्पणी भी लिखी थी, जो मन्त्रशास्त्र में प्रवेशार्थी व्यक्तियों के लिए कुंजी है।

सवाई रामसिंह द्वितीय (जयपुर महाराज) के समय शैव सम्प्रदाय तथा वैष्णव सम्प्रदाय का वाद-विवाद उठा था। स्वयं महाराज शैव सिद्धान्तों के असाधारण पक्ष-पाती थे, यह इतिहास सम्भव भी है। अधिकांश शिवमन्दिर महाराज रामसिंह के समय ही बनाये गए हैं। उक्त विवाद का उग्ररूप बना तथा वृन्दावन के सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री रंगाचार्य ने इस विषय में कुछ लिखा था। यह पत्र शास्त्रार्थ प्रणाली से लिखा गया था तथा शास्त्रीय प्रौढि प्रदर्शन के रूप में मीमांसा के अधिकरणों को भी स्थान-स्थान पर लगा दिया था। जयपुर में उस समय अन्य सभी विषयों के जानकार विद्वान् तो विद्यमान थे, परन्तु मीमांसाशास्त्र में निष्णात कोई नहीं था। उस पत्र का उत्तर देना महाराज के लिए एक समस्या बन गई थी। सौभाग्यवश श्री झा इतस्ततः भ्रमण करते हुए जयपुर पहुंचे। जयपुर में पहले ही से अनेक झा—मैथिल निवास कर रहे थे। आप उनसे मिलने जब पहुंचे तो प्रसंगवश इस पत्र की चर्चा सुनने को मिली। आप अन्यान्य शास्त्रों के साथ मीमांसा के भी ज्ञाता थे ही। जब आपका परिचय महाराजधिराज सवाई रामसिंह द्वितीय को कराया गया तो उनने वह पत्र दिखलाया। आपने तुरन्त ही उसका आशय समझ कर उसका युक्तिसंगत, शास्त्रसमत तथा मीमांसाधिकरण सहित उत्तर लिख डाला। महाराज इनकी प्रौढ विद्वत्ता से प्रभावित हुए तथा आजीविकार्थ २ ग्राम जागीर रूप में प्रदान कर जयपुर में ही बसा लिया। यह शास्त्रार्थ बहुत दिन तक चला। अन्त में वैष्णवों ने 'दुर्जनमुखचपेटिका' नामक शैव सिद्धान्तों का खण्डन करने वाला ग्रन्थ निकाला, जो सम्प्रदायिक भावनाओं से युक्त था। श्री राजीवलोचन झा *तथा कथाभट्ट* श्री छोटेलालजी नामावाल (श्री हरगोविन्दजी) ने उसका खण्डन करते हुए 'सज्जनमनोनुरंजनम्' नामक ग्रन्थ प्रकाशित करवाया, जो अब दुष्प्राप्य है।

(१०५–अ)—आपका यह परिचय आपके ही अनुवंशज वयोवृद्ध पण्डित श्री प्रभुदत्तजी शर्मा भट्टाचार्य से प्राप्त हुआ है, जो पंजाब में निवास कर रहे थे और अब दिवंगत हैं। आपका परिचय अन्यत्र दुर्लभ है।

आप धर्मशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित थे। आपने महाराज की आज्ञा से 'धर्मचन्द्रोदय' नाम के ग्रन्थ की रचना की थी। यह ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है। इस ग्रन्थ की प्रति सम्भवतः महाराज के निजी संग्रहालय पोथीखाने में होनी चाहिये। (१०६–अ)

राजवैद्य श्री कृष्णराम भट्ट नें लिखा है कि आपके उक्त ग्रंथ के सम्पूर्ण करने में श्री कृष्ण शास्त्री द्राविड़ तथा श्री लक्ष्मीनाथ शास्त्री द्राविड़ ने पर्याप्त योग दिया था :—(१०६–आ)

"राजीवलोचनबुधेन समस्तशास्त्राण्यालोच्य सामवचसाऽरचि धर्मचन्द्रः।
याभ्यामपूरि स ततोऽन्विह कृष्णलक्ष्मीनाथौ बुधौ कथय कस्य न समंतौ तौ।।"

कविशिरोमणि भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री ने श्री लक्ष्मीनाथ शास्त्री द्राविड़ के चरित्र संग्रह प्रसंग में लिखा है :—(१०६–इ)

"स्वर्गीयो महाराजाधिराजः श्री रामसिंहदेवो जयपुरमुपागतेभ्यः श्रीमद्भ्यः स्वाज्ञया नवीनं निर्मीयमाणस्य धर्मशास्त्रग्रन्थस्य निर्माणमाज्ञापयद् यत्र हि पं० श्री राजीवलोचनमैथिलाः, गुरुवरश्रीकृष्णशास्त्रिचरणा अपि सह न्ययम्यन्त।"

(अर्थात् इन तीनों विद्वानों ने मिलकर इस धर्मचन्द्रोदय ग्रन्थ की रचना की थी)

आपके कोई पुत्र नहीं था, इसलिये आपने अपने भ्रातुष्पुत्र श्री मधुसूदन झा को अपना पुत्र व उत्तराधिकारी बनाया और जयपुर बुला लिया।

श्री झा का देहावसान सम्वत् १९३६ में जयपुर में ही हुआ था। आप महाराज सवाई रामसिंह द्वितीय द्वारा संस्थापित मोदमन्दिर धर्मसभा के अध्यक्ष भी थे।

आपका नाम उल्लेखनीब विद्वानों में परिगणनीय है।

---

१०७. श्री रामकृष्ण चतुर्वेदी

जयपुर नगर के वैदिक विद्वानों में श्री चतुर्वेदीजी बहुत ही प्रसिद्ध विद्वान् रहे हैं। आपका मूल निवास स्थान नारनौल था। आपके पूर्वजों में पं० जीवनरामजी शर्मा ज्योतिष एवं कर्मकाण्ड के विद्वान् थे। उनके सम्बन्ध में एक जनश्रुति भी प्रसिद्ध है कि वे रात्रि के मध्य से प्रातः सूर्योदय से पूर्व तक सम्पूर्ण दुर्गासप्तशती लिख लिया करते थे। उनकी लिखी पुस्तक 'चतुर्वेदी पुस्तक संग्रहालय' में अब तक विद्यमान है। आपके अक्षर बहुत ही सुन्दर थे। जयपुर के पंचगौड़ों में सर्वप्रथम कर्मकाण्डी व विद्वान् यदि कोई था, तो पं० जीवनरामजी का नाम ही लिया जाता है। आपने अपने ही अनुरूप ज्येष्ठ पुत्र श्री भवानीरामजी को विद्वान् बनाया। इनके ७ पुत्र

(१०६–अ) —म० म० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी का लेख—'विद्यावाचस्पति पं० मधुसूदनजी झा' पूर्वार्द्ध— पृष्ठ १११ – सुधा पत्रिका—वर्ष २ खण्ड १ संख्या १ श्रावण तुलसी सम्वत् ३०६ की भूमिका के आधार पर।

(१०६–आ)—जयपुरविलास–पंचम उल्लास–पृष्ठ ५२–पद्य संख्या ४१।

(१०६–ई) —जयपुरवैभवम्–नागरिकवीथी—सुधीचत्वरः—पृष्ठ २३७।

थे जिनमें श्री भवानीरामजी ज्येष्ठ थे। इन्हें दायभाग तो प्राप्त नहीं हुआ, परन्तु पैतृक विद्या सम्पत्ति सम्पूर्ण ही उपलब्ध हुई थी। श्री भवानीरामजी के ज्येष्ठ पुत्र श्री रामकुमारजी थे। श्री रामकुमारजी के पुत्र श्री बच्चूलालजी थे, जो कर्मकाण्डी होने के साथ ही ज्योतिष के विख्यात विद्वान् थे। जयपुरीय विद्वन्मण्डली में तथा जयपुरीय राजघराने में आपका पर्याप्त सम्मान था। आपका उल्लेख भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री ने अपने जयपुरवैभवम् काव्य में (पृष्ठ २७६ पद्य सं० १०४) किया है। श्री बच्चूलालजी के दो पुत्र थे—ज्येष्ठ श्री विजयचन्द्रजी और कनिष्ठ श्री रामकृष्ण चतुर्वेदी।

श्री चतुर्वेदी का जन्म भाद्रपद शुक्ला १५ रविवार सम्वत् १९६३ को जयपुर में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा पं० श्री विजयचन्द्रजी चतुर्वेदी की देख-रेख में सम्पन्न हुई थी। १६ वर्ष की अवस्था में श्री विजयचन्द्रजी के अस्वस्थ होने पर आपने सीकर नगरस्थ सुप्रसिद्ध कल्याणजी के मन्दिर की प्रतिष्ठा का कार्य सम्पन्न किया था। आपका यह प्रथम कार्य था। आपने सर्वप्रथम आयुर्वेद का अध्ययन प्रारम्भ किया था और नियमित छात्र के रूप में आपने आयुर्वेदोपाध्याय परीक्षा उत्तीर्ण की थी। दुर्भाग्यवश आयुर्वेद शास्त्री में प्रवेश प्राप्त करते समय आपके ज्येष्ठ भ्राता श्री विजयचन्द्रजी का देहान्त हो गया और आपको संस्कृत कालेज छोड़ना पड़ा। आपने बनारस में रह कर वेद प्रथमा, वेद मध्यमा, वेदतीर्थ आदि परीक्षायें उत्तीर्ण कीं। इसके पश्चात् १९४० ई० में संस्कृत कालेज, जयपुर से वेदाचार्य परीक्षा उत्तीर्ण की।

आप कर्मकाण्ड के विख्यात विद्वान् थे। पर्जन्य यज्ञ से आपको बहुत ख्याति प्राप्त हुई थी। जहाँ पर भी वर्षा का अभाव होता था, आपको सादर आमन्त्रित किया जाता था। आप जयपुर में ब्रह्मा के पद पर आसीन थे। आपका देहावसान २३ फरवरी, १९६९ को जयपुर में हुआ था। पं० श्री शिवदत्त वैदिक आपके उल्लेखनीय शिष्य रहे हैं।

---

१०८. श्री रामगोपाल शास्त्री

श्री शास्त्री का जन्म जयपुर नगर (गोपाल कुंज, रगेश्वर महादेव के पास, पुरानी बस्ती, १९।२४०६) में हुआ था। आपके पितृचरण श्री लादूरामजी संगीताचार्य एक प्रसिद्ध व्यक्ति थे। आपका जन्म कार्तिक शुक्ला १० सम्वत् १९७८ को हुआ था। आपने महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर के नियमित छात्र के रूप में साहित्याचार्य परीक्षा (१९४८ ई०) उत्तीर्ण की। आप संस्कृत कालेज के प्रवेशिका विभाग में अध्यापक के रूप में २८ जुलाई, १९४६ को नियुक्त हो गये। अध्यापक रूप में ही आपने धर्मशास्त्राचार्य परीक्षा (१९५८ ई०) उत्तीर्ण की। आप पंजाब से भी हिन्दी प्रभाकर तथा प्रयाग से साहित्यरत्न प्रथम वर्ष भी उत्तीर्ण हैं। आपने श्री लालबहादुर शास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, दिल्ली के नियमित छात्र के रूप में शिक्षाशास्त्री (१९६७ ई०) परीक्षा उत्तीर्ण की।

आपके गुरुओं में पं० जानकीलालजी शास्त्री, स्व० पं० वृद्धिचन्द्रजी शास्त्री व्याकरणधर्मशास्त्राचार्य, पं० माधवप्रसाद शास्त्री, पं० जगदीशजी दाधीच, भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री, कथाभट्ट पं० नन्दकिशोरजी, पं० श्री कन्हैयालालजी प्रश्नवर तथा पं० पी० एन० पट्टाभिराम शास्त्री का नाम भी उल्लेखनीय है।

प्रमुख शिष्यों में इन पंक्तियों के लेखक का नाम ही पर्याप्त है। यों आपने जीवनभर अध्यापन कार्य ही किया है, जिनमें अनेक व्यक्ति उच्च पदों पर आसीन हैं। आपने भारतीय साहित्य विद्यालय में पुरुषार्थियों को

हिन्दी पढ़ा कर वहुत उपकार किया था। आप संस्कृत कालेज, जयपुर के अतिरिक्त बगरु संस्कृत विद्यालय के प्रधानाध्यापक, श्री कल्याण संस्कृत कालेज, सीकर तथा राजकीय सस्कृत कालेज, महापुरा में साहित्य व्याख्याता भी रहे हैं। इसके बाद आप महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर में धर्मशास्त्र के व्याख्याता रहे हैं। संस्कृत शिक्षा निदेशालय में उपनिदेशक के पद पर कार्य करने के बाद आप सम्वत् २०३३ में सेवा निवृत्त हो गए।

सस्कृत अध्यापन कार्य के अतिरिक्त आपने अनेक समाज सेवी संस्थाओं में अवैतनिक पदों पर कार्य किया है। अपने पितृव्य श्री माधवप्रसादजी शास्त्री द्वारा संचालित महिला संस्कृत पाठशाला का संचालन भी किया, जिसने अनेक महिलाओं को सुशिक्षित किया। भारतीय साहित्य विद्यालय, गौड़ विप्र विद्यालय तथा भारत साधु समाज आदि सस्थाओ में आप संयुक्त मन्त्री पद पर रहे। कर्मकाण्डिमण्डल तथा महिला शिल्पशाला में आप मंत्री पद का कार्य करते रहे। इसी प्रकार निम्बार्क सम्प्रदाय की 'निम्बार्क सत्संग मण्डल' नामक संस्था का मन्त्रित्व भी किया। आपने शैक्षणिक तथा धार्मिक सस्थाओं को अपना पूर्ण सहयोग प्रदान किया। आजकल आज इस पीठ मे शिक्षा मन्त्री के पद पर कार्यरत हैं तथा मासिक पत्र के सम्पादन प्रकाशन के ही साथ निम्बार्क दर्शन की शिक्षा के लिए संस्थापित सस्कृत कालेज के कार्यो को भी देख रहे हैं।
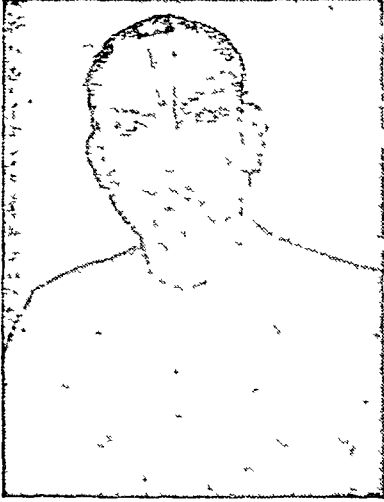
आपने विगत २५ वर्षो से 'श्री निम्बार्क व्रतोत्सव दीपिका' का प्रकाशन किया है। इसी प्रकार 'श्री जयन्ती महोत्सव पदावली' के तीन भाग प्रकाशित हो चुके है तथा चतुर्थ भाग प्रकाशित हो रहा है। भारत साधु समाज के परिचायक प्रकाशन व सम्पादन का भी श्रेय आपको ही है। कर्मकाण्डिमण्डल की ओर से नित्य पूजन की सुविधा के लिये आपने 'आवाहन: प्रदीप:' नामक लघु ग्रन्थ का निर्माण कर उसे भी प्रकाशित किया है, जिसमें सुन्दर व सरल पद्य है।

इसके अतिरिक्त साहित्यिक व धार्मिक तथा ऐतिहासिक विषयों पर अनेक लेख विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके है। आपने 'कुवलयानन्द' की हिन्दी व्याख्या लिखी है जो अभी तक अप्रकाशित है। आपकी रचनाओं का उल्लेख सक्षेप मे इस प्रकार किया जा सकता है :—

क्रम	रचना शीर्षक	विवरण
१.	कुवलयानन्द (हिन्दी व्याख्या)	अप्रकाशित
२.	श्रीकृष्णस्तवराजस्य हिन्दी पद्यानुवाद:	अप्रकाशित
३.	धर्मसंग्रह: (विभिन्न स्तोत्रों का सकलन)	अप्रकाशित
४	वैष्णवी श्रीपार्वती (पद्मपुराण के आधार पर)	अप्रकाशित
५.	साहित्यदर्पणे श्लेषालकार· (संस्कृत लेख)	अप्रकाशित
६.	दुर्गाधिकारिणी (सस्कृतेऽनूदिता)	अप्रकाशित
७.	श्रीमदप्पयदीक्षितानां नवीनालंकारकल्पना (संस्कृत लेख)	अप्रकाशित
८.	सर्वकामप्रदं पुण्य तन्त्रं वै वेदसंमितम् (संस्कृत लेख) (अखिलभारतीय संस्कृतसाहित्य-सम्मेलनस्य स्वर्णजयन्ती-महोत्सवे तन्त्रपरिषदि श्रावित:)	अप्रकाशित

९. समस्यापूर्तियां

(क) अर्चनं संचिनोमि, (ख) मानः, (ग) कूजति, (घ) भारती, (ङ) देवो जगद् रक्षतात्, (च) विभ्राजताम्, (छ) भूतले, (ज) प्रतिभा (झ) भारतश्रीः इत्यादि — प्रकाशित

१०. वसन्तपंचकम् (संस्कृत रत्नाकर १२।८—फरवरी, १९४८) — प्रकाशित

११. संघः सतां सौख्यदः (इस समस्या की पूर्ति आपने विद्यार्थी जीवन में की थी जो संस्कृत रत्नाकर ८।११ जून, १९४२ में प्रकाशित हुई है) — प्रकाशित

१२. पुंभूम्निदाराः (भारती वर्ष २ अंक १२) — प्रकाशित

१३. विद्या मानव-भूषणम् (भारती वर्ष ३ अंक ५) — प्रकाशित

१४. पण्डितराजाभिमतं काव्यलक्षणम् (भारती वर्ष १४ अंक १०) — प्रकाशित

१५. 'वेदान्त कामधेनु' हिन्दी अनुवाद — प्रकाशित

१६. श्रीमिथलेशसुताष्टक हिन्दी अनुवाद — प्रकाशित

१७. तत्त्वसिद्धान्त-विन्दु हिन्दी अनुवाद — अप्रकाशित

१८. ईशावास्योपनिषद् हिन्दी अनुवाद — अप्रकाशित

१९. मनोबोधः बोधदीपिकाख्य हिन्दी अनुवाद — भारती में क्रमशः

२०. पञ्चाशिकात्रयम् का सम्पादन — भारती में क्रमशः

इत्यादयः

अन्य कतिपय पुस्तकों की भूमिका, श्रीसर्वेश्वर (मासिक), श्रीनिम्बार्क (पाक्षिक), भारती (मासिक), स्वरमङ्गला (त्रैमासिक में समय समय पर लेख, कविता, भारती के मङ्गलाचरण, मासावतरण आदि दर्शनीय हैं।

आपके वैदुष्य को प्रतिभासित करने वाला एक चमत्कारी पद्य आपकी सुप्रसिद्ध रचना वसन्तपंचम् से उद्धृत कर प्रस्तुत किया जा रहा है :—

"चीयते महिमा यस्य सुमनोभिरेभिरभि-
गीयते अमरैर्भूरि भूरियं म-हीयते
हीयते कदापि नाभिलाषा प्रिय विलासानां
विलासिनीमानसेषु मदनो नि-धीयते ।
धो यतेन्द्रियाणामपि धीयंतो विलीयते च
पीयतेऽधरसुधा तपनम-पनीयते
नीयते सुखेन वधू माधुरीमधुरोमधु-
रेव परं विधुरैः सतापमपचीयते ।।"

आप इस समय संस्कृत साहित्य तथा धर्मशास्त्र के उल्लेखनीय विद्वान् हैं।

---

१०९. श्री रामचन्द्र (गणिताध्यापक)

श्री शास्त्रीजी के जीवन वृत्त के सम्बन्ध में कोई सूचना प्राप्त नहीं होती। आप महाराज संस्कृत कालेज के प्रवेशिका विभाग में गणित के सफल अध्यापक थे, ऐसा उल्लेख मात्र मिलता है। महामहोपाध्याय पण्डित श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ने 'आत्मकथा और संस्मरण' में आपको अनेक स्थलों पर स्मरण किया है : (१०९-अ)

"इसके अतिरिक्त गणितशास्त्र के अध्यापक थे श्री रामचन्दजी। ये इस पाठशाला के सबसे प्रथम शास्त्री थे। ज्योतिषशास्त्र में इन्होंने शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की थी। इनका अध्यापन काल इतना लम्बा रहा कि प्रायः ३४ वर्ष के अनन्तर जब मैं स्वय संस्कृत कालेज का अध्यक्ष होकर आया, तब भी ये अध्यापक थे। मेरे अधिकार में भी कुछ वर्ष तक इन्होंने कार्य किया। मैंने भी इनसे गणित शिक्षा प्राप्त की और मेरे पुत्र ने भी।"

संस्कृत कालेज के प्राचीन उपलब्ध रिकार्ड उपस्थिति पत्रकों में नवम्बर, १८८९ से आपका नाम मिलता है और संवत् १९९३ (सन् १९३६) के संस्कृत कालेजीय अध्यापकवृन्द में आपका भी चित्र है, जिससे ज्ञात होता है कि आप उस समय तक उक्त कालेज में अध्यापनरत थे। कहा जाता है कि जब आपको सेवा निवृत्त किया गया तब आप क्रुद्ध हो उठे थे और श्री चतुर्वेदीजी के निवेदन करने पर ही सेवा-निवृत्ति नियमों से अवगत हो सके थे।

आप गुर्जरगौड़ ब्राह्मण थे तथा जयपुर के ही स्थायी निवासी। आपने ही सर्वप्रथम संस्कृत कालेज से ज्योतिष विषय लेकर संवत् १९४६ में शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की थी। (१०९-आ) आपका देहान्त २९ अप्रेल, १९४२ को ८० वर्ष की अवस्था में हुआ था। (स० र० ८।१०)

कविशिरोमणि भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री ने आपका स्मरण इस पद्य में किया है। आप श्री भट्टजी के भी गुरु रहे हैं :— (१०९-इ)

"बहुकालादध्यापयन् अधिसंस्कृतविद्यालयम्।
प्रवेशिकागणितोच्चयं रामचन्द्रविद्वानयम्॥"

आप अपने विषय के मार्मिक विद्वान् थे तथा साहित्य के प्रति भी रुचि रखते थे।

---

११०. श्री रामचन्द्र गौड़ साहित्याचार्य

आपका जन्म कार्तिक शुक्ला १३ संवत् १९५७ को जयपुरीय ज्योतिर्विद् पण्डित श्री गोविन्दराम शर्मा के पुत्र के रूप में हुआ। आपने सन् १९१५ में बनारस से प्रथम परीक्षा उत्तीर्ण कर संस्कृत कालेज, जयपुर में साहित्योपाध्याय श्रेणि में प्रवेश प्राप्त किया। सन् १९२६ में साहित्याचार्य श्रेणि में सर्वप्रथम उत्तीर्ण होने पर आप स्वर्णपदक से सम्मानित किये गये। छः वर्ष तक पारीक हाई स्कूल में अध्यापन के पश्चात् २७ फरवरी, सन् १९३१

(१०९-अ)—आत्मकथा और संस्मरण—श्री चतुर्वेदी—जन्म और शिक्षा—पृष्ठ ५ और ६।
(१०९-आ)—शास्त्रिपरीक्षोत्तीर्णच्छात्राणां नामादीनि—क्रमांक १।
(१०९-ई)—जयपुरवैभवम्—नागरिकवीथी—सुधीचत्वरः—पद्य ९३—पृष्ठ २७१।

को राजकीय नोवल्स स्कूल में संस्कृत के प्रधान पण्डित के रूप में नियुक्त हुये। सन् १९४२ तक उक्त स्कूल में कार्य करने के बाद एक वर्ष के लिये दरबार हाई स्कूल में स्थानान्तरित हुये। तत्पश्चात् सन् १९४३ से सन् १९५६ तक असिस्टेन्ट प्रोफेसर साहित्य के पद पर (महाराज संस्कृत कालेज में) कार्य किया। आपके गुरुजनों में पं० श्री बिहारीलाल शर्मा का नाम स्मरणीय है। उल्लेखनीय शिष्यों में श्री कलानाथ शास्त्री, श्री रामनारायण चतुर्वेदी, श्री नारायण शास्त्री काङ्कर आदि प्रसिद्ध हैं।

आपकी गणना अच्छे कवियों में की जाती है। आपने 'श्री हरिभक्तचरितम्' नामक काव्य की रचना की है जो हिन्दी भावानुवाद सहित प्रकाशित हो चुका है। इसकी टीका आपके पुत्र डा० राधेश्याम शर्मा ने की है जो राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, श्रीगंगानगर में हिन्दी के प्राध्यापक थे, तथा सन् १९७९ में सम्पन्न साक्षात्कारों में राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर में हिन्दी के व्याख्याता के रूप में चुने गये हैं।

आपकी अन्य प्रकाशित रचनाओं का विवरण इस प्रकार है :—

१. भारती संदेशः (कविता) भारती पत्रिका, वर्ष ४, अंक ३
२. रासरहस्यम् (कविता) भारती, वर्ष १५, अंक ३
३. सेव्यताम्
४. 'सा माधुरी'—समस्यायें भारती वर्ष २०, अंक १
५. 'गोपिकाष्टकम्' भारती वर्ष २०, अंक ७
६. श्रीनिम्बार्काचार्यचरितम् भारती वर्ष २० अंक १
७. श्रीकल्याणकरुणाष्टकम् भारती वर्ष २१, अंक ७
८. भारतगीतम् संस्कृत रत्नाकर वर्ष २१, संचिका १
९. श्रीहरिव्यासदेवाचार्यः स्वरमंगला वर्ष २, अंक ३
१०. स्व० हरिशास्त्रिकृते श्रद्धाञ्जलयः भारती वर्ष २०, अंक ५
११. श्रीकेशवकाश्मीरिचरितम्
१२. श्रीभक्तराज व्रजलालबोहरा-चरितम्
१३. म० म० श्रीगिरिधरशर्माचतुर्वेदिमहाभागानां अभिनंदनग्रंथे—भावकुसुमांजलिः
१४. शिवरात्रि महोत्सवः (कविता)
१५. श्रीभट्टचरितम् (सर्वेश्वरपत्र, वृन्दावन)
१६. श्रीराधासर्वेश्वराचार्य श्रीजीमहाराज अभिनन्दनम्
१७. श्रीलक्ष्मणदुर्गाध्यक्ष श्रीसीताराम शरणाचार्य चरणाभिवादनम्
१८. श्रीचन्द्रशेखर शास्त्री अभिनन्दन ग्रन्थ—भावपुष्पांजलि
१९. श्रीविहारिस्मारिका—श्रीगुरुचरणैकविंशतिका
२०. श्रीकृष्णजन्माष्टमी—भारती

आपकी अप्रकाशित रचनाओं में—(१) श्री बांकेविहारीवन्दन, (२) श्री मारुतिवन्दना, (३) श्री परशुराम-देवाचार्यचरितम्, (४) श्रीश्यामचरणदासाचार्यचरितम्, (५) श्रीबिहारीदासत्यागीचरितम्, (६) श्रीरामकृष्णस्वामि-चरितम्, (७) श्रीहरिदासस्वामिवन्दना, (८) बिहारिशतकम् इत्यादि प्रसिद्ध हैं।

संस्कृत साहित्य के प्रति आपकी विशिष्ट सेवाओं को देखते हुये २८ अगस्त, १९७७ को राज्यस्तरीय संस्कृत दिवस समारोह के अवसर पर राजस्थान के राज्पाल महामहिम श्री रघुकुलतिलक ने आपको दुशाला समर्पित कर सम्मानित किया।

उल्लेखनीय अध्यापक एवं विख्यात कवि के रूप में संस्कृत–साहित्य के प्रति आपकी सेवायें स्मरणीय रहेंगी।

इन पंक्तियों के लेखक को भी आपसे साहित्याध्ययन का सौभाग्य मिला है। आप अभी भी साहित्य सर्जना में संलग्न हैं।

---

१११. श्री रामचन्द्र भट्ट

श्री भट्ट के पूर्वज गुजरात के मूल निवासी थे तथा भ्रमण करते हुए जयपुर आये थे। गुणग्राहक शासकों ने आपके पूर्वजों को राज्याश्रय प्रदान किया। निश्चित तो नहीं कहा जा सकता, परन्तु श्रुति परम्परा से यह ज्ञात हुआ है कि ये लोग अश्वमेघ याग के समय तथा उसके पश्चात् प्रचलित ८४ अग्निहोत्रों के अनुष्ठानकर्ताओं में एक थे। इसीलिए इनका मूल निवास स्थान जयपुर की ब्रह्मपुरी रहा है। ब्रह्मपुरी का निर्माण केवल इन समागन्तुक विद्वानों के निवासार्थ किया गया था।

श्री भट्ट का जन्म चैत्र शुक्ला नवमी संवत् १९४८ को ब्रह्मपुरी जयपुर में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा स्वतन्त्र रूप में हुई। इसके पश्चात् आपने महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर के नियमित छात्र के रूप में व्याकरणाचार्य परीक्षा संवत् १९७९ में उत्तीर्ण की। (१११–अ) आपके प्रधान गुरु श्री चन्ददत्त झा (राजगुरु तथा महाराज संस्कृत कालेज, के व्याकरण विभागाध्यक्ष) रहे हैं। प्रमुख शिष्यों में श्री रामदेव शर्मा, श्रीविशुद्धानन्द शर्मा, श्री मदनगोपाल शर्मा, पं० प्यारेलाल शर्मा, श्री घनश्याम दत्त आदि हैं। आपके सुपुत्र डा० श्री गंगाधर भट्ट हैं, जो सम्प्रति राजस्थान विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में वरिष्ठ व्याख्याता हैं।*

आपने सेवा निवृत्ति तक अलवर संस्कृत कालेज में अध्यापन किया, तथापि आपका जयपुर से ही सम्पर्क रहा है। आप साहित्य तथा दर्शनशास्त्र के भी विद्वान् थे। आपकी रचना "आत्म-दर्शन" अभी तक अप्रकाशित है, जिसमें लगभग ५०० श्लोक हैं। इनमें आध्यात्मिक विवेचन है। इसका विवेचन स्वतन्त्र रूप में तृतीय खण्ड (कृतित्व खण्ड) में किया जायेगा।

आपका देहान्त सन् १९६४ में हुआ। आप उल्लेखनीय विद्वानों की श्रेणि में परिगणनीय रहे हैं।

(१११–अ)—आचार्यपरीक्षोत्तीर्णच्छात्राणां नामादीनि—क्रमांक ४७—रामचन्द्र भट्टः—व्याकरणे तृतीय श्रेणि—संवत् १९७९।

* सन् १९७९ में आप प्रवाचक पद पर प्रतिष्ठित किये गए हैं।

११२. श्री रामनारायण चतुर्वेदी

आपके पितामह श्री बालचन्द्रजी चतुर्वेदी तथा पिता पण्डित श्री सूर्यनारायणजी चतुर्वेदी वैदिक के रूप में जयपुर नगर में विख्यात रहे हैं। श्री चतुर्वेदी का जन्म इसी ब्राह्मण परिवार में १ जनवरी, १९३१ को हुआ था। आपका प्रारम्भिक अध्ययन खाण्डल विप्र विद्यालय में हुआ। आपने शुक्लयजुर्वेदसंहिता का अध्ययन पितामह श्री बालचन्द्रजी चतुर्वेदी से किया था। सन् १९४२ से सन् १९५२ तक आप महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर के नियमित छात्र रहे तथा सन् १९५२ में राजस्थान शिक्षा विभाग, जयपुर से व्याकरणाचार्य की परीक्षा प्रथम श्रेणि से उत्तीर्ण की। पण्डित केदारनाथ ओझा आपके प्रधान गुरु थे। अन्य गुरुओं मे म० म० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, श्री पी० एन० पट्टाभिराम शास्त्री, पं० वृद्धिचन्द्रजी शास्त्री, श्री गोपीनाथ शास्त्री धर्माधिकारी, कथाभट्ट नन्दकुमार शर्मा आदि उल्लेखनीय है। आपने १९५४ मे वाराणसी से वेदाचार्य प्रथम श्रेणि में तथा १९६४ में दरभंगा से पूर्व मीमांसाचार्य की परीक्षा प्रथम श्रेणि मे उत्तीर्ण की। सन् १९४९ में आपको व्याकरण शास्त्री परीक्षा प्रथम स्थान प्राप्त करने के उपलक्ष मे स्वर्ण पदक से सम्मानित किया गया। इसी प्रकार सन् १९५० मे वाराणसी से यजुर्वेद शास्त्री परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त करने पर आप श्री रामप्रताप शास्त्री स्वर्ण पदक से सम्मानित किये गए थे। सन् १९५१ मे आपने मीमांसा शास्त्री परीक्षा भी प्रथम श्रेणि में उत्तीर्ण की। आपने संस्कृत के साथ ही अंग्रेजी परीक्षायें भी उत्तीर्ण की और १९६८ में सैकण्डरी (राजस्थान से), १९६९ में इंटर (भोपाल से) तथा शास्त्री अंग्रेजी सहित १९७० मे वाराणसी से उत्तीर्ण की। आपने साहित्यरत्न १९५२ ई० (सवत् २००९) में द्वितीय श्रेणि से उत्तीर्ण किया था।* आपने श्रीधर सस्कृत विद्यालय, ब्रह्मपुरी मे १९४७ से १९५७ तक १० वर्ष, श्री दादू महाविद्यालय में जुलाई, १९५७ से ९ फरवरी, १९५९ तक २ वर्ष तथा महाराज सस्कृत कालेज, जयपुर में १० फरवरी, १९५९ से १९ नवम्बर,

१९६७ तक ८ वर्ष अध्यापन किया। इस समय आप दरबार सस्कृत कालेज, जोधपुर मे प्राचार्य पद पर कार्य कर रहे है। आपने वैदिक संस्कृति प्रचारक संघ द्वारा सचालित वेदवेदांग रात्रि विद्यालय में २० जुलाई, १९६४ से १९ नवम्बर, १९६७ तक अवैतनिक प्राचार्य के रूप में कार्य किया। आपका आचार्य कक्षा तक का अध्यापन अनुभव १६ वर्ष तथा १० वर्ष का प्रशासनिक अनुभव है। विभिन्न शास्त्रीय विषयों के विद्वान् होने के कारण विभिन्न संस्थाओं ने आपको 'भागवतालकार', 'महामहोपदेशक', 'पुराण वाचस्पति' आदि उपाधियों से सम्मानित किया।

आपकी रचनाओं में 'वेदवाङ्मयविमर्श:' तथा वाल्मिकी रामायण के कुछ महत्त्वपूर्ण स्थलों की सारगर्भित व्याख्या है जो अभी अप्रकाशित है। वेदाध्ययनम् और वेदेषु राष्ट्रिया जागर्ति: शीर्षक लेख संस्कृत रत्नाकर (२२।३) व भारती (९।६) में प्रकाशित हुए है।

आपने सन् १९४२ में करौली के विख्यात कथावाचक पं० अर्जुनदत्तजी के पास रह कर कथावाचन का कार्य प्रारम्भ किया। जयपुर के धार्मिक क्षेत्र मे एक कथावाचक के रूप में आपका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

---

* सन् १९७२ में आपने वाराणसी से 'विद्यावरिधि' (पी–एच० डी० के समकक्ष) उपाधि प्राप्त की है।

११३. श्री रामभज सारस्वत

स्वर्गीय श्री सारस्वत जयपुर के संस्कृत साहित्येतिहास में पुरातनकालीन विद्वानों में उल्लेखनीय हैं। आप काशी के सुप्रसिद्ध विद्वान् भाष्यबुद्धचारी के पुत्र थे तथा महाराज रामसिंहजी द्वारा ससम्मान लाये जाकर महाराज संस्कृत कालेज के अध्यक्ष नियत किये गये थे। 'आत्मकथा और संस्मरण' में श्री चतुर्वेदीजी ने लिखा है—"आरम्भ में इस पाठशाला के अध्यक्ष श्री एकनाथजी मैथिल नियत किये गये थे, किन्तु कुछ वर्षों के अनन्तर ही महाराज रामसिंहजी काशी के सुप्रसिद्ध श्री विभवरामजी भाष्यबुद्धचारी के पुत्र श्री रामभजजी और शिष्य श्री शिवरामजी सारस्वत को अपने साथ जयपुर लिवा ले गये और श्री रामभजजी को ही संस्कृत पाठशाला का अध्यक्ष नियत कर दिया।" (पृष्ठ ४) (११३-अ) विद्यावाचस्पति श्री मधुसूदन झा ने आप से सिद्धान्तकौमुदी का अध्ययन किया था। (११३-आ) आपका जयपुर आगमन संवत् १९२५ अर्थात् सन् १८६८ में हुआ था। चूंकि आप श्री शिवरामजी शर्मा के साथ ही आये थे और श्री शर्मा १९२५ में जयपुर आये थे, ऐसा उल्लेख भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री ने किया है। (११३-इ) सबसे अधिक सबल प्रमाण है संस्कृत कालेज का प्राचीन रिकार्ड। माघ कृष्णा तृतीय संवत् १९२५ अर्थात् १ जनवरी, १८६९ को उपस्थिति पत्रकों में आपका नाम सर्वप्रथम है। आपका कार्यकाल जनवरी, १८६९ से ३० अप्रैल, १८९३ तक (२४ वर्ष) रहा है। राजवैद्य श्री कृष्णराम भट्ट ने अपने समकालीन विद्वानों में आपका सादर स्मरण किया है :— (११३-ई)

"आस्ते महाभाष्यमहाचमत्कृतिः स्फुरन्महा-व्याकृतिपाठिनां गुरुः।
सारस्वतो रामभजः स यस्य सखा सतीर्थ्यः शिवरामपण्डितः॥"

आपका उल्लेख संस्कृत कालेज के उल्लेखनीय प्राचार्य के रूप में किया जाता है। आप महाभाष्य आदि के प्रकाण्ड पण्डित होने के कारण उल्लेखनीय हैं।

आपका रचनात्मक कार्य उपलब्ध नहीं है।

(११३-अ) —वि० वा० श्री मधुसूदन ओझा जीवन परिचयात्मक लेख—ले० श्री चतुर्वेदीजी 'सुधा' वर्ष २ खंड १ संख्या १ श्रावण तुलसी संवत् ३०६ पृष्ठ ११२-११३।

(११३-आ)—वही—श्री चतुर्वेदी का उपर्युक्त लेख तथा श्री मधुसूदन ओझा का परिचय क्र० ९४।

(११३-इ) —जयपुरवैभवम्—भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री—पृष्ठ २४५—"१९२५ तमे त्रिंशे वा विक्रमवत्सरे श्रीमतामत्रागमनमभूदिति श्रूयते।" श्री शिवराम शर्मा गुलेरी का जीवन परिचय।

(११३-ई) —जयपुरविलास—पंचम उल्लास—पृष्ठ ५२—पद्य संख्या ४३।

११४. श्री रामभद्र मैथिल

श्री मैथिल विहार (मिथिला) प्रान्त के मूल निवासी थे तथा अलवर राज्य के गुरुपद पर सम्मानित थे। आपके पिता श्री चंचल झा एक अद्वितीय विद्वान् थे तथा सर्वप्रथम आप ही अलवर महाराज के शिक्षक तथा गुरु रहे थे। विद्यावाचस्पति मधुसूदनजी झा की धर्मपत्नी आपकी (श्री रामचद्र झा) की बहिन थी। यद्यपि श्री झा का स्थायी निवास अलवर में था, परन्तु आप अधिकांश समय अपने विद्वान् सम्बन्धी श्री मधुसूदनजी के पास ही बिताया करते थे। आप विद्वन्मण्डली में सम्मिलित होते थे तथा अनेक प्रकार की चर्चाओं में भी भाग लेते थे। महामहोपाध्याय पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ने "विद्यावाचस्पति पं० मधुसूदन ओझा" के लेख में आपका उल्लेख किया है। (११४–अ) आपको जयपुर के विद्वानों में इसलिए परिगणित किया है कि आपके संस्कृत रत्नाकर के सम्पादन व प्रकाशन मे भी सहयोग प्रदान किया था। इस पत्रिका के प्रारम्भिक अंकों में आपकी रचनायें प्रकाशित हुई हैं। उनका संकेत इस प्रकार दिया जा सकता है :—

(१) कल्पलतेव विद्या (समस्या)	संस्कृत रत्नाकर १।३	(१६०४ ई०)
(२) भवति विकृतिर्नैव महताम् (समस्या)	संस्कृत रत्नाकर १।३	(१६०४ ई०)
(३) न दोषा गणयन्ते मधुरवचां कापि कृतिभिः	संस्कृत रत्नाकर १।४	(१६०४ ई०)
(४) वर्षा मनः कर्षति (समस्या)	संस्कृत रत्नाकर १।५	(१६०४ ई०)
(५) नये न शौर्ये च व वसन्ति सम्पदः	संस्कृत रत्नाकर १।६	(१६०४ ई०)
(६) सतां माने म्लाने मरणमथवा दूरसरणम्	संस्कृत रत्नाकर १।७	(१६०४ ई०)
(७) नावश्यायैः पयसि सरसां दूयते पुण्डरीकम्	संस्कृत रत्नाकर १।१०	(१६०५ ई०)
(८) वासन्तिकाः वासराः	संस्कृत रत्नाकर १।१२	(१६०५ ई०)
(९) सूर्यबिम्बस्थः केतु (लेख) इत्यादि	संस्कृत रत्नाकर १।११	(१६०५ ई०)

एक समस्यापूर्ति रूपात्मक पद्य प्रस्तुत है :—

"नो वायुः सुरभिर्न वा किसलयं नो गुंजनं वालिना—
मारामेषु वनेषु कोकिलकुहूः कुत्रापि न श्रूयते।
अद्यत्वे विकलासुभिः पुनरहो ग्रन्थिज्वरे मानवै—
र्नीयन्ते कथमप्यमी विधिहतैर्वासन्तिका वासराः॥" सं० र० १।१२ (१६०५ ई०)

आपका पद्य रचना-पाटव श्लाघनीय माना जाता था।

---

११५. श्री रामप्रपन्न शर्मा

वर्तमान युग के साहित्यकारों में श्री रामप्रपन्न शर्मा का नाम उल्लेखनीय है। आप जयपुर निवासी पं० महादेव शर्मा के सुपुत्र हैं तथा आपका जन्म ३ अक्टूबर, १६१८ को जयपुर (हीदा की मोरी, श्रीधर सदन, जयपुर–३) में ही हुआ था।

(११४–अ)—उक्त लेख 'सुधा' पत्रिका वर्ष २ खण्ड १ पृष्ठ ११३।

आप महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर के नियमित छात्र रहे हैं। आपने राजगुरु एवं व्याकरण विभाग के प्राध्यापक पं० श्री चन्द्रदत्त जी झा के पास अध्ययन कर व्याकरणाचार्य परीक्षा प्रथम श्रेणि में उत्तीर्ण की तथा महाराणा भूपालसिंह स्वर्णपदक प्राप्त किया। आपने म० म० चतुर्वेदीजी से भी दर्शनशास्त्र का अध्ययन किया था। आपने साहित्याचार्य, वेदान्तशास्त्री आदि संस्कृत परीक्षाएँ तथा साहित्यरत्न (प्रयाग) व प्रभाकर (पंजाब) हिन्दी परीक्षायें उत्तीर्ण की हैं।

आपने आचार्य परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया। जयपुर राज्य के विभिन्न स्थानों में संस्कृताध्यापन ही आपका कार्य रहा है। आप के पास रहकर पढ़ने वाले अनेक शिष्य हैं जो यत्र-तत्र उच्च पदों पर भी आसीन हैं।

आप अपने विद्यार्थी जीवन से ही साहित्य रचना के प्रति जागरूक थे। आपकी रचनायें हिन्दी तथा संस्कृत दोनों भाषाओं के माध्यम से उपलब्ध होती हैं। आपके लेख अनन्त सन्देश, श्री वैष्णव सम्मेलन, संस्कृत रत्नाकर, भारती आदि हिन्दी एवं संस्कृत की पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। आपने संस्कृत रत्नाकर के भीलवाड़ा अंक (२२।१) में सम्मेलन की स्थायि-समिति कथा का विवेचनात्मक लेख लिखा है। भारती में प्रकाशित लेखों में—(१) लोकमान्यो तिलक : (१।२), (२) ईरानदेशः (१।५), (३) दीपावलीमहत्वम् (२।१), (४) नीतिमार्गकनामक-प्रवेशमार्गयो परिचयः (२।११), (५) श्रीरामस्य राज्याभिषेक-समयः (६।१) आदि बालोपयोगी सरल व सुबोधगम्य भाषा में लिखे गये लेख प्रसिद्ध हैं।

आपकी अभिरुचि "विशिष्टाद्वैतदर्शन" के मनन व चिन्तन में अधिक संलग्न है। यों आपने विद्यावाचस्पति पं० मधुसूदन झा के वैदिक विज्ञान की ओर अधिक रुचि होने के कारण उनके साहित्य का विशिष्ट अध्ययन किया है। (११५-अ)

आपके पद्य भी यत्र-तत्र अनेक पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। आप इस समय राजकीय पोद्दार उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, जयपुर में संस्कृताध्यापक हैं।*

---

११६. श्रीरामेश्वर प्रसाद शास्त्री दाधिमथ

महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर के भूतपूर्व व्याख्याता, व्याकरण विभाग, स्वर्गीय श्री शास्त्री व्याकरण-शास्त्र के अतिरिक्त साहित्य, न्याय, दर्शन, वैदिककर्मकाण्ड आदि विषयों के भी विद्वान् थे। आप कासालय अवटकंवारी दाधिमथ ब्राह्मण थे। आपका जन्म "श्रीसीताराम" नामक विख्यात वंश में आश्विन कृष्णा ९ संवत् १९७७ को डिग्गी के समीप विद्यमान निम्हेड़ा नामक ग्रामवासी पं० बालमुकुन्दजी मिश्र के यहाँ कनिष्ठ पुत्र के रूप में हुआ था। आपके पितामह पं० भरत मिश्र तथा प्रपितामह श्री सीताराम मिश्र थे। आप सभी विद्वान् व्यक्ति थे। आपके ज्येष्ठ भ्राता का नाम पं० जगदीश मिश्र था जिनके पुत्र पं० चण्डिकाप्रसाद हैं। (११६-अ)

(११५-अ)—यह परिचय लेखक द्वारा प्रदत्त सूचना पर आधारित है।

* सम्प्रति आप सेवानिवृत्त हैं। आपकी पुत्री श्रीमती लक्ष्मी शास्त्री शर्मा ने संस्कृत से एम. ए. परीक्षा उत्तीर्ण कर पं० कृष्णराम भट्ट के साहित्य पर पी.—एच. डी. हेतु शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया है।

(११६-अ)—आपका परिचय पं० चण्डिकाप्रसाद दाधिमथ के लेख—भारती १८।७ पर आधारित है। श्री दाधिमथ सम्प्रति महाराज संस्कृत कालेज में व्याकरण के प्राध्यापक हैं।

श्री शास्त्री का अध्ययन शेषावतार म० प० पं० श्री देवनारायण त्रिपाठी के उल्लेखनीय शिष्य महावैयाकरण पं० मुरारि मिश्र के सान्निध्य में बगड़ (रूंगटा) संस्कृत कालेज शेखावाटी में सम्पन्न हुआ था। आपने व्याकरण तथा साहित्य विषय से आचार्य परीक्षायें उत्तीर्ण की थीं। सर्वप्रथम आपने जयपुरस्थ सनातन धर्म संस्कृत विद्यालय में प्रधानाध्यापक के पद पर कार्य प्रारम्भ किया था। डा० मण्डन मिश्र शास्त्री आपके उल्लेखनीय शिष्य रहे हैं। यों महाराज संस्कृत कालेज में अध्ययन करते हुए इन पंक्तियों के लेखक को भी आपके सान्निध्य में रह कर व्याकरणशास्त्र के ज्ञानार्जन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। इसके पश्चात् आप संस्कृत कालेज के स्कूल विभाग में व्याकरणाध्यापक नियुक्त हुए और कालान्तर में पदोन्नत किये जाकर कालेज में व्याकरण के व्याख्याता बने। आपके रचनात्मक कार्यों में :—(१) 'व्याकरण सिद्धान्तकौमुदी' कारक प्रकरण की रत्नप्रभा टीका, (२) कुवलयानन्द की रसिक प्रिया टीका (अपूर्ण), (३) तर्कसंग्रह की ज्योतिष्मती टीका, (४) काव्यनिकुंजम्—कविताओं का संकलन, (५) भारतविभूतयः—राष्ट्रिय पुरुषों का जीवन-चरितात्मक ग्रन्थ, (६) वरुणसूक्त का हिन्दी अनुवाद, (७) उद्बोधकशतक—हिन्दी में, (८ अभिनवजयपुरवैभवम्—जयपुर वर्णन काव्य इत्यादि उल्लेखनीय हैं। आपके अनेक लेख तथा कवितायें संस्कृत रत्नाकार व भारती में प्रकाशित हुए हैं। आप अपने ग्राम में होने वाले एक शतचण्डी यज्ञ में सम्मिलित हुए थे और उस यज्ञ के आचार्य थे। यज्ञ के बीच जयपुर आते समय एक भयंकर ट्रक दुर्घटना में वैशाख शुक्ला सप्तमी संवत् २०१५ को आपका दुःखद अवसान हुआ। आप व्याकरणशास्त्र के मार्मिक एवं उद्भट विद्वान् थे।

---

११७. श्री लक्ष्मीनाथ शास्त्री दाधीच

श्री शास्त्रीजी का जन्म २५ जुलाई, १८८१ ई० को जयपुर नगर के दाधीच ब्राह्मण परिवार में हुआ था। (११७-अ) आपके पिता का नाम श्री गंगाविष्णु दाधीच (नांगल्या) था। सुप्रसिद्ध साहित्यशास्त्री पं० गोपीनाथ शास्त्री दाधीच, जिनका परिचय प्रस्तुत किया जा चुका है, (११७-आ) आपके चाचा थे। श्री गोपीनाथजी शास्त्री ने अपना वंश परिचय इस पद्य द्वारा प्रस्तुत किया है :— (११७-इ)

दाधीच काश्यपोऽभूज्जयपुरवसतिर्नन्दरामाभिधानो
मालीरामः सुतोऽस्याऽभवदमलमतिस्तस्य चास्तां सुतौ द्वौ।
गंगाविष्णुः पुरोऽभूद्हरिरितिरपरो ब्रह्मवित् कृष्णभक्तो
गोपीनाथाभिधो यो व्यरचयदमितानन्दनं ग्रन्थमेनम्॥"

इससे स्पष्ट है कि श्रीआनन्दराम आपके प्रपितामह, श्रीमालीराम पितामह, पं० गंगाविष्णु पिता व पं० गोपीनाथ शास्त्री पितृव्य थे। कहा जाता है कि आप जब गर्भस्थ थे, तब ही आपके पिताजी का स्वर्गवास हो गया था। आपका लालन-पालन, शिक्षा-दीक्षा सभी कुछ पितृव्य प० गोपीनाथ शास्त्रीजी ने किया था। आपने महाराज संस्कृत

(११७-अ)—लिस्ट आफ एजूकेशन आफिसर्स—संस्कृत कालेज, जयपुर—७ असिस्टेन्ट प्रोफेसर-क्रमांक १०—आसिस्टेन्ट प्रोफेसर साहित्य।

(११७-आ)—कृतिकार-खण्ड परिचय क्रमांक २४ पं० गोपीनाथ शास्त्री दाधीच।

(११७-इ)—"आनन्दनकाव्यम्" अप्रकाशित, पुरातत्वमन्दिर शाखा कार्यलय, जयपुर में प्राप्य।

कालेज, जयपुर में अध्ययन कर साहित्यशास्त्री परीक्षा संवत् १९५२ (१८९५ ई०) में प्रथम श्रेणि में उत्तीर्ण की थी। '(११७-ई) इसके पश्चात् आप साहित्य विभाग में व्याख्याता के पद पर कार्य करने लगे, जब आपके पितृव्य पं० गोपीनाथ जी शास्त्री सेवा-निवृत्त हुए। आपकी प्रथम नियुक्त २२ जुलाई, १९०३ को हुई थी। (११७-उ) आपने महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर में अनुमानतः ३६ वर्ष अध्यापन किया। आपके शिष्यों में पण्डित श्री नन्द कुमारजी कथाभट्ट, प० श्री नन्दकिशोरजी कथाभट्ट, पं० जगदीश जी शर्मा प्रभृति अनेक हैं। आपके गुरुओं में पण्डित कृष्ण शास्त्री द्राविड़ तथा पितृव्य पं० गोपीनाथ शास्त्री दाधीच का नाम विशेषतः उल्लेखनीय हैं।

आपकी समस्यापूर्तियां बड़ी मार्मिक होती थीं। कुछ समस्यायें संस्कृत रत्नाकर में प्रकाशित हुई हैं। उदाहरणार्थ कुछ प्रस्तुत हैं :—

१) "वित्तोपार्जनवासनासु निरतं शं याति नो यत् क्वचित्
त्यक्त्वा श्रीपतिपादपद्मशरणं यत्सर्वदा भ्राम्यति।
यल्लोके बलवत्प्रमाथि विषयासक्तिं परामुद्वह-
च्चेतश्चंचलमीदृशं वद सखे! कस्तं निरोद्धुं क्षमः॥"

(संस्कृत रत्नाकर—२।२, फरवरी, १९३४)

२) प्रागल्भ्येन युतातिरम्यपदविन्यासेन संशोभिता
निर्दोषा सरसा सुलक्षणयुता चित्तप्रमोदावहा।
सालंकारगुणा सुवर्णसुषमाविभ्राजमाना सदा
साध्वी योषिदिव प्रशस्तसुकवेर्वाणी समुज्जृम्भताम्॥" (संस्कृत रत्नाकर ३।२)

कविशिरोमणि भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री ने आपका उल्लेख इस प्रकार किया है :—

"राजकीयविद्यालयमध्ये काव्यशास्त्रमध्ये जयते यः।
विविधोपायसमाहृतलक्ष्मीर्लक्ष्मीनाथबुधो ह्यवसेयः॥"

(जयपुरवैभवम्—पृष्ठ २७०—पद्य ९०)

आपने अपने पितृव्य पं० श्री गोपीनाथ शास्त्री दाधीच के प्राचीन व उनके द्वारा रचित संग्रहात्मक व व रचनात्मक कार्य को सुव्यवस्थित रूप से सुरक्षित रखा था। ये ही ग्रन्थ राजस्थान प्राच्य विद्या, प्रतिस्ठान जोधपुर की शाखा जयपुर में आपके नाम से संग्रहीत हैं। इस प्रकार आप प्राचीन पुस्तकालय के संरक्षक व कुशल अध्यापक के रूप में आज भी स्मरणीय हैं।

(११७-ई)—शास्त्रिपरीक्षोत्तीर्णच्छात्राणां नामादीनि—क्रमांक २०—साहित्ये—१९५२ सं०।

(११७-उ)—लिस्ट ऑफ एजूकेशनल आफिसर्स—करेक्टेड अपटू १।६।३५—संस्कृत कालेज, जयपुर, ७ असिस्टेन्ट प्रोफेसर—क्रमांक १०—प्रथम नियुक्ति २२ जुलाई, १९०३ ई०।

११८. श्री लक्ष्मीनाथ शास्त्री द्राविड़

श्री शास्त्रीजी के पूर्वजों का आदिम निवास मद्रास प्रान्त था। किसी कारण वश वे लोग मद्रास छोड़कर उत्तरभारत में सर्वप्रथम वाराणसी आये। यहाँ आप लोग अनेक वर्षों तक रहे। महाराज सवाई रामसिंह द्वितीय आपके पितामह को ससम्मान जयपुर लिवा लाये थे। उनका नाम था पं० श्री काशीनाथ शास्त्री द्राविड़। आपके दो पुत्र थे—(१) पं० रामनाथ शास्त्री (श्री अन्नाजी), (२) पं० कामनाथ शास्त्री (श्री मन्वाजी)। (श्रीरामनाथ शास्त्री के पुत्र हमारे चरितनायक श्रीलक्ष्मीनाथ शास्त्री थे, जिनका जन्म १९०८ संवत् में हुआ था। आप ब्रह्मपुरी जयपुर में रहते थे। आप जन्म से ही अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि थे। आपको सुप्रसिद्ध वैयाकरण विद्वान् पं० श्री बाल शास्त्री के शिष्य होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था तथा भारत प्रसिद्ध स्वर्गीय श्री तात्या शास्त्री, पं० श्री दामोदर शास्त्री, पं० श्री गोविन्द शास्त्री, म० म० शिवकुमार मिश्र प्रभृति विद्वानों के साथ अध्ययन का सौभाग्य भी मिला। आपने व्याकरणशास्त्र का पूर्ण अध्ययन संवत् १९३० में काशी में रह कर ही समाप्त किया। उसके पश्चात् आप जयपुर लौट आये। जयपुर लौटने पर आपको जयपुर राज्य द्वारा प्रदत्त ग्रामादि जागीर को प्राप्त करने के लिए न्यायालय की शरण लेनी पड़ी, क्योंकि आपके पितृव्य पं० कामनाथ शास्त्री ने सम्पूर्ण सम्पत्ति को अपने अधिकार में कर लिया था। यद्यपि आपकी इच्छा नहीं थी कि अभियोग चलाया जाय, परन्तु जीविका व अधिकार प्राप्ति की दृष्टि से यह अनिवार्य था। फिर भी आपने अपना अध्यनाध्यापन नियमित रखा।

महाराज रामसिंहजी ने आपको पं० श्री राजीवलोचन ओझा द्वारा लिखे गये "धर्मचन्द्रोदय" ग्रन्थ की पूर्ति के लिए आदेश दिया था और आपने उसे परिपूर्ण किया। इसका उल्लेख राजवैद्य श्रीकृष्णराम भट्ट ने अपने 'जयपुरविलास' काव्य (पंचम उल्लास—पृ० ५२ पद्य ४१) में किया है। आपके इस कार्य में सहयोगी थे पं० श्री कृष्ण शास्त्री द्राविड़। वह पद्य है :—

"राजीवलोचनबुधेन समस्तशास्त्राण्यालोच्य रामवचसाऽरचि धर्मचन्द्रः।
याभ्यामपूरि स ततोऽन्विह कृष्णलक्ष्मीनाथौ बुधौ कथय कस्य न संमतौ तौ॥"

आप मोदमन्दिर नामक धर्मसभा के सम्मानित सदस्य थे। जब पं० हरिदास शास्त्री संस्कृत निदेशक बने तो उन्होंने आपको संवत् १९५० में श्री रामभजजी सारस्वत के दिवंगत होने पर उनके स्थान पर संस्कृत कालेज, जयपुर का प्रिंसिपल नियुक्त किया। आपने प्राचार्यत्व काल में संस्कृत कालेज को सुव्यवस्थित एवं परिष्कृत किया, जिसकी ख्याति सम्पूर्ण भारतवर्ष में व्याप्त हो गई और यह कालेज दूसरी काशी के नाम से विख्यात हुआ। तत्कालीन पाठ्यप्रणाली का संशोधन कर परीक्षा प्रणाली प्रारम्भ करना आपका महत्वपूर्ण कार्य था। इससे पूर्व परीक्षायें नहीं होती थीं। आपने ही सर्वप्रथम पाठ्यक्रमानुसार श्रेणि विभाजन किया। अध्यापन की शैली में भी पर्याप्त परिवर्तन किया। परिणामस्वरूप शास्त्री और आचार्य दो कक्षायें बनाई गई। संवत् १९४६ में श्री रामचन्द्र शर्मा (गणिताध्यापक) ने शास्त्री में ज्योतिष विषय लेकर सफलता प्राप्त की। इसके पश्चात् पं० हरदत्त ओझा, पं० बदरीनाथ शास्त्री गौड़, स्वामी लक्ष्मीरामजी वैद्य, पं० लक्ष्मीनाथजी दाधीच प्रभृति विद्वानों ने विभिन्न विषयों में शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की। सर्वप्रथम आचार्य परीक्षा उत्तीर्ण करने वाले व्यक्तियों में स्वामी लक्ष्मीरामजी का नाम उल्लेखनीय है, जिन्होंने संवत् १९५२ में आयुर्वेदाचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण की। उस वर्ष स्वामी जी ही आचार्य परीक्षा में सम्मिलित होने वाले छात्र थे।

आपके समय इस कालेज में अनेक योग्य विद्वान् अध्यापन कार्यरत थे, जिन्होंने भारत विख्यात अनेक विद्वानों को जन्म दिया। इन विद्वानों में म० म० पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, पं० कन्हैयालाल शास्त्री न्यायाचार्य, राजगुरु पं० चन्द्रदत्त ओझा, पं० दुर्गाप्रसाद गौड़, प्राणाचार्य पं० लक्ष्मीराम स्वामी साधु, कविशिरोमणि भट्ट

श्री मथुरानाथ शास्त्री आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। महाराज कालेज, जयपुर में संस्कृत के व्याख्याता श्री सूर्यनारायणजी व्याकरणाचार्य, पं० श्री मदनलालजी शास्त्री प्रश्नवर, गवर्नमेन्ट कालेज, अजमेर के संस्कृत विभागाध्यक्ष एवं म० म० पं० शिवदत्त शास्त्री दाधिमथ के पुत्र पं० भवदत्त जी शास्त्री ने भी आपसे अध्ययन किया था। आपने कुछ दिनों महाराजा कालेज में संस्कृताध्यापन किया था। तत्कालीन विशिष्ट व्यक्तियों में जयपुर राज्य के भूतपूर्व प्रधान सचिव पं० ईशान चन्द्र मुकर्जी, श्री अविनाशचन्द्र सेन, श्री भगवानदास प्रधान सचिव आदि अनेक व्यक्ति आपके शिष्य थे। आप व्याकरण के अतिरिक्त न्याय, धर्मशास्त्र आदि अनेक विषयों के प्रकाण्ड पण्डित थे।

आपने अपने अध्यक्षत्व काल में अनेक संस्कृत पाठ्यपुस्तकों का प्रणयन किया था, जिसमें—(१) भारतीयेति-वृत्तसारः तथा (२) प्रवेशिकापाठः प्रसिद्ध हैं। प्रथम रचना चार भागों में प्रकाशित है, जिसमें संस्कृत साहित्य का इतिहास संस्कृत माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। आपने जयपुर राजवंश का इतिहास भी संस्कृत में लिखा था, जिसकी प्रतिलिपि भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री ने की थी। यह आदेश महाराज माधवसिंह जी द्वितीय ने दिया था। इसके प्रथम भाग में सूर्यवंश से लेकर पौराणिक शासन तक का विवेचन आपने लिखा था। इस ग्रन्थ का मध्य भाग पण्डित श्री कृष्ण शास्त्री द्राविड़ ने तथा अन्तिम भाग म० म० श्री दुर्गाप्रसाद द्विवेदी ने लिख कर देने का निश्चय किया था। नहीं कहा जा सकता कि इस विशाल ग्रन्थ का लेखन पूर्ण हो सका था अथवा नहीं। यह ग्रन्थ सम्प्रति अनुपलब्ध है।

कविशिरोमणि भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री ने आपके घर जा कर सिद्धान्तकौमुदी, मनोरमा, परिभाषेन्दुशेखर, शब्देन्दुशेखर, वैयाकरणभूषण, महाभाष्य आदि व्याकरण के दुरूह ग्रन्थों का अध्ययन किया था। श्री भट्ट ने अपने अध्ययनकाल में आपको उक्त ग्रन्थों की प्रतिलिपियां भी की थीं। यद्यपि आपके ग्रन्थ इस समय उपलब्ध नहीं हैं, फिर भी श्री भट्ट द्वारा किया गया उल्लेख इस सम्बन्ध में प्रामाणिक है। किसी ग्रन्थ का एक पद्य संभवतः जयपुर के इतिहास का ही हो, श्री भट्ट ने स्मरण शक्ति के आधार पर प्रस्तुत किया है, वह 'जयपुरवैभवम्' नागरिकवीथी—सुधीचत्वरः—पृष्ठ २४० पर अंकित है जो यहां उद्धृत है :—

"आसीदसीमसौभाग्यनिधिर्विधि वाऽपरः।
आद्योऽ य नरसर्गस्य नाम्ना वैवस्वतो मनुः॥"

आपको शिवस्तोत्रों में "स्तुति कुसुमांजलिः" सर्वप्रिय थी। जब आप अध्ययन या अध्यापन समाप्त किया करते थे, यह पद्य पढ़ा करते थे :—

"यस्य शस्यमहसो निरर्गलं योगमाप्य चरणाब्जरेणुभिः।
अद्भुतां दधति नीरजस्कतां तं जगत्पतिमुमापतिं नुमः॥"

जिस किसी पर आपकी कृपा हुई, वह विद्वान् होकर ही निकला। भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री के वैदुष्य एवं प्रतिभा विस्तार का सम्पूर्ण श्रेय आपको ही था। न केवल भट्टजी ही, अपितु म० म० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, पं० श्री सूर्यनारायणजी व्याकरणाचार्य तथा राजगुरु चन्द्रदत्त ओझा की उद्भट प्रतिभा आपकी ही देन थी। कविशिरोमणि भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री ने जयपुर के उल्लेखनीय विद्वानों में सर्वप्रथम आपका ही स्मरण किया है :—

"येषामाधिपत्ये पाठशाला पाठशालाऽभवत्पाण्डित्येऽद्वितीयांस्तान्न कीर्तयन्प्रयस्यामि!
शब्दशास्त्रशैली परिशोधकानधिकतमं जयपुरशिक्षाप्रतिबोधकान् वदिष्यामि।
वात्सल्यानुरक्तशिष्यकृतपरिचर्यान् सदा मन्त्रशास्त्रधुर्यान् गुरुवर्यान् वरिवस्यामि
नित्यमेव निर्मलनिसर्गिणो निपुणगणे स्वर्गिणोऽद्य लक्ष्मीनाथशास्त्रिणो नमस्यामि॥"

आपने संस्कृत कालेज के प्राचार्यत्व का कार्य १ मई, सन् १८९३ से ३१ मार्च, १९०७ तक किया और इसके पश्चात् आपने विश्राम ग्रहण किया। आप अनेक सुन्दर पद्यों की रचना भी किया करते थे। संस्कृत रत्नाकर के प्राचीनतम अंकों में आपका एक स्तोत्र मातृकास्तुति के नाम से प्रकाशित है, जिसमें सभाष्य स्तुति का एक उद्धरण यहां प्रस्तुत है :—

"जय जय देवि, परापररूपिणि जय जय जगतां जनयित्रि!

जय जय लीलाभासितसकले जय जय सर्वाश्रयरूपे। ...." इत्यादि।

आपकी विद्वत्ता का परिज्ञान रचनात्मक कार्य के विश्लेषण से सिद्ध है।

११९. श्री लक्ष्मीराम वैद्य (प्राणाचार्य)

आयुर्वेदमार्तण्ड स्वामी श्री लक्ष्मीरामजी का जन्म श्रावण कृष्णा षष्ठी मंगलवार, संवत् १९३० को जयपुर के समीपस्थ मांग्यास नामक एक साधारण ग्राम में गौड़ ब्राह्मण परिवार में हुआ था। आपके पूज्य पिता का नाम

पं० भूरामलजी था, जो एक साधारण स्थिति के व्यक्ति थे। आपकी विलक्षण प्रतिभा के लक्षण बाल्यकाल में ही प्रकट होने लग गये थे। संयोग की बात थी, आप की माता के साथ आप किसी मेले के अवसर पर जयपुर आये थे और आपकी माता तपोनिष्ठ महात्मा श्री चन्दनदासजी साधु के दर्शनार्थ गई थी। महात्माजी सफल चिकित्सक तथा दादू सम्प्रदाय के आचार्य थे।

आप अरिष्टज्ञान के विशेषज्ञ तथा विद्वान् व्यक्ति थे। आपको देखते ही महात्माजी ने आपकी असाधारणता को पहचान कर माता से आपकी याचना की। ममता और वात्सल्य स्नेह से आप्लावित माता ने प्रारम्भ में तो कुछ हिचकिचाहट प्रदर्शित की, किन्तु विशेष आग्रह पर आपको महात्मा चन्दनदासजी के चरणों में समर्पित कर दिया। (११९-अ)

आपका नाम लच्छीराम था। ७१ वर्ष की अवस्था में अपने सम्प्रदाय की दीक्षा देकर स्वामी चन्दनदासजी ने आपको अपना प्रधान शिष्य घोषित किया। श्री गणेशजी मूतनी वालों ने आपका अध्ययन प्रारम्भ किया। वे सारस्वत पढ़ाया करते थे। श्री चन्दनदासजी ने अपने जीवनकाल में आपको अपना उत्तराधिकारी बनाया तथा स्वामी गोरधनदासजी को निरीक्षक नियुक्त कर वैशाख कृष्ण तृतीया सम्वत् १९४० को ब्रह्मलीन हो गये। (११९-आ)

पं० श्री विजयचन्द्रजी शर्मा आपको संस्कृत पढ़ाने लगे। १२ वर्ष की आयु तक आप घर पर ही पढ़ते रहे। १३वें वर्ष में प्रवेश करते ही आपने पं० श्री गंगाबक्सजी व्यास वैद्यराज के पास आयुर्वेद पढ़ना प्रारम्भ कर दिया। श्री व्यासजी के पुत्र पं० माधवलालजी आपके सहाध्यायी बन गए और १५वें वर्ष में आपने सम्वत् १९४५ में संस्कृत कालेज के प्रवेशिका विभाग में प्रवेश प्राप्त किया। आप सारस्वतचन्द्रिका वाले विभाग के छात्र थे। प्रवेशिका उत्तीर्ण करने के पश्चात् सभी विद्वानों ने आपकी प्रतिभा से प्रभावित होकर अपने विषय में प्रवेश प्राप्त कराने की चेष्टा की, परन्तु राजवैद्य श्री कृष्णराम भट्ट ने आपको आयुर्वेद में प्रविष्ट करा दिया। श्री भट्ट स्वामी चन्दनदासजी के विद्यार्थी रह चुके थे और गुरु ऋण को चुकाना चाहते थे। १७वें वर्ष की आयु में आपने आयुर्वेदोपाध्याय प्रथम श्रेणि में उत्तीर्ण की। कलकत्ते के कविराज विजयरत्न सेन आपके परीक्षक थे, जिन्होंने प्रसन्न होकर सटीक वाणभट्ट की पुस्तक पारितोषिक रूप में भेजी।

उपाध्याय परीक्षा का प्रमाणपत्र व पारितोषिक प्रदान करने के लिये एक विशेष उत्सव का आयोजन किया गया। संस्कृत शिक्षा के निदेशक श्री हरिदास बाबू ने पारितोषिक प्रदान किया। इस सभा के सभापति राज्य के प्रधान अमात्य पं० कान्तिचन्द्र मुकर्जी थे। दो वर्ष अध्ययन कर आपने सम्वत् १९५० में भिषग्वर परीक्षा उत्तीर्ण की। स्वयं गुरु श्री कृष्णराम भट्ट ने आपके सम्मान में निम्नलिखित पद्य उपस्थित किया था :—

"अश्रौषीद् यः सटीकं दुरधिगमतया सुश्रुतं सुश्रुतं यत्
चक्रव्याख्यानवक्त्रामलभत चतुरंचारकीयां चिकित्साम्।
यो हेमाद्रिप्रतीपाशयमिह घटते वाग्भटाब्धिं तरीतुम्
लक्ष्मीरामाय तस्मै बुधपरिषददात् वैद्यवर्यप्रशस्तिम्॥"

भिषग्वर परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् आपने भिषगाचार्य कक्षा में प्रवेश लिया। आप ही सर्वप्रथम

(११९-अ)—श्री स्वामीजी का चरित्र—ले० श्री मंगलदास स्वामी—पृष्ठ ६-७।
(११९-आ)—श्री स्वामीजी का जीवनचरित्र लेखक श्री मंगलदास स्वामी—पृष्ठ १२।

छात्र हैं, जिन्होंने उक्त कालेज से आचार्य परीक्षा सर्वप्रथम उत्तीर्ण की। (११६–इ) इसी के साथ आपने श्री कृष्णराम भट्टजी से काव्य व साहित्य का अध्ययन किया और धर्मशास्त्र व न्याय का अध्ययन पं० जीवनाथजी झा से तथा महात्मा श्री महानन्दजी में सांख्यतत्वकौमुदी का अध्ययन किया। आचार्य परीक्षा उत्तीर्ण होने पर पुनः आपके गुरुजी ने आपका निम्नलिखित पद्य से सम्मान किया :—(११६–ई)

"यः प्राचां भिषजां विवेद महितास्तिस्त्रोऽर्पिताः संहिताः
साहित्यं च सधर्मशास्त्रमभितः स्वच्छन्दवाक् छन्दसि।
लक्ष्मीरामसुधीः स एष भिषगाचार्यप्रशस्तिं वहन्
अद्यास्माभिरुदुत्सवेन मनसा ख्यातिं परां लम्भितः॥"

आपका अध्यापनकाल भी अध्ययन काल की तरह बहुत ही प्रभावशाली रहा है। सम्वत् १९५४ में गुरु श्री कृष्णराम भट्ट के दिवंगत होने पर आप उक्त कालेज में उनके ही स्थान पर आयुर्वेद व्याख्याता के रूप में नियुक्त हुए। आपने सर्वप्रथम आयुर्वेद की दो कक्षायें स्थापित कीं। एक उपाध्याय कक्षा और दूसरी शास्त्री-आचार्य की सम्मिलित कक्षा। उपाध्याय कक्षा के अध्यापक के रूप में स्वर्गीय गुरुदेव के पुत्र श्री गंगाधर भट्ट की नियुक्ति हुई। आपने ३६ वर्ष तक अध्यापन किया। आपने अध्यापन कार्य आयुर्वेद की सेवा-भावना से स्वीकृत किया था। आयुर्वेद के जो ग्रन्थ उस समय उपलब्ध थे, वे परिपूर्ण नहीं थे। जो मुद्रित थे, वे बहुत अशुद्ध थे। आपने प्रयास कर उनका संशोधन किया और सम्पादन के साथ उन्हें प्रकाशित करवाया। आयुर्वेद की शिक्षा का क्रम सर्वप्रथम जयपुर में ही प्रारम्भ हुआ था। इस व्यवस्थित रूप का श्रेय आपको ही था। आप भारतवर्ष के अग्रगण्य चिकित्सकों में उल्लेखनीय थे। आपके विश्राम ग्रहण करने पर संस्कृत रत्नाकर का विशेषांक 'आयुर्वेदांक' प्रकाशित किया गया, जो आपको भेंट किया गया।

चिकित्सा के क्षेत्र में आपकी एक विशेषता उल्लेखनीय है। आप प्रतिरोधी चिकित्सा नहीं किया करते थे। किसी बात को विपरीत गुणधर्म वाली वस्तु से दबा दिया जाय, इसे आप उचित नहीं समझते थे। आप दोषापहरण तथा दोषदमन के साथ-साथ दोषानुबन्ध भी न रहने दिया जाय, इसी को पूर्ण चिकित्सा मानते थे। यही कारण था कि आपकी चिकित्सा लम्बी चलती थी, परन्तु रोग जड़मूल से नष्ट हो जाता था।

सम्मान व उपाधियाँ

कविराज श्री द्वारकानाथ सेन ने आपकी विचक्षण प्रतिभा देखकर आपको 'वैद्यरत्न' की उपाधि प्रदान की थी। इसी प्रकार चरक ग्रन्थ की 'जलपकलपतरु' नामक टीका के लेखक कविराज पं० गंगाधरजी के परमशिष्य श्री परेशनाथजी ने उपर्युक्त ग्रन्थ की एक प्रति और एक प्रमाण पत्र प्रदान किया था। यह पुस्तक दुष्प्राप्य थी। आयुर्वेद महामण्डल नामक प्रमुख संस्था के कलकत्ता सम्मेलन में आप सभापति थे तथा आपके भाषण से पूर्णतः चमत्कृत होकर आपको बहुमान पुरस्सर 'आयुर्वेदमार्तण्ड' की उपाधि से सम्मानित किया गया था। बम्बई के प्रभुराम आयुर्वेदिक कालेज के संचालकों व विशिष्ट वैद्य, डाक्टरों आदि ने मिल कर आपको 'प्राणाचार्य' की पदवी से विभूषित किया। बूंदी नरेश द्वारा किया गया आपका सम्मान प्रथम तथा जयपुर नरेश महाराज माधवसिंहजी द्वारा किया गया सम्मान द्वितीय स्थान पर अंकनीय है। आप बीकानेर नरेश के भी पारिवारिक वैद्य थे।

(११६–इ) —आचार्य-परीक्षोत्तीर्णच्छात्राणां नामदीनि—क्रमांक १—श्री लक्ष्मीराम साधुः।
(११६–ई) —श्री स्वामीजी का जीवनचरित्र—लेखक श्री मंगलदास—अध्ययन—पृष्ठ १७।

रचनात्मक कार्य

एक कुशल चिकित्सक होने के साथ ही आप साहित्य रचना भी वहुत उत्तम किया करते थे। यद्यपि आपका कोई मौलिक ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है, फिर भी कलकत्ता सम्मेलन के सभापति के रूप में दिया गया आपका भाषण एक लघुकाय ग्रन्थ से कम नहीं है। इस भाषण में आपकी रचना शैली तथा पदार्थ विवेचना का ढंग सरलता से समझा जा सकता है। आपकी दूसरी रचना सिद्धभैषजमणिमाला की टिप्पणी है। आप आवश्यकता से अधिक एक भी अक्षर अधिक लिखना उचित नहीं समझते थे। प्रस्तुत मणिमाला का यह रूप स्वामीजी के द्वारा ही परिष्कृत है। आपने गुरुजी के आदेश से ही उनकी आयुर्वेद विषयक रचनाओं को ग्रन्थ रूप में उपस्थित किया था। इनके अतिरिक्त आप अनेक स्वतन्त्र पद्य रचना भी किया करते थे। यों लगभग दस पद्य मणिमाला में उपलब्ध हैं। नौ पद्य सन् १९१३ में लार्ड हार्डिज की स्वास्थ्य कामना के लिये आयोजित गोविन्ददेवजी के मन्दिर की सभा में प्रस्तुत किये गए थे और पांच पद्य एडवर्ड सप्तम के सिंहासनारूढ़ होने के समय आयोजित उत्सव में। इसी प्रकार सात पद्य आयुर्वेद महामण्डल के सभापति पद से दिये गये भाषण के अन्त में हैं। अन्य कई पद्य भी इतस्ततः उपलब्ध होते हैं। कुछ पद्य आपके वैदुष्य को प्रतिभासित करने के लिये प्रस्तुत किये जा रहे हैं :—(११९-उ)

(१) "वृन्दारकवृन्दादृतचरणं वृन्दारण्ये विहरन्तं
मानवकुलदावानलदानवदुष्टकुलानि प्रहरन्तम्।
अम्भोदाधिपजम्भारिश्रमवारणकारणकुरुविन्दं
वन्दामो नन्दात्मजमेनममन्दानन्दम् गोविन्दम्॥"

(२) "आग्नेयास्त्रजवेदनामनुभवन् यो दुःसहां श्रीमता
क्ष्माधौरेयपरीक्षणं विदधता नायासमुत्तारितः।
तं भूयोऽधिकमेधमानमभितः संगीतनीतिच्छटां
हार्डिजं प्रविलोक्य नीरुजभजश्लाघ्यं प्रमोदामहे॥"

(३) "आसीद् दादुमहर्षिदर्शितपथे संजात-दीक्षाक्रम-
श्छन्दःशास्त्रविचक्षणः सुभिषजामग्रेसरश्चन्दनः।
तेनाय परिलालितो निजसुत-प्रेम्णाऽप्तविद्योदयो
लक्ष्मीरामशिशुस्सदैव विदुषां भूयात् कृपाभाजनम्॥"

सामान्य जनता के उपयोग के लिये आपने 'धन्वन्तरि औषधालय' की स्थापना आषाढ कृष्णा द्वितीया सम्वत् १९७६ में जयपुर में की थी। इसमे तीस सहस्र के लगभग आर्थिक सहायता प्रदान की थी। आपके ही प्रयास से ज्येष्ठ शुक्ला दशमी सम्वत् १९७७ को 'दादू महाविद्यालय' नामक संस्था का शुभारम्भ किया गया। आपने अपनी सम्पत्ति का एक ट्रस्ट भी वनाया। आप आयुर्वेद व संस्कृत अध्ययन करने वाले छात्रों को छात्रवृत्तियां भी प्रदान किया करते थे। आपके उत्तराधिकारी स्वामी श्री जयरामदास (परिचय क्रमांक ५०) वैद्य भी आपके पदचिह्नों पर कार्य करते हुए जयपुर नगर में यशस्वी चिकित्सक व कुशल अध्यापक वने। आपने श्रावण कृष्णा अष्टमी सम्वत् १९९६ को महाप्रयाण किया।

(११९-उ)—श्री स्वामीजी का जीवनचरित्र—लेखक श्री मंगलदास स्वामी—पृष्ठ ४३-४४।

कविशिरोमणि भट्ट श्री मथुरानाथजी शास्त्री ने आपका स्मरण निम्नलिखित दो पद्यों द्वारा किया है :—(११९–ऊ)

(१) "आयुर्वेदसंहितासु मार्मिकः प्रमितवचा धार्मिकः समस्तसाधुलोकैरपि शस्यते
भारते चिकित्साकर्मचतुराणामन्यतमश्छन्दोविचिकित्सा विदाममुना निरस्यते ।
मंजुनाथ शिष्यगणघोषितविपुलयशा धीरशान्तसत्यब्रह्मचारी वरिवस्यते
नामी वैद्यपण्डितेषु चामीकरतुल्यतनुः स्वामी स हि लक्ष्मीरामसुकृती प्रशस्यते ।।"

(२) "अव्याजं बुधसमुदये समयमवेक्ष्य ददाति ।
आर्थिकसाहाय्यं सदा सोयं स्वामी भाति ।।
सोयं स्वामी भाति संदधत्सर्वान् सुधियः ।
औषधजातममूल्यमेव दीनेषु दिशति यः ।।
विद्यालयमुपरोप्य चोन्नयन् स्वामिसमाजम् ।
लक्ष्मीरामस्वामिवरः श्लाघ्योऽस्त्यव्याजम् ।।"

आप अपने समय में कुशल अध्यापक एवं प्रसिद्ध चिकित्सक के रूप में विख्यात रहे हैं ।

---

१२०. पण्डित श्री लल्लूराम ज्योतिषी

पण्डित श्री गोकुलचन्द्रजी राजज्योतिषी के दो पुत्र थे—(१) पंडित श्री लल्लूरामजी तथा (२) पं० श्री मुकुन्दरामजी । आपका मूल निवास स्थान जोधपुर राज्यान्तर्गत मेड़ता नगर था । आप वहीं से जयपुर आये थे । जिस समय ज्योतिषशास्त्र में शिथिलता व्याप्त हुई और प्राचीन गणित के अनुसार उदय-अस्त, ग्रहण आदि की गणित में स्पष्ट अन्तर दिखाई देने लगा, तब लोगों की ज्योतिषशास्त्र में अश्रद्धा उत्पन्न होने लगी । पं० श्री लल्लूरामजी ने जो श्री लालचन्द्र के नाम से भी प्रसिद्ध थे और अपने समवयस्कों एवं शिष्यों में 'लालूजी महराज' के नाम से विख्यात थे, दक्षिण भारतस्थ श्री केतकर बापूजी से मिले और उनसे इस सम्बन्ध में बातचीत की । उनसे नवीन गणित का ज्ञान प्राप्त कर जब जयपुर लौटे तो महाराज माधवसिंह द्वितीय से आपकी भेंट हुई । महाराज ने दूरवीक्षण यंत्र द्वारा सूर्य के उदय-अस्त और ग्रहण आदि का जब प्रत्यक्ष दर्शन किया और आपकी गणित को सत्य माना, तब आपको उन्होंने नवीन सारणी निर्माण का आदेश दिया । यह सारणी दृक् पक्ष की गणित पर आधारित थी । महाराज ने आपको सुप्रसिद्ध ज्योतिष यन्त्रालय का अधीक्षक नियुक्त किया । इसके पश्चात् आपके पुत्र व पौत्रादि पं० श्री कन्हैयालालजी द्विवेदी व पं० श्री व्रजमोहनजी द्विवेदी आदि भी उक्त पद पर नियुक्त होते रहे । आपने संस्कृत के विद्वान् पं० श्री मगनीरामजी श्रीमाली से अध्ययन किया था । आपके प्रमुख शिष्यों में जयपुर के सुविख्यात ज्योतिषी पं० लहरीजी तथा राजज्योतिषी एवं पंचांग कर्त्ता पं० नारायणजी श्रीमाली का नाम उल्लेखनीय है । आपका व्यक्तित्व इतना आकर्षक था कि एक बार परिचय होने के पश्चात् वह

(११९–ऊ)—जयपुरवैभवम्—नागरिकवीथी—सुधीचत्वरः—पृष्ठ २५३–२५४—पद्य संख्या ६१ व ६२ ।

आपका शिष्यत्व ग्रहण कर लिया करता था। आपने सर्वप्रथम फ्रांस सारणी से स्पष्ट ग्रहों का गणित कर ग्रहों की नवीन सारणी बनाई तथा सर्वप्रथम पंचांग बनाना प्रारम्भ किया। इस जयविनोदी पंचांग का निर्माण इस समय पं० श्री ब्रजमोहन द्विवेदीजी नियमित रूप से कर रहे हैं। इस क्षेत्र में श्री ब्रजमोहन द्विवेदी की सेवायें भी उल्लेखनीय हैं। श्री द्विवेदी इन पंक्तियों के लेखक के पूज्य मातुल हैं।

जयपुर ज्योतिष साहित्य में श्री लल्लूरामजी का नाम विशेपतः स्मरणीय है।

---

१२१. श्री वसन्त झा

श्री वसन्त झा मैथिल ब्राह्मण थे तथा न्यायशास्त्र में विद्वत्ता प्राप्त कर महाराज संस्कृत कालेज में न्याय के अध्यापक नियुक्त हुए थे। आपका नाम उपस्थिति पत्रकों में उपलब्ध होता है। आपका समय अल्प ही रहा है। आपने पं० श्री कन्हैयालालजी न्यायाचार्य को न्यायशास्त्र पढ़ाया था। आपके सहयोगी विद्वानों में श्री कालीकुमार तर्कतीर्थ, पं० श्री जीवनाथजी ओझा का नाम विशेषतः उल्लेखनीय है। कालेजीय उपस्थिति पत्रकों के अनुसार आपने जनवरी, १९०९ तदनुसार सम्वत् १९६५ तक न्यायशास्त्र का अध्यापन किया था और आपके पश्चात् १५ अगस्त, १९०९ से श्री कन्हैयालालजी न्यायाचार्य ने कार्य प्रारम्भ किया था। (१२१-अ)

आपके विषय में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। यह बतलाया जा चुका है कि महाराज सवाई रामसिंह द्वितीय के समय से ही अनेक मिथिलावासी विद्वानों का जयपुर आगमन हुआ था और वे सभी अपने-अपने विषयों के प्रकाण्ड विद्वान् थे।

आपका रचनात्मक कार्य उपलब्ध नहीं होता।

---

१२२. श्री विजयचन्द्र पण्डित

ब्राह्मण कुल में ही लब्धजन्मा श्री शर्मा जयपुर के ही निवासी थे। आपके वंश परिवार आदि के सम्बन्ध में कोई विशेष जानकारी प्राप्त नहीं होती। आपके प्रकाशित पद्य साहित्य से इतना सा ज्ञान होता है कि आप अंग्रेजी स्कूल में संस्कृत के अध्यापक थे। यह अंग्रेजी स्कूल 'नोबल स्कूल' के नाम से विख्यात था। आपके अनेक पद्य संस्कृत रत्नाकर के प्राचीनतम अंकों में प्रकाशित हुए हैं, जिनके विश्लेषण से आपकी विद्वत्ता स्पष्टतः प्रतिभासित होती है। कुछ पद्य यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं :—(१२२-अ)

"वल्लीवृक्षहरित्तृणैः सुरुचिरैः पुष्पादिभारानतैः
श्यामाभ्रैश्चयपलाविलासुसुभगैर्व्याप्ताः समन्ताद् भवान्।
फुल्लाब्जैः सरसांगणैः शिशिरतद्वातैश्च मन्दोद्गमैः
रन्तुं कान्त! विलोक्य मे स्मरवशं वर्षा मनः कर्षति॥"

(१२१-अ)—महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर में उपलब्ध प्राचीन उपस्थिति पत्रक सन् १९०९ के आधार पर।
(१२२-अ)—संस्कृत रत्नाकर आकर १ रत्न ५—१९०४ ई०।

यह आपका प्रथम पद्य है जो प्रकाशित रूप में उपलब्ध हुआ है। इसी प्रकार आप की एक समस्यापूर्ति भी देखिये :—(१२२–आ)

"प्रियजनैः सह मन्मथकेलितः शरदि पूर्णसुखाप्तिसमीहया।
इति वदन्ति विलासिवधूवराः शरदियं समुपैति सुखास्पदम्॥"

लार्ड हार्डिज की स्वास्थ्य शुभकामना के लिये सम्पन्न गोविन्ददेवजी के मन्दिर की सभा में आपने अनेक पद्य प्रस्तुत किये थे, जो 'भारतीयानां राजभक्तिः' के नाम से संस्कृत रत्नाकर में प्रकाशित हुए हैं :—(१२२-इ)

"उग्रग्राहसुखाद् यथा गजपतिः संरक्षितः प्राक्त्वया
त्यक्त्वा सं गरुडासनं द्रुततरं जग्मे तदर्थं तथा।
श्रीगोविन्दकृपां विधाय भवतः सेवापरस्त्रायतां
दुःखग्राहनिपीडतः प्रभुवरो हार्डिजलार्डोजसा॥"

भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री ने आपका स्मरण इस प्रकार किया है :—

"हिन्दीसंस्कृतपद्ययोजनेऽमन्दीभूतम् अधिसभमेतच्छ्रवणे च निःस्पन्दीभूतम्।
प्राक्तनवैयाकरणकेसरित्वं कलयन्तम् आंगलविद्यालये धनिकबालान्विनयन्तम्।
श्लाघियामि कृतिहेतवे सर्वजनश्लाघाकरम् सरभसमन्द्रध्वनिधरं विजयचन्द्रपण्डितवरम्।

(जयपुरवैभवम्—पृष्ठ २७० पद्य ८६)

आप एक उल्लेखनीय विद्वान् थे।

---

१२३. श्री विजयचन्द्र चतुर्वेदी

आपका जन्म जयपुर नगरवासी पं० श्री जीवनरामजी चतुर्वेदी के वंश में हुआ था। पंचगौड़ावतंस स्मार्तकर्मप्रवीण श्री रामकुमार शर्मा चतुर्वेदी आपके पितामह थे। आपके पिता पं० बच्चूलालजी चतुर्वेदी महाराज माधवसिंह द्वितीय द्वारा अत्यन्त सम्मानित थे और कर्मकाण्ड क्रिया-कुशल होने से इन्होंने प्रसन्न होकर आपको कालाडेरा गांव में कुछ भूमि प्रदान की थी। अचरोल, नायला, काणोता, सांथा, मनोहरपुर, बिसाऊ आदि के सामन्तों ने आप से मन्त्र-दीक्षा ग्रहण की थी। आपके दो पुत्र थे, जिनमें ज्येष्ठ श्री विजयचन्द्र शर्मा का जन्म भाद्रपद शुक्ला १५ सम्वत् १९५० को जयपुर में ही हुआ था। आपने बाल्यकाल में ही परम्परागत कर्मकाण्ड पद्धति का पूर्णज्ञान प्राप्त कर लिया था। वेदप्रवेशिका और उपाध्याय परीक्षायें उत्तीर्ण करने के पश्चात् सम्वत् १९७४ में आपने वेद विषय से शास्त्री परीक्षा द्वितीय श्रेणि में उत्तीर्ण की तथा सम्वत् १९७८ में प्रथम श्रेणि से वेदाचार्य परीक्षा। (१२३-अ) पं० श्री मांगीलालजी संहितापाठी आपके विद्यागुरु थे। संस्कृत कालेज की स्थापना के पश्चात् आप ही प्रथम विद्यार्थी थे जिसने वेद शास्त्री और वेदाचार्य की सर्वप्रथम परीक्षा उत्तीर्ण की थी। संस्कृत कालेज में उपलब्ध प्राचीन रिकार्ड (उपस्थिति पत्रकों) से यह ज्ञात होता है कि आप जनवरी, १९१९ में संस्कृत कालेज में वेदाध्यापक थे। श्री शिवप्रतापजी वेदाचार्य आपके प्रधान शिष्य रहे हैं, जो सम्प्रति अवकाश-प्राप्त वेद प्राध्यापक हैं।

(१२२–आ)—संस्कृत रत्नाकर आकर १ रत्न ८—१९०४ ई०।

(१२२–इ) —संस्कृत रत्नाकर आकर ७ रत्न १०–११ १९१२ ई०।

(१२३–अ)—शास्त्रिपरीक्षोत्तीर्णच्छात्राणां नामादीनि—क्रमांक १३२ व आचार्य—क्रमांक ३९।

राजकीय सहायता प्राप्त कर आप वाराणसी गये थे, जहाँ आपने म० म० श्री प्रभुदत्तजी अग्निहोत्री से वेद विषय में विशेष योग्यता प्राप्त की। जब वाराणसी में वेद की श्रेणि खोली गई, तो आप सर्वप्रथम वेद के प्राध्यापक नियुक्त हुए। इसके पश्चात् अब तक वेद के प्राध्यापक के रूप में जयपुर निवासी विद्वान् ही नियुक्त होते रहे हैं। आपका शिवरात्रि सम्वत् १९८५ को अकस्मात् देहावसान हो गया। आप के कनिष्ठ भ्राता का नाम श्री रामकृष्ण चतुर्वेदी था।

आपकी पद्य रचना भी बड़ी आकर्षक होती थी। उदाहरण के लिए :—

> "गोपाय तूर्णं करुणैकसिन्धो ! तार्क्ष्यादि हित्वार्तगिरं निशम्य।
> ससंभ्रमं पृच्छति भार्गवीशं काकः करीन्द्रं कवलीकरोति ॥" (वेदांक सं० १९९३)

भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री ने भी आपका स्मरण किया है :—

> "वैदाचार्यकपदमयन् वित्सु विनयमयमभिनयन्।
> काश्यामध्यापनकरो विजयचन्द्रवैदिकवरः ॥"
>
> (जयपुरवैभवम्—पृष्ठ २७०—पद्य सं० ८८)

आप उल्लेखनीय वैदिक एवं कर्मकाण्डि–विद्वान् थे।

---

१२४. श्री विन्ध्याचलप्रसाद पाण्डेय

श्री पाण्डेय बिहार प्रान्त के जिला सारन (छपरा) ग्राम दोन के मूल निवासी हैं। आपके पितृचरण पण्डित श्री सोहावनजी पाण्डेय ज्योतिषशास्त्र के विद्वान् थे। अतः उनने आपको भी ज्योतिषशास्त्र पढ़ने को प्रेरित किया। आपका जन्म माघ शुक्ला द्वितीय सम्वत् १९६४ तदनुसार १५ फरवरी, १९१३ को हुआ था। (१२४–अ) आपने १७ वर्ष की आयु में ज्योतिष मध्यमा सन् १९३० में, ज्योतिषशास्त्री परीक्षा द्वितीय श्रेणि से सन् १९३३ में तथा ज्योतिषाचार्य परीक्षा सन् १९३६ ई० में प्रथम से श्रेणि उत्तीर्ण की। आचार्य में आपका प्रथम स्थान था, अतः स्वर्णपदक से सम्मानित किये गए। आपकी यह शिक्षा हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी में सम्पन्न हुई थी। हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रधान अध्यापक पं० श्री रामधारी पाण्डेय एवं श्री चन्द्रशेखर झा आपके उल्लेखनीय गुरु रहे हैं।

आपकी प्रथम नियुक्ति महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर में सहायक प्रोफेसर के पद पर दिनांक १८ जुलाई, १९३९ को हुई थी। इसके पश्चात् जब पण्डित श्री गिरिजा प्रसादजी द्विवेदी ने अवकाश ग्रहण किया, तो आप

(१२४–अ)—सिविल लिस्ट करेक्टेड अपटू ३१ जुलाई, १९४६—एजूकेशन डिपार्टमेंट—संस्कृत कालेज, जयपुर—पृष्ठ ५९–८ प्रोफेसर—क्रमांक ५—पं० विन्ध्याचलप्रसाद आचार्य जन्म तिथि १५–२–१९१३, प्रथम नियुक्ति—१८ ७–३९, पदोन्नति १–४–४३।

१ अप्रैल, १९४३ को ज्योतिष प्राध्यापक के रूप में पदोन्नत किये गये। २० वर्ष अध्यापन करने के पश्चात् आपने अभी ६ जुलाई, १९६८ को उक्त पद से विश्राम ग्रहण किया है। आपने इस अध्यापन काल में अनेक शिष्यों को ज्योतिषशास्त्र में निष्णात किया। इनमें पण्डित श्री कल्याणदत्त शास्त्री, श्री रामपाल शास्त्री, श्री हरिनारायण सहल, श्री तारामणि शर्मा पर्वतीय, श्री रामस्वरूप शर्मा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

वाराणसी रहते हुए आपने पं० श्री मदनमोहनजी मालवीय के प्रधान सम्पादकत्व में प्रकाशित होने वाले विश्वपंचांग के प्रकाशन में सहायक सम्पादक के रूप में कार्य किया था।

आपने अष्टग्रहयुतिफलम् पर भारती में एक लेख लिखा था जो विद्वत्तापूर्ण है। आपकी सेवायें जयपुर के ज्योतिषशास्त्र के इतिहास में चिरस्मरणीय हैं। आप अभी विद्यमान हैं तथा अभी कार्यरत हैं।*

---

१२५. श्री विद्यानाथ ओझा

जयपुर शासकों के राजगुरुओं की परम्परा में बड़े ओझाजी का स्थान महत्वपूर्ण माना गया है। जयपुर संस्थापक सवाई जयसिंह द्वितीय के कनिष्ठ पुत्र सवाई माधवसिंह प्रथम के समय से ही यह ठिकाना स्थापित हो गया था, जो आज तक निरन्तर परम्परा का निर्वाह करता आ रहा है। इस समय परम्परा की कड़ी में राजगुरु पं० श्री विद्यानाथ जी ओझा वर्तमान हैं। आपके पूर्वपुरुषों में जो सर्वप्रथम जयपुर आये, उनका नाम पं० त्रिलोचन झा था, जो छिन्नमस्ता देवी के परमोपासक थे। आपके पितृचरण पं० श्री पुरुषोत्तम झा विहार प्रान्त के प्रसिद्ध विद्वान् व उपासक माने जाते थे। आप विहार प्रान्तीय दरभंगा जिलान्तर्गत विजयी नामक ग्राम के निवासी थे। किसी समय तीर्थ यात्रा प्रसंग में भ्रमण करते हुए पुष्कर जाते समय जयपुर भी रुके थे। आपने महाराज माधवसिंह प्रथम को आशीर्वाद दिया था कि सवाई माधोपुर का किला शीघ्र ही (अनायास रूप में) आपके अधीन हो जायेगा।

यह घटना सन् १७५७ ई० की है। आपके चमत्कार से चमत्कृत महाराज ने आपका शिष्यत्व स्वीकार किया और भेंट में ताम्रपत्र आदि प्रदान किये। आपके पुत्र श्री दुर्गानाथ झा, जो मैया झा के नाम से प्रसिद्ध थे, सवाई प्रतापसिंह के समय जयपुर आये थे और सवाई जगत्सिंह के दीक्षा गुरु थे। श्री सीताराम भट्ट पर्वणीकर ने अपने जयवंश महाकाव्य में आपका उल्लेख इस प्रकार किया है :—(१२५-अ)

> "दुर्गानाथ इति जगत्प्रतीतनामा मन्त्रज्ञो विबुधवरोऽथ मैथिलोऽगात्।
> यो नित्यं खलु मिथिलां पुरीं स्वकीयां वागीशो दिवमिव तामलंकरोति ।।"

---

* सन् १९६८ में सेवा निवृत होकर आप कुछ वर्ष जयपुर ही रहे और बाद में नेत्रज्योति में बाधा होने से अपने आंख का आपरेशन करवाया था। दुर्भाग्यवश अब आप संसार में नहीं हैं। आप पं० श्री वृद्धिचन्द्रजी शास्त्री के घनिष्ठ मित्र थे।

(१२५-अ)— जयवंशमहाकाव्यम्—सप्तदश सर्ग :—पृष्ठ १९३–पद्य संख्या ३९।

"विध्युक्तं मुनिसममेनमर्चयित्वा सच्चक्रे मधुरं वचोभिरुन्नतेच्छः ।
भूपालो रिपुपृतनाभिमानहर्त्ता कर्त्ता शं शरणमितस्य सर्वदा यः ।। ४० ।।
दीनानामतिशयमूढचेतनानां शर्मेच्छा यदि महतां महीयसी स्यात् ।
नो चित्रं विधिरपि यान्ससर्ज लोके मूढानामपि भववार्धितारणाय ।। ४१ ।।
"ऊचे भूवलयगतोऽपरस्सुधांशुस्तं विप्रं खलु विहितांजलिर्नरेन्द्रः ।
राजानो जयकुलजाः सदैव सत्सु स्वाभाव्याद्विनयनता भवन्ति पुंसु ।। ५२ ।।
तां विद्यां वितर कृपानिधे हि मह्यं मन्त्रज्ञस्त्वमसि भवादृशो न लोके ।
सिद्धिः स्याद्दृढतरमात्मनः पदं स्यादस्मासु स्थिरमतिजापतोऽल्पकालम् ।। ५३ ।।
श्रुत्वेत्थं वचनमधीशितुर्विनेतुः सत्कालेऽप्युपदिशति स्म मन्त्रमस्मै ।
भूभर्त्रे निखिलमहोदयर्द्धिहेतुं पात्राय प्रतिपदसन्नताय सोऽयम् ।। ५४ ।।
भूमीशो दशशतसंख्यपीतमुद्रा ग्रामाणां दशकमिभाश्वयानपूर्वम् ।
यानंचाभरणममूल्यमित्यमुष्मै कार्पण्यं बत निगदन्न्यवेदयत्सः ।। ५५ ।।
इत्यादि"

इस प्रकार फाल्गुन कृष्णा पंचमी रविवार संवत् १८५५ को आपका दीक्षा समारोह सम्पन्न हुआ । (१२५-आ) आप भी अपने पिता के समान तन्त्रशास्त्र, व्याकरण, न्याय, धर्मशास्त्र, ज्योतिष आदि अनेश शास्त्रों में पारंगत थे । आप अपनी विद्वत्ता के कारण दरभंगा नरेश से भी पूर्व सम्मानित थे । आपने योगमार्ग से श्रावण कृष्णा १३ संवत् १८६५ को मोक्ष पद प्राप्त किया । आपके पश्चात् आपके सुपुत्र पं० कीर्तिनाथ ओझा तथा प्रपौत्र पं० रंगनाथ ओझा ने भी अपनी पूर्व परम्परा का निर्वाह किया । श्री रंगनाथ ओझा 'उच्छिष्टगणपति' के परम भक्त थे तथा उन्हें 'गणपति सिद्धि' भी थी—ऐसा माना जाता है । महाराज सवाई रामसिंह द्वितीय स्वयं उनके घर जाकर ज्ञानार्जन किया करते थे । आपके स्वरूप को पहचानना अत्यन्त कठिन बताया जाता है । आप शिव, विष्णु, राधाकृष्ण सभी देवताओं के उपासक भी थे । आपके समय इस ठिकाने की स्थायी सम्पत्ति में भी बहुत वृद्धि हुई । आपके पुत्र पं० उमानाथजी ओझा थे, जिनका सम्मान तत्कालीन शासक महाराज माधवसिंह द्वितीय तथा अन्य मुसाहिब श्रद्धापूर्वक करते थे । आपके पुत्र पं० बदरीनाथ जी थे, जो होनहार होते हुए भी १७ ही वर्ष जीवित रह सके, अतः उल्लेखनीय कार्य न कर सके । सन्तानाभाव के कारण आपने पं० उमानाथजी के कुटुम्बी भ्राता पं० कलानाथजी ओझा के कनिष्ठ पुत्र पं० विद्यानाथजी को संवत् १९७२ में दत्तक रूप में ग्रहण किया । आप इस समय राजगुरु पदासीन हैं ।

(१२५-आ)—उपर्युक्त विवरण राजगुरु पं० विद्यानाथ ओझा द्वारा प्रदत्त सूचना पर आधारित है ।

आपका वंशवृक्ष इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :—
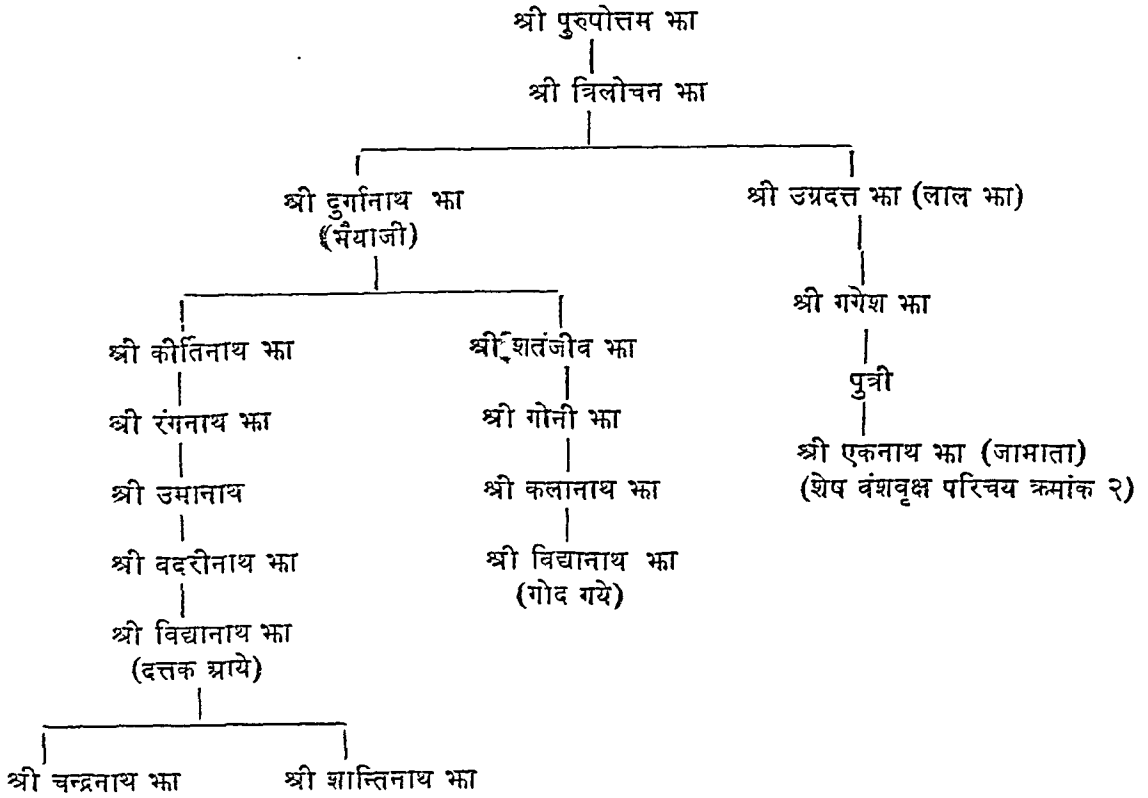
उपर्युक्त विवरण का आशय है कि श्री विद्यानाथ ओझा पं० कलानाथ झा के पुत्र थे तथा जयपुर ठिकाने के उत्तराधिकारी पं० श्री बदरीनाथ झा के दत्तक के पुत्र के रूप में यहाँ आये। आपका जन्म भाद्रपद कृष्णा ९मी, संवत् १९६८ तदनुसार १८ अगस्त, १९११ को विजयी, ग्राम ड्योढी, पोस्ट कोठिया, वाया झांझापुर, जिला दरभंगा (विहार) में हुआ था। पांच वर्ष की अवस्था में आप जयपुर आ गए थे तथा शेष शिक्षा महाराज संस्कृत कालेज में सम्पन्न हुई। आपने शास्त्री पर्यन्त इस कालेज में अध्ययन किया था। सन् १९४५ ई० में कामेश्वर संस्कृत विश्वविद्यालय (विहार) दरभंगा से व्याकरणाचार्य परीक्षा तथा सन् १९४८ ई० वैद्यनाथ धाम से साहित्याचार्य परीक्षा उत्तीर्ण की। आपकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर अयोध्यामंडल ने साहित्यालंकार तथा विद्याभूषण की उपाधियों से सम्मानित किया। आप की प्रारम्भिक शिक्षा को सुव्यस्थित चलाने की दृष्टि से राज्य की ओर से मिथिलानिवासी श्री उमाकान्त झा को नियुक्ति किया गया था, जो उत्कृष्ट कोटि के विद्वान् थे। अन्य गुरुओं में पं० श्री चन्द्रशेखर शास्त्री प्रश्नवर, श्री जयचन्द्र झा, पं० श्री गोपीनाथजी धर्माधिकारी आदि उल्लेखनीय हैं।

आप राज्याश्रित राजगुरु पद पर आसीन रहे तथा राज्य प्राप्त सम्मान से सम्मानित होते रहे। आपने सन् १९३६ से सनातन धर्म मंडल का सभापति पद का पूर्ण निर्वाह किया। आप इस समय भी वैदिक संस्कृति प्रचारक संघ के कार्यवाहक अध्यक्ष हैं। इसी प्रकार श्रीधर विद्यालय के सभापति तथा राजगुरु सन्त महन्त समिति के भी सम्मान्य सभापति हैं।

बहुत पहले, अपने विद्यार्थी जीवन व उसके पश्चात् भी आप लेख आदि लिखा करते थे, जो सूर्योदय आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। आपका पुस्तकालय एक उल्लेखनीय संग्रह था, जो बड़े ओझाजी का पुस्तकालय के नाम से प्रसिद्ध था। इसमें लगभग १ सहस्र पुस्तकें थीं, जो सभी विषयों से संवद्ध थीं। २५० हस्तलिखित

ग्रन्थ हैं, जो अलभ्य तथा मन्त्रशास्त्र के संबद्ध हैं। आपके संग्रहालय का सर्वतः प्राचीन ग्रन्थ 'सिद्धनागार्जुन' है जो संवत् १७०० का लिखा है। यह पूर्ण रूप में उपलब्ध है। इस पुस्तकालय का व्यवस्थित रूप इसलिए न रह सका कि इस ठिकाने के उत्तराधिकारी अपने दरभंगा स्थित आवास का मोह न छोड़ सके, क्योंकि वे दरभंगा नरेश से भी सम्मानित थे। जो भी व्यक्ति पुस्तक ले गया वापिस नहीं लाया और शनैः शनैः इस पुस्तकालय की पुस्तक सख्या में न्यूनता होने लगी। इस समय इसीलिए ग्रन्थ दर्शन पर भी रोक लगा दी गई है। (१२५–इ)

श्री ओझाजी ने अपनी पूर्व परम्परा का पूर्ण निर्वाह कर इस स्थान की समुचित प्रतिष्ठा बनाये रखने में पूर्ण योग दिया है। आप उल्लेखनीय विद्वान् हैं तथा इस समय आशुकवि हरिशास्त्री दाधीच रचित एक सहस्र पद्यात्मक ग्रन्थ का हिन्दी पद्यानुवाद कर चुके हैं तथा शीघ्र ही प्रकाशित करने का विचार रखते हैं।

---

१२६. श्री विश्वनाथ शास्त्री

मिथिला निवासी श्री शास्त्री अपने समय के उच्च श्रेणि के विद्वान् माने जाते थे। इनका व्याकरण-शास्त्र पर पूर्ण अधिकार था। आप जयपुर नगर में महाराज सवाई रामसिंह द्वितीय के समय विद्यमान थे। यों तो आप अधिकांश समय अपने मिथिला प्रान्त में ही रहे थे, परन्तु यदा कदा जयपुर भी चले आते थे और कहा जाता है कि बड़ी चौपड़ पर विद्यमान एकादश रुद्र के मन्दिर में ठहरा करते थे। महाराज सवाई रामसिंह द्वितीय के समय से ही जयपुर में मैथिल पण्डितों का बाहुल्य होने लगा था। ये मैथिल विद्वान् प्रायः व्याकरण तथा दर्शन के प्रकाण्ड पण्डित होते थे। श्री विश्वनाथजी की विद्वत्ता से प्रभावित होकर ही महाराज रामसिंह ने इन्हें २ रुपये प्रतिदिन की वृत्ति स्वीकार कर दी थी। आपने स्वनामधन्य स्वर्गीय विद्यावाचस्पति मधुसूदनजी ओझा को लघुसिद्धान्तकौमुदी का अध्यापन कराया था। म० म० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदीजी ने "विद्यावाचस्पति पं० श्री मधुसूदनजी ओझा के जीवन परिचय" के साथ आपका भी उल्लेख किया है जो इस प्रकार है :— (१२६–अ)

"सौभाग्य की बात थी कि आपने आरम्भ से ही सुप्रसिद्ध विद्वानों से शिक्षा प्राप्त की। आपकी नियमबद्ध संस्कृत शिक्षा जयपुर में ही प्रारम्भ हुई। श्री विश्वनाथ झा जी मिथिला के एक सुप्रसिद्ध लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् थे, जो कि सब शास्त्रों के ज्ञाता होने के अतिरिक्त मन्त्रशास्त्र में भी अप्रतिहत शक्ति रखते थे। आपका दावा था कि सिद्धान्तकौमुदी के मंगलाचरण श्लोक की व्याख्या भी हमारे सामने कोई विद्वान् नहीं कर सकता, अन्य शास्त्रों की तो बात ही क्या? महाराज जयपुर ने आपके पाण्डित्य पर मुग्ध होकर २ रु० रोज आपकी दक्षिणा राज्य से नियत कर दी थी। आप चाहे कहीं रहें, जब कभी जयपुर आते, तो हिसाब कर आप की वह दक्षिणा दे दी जाती थी। इसी प्रसंग में आप बार-बार जयपुर आते और यथावसर बहुत काल यहाँ निवास भी करते थे। अस्तु, इन्हीं श्री विश्वनाथ जी झा से हमारे चरितनायक ने लघुकौमुदी की शिक्षा प्राप्त की थी.......।"

श्री कृष्णराम भट्ट ने आपका उल्लेख इस प्रकार किया है :—

सुदुस्तरव्याकरणार्णवे यो दधाति मन्थाचलभावमुच्चैः।
स्वसंविदानन्दरसैकेतानः स विश्वनाथः स्तुतिविश्वनाथः॥" (१२६–आ)

आप पुरातनकालीन विद्वानों में उल्लेखनीय रहे हैं।

(१२५–इ)—आपका परिचय "बड़े ओझाजी राजगुरु पं० श्री विद्यानाथजी ओझा, जयपुर" शीर्षक लेख—लेखक पं० युगलकिशोर शर्मा दर्शनाचार्य, प्रकाशित—हितैषी पत्रिका जयपुर अंक–१९४१–पृष्ठ ३३७–३३९ तथा स्वयं प्रदत्त सूचना पर आधारित है।

(१२६–अ)—श्री चतुर्वेदीजी का लेख—सुधा पत्रिका वर्ष २ खण्ड १ संख्या १–पृष्ठ १११ से प्रारम्भ।

(११६–आ)—जयपुरविलास—पद्य संख्या ४२ पृष्ठ ५२।

१२७. श्री बिहारीलाल शास्त्री दाधीच

जयपुर निवासी पं० परमानन्दजी दाधीच के यहाँ भाद्रपद कृष्णा द्वितीय संवत् १९४० को आपका जन्म हुआ। श्री परमानन्दजी व्याकरण तथा ज्योतिष के विद्वान् थे और जयपुर में चांदपोल मिडिल स्कूल में संस्कृताध्यापक थे। आप शान्त व गम्भीर विद्वान् थे, ऐसा प्रसिद्ध है (परिचय क्रमांक ७७)। आपने अपने पुत्र को भी उसी दिशा में अग्रेसर किया और संस्कृताध्यापन किया। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही प्रारम्भ हुई थी और कुछ समय पश्चात् आपने महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर में प्रवेश लिया था। वहां नियमित अध्ययन करते हुए आपने संवत् १९५७ में १७ वर्ष की अवस्था में साहित्य शास्त्री परीक्षा प्रथम श्रेणि में उत्तीर्ण की। (१२७–अ) इसके पश्चात् आपने साहित्य विषय से आचार्य परीक्षा संवत् १९६१ में द्वितीय श्रेणि से तथा वेदान्ताचार्य परीक्षा संवत् १९६६ में प्रथम श्रेणि से उत्तीर्ण की। (१२७–आ)
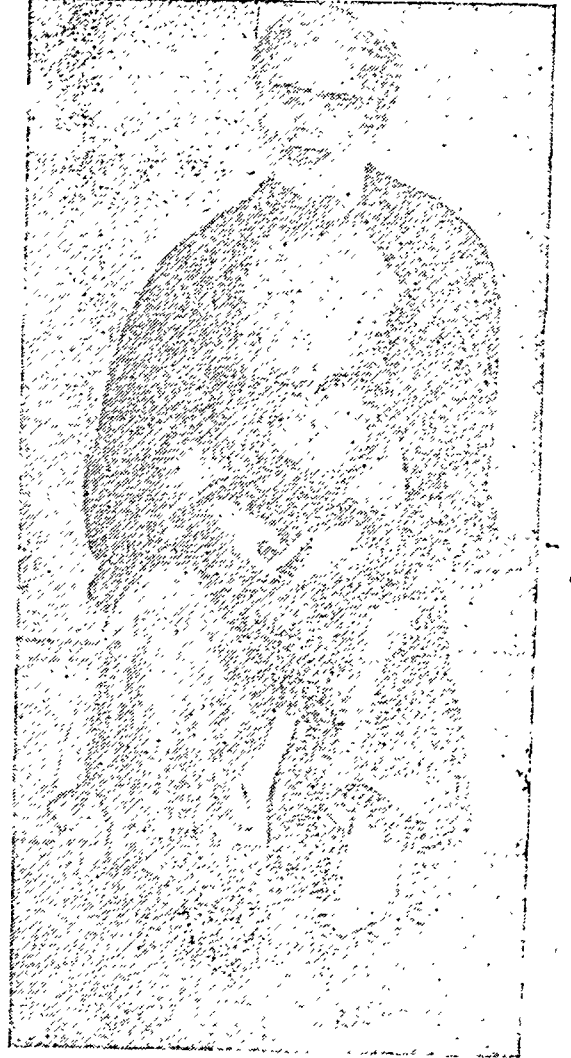
आचार्य परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् मार्च, १९११ ई० में पण्डित श्री सोमदेव गुलेरी के साथ आप भी संस्कृत कालेज में साहित्य के व्याख्याता नियुक्त हुए। इस समय पण्डित कृष्ण शास्त्री द्राविड़ (तैलंग) साहित्य विभाग के अध्यक्ष थे। आपके गुरुओं में साहित्यशास्त्र के गुरु श्री कृष्ण शास्त्री तैलंग तथा वेदान्तशास्त्र के गुरु श्री शिवराम गुलेरी का नाम विशेषतः स्मरणीय है। श्री द्राविड़ के अवकाश ग्रहण करने पर आप अध्यक्ष बने। आपने सन् १९३२ तक कार्य किया। आपके सेवा निवृत्त होने पर भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री साहित्य प्राध्यापक बने। आपने अपने अध्ययन काल में अनेक छात्रों को साहित्य निष्णात किया, जिनमें पं० नन्दकुमारजी कथाभट्ट, पं० नन्दकिशोरजी नामावाल, श्री वासुदेव शर्मा, पं० जगदीश शर्मा, (दोनों पुत्र), आशुकवि श्री हरि शास्त्री दाधीच, पं० हीरालाल शास्त्री (राजस्थान के प्रथम मुख्यमन्त्री), पं रामचन्द्र गौड़, वैद्य नारायण प्रसाद गौड़, पं० नन्दकिशोर

(१२७–अ)—शास्त्रिपरीक्षोत्तीर्णच्छात्राणां नामादीनि —क्रमांक ३३—संवत् १९५७ —प्रथम श्रेणि।

(१२७–आ)—आचार्यपरीक्षोत्तीर्णच्छात्राणां नामादीनि—क्रमांक ८—साहित्ये – द्वितीय श्रेणि व वेदान्ते – क्रमांक २०—प्रथम श्रेणि—क्रमशः संवत् १९६१ व १९६६।

नैयायिक, पं० श्री वृद्धिचन्द्र शास्त्री धर्मशास्त्राचार्य, राजवैद्य पं० नन्दकिशोर शर्मा भिषगाचार्य, पं० शिवदत्त त्रिपाठी, पं० भंवरलाल दाधीच, पं० हरिकृष्ण गोस्वामी, पं० नवलकिशोर काङ्कर, श्री शान्ति भिक्षु त्रिथूली एवं पं० श्री दामोदर शर्मा खाण्डल आदि का नाम उल्लेखनीय है। इनमें अधिकांश का परिचय इस प्रबन्ध में प्रस्तुत है।

मुनिविद्यारण्य कृत 'पंचदशी' पर आपने पंचदशीसार नाम से हिन्दी में एक ग्रन्थ लिखा, जो संवत् १९७१ में प्रकाशित हुआ। आपने हर्षचरित की व्याख्या भी लिखी जो अप्रकाशित है। इसी प्रकार आपका कूर्मवंश काव्य भी अप्रकाशित है। आप पद्य लेखन में बहुत ही कुशल व्यक्ति थे। उदाहरणार्थ कुछ पद्य प्रस्तुत हैं :— (१२७–इ)

(१) "पाश्चात्यदेशे गोविन्द आस्ते जन्यं महीभृताम्।
अन्योन्यस्पर्धया वीरा यस्मिन् वीरत्वमागताः॥"

(२) "तैनेव विघ्नेन विमूढचित्ताः सेवां त्वदीयां विफलां वदन्ति।
तस्य प्रशान्तो भव दत्तचित्तो जनास्त्वदीया सुखिनो यथा स्युः॥"

(३) लार्ड हार्डिज के लिये शुभकामना करते हुए आपने एक लघु पद्य प्रस्तुत किया है :— (१२७–ई)

"श्रीमान् प्रजारक्षणकर्मदक्षोऽसन्नीतिनिर्मूलनकर्मदक्षः।
जीव्याच्चिरं भारतभूमिरक्षः श्रीलार्डहार्डिजपदाभिधेयः॥"

आप शान्त गम्भीर तथा व्यवहारकुशल उल्लेखनीय विद्वान् थे। आपका स्वर्गवास मार्ग शीर्ष शुक्ला १३ संवत् १९८९ को जयपुर में ही हुआ था।

कविशिरोमणि भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री ने निम्नलिखित पद्य द्वारा आपका स्मरण किया है :— (१२७–उ)

"श्रीमत्कृष्णशास्त्रिमहाभागज्ज्ञातसाहित्यं हि
मुंशिप्रवरेण नित्यं मुदितमपेक्षेथाः
वृत्तावुन्नतत्वेपि च वस्त्राद्युन्नतत्वे सदा
भूरिसरलत्वेन प्रवृत्तं सुपरीक्षेथाः।
आलंकारिकत्वेपि च वेवेंगितसाम्यवशाद्
वाक्यसंनिवेशेऽपि च स्थौल्यगुणं वीक्षेथाः
नस्यभराऽऽधारीकृतनासिकानिकटतटं
काव्यशास्त्रपारीणं विहारीलालमीक्षेथाः॥"

आप उल्लेखनीय विद्वान् तथा कुशल प्राध्यापक थे। (१२७–ऊ)

(१२७–इ) —संस्कृत रत्नाकर प्राचीन अंक—मार्गशीर्ष-पौषौ संवत् १९७१—वर्तमानयुरोपीय०।

(१२७–ई)—संस्कृत रत्नाकर—आकर ७ रत्न १०–११—भारतीयानां राजभक्तिः—सं० १९६९।

(१२७–उ)—जयपुरवैभवम्—नागरिकवीथी—सुधीचत्वरः—पृष्ठ २५९—पद्य संख्या ७१।

(१२८–ऊ)—आपके दोनों पुत्रों श्री वासुदेव शर्मा व पं० श्री जगदीश शर्मा ने 'विहारि-स्मारिका' का प्रकाशन अभी सन् १९७९ में किया है, जिसमें आपका जीवन-वृत्त व रचनात्मक कार्य का विस्तार से विवेचन है। इसके सम्पादक है—म० म० पं० नवलकिशोर काङ्कर महोदय।

आपके रचानात्मक कार्य का संक्षिप्त उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है :—

१. अभिभाषणम्—जयपुर महाराज संस्कृत कालेज के उपाधिवितरणोत्सव पर दिया गया संस्कृत भाषण (संस्कृत भाषा का महत्त्व व उपयोगिता आदि) (२०–२–३३)।

२. स्वागतपद्यानि—उपाधिवितरणोत्सव पर प्रस्तुत १६ पद्य (२०–२–३१) व ९ पद्य, १३ पद्य, ११ पद्य, १२ पद्य, ११ पद्य और ११ पद्य, ये पद्य प्रतिवर्ष सुनाते थे।

३. शुभाशंसा—जयपुर के राजा मानसिंह के प्रथम पुत्र भवानीसिंह के जन्म पर सुनाये गए पद्य—(सं. ६)

४. गोविन्द प्रार्थना—भूतपूर्व भारत सम्राट की स्वास्थ्य कामना के लिए आयोजित सभा में प्रस्तुत ७ पद्य।

५. कूर्मवंशमहाकाव्यम्—प्रथम सर्ग (९६ पद्य)।

६. ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्योदाहृतसंक्षिप्तश्रुतीनां पूर्णता तदर्थश्च (अपूर्ण परन्तु विस्तुत लेख)।

———

१२८. श्री वीरेश्वर शास्त्री द्राविड़

श्री द्राविड़ महोदय भारत के सुविख्यात विद्वान्, सर्वशास्त्रपारंगत, अपने विषयों के व्याख्याता, सफल अध्यापक, श्रौतस्मार्तकर्मानुष्ठाननिरत, राजवर्ग से सम्मानित, लोकमान्य, महर्षिकल्प एक महात्मा व्यक्ति थे। आपकी पितृ-परम्परा में अनेक पीढ़ियों तक सोमयाजी श्रौत्रिय विद्वान् हुए हैं। आपने भाद्रपद शुक्ला सप्तमी (श्री राधाष्टमी) शनिवार, संवत् १९१६ को अर्द्ध-रात्रि के पश्चात् दीक्षितों के वड़म (श्रोत्तर) संकेतित द्राविड़ कुल तथा मूलकाड कांचीमण्डल, दक्षिण भारत में जन्म लिया। आपकी माता का नाम लक्ष्मी तथा पिता का नाम सुब्रह्मण्य दीक्षित था। आपका वत्स गोत्र, भार्गव, च्यवन, आप्नुवान्, और्व और जमदग्नि—ये पांच प्रवर थे। आप कृष्ण यजुर्वेद के तैत्तिरीय शाखाध्यायी विद्वान् थे।

दक्षिणापथ कांचीमण्डल में मूलकाड नाम से एक प्रसिद्ध ग्राम है। यहां श्री वरुणाचल दीक्षित, यज्ञेश्वर दीक्षित, कृष्ण दीक्षित, सुब्रह्मण्य दीक्षित आदि अनेक प्रसिद्ध विद्वानों ने जन्म लिया था। श्री यज्ञेश्वर दीक्षित तक २५ पीढ़ियों में सभी अनुवंशज सोमयाजी थे। आपके दो पुत्र श्री कृष्ण दीक्षित तथा श्री सुब्रह्मण्य दीक्षित उपनयन के पश्चात् घनपाठियों के विद्यालय में चार वर्ष तक तैत्तिरीय संहिता, अन्य ब्राह्मण ग्रन्थ व आरण्यक ग्रन्थों का अध्ययन कर कांचीनगर में रथोत्सव देखने गये थे। यहीं से चलपट्टन (समुद्र के समीप विद्यमान नगर) तैलंग, उत्कल, वंग, मिथिला, पाटलिपुत्र, गया तथा अवध होते हुए मण्डली सहित काशी पहुँचे। काशी में गंगा के सोमेश्वर घाट पर विद्यमान मान मन्दिर में आपने विश्राम किया और वहीं रहते हुए घनान्तवेद, न्याय, साहित्य आदि विषयों का अध्ययन किया। जीविका की दृष्टि आपने यहीं ऋत्विक् कर्म प्रारम्भ किया। श्री अप्पय दीक्षित के छठे अनुवंशन श्री हरिशंकर दीक्षित की दौहित्री तथा वज्रटंक कृष्ण शास्त्री की पुत्री लक्ष्मी के साथ
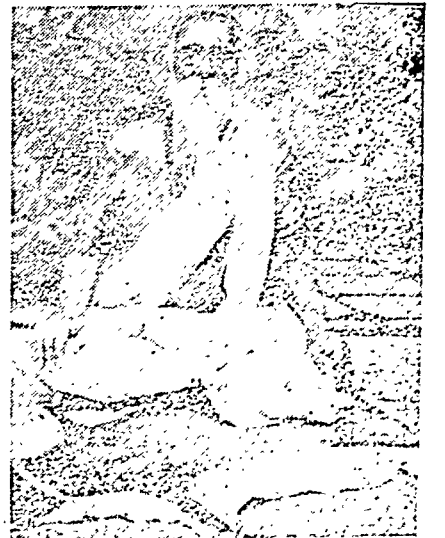
आपका पाणिग्रहण हुआ। आपके दो पुत्रियों में से ज्येष्ठ पुत्री का विवाह आठ वर्ष की अवस्था में ही जयपुर राजगुरु मन्वाजी श्री कामनाथजी के साथ सम्पन्न हुआ। दो कन्याओं के जन्म लेने के उपरान्त श्री सुब्रह्मण्य दीक्षित अपने परिव्राजक गुरु के आदेश से आत्मवीरेश्वर महादेव की उपासना में लीन हुए। स्कन्दपुराणान्तर्गत काशी खण्ड में प्रोक्त वीरेश्वर स्तोत्र का पाठ करने से दो वर्ष पश्चात् आपके पुत्र उत्पन्न हुआ और आपने उसका नाम 'वीरेश्वर' रखा। जन्म के पश्चात् आपके नेत्र मूंदे हुए थे जो कुलदेव के पूजन का व्रत लेने के पश्चात् खुले थे। बाल्यकाल में आप उदर रोग से पीड़ित रहते थे, जिसे श्री विधु बाबू वगवैद्य तथा श्री कृष्णशास्त्री तैलंग ने उपचार कर शान्त किया था। आपके नाना का नाम भी सुब्रह्मण्य शास्त्री था, जिनके पुत्र श्री नारायण शास्त्री बहुत विख्यात विद्वान् हुए हैं।

श्री द्राविड़ की दूसरी भगिनी सरस्वती का पाणिग्रहण भी जयपुर में ही श्री विश्वनाथ शास्त्री के साथ सम्पन्न हुआ था। आप श्री कामनाथ शास्त्री की बड़ी बहन मंगला देवी और उसके पति श्री साम्ब शास्त्री के मध्यम पुत्र थे अर्थात् श्री कामनाथ शास्त्री के भागिनेय थे। श्री कामनाथ शास्त्री व उनकी पत्नी श्रीमती गगादेवी ने सन्तान न होने से श्री विश्वनाथ शास्त्री को अपना उत्तराधिकारी (दत्तक पुत्र) बना लिया था। जैसा कि बताया जा चुका है, श्रीमती गंगादेवी भी सुब्रह्मण्य शास्त्री दीक्षित की ज्येष्ठ पुत्री थी और ये जयपुर महाराज की राजमहिषी को मन्त्रोपदेश करने के कारण गुराणीजी के नाम से प्रसिद्ध थीं।

पाँच वर्ष की अवस्था में मातुल श्री पापा शास्त्री (श्री नारायण शास्त्री) ने आपका विद्यारम्भ संस्कार किया। अपनी दोनों पुत्रियों के आग्रह पर आपकी माता श्रीमती लक्ष्मी दीक्षित आपको लेकर जयपुर आ गई। आपकी छोटी वहिन सरस्वती देवी अल्पवयस्का थी; अतः माता उनकी देख-रेख के लिये जयपुर में तीन वर्ष तक रहीं। इन वर्षों में श्री शास्त्री ने संस्कृत कालेज, जयपुर के अध्यक्ष श्री रामभजजी सारस्वत के पास अमरकोष, सिद्धान्तकौमुदी आदि ग्रन्थों का अध्ययन प्रारम्भ किया। उपनयन संस्कार के लिये माता आपको पुनः काशी ले गई। वहाँ अष्टम वर्ष में वैशाख शुक्ला द्वादशी सम्वत् १९२४ को आपका उपनयन हुआ। आपने वेदाध्ययन प्रारम्भ किया। जब आपकी बड़ी बहन का सीमन्तोत्सव हुआ, तब आप पुनः जयपुर आये, परन्तु अधिक न रह सके और अपने मातुल पुत्र के उपनयन व मातुलपुत्री के विवाह पर पुनः काशी लौट गये। श्री साम्ब शास्त्री ने आपके अध्ययन की व्यवस्था की और आपको श्री नैने बालकृष्ण शास्त्री भट्ट की पाठशाला में प्रविष्ट करा दिया गया था। वहाँ छै मास में केवल तीन प्रपाठक का अध्ययन ही सम्पन्न हो सका था। इससे असन्तुष्ट होकर श्री पापा शास्त्री ने आपको महाविद्वान् श्री रामशास्त्री खरे की पाठशाला में प्रविष्ट करा दिया। वेद के विद्वान् श्री शंकर नारायण शास्त्री द्राविड़ के पास आपने वेदाध्ययन किया। यहाँ से अध्ययन कर गुरुजी के वार्धक्य के कारण आप उन्हीं के आदेश से सरयूपारीण विद्वान् श्री यागेश्वर शर्मा के पास जाकर अध्ययन करने लगे। इसके पश्चात् आपके माता-पिता का कुछ ही दिनों के अन्तर पर निधन हो जाने से आप के अध्ययन में विघ्न उपस्थित हो गया। फिर भी गुरुजी की प्रेरणा से कुछ अध्ययन चलता रहा। (१२८-अ)

कौण्डिन्यगोत्री बोधायनसूत्रानुयायी, क्रमान्तवेदपाठी, व्याकरण तथा साहित्य के विद्वान् पं० श्री राजेश्वर शास्त्री की कन्या भवानी से आपका विवाह वैशाख कृष्णा २ सम्वत् १९२९ में सम्पन्न हुआ। श्री राजेश्वर शास्त्री 'नागेश शास्त्री' के नाम से प्रसिद्ध थे तथा श्री शंकर शास्त्री एवं मैसूर राज्य के अन्नसत्राध्यक्ष श्री सुब्रह्मण्य शास्त्री

(१२८-अ)—आपके जीवन परिचय सम्बन्धी उपलब्ध सूचना से यह ज्ञात होता है कि आपकी माता का निधन आषाढ शुक्ला चतुर्दशी को तथा पिता का निधन पांच दिन पश्चात् श्रावण कृष्णा चतुर्थी को हुआ था। (पं० रामगोपालजी शास्त्री के सौजन्य से प्राप्त)।

के वंशज थे। आपके विवाह में आपकी भगिनी गंगा देवी ने जयपुर महारानी से १५०० रु० की आर्थिक सहायता दिलवाई थी। विवाह के उपरान्त आपका अध्ययन पुनः प्रारम्भ हुआ। आप पं० यागेश्वर शास्त्री के पास विभिन्न विषयों का अध्ययन करने के लिये नियमित रूप से जाने लगे। आपके सहाध्यायियों में मातुलपुत्र के अतिरिक्त श्री गणेश शास्त्री गाडगिल, श्री भिक्षु शास्त्री मौनी तथा श्री राम शास्त्री तैलंग के नाम उल्लेखनीय हैं। आपने साढे चार वर्षों में सिद्धान्तकौमुदी पर पूर्णाधिकार कर लिया और फिर मनोरमा, अर्थसंग्रह, हेमवती, परिभाषे-दुशेखर, गोविन्दाचार्य कृत चन्द्रिका व्याख्या सहित शब्देन्दुशेखर, कैयट कृत टीका सहित नवाह्निकभाष्य और अंगाधिकारभाष्य पर पूर्णाधिकार प्राप्त कर लिया। गुरुजी के घर अध्ययन करने के अतिरिक्त आप मामाजी के घर पर भी स्वतन्त्र रूप से अध्ययन किया करते थे, जिनमें आपने सम्पूर्ण अष्टाध्यायी, तर्कसंग्रह, न्यायबोधिनी, माघकाव्य, कुमारसम्भव, मेघदूत, शाकुन्तल, उत्तररामचरित, भारतचम्पू, नृसिंहचम्पू एवं रामायणचम्पू आदि ग्रन्थों का अध्ययन किया। साथ ही नैषध, माथुरी पंचलक्षणीया जागदीशी, सिंहव्याघ्रलक्षण, कुवलयानन्द, काव्यप्रकाश, साहित्यदर्पण आदि महत्वपूर्ण ग्रन्थों का भी अध्ययन किया। इसी प्रकार श्री बाल शास्त्री रानाडे से आपने व्युत्पत्तिवाद, शक्तिवाद, सपरिष्कार परिभाषेन्दुशेखर, शब्देन्दुशेखर, विषयतावाद, ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य का अध्ययन किया था।

अध्ययनकाल में ही आपकी कनिष्ठ भगिनी सरस्वती का अचानक देहान्त हो गया और आपकी पत्नी भी अपस्मार रोग से आक्रान्त हो गई। बहुत उपचार करने के पश्चात् भी रोग शान्त न हुआ और दिवंगत हो गई। अनेक सांसारिक कष्टों को सहन करते हुए भी आपने अपना अध्ययन क्रम न छोड़ा और जयपुर चले आये। यहाँ पहुंचने पर आपने अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया। सर्वप्रथम आप संस्कृत कालेज, जयपुर में साहित्याध्यापक नियुक्त हुए, जहाँ आपने ८ अगस्त, १८९६ तक अध्यापन किया। (१२८–आ) इसके पश्चात् आप महाराज कालेज, जयपुर में संस्कृत के प्राध्यापक रहे और वहीं से सेवा निवृत्त हुए। म० म० पं० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ने जो आपका उल्लेख किया है, उससे ज्ञात होता है कि कालान्तर में शिक्षा विभाग के अधिकारी आपकी सलाह से ही कार्य किया करते थे। तत्कालीन निदेशक श्री मक्खनलालजी आप से बहुत अधिक प्रभावित थे और सम्मान किया करते थे। (१२८–इ) अवकाश प्राप्त करने पर आप अपने घर पर ही अनेक व्यक्तियों को निःशुल्क अध्यापन किया करते थे। आपके पास स्वतन्त्र रूप से अध्ययन करने वाले अनेक विद्वानों में पं० श्री जगदीश शर्मा दाधीच, भूतपूर्व साहित्य प्राध्यापक, संस्कृत कालेज, जयपुर का नाम उल्लेखनीय है, जो आपके द्वारा संस्थापित वीरेश्वर पुस्तकालय के अवैतनिक मंत्री रह चुके हैं। आपने काशी तथा जयपुर में अपने नाम से एक पुस्तकालय की स्थापना की थी, जिसका नाम वीरेश्वर पुस्तकालय है। इसका परिचय, परिचय खण्ड तृतीय अध्याय (च) अनुभाग में प्रस्तुत किया जा चुका है। आप के रचनात्मक कार्य के सम्बन्ध में—(१) श्रीधरी (शब्देन्दुशेखर की टीका), (२) विषमी (शब्देन्दुशेखर की टीका), विवरण (कयैट महाभाष्य का प्रथम व द्वितीय अध्याय) और भोज का सरस्वती कंठाभरण आदि ग्रन्थों का सम्पादन किया था—ऐसा उल्लेख मिलता है। (१२८–ई) इनमें सरस्वती कंठाभरण वैशाख शुक्ला अष्टमी सम्वत् १९४३ को जैन प्रभाकर मुद्रणालय, काशी से प्रकाशित है। कविशिरोमणि भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री ने अपने जयपुरवैभवम् में (पृष्ठ २४९, पद्य संख्या ५७) आपका सादर उल्लेख किया है। आप अत्यन्त प्रतिभावान्, वैदुष्यसम्पन्न, शान्त विद्वान् थे। आपका अप्रकाशित रचनात्मक कार्य अब उपलब्ध नहीं है।

(१२८–आ)—अगस्त, १८९६ का उपस्थिति पत्रक महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर में उपलब्ध।

(१२८–इ) —आत्मकथा और संस्मरण—श्री चतुर्वेदीजी—पृष्ठ ६१–६२।

(१२८–ई) —हितैषी जयपुर अंक—दिसम्बर–जनवरी, सन् १९४१–४२—पृष्ठ १६६।

१२६. श्री वृद्धिचन्द्र शर्मा शास्त्री

राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन के भूतपूर्व प्रधान मन्त्री, महाराज सस्कृत कालेज, जयपुर के धर्मशास्त्र प्राध्यापक, धर्मसभा (मोदमन्दिर) के सम्मानित सदस्य, सस्कृत रत्नाकर व भारती मासिक पत्रिकाओ के सम्पादक, श्रीमाली जातिभूषण स्वर्गीय प० वृद्धिचन्द्रजी शास्त्री व्याकरणधर्मशास्त्राचार्य जयपुर नगर के उल्लेखनीय विद्वानों ने अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते है। आपके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर जयपुर नगर की सस्था 'वैदिक संस्कृति प्रचारक संघ' ने आपकी पुण्य-स्मृति मे एक भव्य स्मारिका प्रकाशित की है, जिसमे चार खण्ड है। प्रथम खण्ड मे सन्देश, द्वितीय मे शास्त्रीजी का पूर्ण परिचय, तृतीय खण्ड मे अनेक विद्वानों, मित्रो, शिष्यों एव प्रतिष्ठित नागरिकों द्वारा श्री शास्त्रीजी का स्वरूप प्रदर्शन और चतुर्थ खण्ड मे उनके रचनात्मक कार्य का उल्लेख किया गया है।

'वैयक्तिक सतहो पर' शीर्षक से प्रस्तुन किये गये ३५ महत्वपूर्ण लेखों के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि श्री शास्त्रीजी निश्छलव्यक्तित्वसम्पन्न, स्नेहीबन्धु, सदाचार के अनुयायी, सस्कृत-सस्कृति के सेवक, संस्कृति के साधक, उदार विचारक, निःस्वार्थ मनीषी, सस्कृत-सस्कृति के संरक्षक, आदर्श नररत्न, यथार्थद्रष्टा, त्रिविधगुणों के धनी, धर्मशास्त्र निष्णात, स्नेही गुरु, मर्मज्ञ खगोलविद्, धर्मव्यवस्थाकुशल, अभिन्न मित्र, स्नेही सुहृत्, कर्मठ व्यक्ति, सम्पादन कला पारंगत, वेद विषयज्ञाता, सघटन के सूत्रधार, बहुमुखी प्रतिभा के धनी, धर्ममर्यादा पालक तथा एक सफल अध्यापक भी थे। आपने अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक सस्कृत व सस्कृति की पर्याप्त सेवा की है, जो उल्लेखनीय है।

राजस्थान एवं गुजरात के सीमान्त प्रदेश पर भारतीय सस्कृति के प्रतीक, प्राचीन वैभवविशाल सम्पन्न 'श्रीमाल' नगर, जो आजकल भीनमाल नाम से विख्यात है, आपके पूर्वजों की जन्मभूमि रही है। यहाँ के निवासी ब्राह्मण श्रीमाली कहलाये हैं, जो कालान्तर मे आजीविका के लिए सम्पूर्ण भारत में फैल गए। राजस्थान प्रान्त में दो वर्ग हुए, जो (१) मारवाड़ी आम्नाय तथा (२) मेवाड़ी आम्नाय नाम से विख्यात हुए। प्राचीन पत्रो एवं परम्परा प्राप्त वर्णन के अनुसार यह ज्ञात होता है कि श्री शास्त्रीजी के पूर्वजो मे श्री सुखदेवजी ने सर्वप्रथम संवत् १६३५ में 'घाणेराव' ग्राम का परित्याग किया था तथा जोधपुर मे निवास किया था। ५ पीढ़ी तक जोधपुर मे निवास करने के उपरान्त पं० श्री डूंगरलालजी ने चैत्र शुक्ला सप्तमी संवत् १८७७ को जयपुर में निवास प्रारम्भ किया। आपका वंशवृक्ष इस प्रकार है :—
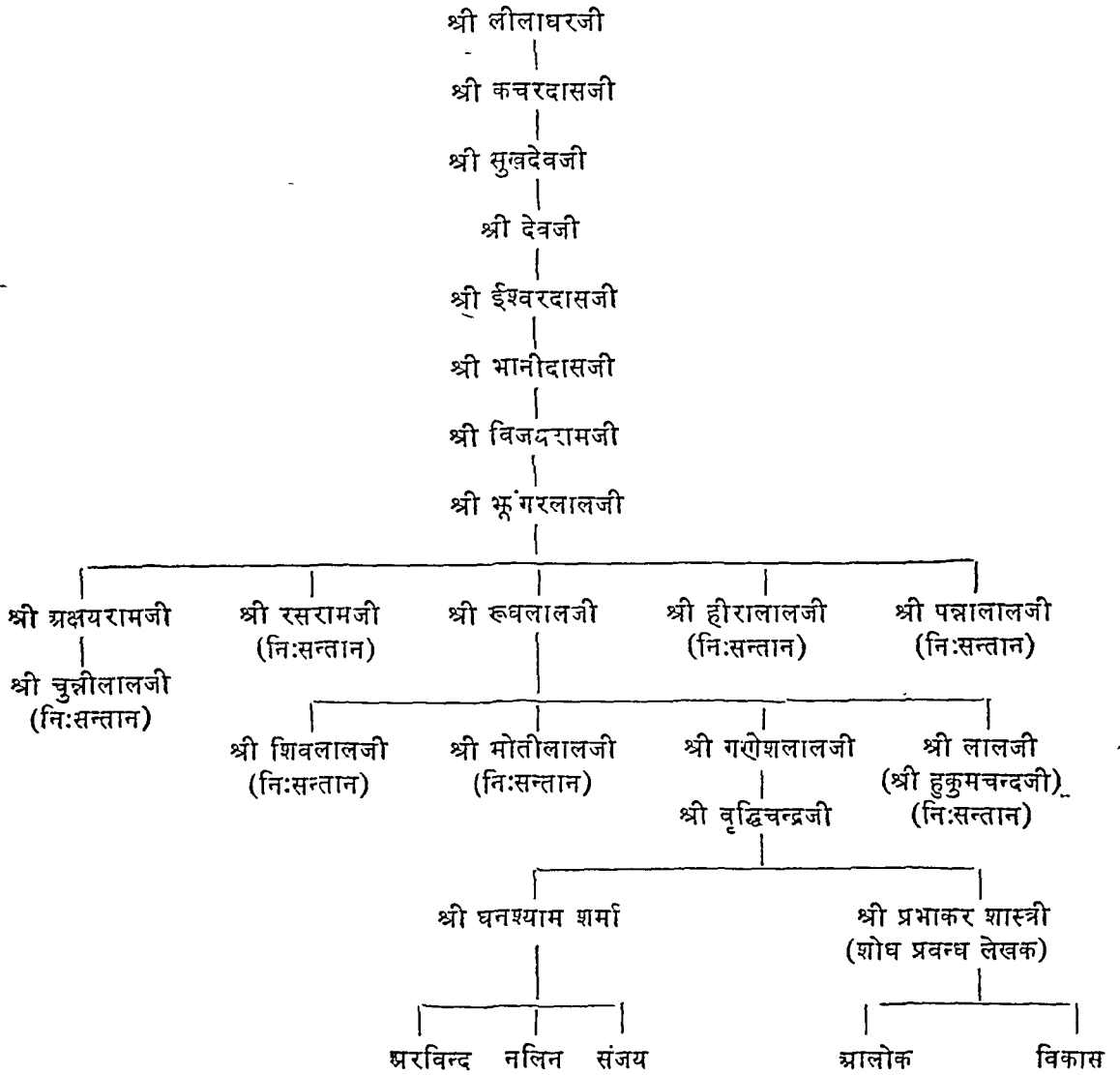
श्री डूंगरलालजी के जयपुर आने के पश्चात् आज तक श्री शास्त्रीजी के पूर्वज जयपुर में ही रहते रहे हैं। महामारी तथा अकाल आदि दैवी विपत्तियों के कारण आपके पूर्वजों को स्थान परिवर्तन करना पड़ा था तथा ये लोग मध्यप्रदेश, सी० पी०, बरार में जाकर बसे थे। अपनी विद्वत्ता के कारण वहाँ पर भी इन लोगों ने निवास बना लिया था।

जीवन परिचय

श्री शास्त्रीजी का जन्म जयपुर में ही फाल्गुन कृष्णा तृतीया बुधवार संवत् १९६१ को हुआ। आप अपने पिता व पितृव्यों में एकाकी पुत्र व उत्तराधिकारी थे। आपका नाम पूर्णचन्द्र रखा गया था, जिसे श्री शिवलालजी (ताऊजी) ने परिवर्तित कर वृद्धिचन्द्र रखा था। आपका बाल्यकाल वर्धा (सी० पी०) में व्यतीत हुआ तथा आपने प्रवेशिका व प्रथमा तक अध्ययन वहीं रहकर किया। इसके पश्चात् आपका जयपुर आगमन हुआ। आपके

पितृचरण का देहावसान ११ वर्ष की अवस्था में ही हो गया था। आपकी स्थिति अध्ययन को नियमित रखने के पक्ष में नहीं थी, तथापि आपकी लगन व प्रेरणा ने संस्कृत कालेज में अध्ययन के लिये बाध्य किया। पितृव्यों का दृष्टिकोण था ज्योतिष पढ़ाने का, परन्तु आपने व्याकरण विषय में प्रवेश लिया। इसका कारण तत्कालीन प्राचार्य महामहोपाध्याय पं० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी भी थे। आपकी विलक्षण प्रतिभा से प्रभावित होकर ही श्री चतुर्वेदी ने आपको व्याकरणोपाध्याय में प्रवेश दिया।

व्याकरणोपाध्याय तथा व्याकरण मध्यमा (बनारस) प्रथम श्रेणि में उत्तीर्ण करने पर आपको छात्रवृत्ति मिली और उत्साह से आपने व्याकरणशास्त्री में प्रवेश लिया। स्वर्गीय राजगुरु पं० चन्द्रदत्त ओझा तथा पं० श्री चन्द्रशेखर शास्त्री प्रश्नवर ने आप को पुत्रवत् अध्यापन किया। इन दोनों विद्वानों के आशीर्वाद से आपने शास्त्री परीक्षा संवत् १९८४ तथा आचार्य परीक्षा संवत् १९८७ में उत्तीर्ण की। (१२९–अ) आपने ग्रीष्मावकाश के समय में म० म० श्री चतुर्वेदी, विद्यावाचस्पति पं० मधुसूदनजी झा, पं० बदरीनारायणजी दवे ज्योतिषी प्रभृति विद्वानों की सेवा में पहुंच कर दर्शनशास्त्र, साहित्य, वैदिक विज्ञान तथा ज्योतिष का अध्ययन कर इन पर भी पूर्णाधिकार प्राप्त किया। आप खगोलशास्त्र के पारंगत विद्वान् थे तथा फलित ज्योतिष पर भी पूर्णाधिकार रखते थे। राजज्योतिषी तथा जयपुर यन्त्रालय के अधीक्षक स्वर्गीय पं० कन्हैयालालजी ज्योतिषी आपके श्वसुर थे। आपकी प्रतिभा से प्रभावित होकर ही श्री ज्योतिषीजी ने अपनी ज्येष्ठा पुत्री श्रीमती भ्रमरी देवी के साथ आपका विवाह सम्पन्न किया।

महामहोपाध्याय पं० श्री चतुर्वेदीजी के पास रह कर आपने पंजाब से शास्त्री (साहित्य) परीक्षा, १९३३ में उत्तीर्ण की। इसी वर्ष आपने एडंवास हिन्दी परीक्षा अजमेर से उत्तीर्ण की। आपका अध्ययन क्रम चलता रहा तथा सन् १९३६ में आपने धर्मशास्त्र विषय से आचार्य परीक्षा प्रथम श्रेणि में उत्तीर्ण की। आप इस विषय में सर्वप्रथम छात्र थे।

महामहोपाध्याय श्री चतुर्वेदीजी ने अपनी आत्मकथा और संस्मरण नामक रचना में 'शिष्य मण्डली' का वर्णन करते हुए आपके सम्बन्ध में लिखा है :—(१२९–आ)

> "मेरे अध्यक्ष काल के कुछ स्नातकों के नाम भी विशेष उल्लेखनीय हैं। व्याकरण विभाग में श्री वृद्धिचन्द्रजी आचार्य, जिनने व्याकरणाचार्य उत्तीर्ण करने के अनन्तर धर्मशास्त्र की आचार्य परीक्षा भी दी थी, उसका अध्ययन इनने मेरे सान्निध्य में ही किया। पंजाब की शास्त्री परीक्षा भी पास की। अन्य अनेक दर्शन के ग्रन्थों का अध्ययन भी मेरे पास किया और स्नातक होने के अनन्तर स्कूल विभाग में मेरे समय में ही अध्यापक बना दिये गये। आगे चल कर ये कालेज में धर्मशास्त्र के प्रधान प्रोफेसर पद पर आ गये। इस पद पर पूरे काल तक काम करके अनुमानतः २५–३० वर्ष बाद ५५ वर्ष की आयु में ये कालेज की सेवा से मुक्त हो गये। दुःख है कि अवकाश लेने के ४–५ वर्ष बाद ही उनका मध्यम आयु में ही देहान्त हो गया। कालेज के अनन्तर इस शेष काल में इनने संस्कृत साहित्य सम्मेलन की भी सेवा की। जयपुर के हमारे शिष्य वर्ग में ये सुयोग्य सिद्ध हुए। यद्यपि व्याकरण का अध्ययन इनका मित्रवर श्री चन्द्रदत्तजी ओझा के सान्निध्य में हुआ था, किन्तु उसके अनन्तर बहुत वर्षों तक अध्यापक हो जाने के बाद भी ये मेरे पास अध्ययन करते रहे।"

(१२९–अ)—शास्त्रिपरीक्षणोत्तीर्णच्छात्राणां नामादीनि—क्रमांक २३०—प्रथम श्रेणि—सं० १९८४ व आचार्य-परीक्षोत्तीर्णच्छात्राणां नामादीनि—क्रमांक ८९—द्वितीय श्रेणि—१९८७।

(१२९–आ)—आत्मकथा और संस्मरण—श्री चतुर्वेदी—जयपुर में बीस वर्ष—पृष्ठ २५—पण्डित व्याकरण।

सन् १९३१ में आचार्य (व्याकरण) उत्तीर्ण करने के पश्चात् सर्वप्रथम चमड़िया संस्कृत कालेज, फतेहपुर शेखावाटी (जिला सीकर) में प्रिंसिपल बनकर चले गये, जहाँ आपने तीन वर्ष तक कार्य किया। आपने अपनी ज्ञान-पिपासा शान्ति के लिए इस स्थान को छोड़कर आर्थिक हानि सहन करते हुए भी जयपुर संस्कृत कालेज के स्कूल विभाग में दिनांक २२ मार्च, १९३३ को व्याकरण पण्डित के पद पर कार्य करना प्रारम्भ किया। (१२९-इ) निरन्तर उन्नति करते हुए अपने ७ सितम्बर, १९४० को धर्मशास्त्र विभाग के प्राध्यापक का पद प्राप्त किया और सन् १९६१ तक इस पद पर सफलतापूर्वक कार्य करते रहे। आपने इन पंक्तियों के लेखक को भी परम्परानुसार संस्कृत अध्ययन के प्रति प्रेरित किया था तथा धर्मशास्त्र उपाध्याय, शास्त्री तथा आचार्य तक नियमित रूप से अध्यापन किया था। जयपुर के विद्वानों के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि के रूप में उनका परिचयात्मक ग्रन्थ प्रस्तुत करने का विचार उनने मुझे आदेश देते हुए प्रकट किया था, जिसका परिणाम उक्त शोधग्रन्थ है। यह ग्रन्थ उनकी प्रेरणा से ही विद्वानों के सम्मुख प्रस्तुत किया जा रहा है।

आपकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर शेखावाटी विद्वत्-सभा ने आपको "साहित्यार्णव" तथा संस्कृत परिषद् अयोध्या ने "साहित्यालंकार" की उपाधि से सम्मानित किया था। आप धर्मसभा मोदमन्दिर के सम्मानित सदस्य थे। जयपुर राजघराने से आपका पर्याप्त सम्बन्ध था। अनेक बार धार्मिक विवादों पर विचार-विमर्श करने के लिए वर्तमान नरेश आपको सादर आमन्त्रित किया करते थे। आपने जयपुर में सम्पन्न वर्तमान नरेश की रजत जयन्ती अवसर पर आमेर में एक शतचण्डी अनुष्ठान के आचार्यत्व का पद बड़ी कुशलता से निभाया था। आलोचना और समालोचना के क्षेत्र में कार्य करते हुए आपने अनेक लेख व कहानियां लिखी थीं, जो अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन के आप कर्मठ कार्यकर्त्ता तथा कार्यकारिणी समिति के सदस्य रह चुके हैं। राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन के आप प्रधानमन्त्री थे। इस पद पर आपने सन् १९६१ से सन् १९६४ तक कार्य किया। इस पद पर आपकी सेवायें उल्लेखनीय मानी जाती हैं। आप राजस्थान संस्कृत शिक्षा सलाहकार मण्डल के सम्मानित सदस्य थे। इसी के साथ श्री दादू महाविद्यालय, राष्ट्रभाषा कालेज, वैदिक संस्कृति प्रचारक संघ, संस्कृत वाग् विवर्द्धिनी परिषद् आदि अनेक सामाजिक संस्थाओं के कार्यकारिणी के सदस्य रह चुके हैं। अपने जातीय संस्थान श्री महालक्ष्मी समाज के तो आप जन्मदाता तथा संरक्षक के रूप में आज भी स्मरण किये जाते हैं।

आपका स्वर्गवास २८ जनवरी, १९६४ को जयपुर में ही हुआ। आपके उल्लेखनीय शिष्यों में—(१) श्री प्रवीणचन्द्र जैन, (२) डा० मण्डन मिश्र शास्त्री, (३) श्री कलानाथ शास्त्री, (४) श्री नारायण शास्त्री कांकर, (५) श्री रामनारायण चतुर्वेदी, (६) पं० रामगोपाल शास्त्री, (७) पं० हरिशंकर शर्मा, (८) पं० गोविन्दनारायण शास्त्री, (९) श्री रामचन्द्र सिंघानिया तथा इन पंक्तियों के लेखक का नाम भी स्मरणीय है।

आप अपने बाल्यकाल से ही संस्कृत-संस्कृति के परम उपासक रहे हैं। आपका जीवन एक आदर्श जीवन माना जाता रहा है। आपकी सत्यनिष्ठा तथा नियम परिपालन शक्ति आज भी स्मरण की जाती है। आप बहुचर्चित प्रतिभा के धनी थे। आपके रचनात्मक कार्य का अधिकांश भाग वैदिक संस्कृति प्रचारक संघ, जयपुर द्वारा प्रकाशित स्मारिका में प्रकाशित हो चुका है। आपके प्रकाशित लेखों व अन्य रचनाओं का विवरण इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :—

(१२९-इ)—लिस्ट आफ एजु० आफिसर्स—संस्कृत कालेज,—क्रमांक २५—पण्डित व्याकरण।

क्रम	लेख विषय	प्रकाशन विवरण
१.	आदर्श-दम्पती (उपन्यास)	संस्कृत रत्नाकर ४।७, ८,९, १० व ११
२.	सापिण्ड्य-भास्करालोचनम्	संस्कृत रत्नाकर ८।८,९ व १०
३.	मोहमयीस्थ-विबुधाम् प्रति	संस्कृत रत्नाकर ११।६
४.	प्रकाशकीयम्	संस्कृत रत्नाकर १३।१२
५.	सम्पादकीयम्	संस्कृत रत्नाकर २२।२
६.	गुरु-गोविन्दसिंहः	भारती १।३
७.	पुस्तकालोकः	भारती ४।१
८.	यवनसम्राजः कुमार्याः मर्मस्पर्शो विचारः	भारती ९।५
९.	उमा (आख्यायिका)	भारती १०।२, ३
१०.	कथं स्यात् आर्यसंस्कृतेः पुनरुद्धारः	भारती १३।३
११.	हमारे धर्मशास्त्र (शोध लेख)	सेठ राजाराम अभिनन्दन ग्रन्थ
१२.	भारतीय धर्म की विशेषता	जयभूमि २।१ नवम्वर, १९४१
१३.	गोवर्द्धन पूजा	राष्ट्रदूत दीपावली १९५७ अंक
१४.	क्षयमास परम्परा (शोध लेख)	विश्वम्भरा १।४
१५.	केनोपनिषद् (वार्ता)	आकाशवाणी से प्रसारित
१६.	वैदिक ऋषि वामदेव (वार्ता)	आकाशवाणी से प्रसारित
१७.	भविष्य पुराण : एक समीक्षा (वार्ता)	आकाशवाणी से प्रसारित
१८.	वैराग्य पंचक (वार्ता)	आकाशवाणी से प्रसारित
१९.	शीला भट्टारिका (वार्ता)	आकाशवाणी से प्रसारित
२०.	प्राचीन-शिक्षा-प्रणाली श्रेयसे (शोधलेख)	—

आपके अनेक लेख अप्रकाशित हैं। आपने संस्कृत रत्नाकर का प्रकाशकत्व, सहायक सम्पादकत्व, सम्पादकत्व तथा भारती का सम्पादकत्व ग्रहण कर संस्कृत साहित्य की उल्लेखनीय सेवा की है। भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री ने आपके प्रति शुभाशंसा इस प्रकार प्रस्तुत की है :—

"कृतिसमृद्धि-पदशुद्धि-सिद्धिषु पटुमनुविद्धि यम्।
बुद्धिषु को निरुणद्धि वृद्धिचन्द्रवरविद्धियम्॥" (जयपुरवैभवम्—पद्य १०० पृष्ठ २७४)

आप उल्लेखनीय विद्वान् थे।

———

१३०. श्री वृन्दावन कथाभट्ट

जोधपुर राज्यान्तर्गत पोकरण ग्राम के मूल निवासी तथा सवाई जगत्सिंह के शासन काल से (१८०३ से १८१८ ई०) जयपुर नगर के प्रवासी ताजीमी सरदार कथाभट्ट नामावाल दाधीच वंश के उज्ज्वल रत्न पं० जगन्नाथ के पुत्र पं० छोटेलालजी नामावाल, जो श्री हरगोविन्द कथाभट्ट के नाम से विख्यात थे, जयपुर के संस्कृत विद्वानों की गणना में उल्लेखनीय हैं। आपके ३ पुत्र थे—(१) श्री वृन्दावनजी, (२) श्री नारायणजी (३) श्री शिवनारायणजी। इनमें ज्येष्ठ पुत्र श्रीवृन्दावनजी पुराणादि शास्त्रों के विद्वान् तो थे ही, साथ ही न्यायशास्त्र के भी विख्यात विद्वान् थे।

महाराज संस्कृत कालेज की स्थापना के समय से ही आप उक्त विद्यालय में हिन्दी पढ़ाते थे। उस समय आपको २० रु० मासिक प्राप्त होता था। (१३०-अ) इसी प्रकार राजस्थान अभिलेखागार, बीकानेर से प्राप्त रिकार्ड के अनुसार १८७३ ई० के बजट में आपको हिन्दी पढ़ाने वाला बतलाया है। (१३०-आ) आपने माघ शुक्ला ५ संवत् १९४० तदनुसार १८८४ ई० तक कार्य किया था। (१३०-इ) आप इसी दिन दिवगंत हुए थे। आपके पुत्र पं० चन्द्रेश्वर या चन्द्रदत्तजी आपके पश्चात् आपके स्थान पर अध्यापक नियुक्त हुए थे।

एक उल्लेखनीय बात यह है कि आपको तत्कालीन राज्य सरकार की ओर से एक रजत पदक प्राप्त हुआ था, जो आज भी आपके अनुवंशज पं० जगदीशचन्द्र कथाभट्ट के पास सुरक्षित है। उस पर ये शब्द अंकित हैं:—

सामने—प्रजेन्टेड बाई पण्डित श्योदीन, वृन्दावन फोर प्रोफिशियेन्सी इन संस्कृत लौजिक

पीछे—नालेज इज पावर (संस्कृत कालेज का भवन चित्र) मदरसा जयपुर १८८५.

अर्थात् आपको न्यायशास्त्र में विशेष योग्यता प्राप्त करने पर १८५५ ई० तत्कालीन प्रधानमन्त्री तथा सुपरिन्टेन्डेन्ट शिक्षा विभाग पं० शिवदीनजी ने यह पदक दिया था। यह एक सम्मान तथा प्रतिष्ठा का उल्लेखनीय वृत्तान्त है।

आपका रचनात्मक कार्य नहीं मिलता है।

---

१३१. महामहोपाध्याय श्री शिवदत्त शास्त्री दाधिमथ

पं० श्री शिवदत्त शास्त्री जयपुर नगर के विद्वद्रत्नों में से एक थे। आपका जीवन चरित्र अनेक स्थलों पर प्रकाशित हो चुका है। (१३१-अ) पं० बिहारीलालजी शास्त्री ने संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करते हुए लिखा है:—

(१३०-अ)—संस्कृत कालेज जयपुर के प्राचीन रिकार्ड उपस्थित पत्रक (परिशिष्ट ४-इ) "नकसो पंडितों की हाजरी का मीती म्हा बुदी ३ से महीना जनवरी का सरु हुआ, सन् १८६९। कमांक १० पंडीत वृदावनजी।

(१३०-आ)—जयपुर गवर्नमेंट सेक्रेटेरियट रिकार्ड १८७३।१३८ (परिशिष्ट ४-आ)

(१३०-इ)—यह उल्लेख दिसम्बर १८४४ ई० से मई, १८८९ के उपस्थिति पत्रकों में मिलता है।

(१३१-अ) (क) "म० म० विद्वद्वर" श्री शिवदत्त शर्मणां संक्षिप्तजीवनचरितम्"—ले० प० बिहारीलाल शर्मा (दधिमती पत्रिका (त्रैमासिक) ५।४ व ६।१ संवत् १९७३)।

(ख) म० म० प० शिवदत्तजी का जीवनचरित—ले० पं० मोहनलाल दाधिमथ-दधिमती पत्रिका १२ वर्ष (सं० १९८०), ११, १२, १३वां वर्ष १,२,३,४,६,७।

"श्रीमद्बदरीलालो भूषा दाधिमथशुद्धवंशस्य ।
अविनयनाशननिपुणश्छात्राणां मोदकश्चासीत् ।। १ ।।
तस्माच्छ्रीशिवदत्तः सकलशिवानां खनिर्जनिं प्रापत् ।
शशिशरवसुशर (१८५१) संख्ये ख्रिस्ताब्दे जयपुर-रम्ये ।। २ ।।
तस्य तृतीये वर्षे जननी प्रययौ दिवं रुजा गोदा ।
सूनुं समर्प्य सुभगा रम्यं श्वश्रु समुत्संगे ।। ३ ।।
बालावननिपुणायाः परिपूर्णायाश्च वत्सलत्वेन ।
लभमानः परिपोषं वृद्धिं प्रापत् पितामह्याः ।। ४ ।।
सारस्वतीं तु शिक्षां जग्राहान्हाय मधुरमृद्वीकाम् ।
अध्यापयतस्तातात् बुद्धिमतश्चान्द्रपौलिमठे ।। ५ ।।" इत्यादि

श्री शास्त्रीजी का जन्म मार्गशीर्ष कृष्णा दशमी, संवत् १९०८ तदनुसार १८५१ ई० को जयपुर नगर निवासी पं० बदरीलालजी दाधीच के यहाँ हुआ था। आपकी माता गोदा तीन वर्ष का छोड़कर दिवंगत हो गई थी। आपका लालन-पालन आपकी पितामही ने किया। आपके पितृचरण पं० बदरीलालजी संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे तथा मन्दिर रामचन्द्रजी में (चांदपोल दरवाजा) लगने वाली संस्कृत पाठशाला में व्याकरण पढ़ाते थे। (१३१–आ) आपने सर्वप्रथम अपने पितृचरण से सारस्वत का अध्ययन किया। मिडिल स्कूल तक का अध्ययन वहाँ सम्पन्न कर आपने महाराज संस्कृत कालेज में प्रवेश लिया तथा अध्ययन में सफलता प्राप्त की। क्रमशः उत्तीर्ण होते हुए आपने उच्च कक्षाओं में प्रवेश लिया और सम्पूर्ण व्याकरणशास्त्र का अध्ययन समाप्त कर सन् १८७९ ई० में अपने पिता के स्थान पर अध्यापकत्व प्राप्त कर लिया :—

"सुमतिः समाप्य सर्वं तत्रत्यं पाठ्पुस्तकं सपदि ।
विद्याविलासमुग्धः संस्कृतविद्यालयेऽपाठीत् ।। ६ ।।"
"नवशरवस्विन्दुमिते (१८५९) ख्रिस्ताब्दे शोभने महोत्साही ।
विद्यार्थीवृत्तिमापत् प्राविस्कुर्वन् स्व-वैशिष्ट्यम् ।। ७ ।।
प्रविवेश संस्कृतमहाविद्याश्रेणिं विशेषशिक्षायै ।
दर्भाग्रशेमुषीकः सुश्रीकः शिक्षकानुमतः ।। ८ ।।
सहरन्मनांसि तत्राध्यापकवृन्दस्य वन्दनीयस्य ।
अप्रतिमप्रतिभातः शिक्षां दक्षो मुदाऽलभत ।। ९ ।।
नवमुनिवसुशशि (१८७९) संख्ये ख्रिस्ताब्दे शास्त्रनीतिसंवेता ।
शिक्षाविभागमुख्ये दीनानाथाभिधे पूर्वम् ।। १० ।।
अध्यापकत्वममलं जनकपदाब्जैर्विसृष्टमुत्कृष्टम् ।
अंगीचकार मौलं संस्कृतविद्यालये महति ।। ११ ।।"

(१३१–आ)—परिचय खण्ड परिशिष्ट ४–आ व ई रिकार्ड नं० ६१२—पं० बदरीलाल........।

भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री ने लिखा है कि आपने संस्कृत कालेज के अध्यक्ष पं० श्री रामभज जी सारस्वत तथा व्याकरण प्राध्यापक पं० शिवरामजी सारस्वत से व्याकरण का अध्ययन किया था। आपके पिता उस समय संस्कृत कालेज में ही पढ़ा रहे थे। (१३१–इ)

आपका परिचय लिखते हुए पं० मोहनलालजी ने लिखा है कि आपकी शास्त्र विचक्षणता से प्रभावित होकर ही तत्कालीन विद्वान् लोग आपको 'पण्डित' कहा करते थे। विक्रम संवत् १९४६ सन् १८८९ में आपने आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी में संस्कृत प्राध्यापक की मांग पर प्रार्थनापत्र भेजना चाहा था, परन्तु बम्बई से डा० पीटरसन नामक पाश्चात्य विद्वान् आपको अलवर ले गए और वहाँ के पुस्तकालय का सूचीपत्र बनवाने में सहायता ली। अलवर महाराज श्री मंगलसिंहजी, पुस्तकालयध्यक्ष पं० गंगाधरजी तथा स्थानीय राजपण्डित चंचलजी झा, पं० भवानन्दजी पं० रामचन्द्रजी ज्योतिषी, पं० गंगासहायजी प्रभृति ने आपका पर्याप्त सम्मान किया। इसी बीच आक्सफोर्ड में पं० श्यामजी कृष्ण वर्मा नामक विद्वान् की नियुक्ति हो गई। अतः आप विलायत न जा सके। आपने विलायत जाने वाले व्यक्तियों के लिए 'क्रियमाणं धर्मसभानुमोदितं प्रायश्चित्तम्' शीर्षक से एक लघुकाय ग्रन्थ श्री वेंकटेश्वर से प्रकाशित होने वाले निर्णयसिन्धु में टिप्पणी रूप में प्रकाशित करवा दिया था।

श्री हरिदास बाबू ने आपका परिवर्तन चांदपोल स्कूल में कर दिया और आपने क्रुद्ध होकर अध्यापन कार्य से त्यागपत्र दे दिया था। पं० बिहारीलालजी ने लिखा है :—

> "अवरां पाठकपदवीं श्रीहरिदासेन शास्त्रिणा पूर्णाम्।
> पदवीं प्रिन्सपलीयां मण्डयताऽखण्डविद्येन ॥ १२ ॥
> वियदंकाहीन्दु (१८९०) मिते वर्षे धीमान् सचान्द्रपोलिमठे।
> अनुरुद्धोऽध्यापयितुं क्रुद्धो विजहौ पदं स्वीयम् ॥ १३ ॥"

पद परित्याग की घटना के पीछे एक इतिहास है; जिसका उल्लेख पण्डित मोहनलालजी ने इस प्रकार किया है—"विक्रमसंवत् १९४७ (१८९० ई०) को हरिदासजी शास्त्री की शिक्षा विभागाध्यक्षता में उक्त शास्त्रीजी के भ्राता (साधु होकर गृहस्थाश्रम को त्याग दिया था) के लिए श्री वृन्दावन में मन्दिर बनवाने के लिए चन्दा इकट्ठा करने को प्रार्थनापत्र श्री लक्ष्मीनाथजी शास्त्री ने बनाकर सौजन्य से कृपापूर्वक आपको (शिवदत्तजी) भी दिखलाया। आपने जो अशुद्धियाँ बतलाईं, वे शास्त्रीजी ने निर्मत्सर शुद्ध करदीं। भावी के वश से वे अशुद्धियां इन्होंने मांगीलालजी को बतला दीं। शास्त्रीजी मांगीलालजी को चिढ़ाने के लिए उनके गुरु पडित रामभजजी व शिवरामजी की निन्दा करते थे, जिनकी प्रशंसा काशीस्थ प्रधानपण्डित श्रीयुत् बालशास्त्रीजी भी किया करते थे। मनीषी मथुराप्रसादजी वकील को संस्कृत पढ़ाने के लिए मांगीलाल वैदिक प्रतिदिन जाया करते थे तथा शास्त्रीजी अपने मुकदमे के लिए जाते थे। वहाँ दोनों का मेल प्रतिदिन हुआ करता था। शास्त्रीजी ने अपनी प्रकृति से पण्डित रामभजजी व शिवरामजी की निन्दा करना शुरू किया। शास्त्रीजी का व्याख्यान समाप्त होते ही मांगीलालजी ने शास्त्रीजी की रुबरु मनीषी मथुराप्रसादजी को संबोधन कर उस प्रार्थना-पत्रगत अशुद्धियों का वर्णन कर दिया कि काशी के पण्डितों को इन स्थूल अशुद्धियों का भी पता नहीं तो महाराजास् कालेज में विद्यार्थियों को क्या पढ़ाते होंगे। बस शास्त्रीजी मांगीलालजी का व्याख्यान सुनते ही लज्जित होकर चले गये। शास्त्रीजी को निद्रा क्यों आवे, क्योंकि—"सतां माने म्लाने मरणमथवादूरसरणम्"। सूर्योदय होते ही शास्त्रीजी शिक्षा विभागाध्यक्ष हरिदासजी को जाकर कहने लगे कि या तो मुझको ही रक्खो या शिवदत्त को ही रखो। यदि

(१३१-इ)—जयपुरवैभवम्—सुधीचत्वरः—चरित्रसंग्रह :—पृष्ठ २५१।

शिवदत्त को रखते हो तो मेरा त्यागपत्र लो। शिक्षा विभागाध्यक्षजी ने कहा कि कहाँ आप राजमान्य, कहाँ १५ रु० मासिक पाने वाला शिवदत्त, आपका उसका विरोध उचित नहीं, क्योंकि "विवादश्च विवाहश्च समयोरेव शोभते"। उस दीन पर आपका क्रोध उचित नहीं। तब शास्त्रीजी ने कहा कि यदि मौकूफ नहीं करते हो, तो उसकी बदली ही करदो। यदि बदली भी न करोगे तो में काशी चला जाऊंगा। यह शास्त्रीजी का अभिनिवेश देखकर विभागाध्यक्षजी ने कौंसिल में चांदपोल पाठशाला में बदली की मंजूरी के लिए लिख दिया। जब मंजूरी आई तो पं० शिवदत्तजी ने त्यागपत्र दे दिया।"

कहते हैं कि इस प्रश्न पर पं० दुर्गाप्रसादजी को भी बहुत दुःख हुआ था तथा उनने आपको काव्यमाला के सम्पादन में सहयोगी बनाया।

उररीचक्रेऽथ तदनु संपन्मूलां स काव्यमालायाः।
दुर्गाप्रसाद विदुषः संपादनकर्ता स्ववैशिष्ट्यात्॥ १४॥"

तीन वर्ष तक आपने इस कार्य को किया। संवत् १९५२ (१८९४ ई०) को लाहौर नगरीय प्राच्य विद्यालय (ओरियन्टल कालेज) के प्रधान महामहोपाध्याय पण्डित गुरुप्रसाद शास्त्री के निधन से रिक्त स्थान पर एम० ए० स्टेन, पी-एच० डी० ने आपका ही चयन किया।

"श्रुतनिधिवसुशशि (१८३४) शालिनी वर्षेऽशेषो विशेष-परितोषः।
मुख्याध्यापकपदवीं पदवीं सन्मानधनयशसाम्॥ १७॥
लेभे लोभेऽलीनः सल्लीनः स्वागमार्थशालीनः।
लवपुरशालिनि रम्ये विद्यानिलये स विश्वपदपूर्वे॥ १८॥
विश्रुतकीर्तिः श्रुतिततिसंश्रुंति विमलश्रुतिर्महीमान्यः।
विद्वद्विस्मृतिविषयस्मृतिकुशलस्मृतिषु सन् प्रतिभः॥ १९॥
शास्त्रज्ञगोत्रमित्रश्छात्रव्रातातपत्रसद्गात्रः।
हेपितविद्यामित्रो मित्रं संद्वशशतपत्रम्॥ २०॥
स्टाइननामाऽपरिमितधामा रामापराङ्मुखः सुमुखः।
संस्कृतवाणीरमणीगुणगणमहिमाहृतस्वान्तः॥ २१॥
विभरांचकार चतुरोऽध्यापकवर्य्यैर्विमण्डितः शौण्डैः।
स्नातो रीतिषु नीतेः प्रिन्सिपलीयां यदा ह्ययं पदवीम्॥ २२॥"

आपके साथ पं० दुर्गादत्त, हरिभक्त, पं० योगीश्वर, पं० शिवनाथ शास्त्री तथा पं० गंगाविष्णुशास्त्री प्रभृति विद्वान् उक्त कालेज में कार्य कर रहे थे। इसी वर्ष आपके पितृचरण का देहान्त हुआ था।

"वर्षे तस्मिन्नेव प्रमोदजनकः सतां स तज्जनकः।
सुविशालोत्तमभालो बदरीलालोऽगमत् स्वर्गम्॥ २५॥"

आपकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर ब्रिटिश सरकार ने "महामहोपाध्याय" की उपाधि से विभूषित किया था। आपके शरीर पर श्वेत चिह्न हो गए थे और श्वित्र का अनुमान कर आपने आत्महत्या का विचार किया। पं० प्रसादीलालजी वैद्य ने उपचार से उसे समाप्त कर आपकी शंका निर्मूल सिद्ध की।

आपकी विद्वत्ता को सुनकर पंजाब विश्वविद्यालय के चांसलर ने आपको उक्त विश्वविद्यालय का फेलो (Fellow) बनाया। लेफ्टिनेन्ट गवर्नर की आज्ञा से आप टेक्स्ट कमेटी के सदस्य मनोनीत किये गए। समय समय पर आप प्रिंसिपल का भी कार्य करते थे—ऐसे अवसर भी अनेक बार आये। आपकी पत्नी का देहान्त संवत् १९७४ (१९०७ ई०) में हरिद्वार में हुआ था। आपके दो पुत्र थे—ज्येष्ठ पुत्र पण्डित भवदत्तजी अजमेर कालेज में संस्कृत के प्रधान अध्यापक थे तथा कनिष्ठ पण्डित विष्णुदत्तजी रेवाड़ी में कार्य करते थे।

श्री शास्त्रीजी ने संवत् १९५२ से संवत् १९८४ (१९२७ ई०) तक ३२ वर्ष लाहौर में कार्य किया। आपका देहान्त संवत् १९८६ में जयपुर में हुआ था।

आपने "काव्यमाला" का २५ वर्ष तक सम्पादन किया था। आपने अमरकोष, शिशुपालवध, सिद्धान्त-कौमुदी, काशिका, निरुक्त आदि अनेक ग्रन्थों का सम्पादन व शोधन किया था, जो निर्णयसागर बम्बई से प्रकाशित हुए थे। सिद्धान्तकौमुदी को 'सरल' नाम से उपस्थापित करने का श्रेय भी आपको है, जिसमें तिङन्त को पहले रखकर षड्लिंग, कारक, समास आदि को पीछे रखा था। यह अधिक प्रचलित नहीं हो सकी। व्याकरण महाभाष्य के एकदेशिभाष्य, आक्षेपभाष्य, सिद्धान्तिभाष्य आदि अत्यन्त सुबोध कार्य था। खेद है कि यह पूर्णत: प्रकाशित न हो सका। आपने यह सिद्ध करने का प्रयास किया था कि सभी शब्द शुद्ध संस्कृत से ही उत्पन्न हैं। जैसे मजादार (मचाधार:), जोरू (जयोरू), खरच (खं शून्यतां रचयति) काइण्डली (काण्डं लिनातीत्यादि)।

राजवैद्य श्रीकृष्णराम भट्ट ने आपका स्मरण इस प्रकार किया है :—

"व्याख्याविशेषैर्लघुकौमुदीं स्फुटीचकार यो व्याकृतिकल्पितश्रम:।
व्युत्पत्तिवित्तोऽमरवृत्तिशोधको न स्तूयते कै: शिवदत्तपण्डित:॥"

(जयपुरविलास—पद्य ४९—पृष्ठ ५३)

भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री ने आपका स्मरण इस प्रकार किया है :—

"दुर्लभमहार्हग्रन्थसंपादनसिद्धहस्तमेतत्कृतटिप्पण-सुशोधनमिहाऽऽनुवे
ओर्येण्टलविद्यालयाध्यापनप्रसिद्धमर्थसंग्रहसुसिद्धमथ सरलमति प्रुवे।
वार्द्धकेपि दाल्य इव व्याकरणोत्सेधेवशान्नानाविधशब्दवैधससंक्तं न संह्नुवे
महामहोपाध्यायाख्यसत्तमपदकपदं श्रीमच्छिवदत्तपटुपण्डितमुपस्तुवे॥"

(जयपुरवैभवम्—पृष्ठ २५१—पद्य ५९)

आपने कुछ वर्ष तक काव्यमाला का संपादन किया था और आपके दिवंगत होने पर आपके पुत्र पण्डित भवदत्त शर्मा ने काव्यमाला का सम्पादन किया था।

आप चमत्कारी विद्वान् थे।

१३२. श्री शिवदत्त वैदिक

जयपुर में सामान्य गौड़ विप्र परिवार में लब्धजन्मा श्री वैदिक इस युग में वैदिक संस्कृति तथा साहित्य के पुनर्जीवन व पुनरुत्थान के लिये दृढ़ संकल्प लिए हैं। आप ने अन्य सहयोगियों की सहायता तथा अपने गुरुजनों (स्वर्गीय पं० श्री वृद्धिचन्द्रजी शास्त्री), (पं० पी० एन० पट्टाभिराम शास्त्री, स्वर्गीय पं० श्री रामेश्वरप्रसादजी दाधिमथ तथा पं० श्री रामकृष्ण चतुर्वेदी प्रभृति) के मार्गदर्शन व संकेत से "वैदिक संस्कृति प्रचारक संघ" नामक संस्था की स्थापना की। इस संस्था का संक्षिप्त परिचय, परिचय खण्ड में प्रस्तुत किया जा चुका है।

श्री वैदिक के पितामह पण्डित दामोदर शर्मा कथावाचक रहे हैं तथा पूज्य पिता पण्डित नाथूलालजी राज्य सेवा के अतिरिक्त कर्मकाण्डी तथा शिवभक्त रहे हैं। आपको जन्म से ही संस्कृत तथा संस्कृति के क्षेत्र में आकर्षित करने वाले विद्वान् स्वर्गीय पण्डित वृद्धिचन्द्रजी शास्त्री, धर्मशास्त्राचार्य रहे हैं, जो प्रतिवेशी होने के साथ ही अपनी दिनचर्या व जीवनयापन प्रणाली से आपको अत्यन्त प्रभावित कर सके हैं। आपने उक्त विद्वान् के सम्पर्क में रहकर स्वतन्त्र रूप से संस्कृत भाषा का अध्ययन किया। आपका सम्पर्क जयपुर के प्रसिद्ध वैदिक स्वर्गीय पण्डित रामकृष्ण चतुर्वेदी से हुआ और आपने वैदिक प्रक्रियाओं का पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया। यजुर्वेद संहिता का सस्वर पाठ तथा उसकी अनेक विधियाँ (घनपाठ, जटापाठ आदि) आपको कण्ठस्थ हैं। आपने अपने गुरुदेव के साथ तथा स्वतन्त्र रूप से भी अनेक महारुद्रयाग, विष्णुमहायाग, गायत्री महायाग आदि का सफलता से अनुष्ठान किया है।

उक्त संस्था के माध्यम से आप राजस्थान प्रान्त में सुपरिचित हैं। आपने रात्रि संस्कृत पाठशाला का प्रचलन कर अनेक संस्कृत अध्येष्णु छात्रों को निःशुल्क पाठन किया है। समय-समय पर भारतीय संस्कृति की प्राणभूत जयन्तियों का आयोजन, वैदिक विद्वानों का स्मरण तथा अन्य सम्मानाभिनन्दनादि समारोह आयोजित करते रहते हैं।

आप रचनात्मक कार्य करने वाले उल्लेखनीय व्यक्ति हैं। अब आप कर्मकाण्ड सम्बन्धी कुछ महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों को लोकोपयोगी बनाकर प्रकाशित करने की दिशा में प्रयत्नशील हैं।

---

१३३. श्री शिवप्रताप वेदाचार्य

श्री वेदाचार्य का जन्म जयपुर में ही दिनांक ३ मार्च, १९०३ को हुआ था। (१३३-अ) आप गुर्जरगौड़ ब्राह्मण कुलावतंस हैं। आपके पिता सामान्य श्रेणि के व्यक्ति रहे हैं। आपकी शिक्षा-दीक्षा महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर में हुई। आपने पं० मगनीरामजी श्रीमाली से वेद का अध्ययन किया था। संवत् १९८१ (१९२४ ई०) में आपने वेद विषय से शास्त्री परीक्षा तृतीय श्रेणि में तथा दो वर्ष पश्चात् संवत् १९८३ में वेदाचार्य द्वितीय श्रेणि से उत्तीर्ण की थी। (१३३-आ) उस समय उक्त कालेज में भारत के ख्याति प्राप्त विद्वान् पण्डित गणेश शास्त्री गोडशे वेद के प्राध्यापक थे, जो श्रौत तथा स्मार्त यज्ञों के प्रायोगिक पक्ष को भली प्रकार जानते थे। आजकल इसके ज्ञाता बड़ी कठिनाई से उपलब्ध होते हैं। पण्डित जानकीलालजी ने भी आपको पढ़ाया था।

(१३३-अ) —लिस्ट आफ एजू० आफिसर्स—संस्कृत कालेज—७ प्रोफेसर्स—क्रमांक ८।
(१३३-आ)—शास्त्रिपरीक्षोत्तीर्णच्छात्राणां नामादीनि—क्रमांक १९०—संवत् १९८१।

आपकी प्रथम नियुक्ति वेद के प्राध्यापक पद पर १ सितम्बर, १९२७ ई० को हुई। (१३३–इ) उसके पश्चात् आपने इसी पद पर कार्य करते हुए सन् १९५८ में अवकाश प्राप्त किया। आप अभी विद्यमान हैं। आपने अपने अध्यापन काल में अनेक व्यक्तियों को वेद शास्त्री तथा वेदाचार्य की उपाधियाँ प्राप्त करने में सहयोग किया। आप यजुर्वेद के प्राध्यापक रहे हैं।

प्रारम्भ में आप पद्य रचना किया करते थे—ऐसा ज्ञात होता है, क्योंकि आपके कुछ पद्य समस्या पूर्ति के रूप में प्रस्तुत किये गए थे, जो संस्कृत रत्नाकर के प्रारम्भिक अंकों में प्रकाशित हुए हैं। ये पद्य संस्कृत कालेज के वार्षिक उपाधि वितरणोत्सव पर उपस्थित किये गए थे। एक पद्य है :—(१३३–ई)

> "यस्यां संसारसारं श्रुतिनिगमचयं ब्रह्मकोशं सुगुप्तम्
> धत्ते यां यः पवित्रां स हि विबुधगणः सर्वसम्मानयुक्तः।
> लोकेस्मिन्नप्यमुस्मिन् सुरजनसहितः शोभते पूज्यते च
> साम्राज्यं मानसिंहे दिशतु विधिमतं सा हि गीर्वाण-वाणी॥"

श्री रामनारायण चतुर्वेदी प्रभृति विद्वान् आपके शिष्य रहे हैं। आप उल्लेखनीय विद्वान् हैं।

---

१३४. श्री शिवप्रसाद शर्मा

महाराज सवाई रामसिंह द्वितीय द्वारा सम्मानित तथा उनकी सभा में प्रतिष्ठित एक उल्लेखनीय विद्वान् थे, जिन्हें राजवैद्य श्री कृष्णराम भट्ट ने 'व्यायतनामवेय:' से उपस्थित किया है। इनके इस विस्तृत नाम का यहाँ उल्लेख किया गया है, जो इस प्रकार है :—(१३४–अ)

> "वृन्दारकवृन्दवन्दितचरणारविन्दश्रीगोविन्दपदारविन्दमकरन्दमिलिन्दीभूतमानस-शालिग्रामानुयायिगोपीवल्लभशर्मप्रोक्तविश्वधृक्प्रयोगसमाधानकर्तृ सर्वसंमतिसमुल्लसज्ज्योतिर्विन्नीलाम्बर-प्रणीतमत्तपद्दूषणकरकविवरजगन्नाथकथितदोहापदसमीचीनद्विपथापदोपदेशककर्तृ-मच्छिष्य-प्रशिष्यशिष्यतुल्यकाभवनवासिपौराणिकमन्दमतिराधेलालकृतप्रश्नपुंजसमाधानसमूहकर्तृ-राजराजेन्द्रपूजितचरणारविन्दलब्धप्रतिष्ठरामभजनोक्तिखण्डनकर्तृ-तिङ्सुबन्तान्यतरत्वं पद-त्वमितिवैयाकरणपण्डितशिवरामकृतपदलक्षणविचारकर्तृ-जयनगरस्थराजकीयपण्डितोक्ताचा-रादर्शस्थसंस्थास्थविनियोगजलत्यागाभावसम्पादनकर्तृ–मध्यस्थकृष्णशास्त्रिलक्ष्मीनाथमनोरं-जनकर्तृ–श्रीभागवतादिपुराणेतिहासषट्शास्त्रतात्पर्यानभिज्ञगुप्तनास्किवेदान्ताचार्यमतखण्डन-कर्तृ–वेदान्तवेद्यब्रह्मपीयूषपानमत्तमूर्तिश्रीधरोक्तिरंजनकर्तृ–श्रीगालवाश्रमाचार्यध्यापकपण्डित-शिवप्रसादशर्मेति प्रसिद्धः।"

(१३३–इ) —लिस्ट आफ एजू० आफिसर्स—कमांक ८।

(१३३–ई) —संस्कृत रत्नाकर १।५ मई, सन् १९३३ पृष्ठ ६।

(१३४–अ) —जयपुरविलास—पंचम उल्लास—पद्य संख्या ६१ की टिप्पणी पृष्ठ संख्या ५४–५५।

इस अवतरण से ज्ञात होता है कि श्री शिवप्रसाद शर्मा अपने समय के बहुत ही प्रसिद्ध विद्वान् रहे है। इस अवतरण में तत्कालीन अनेक विद्वन्मूर्धन्यों का नाम भी आया है, जिनके साथ श्री शर्मा का येन केन प्रकारेण सम्बन्ध था। इस अवतरण से यह निष्कर्ष निकलता है कि श्री शर्मा में अनेक गुण थे। इसमें श्री गोपीवल्लभ शर्मा, श्री नीलाम्बर ज्योतिर्वित्, कविवर श्री राधेलाल, वैयाकरणपण्डित श्री शिवराम, श्रीकृष्ण शास्त्री, श्री लक्ष्मीनाथ शास्त्री आदि उल्लेखनीय विद्वानों का उल्लेख किया गया है। जैसा कि इससे स्पष्ट है आप गालवाश्रम के महन्त के अध्यापक भी रहे हैं।

श्री कृष्णराम भट्ट ने आपके विषय में लिखा है :—(१३४-आ)

"यो गीतगीतोपनिषद्रहस्यः प्रतिष्ठितो रामसभोपदेशे।
वहन्स कस्या अपि पुत्रमंसे श्रीपण्डितो व्यायतनामधेयः॥"

आपका उल्लेखमात्र ही मिलता है, रचनात्मक कार्य नहीं।

---

१३५. श्री शिवराम गुलेरी

पर्वतीय सारस्वत ब्राह्मण पं० शिवरामजी त्रिगर्तदेश (कांगडा प्रान्तीय गुलेर ग्राम) के राजपुरोहितों के वंश में उत्पन्न हुए थे। इनके पूर्वज कई पीढ़ियों से गुलेर ग्राम में रहते आये थे—इसीलिये गुलेरी के नाम से विख्यात हो गये। इनके पूर्वज मणिवाल नाम से विख्यात थे। आपका बाल्यकाल अत्यन्त विषम दशा में व्यतीत हुआ। आपने अध्ययनार्थ काशी प्रस्थान किया। भट्ट श्री मथुरानाथजी ने आपका परिचय प्रस्तुत करते हुए लिखा है :—(१३५-अ)

"कौमार एव जगतीतलजागरिष्णुत्कीर्तिप्रभाप्रकटनेऽस्य मतिर्बभूव।
तस्मादसौ गुरुजनाऽविदितोऽन्वयासीद्वाराणसीमखिलवाङ्मयलास्यभूमिम्॥"

काशी पहुंच कर आपने भाष्यवुद्धिचारी श्री विभवरामजी के पास शरण ली—

"तत्र प्रसिद्धबुधमण्डलमान्यगौडस्वाम्यन्तिके विभवरामसमीतपश्च।
शब्दागमप्रमुखदुर्गमशासनेषु प्राशस्त्यमाप स हि षोडशभिः समाभिः॥"

१६ वर्ष तक निरन्तर अध्ययन करते हुए आपने व्याकरण विषय में पर्याप्त ज्ञानार्जन किया। भाष्य-ब्रह्मचारी (१३५-आ) नाम से प्रसिद्ध श्री अभयराजजी (विभवरामजी) से सांगव्याकरण पढ़कर काशी के विद्वानों में समादृत हुए। आपके सहाध्यायी प० रामभज सारस्वत उक्त प० विभवरामजी के पुत्र थे। दोनों का प्रेम सहोदर भ्रातृवत् था। जयपुरनरेश श्री रामसिंह द्वितीय ने काशी में इनका शास्त्रार्थ देखकर अनुरोध किया और

(१३४-आ)— जयपुरविलास—पंचम उल्लास—पद्य संख्या ६१—पृष्ठ संख्या ५४।

(१३५-अ)—जयपुरवैभवम् नागरिकवीथी—सुधीचत्वरः—पृष्ठ २४४।

(१३५-आ)—कुछ स्थलों पर भाष्यवुद्धचारी पाठ मिलता है जैसे म० म० श्री चतुर्वेदीजी की 'आत्मकथा और संस्मरण' पृष्ठ ४ तथा कुछ स्थलों पर भाष्यब्रह्मचारी यथा जयपुरवैभवम्—पृष्ठ २४५। मूल शब्द विचारणीय है। कुछ विद्वान् इन्हे 'अभयराम' लिखते हैं (जयपुरवैभवम् पृष्ठ २४५) कुछ 'विभवराम'। सम्भवतः ये दोनों शब्द एक ही विद्वान् के लिये प्रयुक्त होते रहे है।

ससम्मान जयपुर लिवा लाये, जहाँ महाराज संस्कृत कालेज में अध्यापक का पद व अन्य यथोचित सत्कार प्रदान किया। आपका उल्लेख सन् १८६६ के उपस्थिति पत्रक में क्रम संख्या ४ पर अंकित है। (१३५-इ) आप व्याकरण पढाते थे तथा पं० रामभजजी सारस्वत व्याकरणाध्यापन के साथ-साथ सारा कार्य भी करते थे। ऐसा प्रसिद्ध है कि पं० रामभजजी तो नाममात्र के प्राचार्य थे, सारा कार्य पं० शिवरामजी ही करते थे। आपको उस समय ६० रु० मासिक मिलता था।(१३५-ई) उस समय व्याकरण के तीन अध्यापक थे—पं० रामभजजी, पं० शिवरामजी तथा पं० नरहरि ओझा। कालान्तर में सन् १८६६ ई० से आपने वेदान्त पढ़ाना प्रारम्भ किया। आप वेदान्त के प्रधान पण्डित थे। सन् १६०३ तक आपने वेदान्त पढ़ाया। (१३५-उ) पण्डित विहारीलाल शर्मा दाधीच आपके उल्लेखनीय छात्र रहे हैं।

आप महाराज रामसिंह द्वारा संस्थापित 'मोदमन्दिर' नामक धर्मसभा के सम्मानित सदस्य भी थे। आप प्राचीन व्याकरण के सुदृढ़ ज्ञाता थे। अध्यापन के समय आपका प्रेमपूर्वक व्यवहार तत्कालीन छात्रों के लिए वात्सल्यता को प्रकट करता था। महाराज रामसिंह तथा महाराज माधवसिंह द्वितीय आपका सम्मान करते थे तथा तत्कालीन प्रधानामात्य श्री कान्तिचन्द्र मुकर्जी आपको परम आदर की दृष्टि से देखते थे। राज्य में प्रतिष्ठा, लक्ष्मीदेवी की पूर्ण कृपा, आज्ञाकारी विद्वान् पुत्र, नीरोग व स्वस्थ शरीर, पूर्ण आयु, इत्यादि सर्वविध सुख से सुखी श्री गुलेरीजी अपने समय के विशिष्ट विद्वान् थे।

आपने तीन पुत्रों के नाम (१) पं० श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, (२) श्री सोमदेव शर्मा गुलेरी तथा (३) श्री जगद्धर गुलेरी हैं। श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी हिन्दी साहित्य में भी 'उसने कहा था' कहानी के लेखक के रूप में विख्यात हैं। आप हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी में हिन्दी के प्राध्यापक थे। आपका परिचय क्रमांक ३८ पर प्रस्तुत किया जा चुका है। द्वितीय पुत्र श्री सोमदेव शर्मा संस्कृत कालेज में साहित्य विषय के प्राध्यापक थे तथा मोदमन्दिर (धर्मसभा) के सम्मानित सदस्य भी। आपका अल्पावस्था में ही देहावसान हो गया था। आपका परिचय क्रमांक १४६ पर प्रस्तुत किया जायगा। तृतीय पुत्र श्री जगद्धरजी लायलपुर (पंजाब) में राजकीय कृषि विद्यालय के प्राचार्य थे तथा इसके पश्चात् भारत सरकार के तकनीकी शब्दकोषों के प्रणयनार्थ निर्मित समिति के सदस्य। आप भी इस समय इस संसार में नहीं हैं।

भट्ट श्री मथुरानाथजी शास्त्री ने आपका स्मरण इस प्रकार किया है :—(१३५-ऊ)

**"येषां शब्दशास्त्रे प्रौढपाण्डित्यं प्रसिद्धमभूद्वेदान्तेऽमार्मिका न केन स्माऽभिनन्द्यन्ते
राजमोदमंदिरेऽपि मान्या यद्व्यवस्थाऽभवद्विद्यायै वदान्या येऽद्य विद्भिर्मुहुरिन्द्यन्ते।
अध्यापनसिद्धाः शान्ति-धैर्यार्जवमुख्यैर्गुणैः सर्वविधसौख्यैर्जीवने ये स्माऽतिचन्द्यन्ते
आदर्शायितोच्चसदाचारांचितचर्याः सदा श्रीश्रीशिवरामसूरिवर्याः प्रणिवन्द्यन्ते॥"**

आपका उल्लेख वैद्य श्रीकृष्णरामजी ने पं० रामभजजी सारस्वत के साथ एक ही पद्य में किया है। इस प्रकार दो सुप्रसिद्ध विद्वानों के द्वारा उल्लेख किये जाने से आप एक उल्लेखनीय व व्याकरणशास्त्र के उद्भट विद्वान् थे। (१३५-ए)

(१३५-इ) —परिशिष्ट ४ (इ) परिचय खण्ड।

(१३५-ई) —परिशिष्ट ४ (आ) परिचय खण्ड—पंडीत सीवराम—व्याकरण पढावै ६०)।

(१३५-उ) —जयपुरवैभवम् पृ० २४५।

(१३५-ऊ)—वही पृ० २४३—पद्य ५३।

(१३५-ए)—श्री रामभज सारस्वत—परिचय क्रमांक ११३—ज० वि०—पद्य ४३—पृष्ठ ५२।

१३६. श्री श्यामलाल वैद्य

चिकित्सा चूड़ामणि स्वर्गीय वैद्य श्री श्यामलालजी जयपुर नगर के प्रसिद्ध एवं प्रतिष्ठित विद्वान् थे। जयपुर राज्यान्तर्गत चौमू नामक ग्राम में पौष शुक्ला ६ संवत् १९२५ को लब्धजन्मा श्री श्यामलालजी बाल्यावस्था से ही प्रतिभावान् थे। जब ये आठ वर्ष के ही थे, तो जयपुर राज्य के परम सम्माननीय वैद्य श्री आनन्दीलालजी महाराज की दृष्टि में आये। इनकी प्रतिभा एवं गुण विलक्षणता से प्रभावित होकर श्री आनन्दीलालजी ने अपने कनिष्ठ भ्राता श्री सुखलालजी के दत्तकपुत्र रूप में आपको स्वीकार कर लिया। प्रारम्भ से ही लोभरहित वृत्ति, अध्ययन में बुद्धि की विलक्षणता, प्रत्युत्पन्नमतित्व इत्यादि गुणों ने परिवार एवं गुरुजनों को अत्यधिक प्रभावित किया। आप राजवैद्य श्री कृष्णराम भट्ट के प्रधान शिष्य थे तथा प्राणाचार्य स्वामी श्री लक्ष्मीरामजी महाराज के मित्र थे। आप आयुर्वेदशास्त्र के पारगत विद्वान् तो थे ही, साथ ही यूनानी चिकित्सा पर भी पूरा अधिकार रखते थे। बहुत ही साधारण से योगों द्वारा रोगियों को नीरोग कर आपने अनेक वैद्यों व हकीमों को आश्चर्यान्वित कर दिया था। अरिष्टज्ञान में आपकी अद्वितीय कुशलता थी। जयपुर राजघराने के अतिरिक्त आप किशनगढ़ महाराज के भी व्यक्तिगत चिकित्सक थे। आपने भी असाध्य व्याधियों का शमन करने में सफलता प्राप्त की थी। चिकित्सा की अनेक पद्धतियों के उपरान्त भी आप पूर्ण आर्ष-पद्धति से ही चिकित्सा करते थे। आप उदारता, कार्यतत्परता, सरलता, सौम्यता आदि स्वाभाविक गुणों के भण्डार थे। आपके चिकित्साकर्म-कौशल से प्रभावित होकर ही निखिल भारतीय आयुर्वेद सम्मेलन ने 'चिकित्सा-चूड़ामणि' की उपाधि व सम्मान प्रदान किया था। आप धार्मिक प्रवृत्ति के भी सुदृढ़ व्यक्ति थे।

स्वामी श्री लक्ष्मीराम जी ने आपकी प्रशंसा में कुछ पद्य प्रस्तुत किये हैं, जिनमें से एक पद्य यहाँ प्रस्तुत है :—

"एतस्य सत्यसुहृदा सुहृदा सदा सत् सत्कार्यदर्शितसमग्रसमुद्रगर्भे।
भैषज्यसर्जितरुजा जयपत्तनीयभूपालवंशभिषजा भववत् प्रियेण॥
सर्वत्र विश्रुतचिकित्सकवर्यचूडामण्याह्वयेन मदमानविवर्जितेन।
श्रीश्यामलाल सुधिया चिरचिन्तनीयं सख्यं ममात्र विहितं विमलाशयस्य॥"

आपका पौष शुक्ला चतुर्दशी संवत् १९८८ को देहावसान हुआ था। आपके दो पुत्रों में से (१) स्वर्गीय श्री नन्दकिशोरजी (परिचय क्रमांक ६७) सुप्रसिद्ध वैद्य थे तथा (२) श्री युगलकिशोर शर्मा अभी विद्यमान हैं*। भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री ने आपका स्मरण जयपुरवैभवम् (पृष्ठ २६३ पद्य संख्या ७५) में किया है। आप एक उल्लेखनीय वैद्य थे।

———

१३७. श्री श्यामसुन्दर गोस्वामी

महाराज सवाई रामसिंह द्वितीय तथा महाराज सवाई माधवसिंह द्वितीय के शासन काल में जयपुर के सुप्रसिद्ध मन्दिर श्री गोविन्ददेवजी के महन्तश्री का नाम श्री श्यामसुन्दर गोस्वामी था। ये गौड़माध्व सम्प्रदाय में दीक्षित बंगदेशीय विद्वान् थे, जिनका उल्लेख राजवैद्य श्री कृष्णराम भट्ट ने सादर किया है :– (१३७-अ)

---

* अब ये भी दिवंगत हैं।

(१३७-अ)—जयपुरविलास— पंचम उल्लास—पद्य संख्या ३२—पृष्ठ संख्या ५१।

"गोविन्दभक्तिविषये जितनारदर्षि-
दानें सुरद्रुमसमः श्रुतपारदर्शी ।
दीनेषु दर्शितदयः कविसंगहर्षी
त्वं श्यामसुन्दर विशालयशो विभर्षि ।।"

इस पद्य की टिप्पणी में श्री भट्टजी ने लिखा है—'एते चात्रत्यराजाराध्यश्रीगोविन्ददेवस्याराधनाधिकृता: श्रीगोस्वामिनो गौडमाध्वा वांगा: ।' सुनते हैं, इनका धर्मशास्त्रीय ज्ञान बहुत ही सुलझा हुआ था ।

इनका रचनात्मक कार्य उपलब्ध नहीं होता ।

१३८. श्री सदानन्द स्वामी

परम शिवभक्त श्री सदानन्द गिरि का परिचय उपलब्ध नहीं होता । केवल इतना सा उल्लेख मिलता है कि आप 'परमहंस परिव्राजकाचार्य' की उपाधि से विभूषित थे । आपने जयपुर नरेश म० रामसिंहजी को प्रसन्न करने के लिये 'शैव सुधाकर' नामक ग्रन्थ की रचना की थी । इसका समालोचन आपके वैदुष्य का परिचायक है । ग्रन्थ के प्रारम्भ में कुछ पद्य इसे जयपुर की रचना सिद्ध करते हैं । प्रथम पद्य में सवाई रामसिंह द्वितीय का वर्णन किया गया है :—

"क्षोणीमण्डलमण्डने धनवतां प्रज्ञावतां सौख्यदे
चण्डद्विमदखण्डने जयपुरे दण्ड्यान् मुहुर्दण्डयन् ।
नित्यं सम्प्रति पालयन् विनयिनः पाखण्डिन: खण्डयन्
अस्ति श्रीनृपरामसिंहसुमतिः सत्पण्डितान् मण्डयन् ।।"

श्री रामसिंह ने आपको ही नहीं अनेक विद्वानों को जयपुर में आश्रय प्रदान किया था । आपने उन्हें प्रसन्न करने के लिये 'शैवसुधाकर' की रचना की :—

"श्रीमच्छाकंररामसिंहनृपतिप्रीत्यै प्रमाणैर्युतः
श्रीमच्छैवसुधाकरो मतिमतां ह्लादाय संतन्यते ।।५।।"

इसी प्रकार ग्रन्थ के अन्त में लिखा है :—

"सदानन्दगिरिर्भिक्षुः श्रीमच्छैवसुधाकरम् ।
कृत्वाऽर्पयन्महेशाय चैकलिंगस्वरूपिणे ।।५।।"

इसकी रचना संवत् १९१६ में हुई थी । (रस ६, इन्दु १, नन्द ९, भू १ = १९१६)

रसेन्दुनन्दभूवर्षे विक्रमादित्यभूपतेः ।
पूर्णोयं कार्त्तिके शुक्ले त्रयोदश्यां सुसंमहः ।।७।।"

इसमें २५ किरण हैं, जो इसके अनुभाग हैं । आपकी विद्वत्ता के प्रदर्शन के लिये एक आलंकारिक पद्य प्रस्तुत है :—

"अक्षपादकणभक्षपक्षयोः कक्षभक्षफणिरक्षकक्षयोः ।
कर्मदक्षसुरशिक्षयोर्वाह्यमाक्षज-परोक्षतेक्षयोः ।।३।।"

यह ग्रन्थ महामहोपाध्याय श्री विश्वेश्वरनाथ रेऊ ने हिन्दी में अनुवाद कर अजमेर से प्रकाशित करवाया था । इसमें शिव-भक्ति सम्बन्धी विषयों का उल्लेख है ।

१३९. श्री सदाशिव शास्त्री

केरल प्रान्त में ततमपुर नामक एक प्रसिद्ध ग्राम है। वहां १८८६ संवत् में लब्धजन्मा कौण्डिन्यगोत्रोत्पन्न श्री शंकर सोमयाजी के पुत्र श्री सदाशिव शर्मा शास्त्री सकलशास्त्र पारंगत एक विद्वान् थे। आपने सर्वशास्त्रविशारद अपने पितृचरण से ही व्याकरण, नाटक, अलंकार, काव्यादि शास्त्रों का सम्यक् अध्ययन किया। जब आपकी अवस्था ३० वर्ष की थी, तब (संवत् १९१६) आपके पितृचरण का देहावसान हुआ। पितृवियोग से संतप्तमना श्री शास्त्री घर से निकल पड़े। आप मुकम्बिका गोकर्णादि विविध क्षेत्रों में भ्रमण करते हुए तीर्थराज प्रयाग पहुंचे, जहाँ पितृपितामहादि का श्राद्धादि कर्म सम्पन्न कर सुप्रसिद्ध विद्वान् विविध विद्यानिधि डाक्टर श्री भाऊदाजी महाशय के साथ बम्बई चले गए। वहाँ जाकर आपने विविध पुराणों का ग्रन्थशोधन कार्य किया। आप वहां ४ वर्ष तक रहे। डा० भाऊदाजी के आदेशानुसार आप काश्मीर गए, वहां जाकर हर्षचरित तथा नीलपुराण आदि दुर्लभ ग्रन्थों की खोज कर सम्पादित किया तथा उन्हें बम्बई भिजवाया। आपने काश्मीर मण्डल में १९२५ संवत् से ४ वर्ष तक निवास किया तथा अनेक ग्रन्थों का सम्पादन किया। इन ग्रन्थों के नाम हैं:—(१) नीलपुराणम्, (२) हर्षचरित-सटीकम्, (३) विष्णुधर्मोत्तरपुराणम्, (४) चारुचर्या, (५) सुवृत्ततिलकम्, (६) हरविजयमहाकाव्यं सटीकम्, (७) रुद्रटालंकार: सटीक:, (८) सामवेदीय लाट्यायनसूत्रम्, (९) अथर्ववेदीय पैप्पलाद शाखा, (१०) ओवटाचार्य कृत रुद्रभाष्यम् (यह ग्रन्थ शारदालिपि में भोजपत्र पर लिखा हुआ था), (११) दो तीन अपूर्ण जैन ग्रन्थ (जो प्राचीनतम थे), (१२) कादम्बरी कथासार: (१३) वक्रोक्ति पंचाशिका, (१४) वराहमिहिर कृत सटीक खंडखाद्य-प्रकरण, (१५) वराहमिहिर कृत बृहद् योगयात्रा, (१६) केरलचक्रवर्ती राजशेखर कवि कृत बालभारतनाटकम्, (१७) सांखकवि (श्रीकृष्ण पुत्र) कृत साम्बपचाशिका।

संवत् १९३० (१८७३ ई०) में डाक्टर भाऊदाजी का स्वर्गवास हो गया। आपने बीकानेर (विक्रमपुर) को प्रस्थान किया। आपका वहां भव्य स्वागत किया गया। वहां से संवत् १९३१ में पुष्करराज स्थानार्थ प्रस्थान किया। स्नान कर आश्विन मास में श्रीमन्महाराजाधिराज राजराजेन्द्र श्री १०८ श्री रामसिंह द्वितीय की राजधानी जयपुर नगर में आये। यहां रह कर आपके (१) वसन्तशतकम्, (२) गोपालशतकम्, (३) दुर्गाशतकम् नामक तीन शतकों की रचना की थी। आपने यहां बहुत वर्षो तक निवास किया था। संवत् १९४८ (१८९१ ई०) में तत्कालीन विद्वान् पुरोहित श्री गोपीनाथजी शर्मा के अनुरोध पर आप आबू (अर्बुदाचल) गए, जहां रह कर आपने 'अर्बुद माहात्म्यसारम्' ग्रन्थ की रचना की। यह ग्रन्थ भाषानुवाद सहित श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई से प्रकाशित हुआ था, जो मुख्याश्रम, दर्शनीय स्थानों व वर्णनों से संभूषित है। आपने काश्मीर में रहते हुए 'काश्मीरशतकम्' का प्रणयन भी किया था। आप बहुत समय तक जयपुर में रहे थे तथा गुरुजी के नाम से विख्यात थे। कहा जाता है कि आप यहां अपनी वृद्धावस्था तक रहे थे। (१३९–अ)

आपके रचनात्मक कार्यो में केवल 'वसन्तशतकम्' ही उपलब्ध होता है, जिसे आपने जयपुर में रहते हुए लिखा है। यह प्रकाशित है। इसकी समालोचना तृतीय खण्ड में प्रस्तुत की जायेगी। पण्डित श्री रामगोपाल शास्त्री ने आपके उक्त ग्रन्थ को विद्वत्तापूर्ण होने से इस पद्य के द्वारा चित्रित किया है:—

"लांगलीपाकमधुरं कंतुलीला विराजितम्।
सदाशिवोदितं सेव्यं वसंतशतकम् मुदा।।"

(१३९–अ)—'वसन्तशतकं सटीकम्'—संवत् १९५५ सन् १८९८ में प्रकाशित विद्वद्वर्य श्रीयुत् सदाशिवशास्त्री विरचितम् भूमिका—पुरोहित श्री गोपीनाथ शर्मा के आधार पर आपका परिचय प्रस्तुत किया गया है।

इस ग्रन्थ में लेखक ने अपना परिचय इस प्रकार प्रस्तुत किया है :—

"भाष्यं कैयटमुत्कटं विवरणं कंठे सदैतत्त्रयं वेधा यस्य नरीनृतीति सदिति व्याधत्त रेखात्रयन्।
सोऽयं शंकरभट्टसूरितिलकः श्रीकेरलीयः श्रुतिस्मृत्याद्यागमपारगो विजयते कौण्डिन्यगोत्रोद्भवः।।
सदाशिवस्तस्य सुतः शिवशक्तिप्रसादतः।
इदं वसन्तशतकं चकार विदुषां मुदे।। १०५।।
श्रीमन्माधवसिंहाख्यमहीपालसुपालिते।
सुखं जयपुरे नाकसन्निभे वसता मया।। १०६।।
वेदवेदांकचन्द्राब्दे (१९४४ संवत्) राधराकातिथौ कृतम्।
इदं वसन्तशतकं शिवं भवतु वः सदा।। १०७।।"

यह जयपुर नरेश श्री माधवसिंह द्वितीय के समय लिखा गया शतक काव्य है। आप एक उल्लेखनीय विद्वान् थे।

---

१४०. श्री सरयूप्रसाद शास्त्री द्विवेदी

उत्तर भारत के सुप्रसिद्ध आगमाचार्य प० श्री सरयूप्रसादजी द्विवेदी का जन्म विक्रम संवत् १८९२ में वर्तमान अयोध्यापुरी (उत्तरप्रदेश जिला फैजाबाद) से पश्चिम आठ कोस दूरी पर वासिष्ठी सरयू नदी के दक्षिण तट पर स्थित "सनाह" नामक ग्राम में हुआ था। आपका दीक्षा-नाम सरस्वत्यानन्दनाथ था। आपके पिता पं० राधाकृष्ण शर्मा, पितामह श्री वेणीराम शर्मा तथा प्रपितामह पं० जीवनराम शर्मा थे, जो संस्कृत भाषा व साहित्य के विद्वान् थे। आप काश्यप गोत्री सरयूपारीय ब्राह्मण थे। आपकी उपाख्या द्विवेदी, प्रवर-काश्यप-आंगिरस, नैध्रुव थे। आप शुक्ल यजुर्वेद की माध्यान्दिनी शाखा के अनुयायी थे तथा कात्यायन व पारस्कर गृह्य सूत्र के मानने वाले थे।

उपर्युक्त जन्म स्थान पर ही आपने अन्य विद्वानों व घर पर पूज्य पिताजी से व्याकरण, ज्योतिष आदि विषयों का विधिवत् अध्ययन किया था। पिताजी के दिवंगत होने पर आप विक्रम संवत् १९११ में पश्चिम दिशा की यात्रा पर निकले। पंजाब (पंचनद) होते हुए सीमाप्रान्त के ग्राम "विश्ववारपुर" पहुंचे। १९४७ ई० पश्चात् यह नगर पश्चिमी पाकिस्तान में सम्मिलित हो गया है। कुछ दिन निवास कर आप कांगड़ा चले गए। शक्तिपीठ जालंधरपीठ में भगवती व्रजेश्वरी का दर्शन कर दर्शनार्थियों के लिए सुविधायें प्रदान की थीं। स्वामी श्री दुर्गानन्दनाथ शास्त्री से आपकी भेंट हुई, जिनकी प्रेरणा से आपने मंत्रदीक्षा ग्रहण की। आप वहीं साधना में लीन हो गए। आपकी पत्नी ने यह जानकर आपकी खोज की तथा पता पाकर गुरुजी की आज्ञा से पुनः लौटा ले गई। गृह सम्पत्ति के विभाजनादि झगड़ों से खिन्न होकर आपने ग्राम का परित्याग कर दिया तथा सनाह ग्राम में
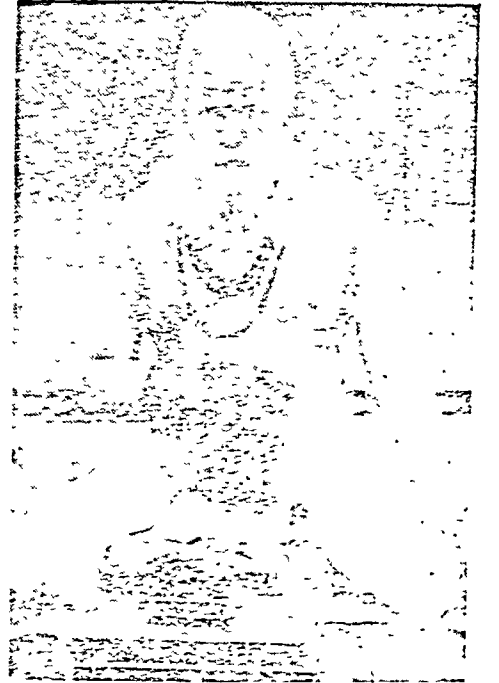
दो कोश पश्चिम तट की ओर 'थरेरु' नामक ग्राम में निवास किया। यहीं आपके एक पुत्ररत्न का आविर्भाव हुआ, जो सत्सम्प्रदायाचार्य पं० दुर्गाप्रसाद द्विवेदी (महामहोपाध्याय) के नाम से विख्यात रहे हैं तथा संस्कृत कालेज, जयपुर के प्राचार्य भी रहे हैं। आपने यहां आकर उक्त स्थान को 'पण्डितपुरी' के नाम से विख्यात किया, जो आज तक प्रसिद्ध है। आप भगवान् शिव तथा चण्डिका, दुर्गादेवी के अनन्य उपासक रहे हैं। नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ के संस्थापक श्री नवलकिशोरजी ने जब आपके विषय में सुना तो आपकी सेवा में पहुंच कर आपकी विद्वत्ता से प्रभावित हुए तथा आपको लखनऊ ले गए, जहां बादशाह बाग नामक स्थान पर (जहां इस समय विश्वविद्यालय का भवन है) बैठ कर आपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ सग्रहशिरोमणि (ज्योतिष विषयक महत्वपूर्ण ग्रन्थ) तथा धर्मशास्त्रीय 'सदाचारप्रकाश' नामक निबन्ध की रचना की। ये दोनों ग्रन्थ नवलकिशोर प्रेस से ही प्रकाशित हुए हैं।

आपके परिवार को जयपुर लाने का श्रेय भी मुंशी नवलकिशोरजी को ही है। आपकी ख्याति मुंशीजी से सुनकर तत्कालीन महाराज रामसिंह ने भी आपके दर्शनों की इच्छा व्यक्त की थी। परिणामतः आप विक्रम संवत् १९३२ में जयपुर आये। आगम शास्त्र निष्णात विद्वान् को प्राप्त कर महाराज ने राज्याश्रय प्रदान किया और ससम्मान जयपुर रहने के लिये बाध्य किया। आप राज्यपण्डित बन गए तथा मासिक वृत्ति मिलने लगी। आपने संवत् १९५१ तक निवास किया तथा यहां रहते हुए निम्नलिखित ग्रन्थ लिखे :—

(१) आगमरहस्य, (२) सर्वार्थकल्पद्रुमः, (३) सप्तशती-सर्वस्वम्, (४) परशुराम-सूत्रवृत्ति तथा (५) वर्णबीज-प्रकाशः।

'आगमरहस्य' के प्रारम्भ में ही जयपुराधीश सवाई रामसिंहजी की गुणग्राहकता तथा विद्वत्ता का उल्लेख मिलता है। वह पद्य है :—

> **"जीयाज्जयपुराधीशरामसिंहाभिधो नृपः।**
> **यद् भुजच्छायमाश्रित्य शान्तो मे भूभ्रमक्लमः॥**
> **दानी रिपुचयध्वंसी नीतिज्ञः कुशलः शुचिः।**
> **विद्याविचारसन्तुष्टो हृष्टः सल्लोकलोचनः॥" इत्यादि**

आपकी दो रचनायें 'संग्रहशिरोमणि' तथा 'सप्तशतीसर्वस्वः' का उत्तर भारत में व्यापक प्रचार हुआ तथा शिक्षित समाज में प्रतिष्ठा का विषय बना। आप दरभंगा नरेश के आग्रह तथा जयपुर महाराज के अनुरोध पर दरभंगा भी गए थे। राजा लक्ष्मीश्वरसिंह ने आपका पर्याप्त स्वागत व सम्मान किया था। आप दो वर्ष वहां भी रहे। वहां आपने काश्मीर शैव–दर्शन के ग्रन्थ "साधक सर्वस्व" का प्रणयन किया। आप वहां से अपने निवास स्थान जयपुर शीघ्र ही चले आये वृद्धावस्था के कारण। आपने संवत् १९६० में पण्डितपुरी में विन्ध्य पाषाण का एक देवमन्दिर बनवाया, जहां भगवती महिषमर्दिनी देवी तथा शिव लिंग की स्थापना की थी। यहीं एक पुस्तकालय भी स्थापित किया था, जो अभी तक विद्यमान है। वृद्धावस्था में आप पण्डितपुरी चले गए, जहां ईश्वराधना के साथ ही भगवती सरस्वती की साधना करने लगे। 'ललिता सहस्रनाम' तथा 'पादुकापंचक' पर लघु टिप्पणी भी लिखी। आगमोक्त तान्त्रिक दीक्षापद्धति को परिष्कृत कर व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत किया।

आपने कार्तिक कृष्णा ६ सोमवार संवत् १९६३ को प्राणायाम द्वारा इस शरीर का त्याग कर ब्रह्मभाव की उपलब्धि की। आपके पुत्र म० म० दुर्गाप्रसाद द्विवेदी (परिचय क्र० ६२) तथा पौत्र श्री गिरिजाप्रसाद द्विवेदी (परिचय क्रमांक १९) व प्रपौत्र पं० गंगाधर द्विवेदी (परिचय क्रमांक ३१) उल्लेखनीय विद्वान् रहे हैं।

आपके रचनात्मक कार्य का उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है :—

क्रम	नाम रचना	विषय	विवरण
१.	संग्रहशिरोमणिः	ज्योतिष	लखनऊ से प्रकाशित

२.	सदाचारप्रकाशः	धर्मशास्त्र	लखनऊ से प्रकाशित
३.	वर्णबीजप्रकाशः	तन्त्रशास्त्र	वेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित
४.	सप्तशतीसर्वस्वम्	धर्मशास्त्र	लखनऊ से प्रकाशित
५.	मातृका-स्तुतिः	स्तोत्र	प्रयाग से प्रकाशित
६.	पादुका-पंचकम्	स्तोत्र	बनारस से प्रकाशित
७.	सर्वार्थकल्पद्रुमः (अथर्ववेद की पिप्पलाद शाखा, कृत्या सूक्त का विवरण)		अप्रकाशित
८.	परशुरामसूत्रवृत्तिः (श्रीविद्या का प्रतिपादक आर्ष ग्रन्थ)		अप्रकाशित
९.	साधकसर्वस्वम् (शक्ति-दर्शन का प्रबन्ध ग्रन्थ)		अप्रकाशित
१०.	दीक्षापद्धतिः (श्रीविद्या का दीक्षा विवेचनात्मक ग्रन्थ)		अप्रकाशित
११.	ललितासहस्रनामवृत्ति (श्रीविद्या का सहस्रनामात्मक ग्रन्थ)		अप्रकाशित

आपका महत्वपूर्ण ग्रन्थ "आगमरहस्य" (दो खण्डों में) पुरातत्वमन्दिर, जोधपुर से अभी हाल ही में प्रकाशित हो चुका है। आप के सम्बन्ध में श्री कृष्णराम भट्ट ने लिखा है :—

"शास्त्रार्थविध्वस्तविपक्षवादः पवित्रचर्याक्षपितप्रवादः।
श्रीयन्त्रपूजापरमप्रसादः स मन्त्रशास्त्री सरयूप्रसादः॥" (जयपुरविलास—पद्य ४६—पृष्ठ ५३)

आप बहुचर्चित प्रतिभा के धनी थे।

१४१. श्री सुधीरकुमार गुप्त

डा० गुप्त का जन्म ग्राम अटाली तहसील बल्लभगढ़ जिला गुड़गांवा (हरियाणा प्रदेश) में बाबू श्री रामस्वरूपजी गुप्त के यहां दिनांक १ मई, १९१७ को हुआ था। आपने सन् १९३३ में पंजाब से हाईस्कूल (मैट्रिक), सन् १९३५ में दिल्ली से इन्टर आर्ट्स, सन् १९३७ में दिल्ली से बी० ए० आनर्स तथा सन् १९३९ में दिल्ली से ही एम० ए० संस्कृत परीक्षा उत्तीर्ण की। आपने सन् १९४० में पंजाब से हिन्दी प्रभाकर तथा शास्त्री परीक्षा १९४५ में उत्तीर्ण की। शास्त्री परीक्षा को छोड़कर शेष सभी परीक्षाओं में आपने प्रथम श्रेणि तथा कतिपय में सर्वप्रथम स्थान भी प्राप्त किया था। राजस्थान विश्वविद्यालय से डा० फतहसिंह के निर्देशन में प्रथम शोध छात्र के रूप में सन् १९५७ में "वेद भाष्य पद्धति को दयानन्द सरस्वती की देन" विषय पर पी—एच० डी० की उपाधि प्राप्त की।

आपके उपनयन गुरु प्रसिद्ध विद्वान पं० मेधाराम शास्त्री थे। यों दिल्ली विश्वविद्यालय के भूतपूर्व संस्कृत विभागाध्यक्ष डा० नरेन्द्रनाथ चौधरी आपके अध्ययन गुरु रहे हैं। शोधनिर्देशक थे डा० फतहसिंह, जो आजकल राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान के निदेशक हैं (तथा अब सेवानिवृत्त हैं)।

आपके जीवनकाल का अधिकांश समय अध्ययन व अध्यापन में ही बीता। जाट कालेज, रोहतक में लगभग १० वर्ष तक, एन० आर० ई० सी० कालेज, खुर्जा में लगभग ५ वर्ष तक, गोरखपुर विश्वविद्यालय में ४ वर्ष तथा राजस्थान विश्वविद्यालय में विगत ८ वर्षों से अध्यापन कर रहे हैं। विगत २७ वर्षों के अध्यापन काल में आप अनेक पदों पर कार्य करते रहे हैं। इस समय आप प्रवाचक (रीडर) संस्कृत विभाग के पद पर कार्य कर रहे हैं।* आप राजस्थान कालेज, जयपुर में संस्कृत विभाग के अध्यक्ष भी रह चुके हैं।

* संस्कृत विभाग के अध्यक्ष व 'प्रोफेसर' के पद पर कार्य करने के बाद अब आप सेवानिवृत्त हैं, तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की योजना के अन्तर्गत विशिष्ट प्रोफेसर के रूप में अपनी सेवायें विभाग को अर्पित कर रहे हैं।

आपने शोध कार्य में प्रगति की दृष्टि से (१) अखिल भारतीय प्राच्यविद्या सम्मेलन, पूना, (२) भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना, (३) वेद सम्मेलन, (४) वैदिक संस्कृति प्रचारक संघ, जयपुर, (५) राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन, जयपुर आदि अनेक संस्कृत सेवी संस्थाओं की सदस्यता प्राप्त कर सहयोग में सफलता प्रदान की है। आप आर्यसमाज के कर्मठ कार्यकर्त्ता हैं तथा इस समय भी भगवती सरस्वती की आराधना में दत्तचित्त रहते हैं। सन् १९४३ के राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेकर आपने विदेशी सरकार के विरुद्ध हड़ताल आदि के द्वारा अपनी देशभक्ति का परिचय भी प्रदान किया था।

आपके उल्लेखनीय शिष्यों में से (डा०) रामसुरेश पाण्डे, (प्रो०) खजानसिंह, (प्रो०) रणसिंह रूहील, (डा०) सत्यदेव मिश्र, (डा०) नाथूलाल पाठक, (डा०) बद्रीप्रसाद पंचोली: (प्रो०) श्रीमती शशिबाला गुप्ता, (प्रो०) श्रीमती राजेश्वरी भट्ट, (प्रो०) डा० वेद कुमारी, (प्रो०) श्री नारायणलाल काङ्कर प्रभृति हैं जो शोध कार्य में संलग्न रहे हैं तथा मार्गनिर्देशन से प्रगति पथ पर अग्रेसर हैं।

आपका रचनात्मक कार्य सन् १९६१ के पश्चात् विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिसे आपने जयपुर नगर में रह कर सम्पन्न किया है। आपने संस्कृत तथा हिन्दी माध्यम से ८० शोध-लेख लिखे हैं जो भारतीय विभिन्न शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। कुछ विवरण इस प्रकार है :—

क्रम सं०	नाम		प्रकाशन विवरण
१.	किमर्यमर्यनित्य: परीक्षेत		अमृतलता, स्वाध्याय मण्डल पारडी जुलाई, १९६४
२.	अश्वमेघ:		त्रिविधा राजस्थान कालेज, जयपुर, जुलाई, १९६४
३.	आधुनिक-शिक्षाप्रणाल्यां ब्रह्मचारि-व्रतानां स्थानम्,		गुरुकुल पत्रिका, मार्च-अप्रैल, १९६६
४.	पुरुषोत्तमो लालबहादुर: शास्त्री		अमृतलता ३।१, मई, १९६६
५.	चिरस्मरणीय श्रीजवाहरलालनेहरू		अमृतलता १।३, नवम्बर, १९६४
६.	वेदानां सृष्टि:		त्रिविधा, राजस्थान कालेज, १९६६-६७
७.	अहिंसा		पण्डित परिषद्, अ० भा० प्राच्यविद्या सम्मेलन, दरभंगा, १९४८ ई०
८.	वैदिक भाषा तथा निर्वचन—शोध-लेख		प्रकाशित
९.	यास्कीय निर्वचन—शोध-लेख		विश्वम्भरा में प्रकाशित
१०.	वैदिक दर्शन—शोध-लेख		प्रकाशित
११.	संस्कृत साहित्य का सुबोध इतिहास	संस्कृत इतिहास	प्रकाशित
१२.	ऋग्वेद का परिचय	वैदिक साहित्य	प्रकाशित
१३.	भारतीय दर्शन के सम्प्रदाय	दर्शन साहित्य	प्रकाशित
१४.	बाण और दण्डी एक अध्ययन	साहित्य	प्रकाशित
१५.	संक्षिप्त दशकुमारचरित	गद्य काव्य	प्रकाशित
१६.	दशकुमारचरित व्याख्या (विश्रुतचरित)	गद्य काव्य	प्रकाशित
१७.	भट्टनारायण कृतं पूर्ववृत्तान्तदर्शनम्	गद्य काव्य	प्रकाशित
१८.	शुकनासोपदेश: (व्याख्या सहित)	गद्य काव्य	प्रकाशित
१९.	गद्य पारिजात विवरण	गद्य काव्य	प्रकाशित
२०.	मेघदूत की वैदिक पृष्ठभूमि और उसका सांस्कृतिक सन्देश—काव्य		प्रकाशित

२१.	अर्थव्यंजकताचित्रम्	अलंकार शास्त्र	प्रकाशित
२२.	ए सेन्स आफ कालेज ग्रामर ट्रान्सलेशन एन्ड अन्सीन—	व्याकरण	प्रकाशित
२३.	वैदिक व्याकरण स्वर और वेदपाठ	व्याकरण	प्रकाशित
२४.	वैदलावण्यम्	वेद	प्रकाशित
२५.	पारस्करीयोपनयनसूत्राणि	गृह्यसूत्र	प्रकाशित
२६.	वेद भारती	वेद	प्रकाशित
२७.	रावण-भाष्यम्	वेद	प्रकाशित
२८.	ऋग्वेद के ऋषि और उनका सन्देश व दर्शन	वेद	प्रकाशित
२९.	मेघदूत (व्याख्या)	गीतिकाव्य	प्रकाशित/अनुपलब्ध
३०.	वेदभाष्य पद्धति की दयानन्द सरस्वती की देन का सार	—	अप्रकाशित
३१.	वेदभाष्यकारों का आलोचनात्मक अध्ययन		अप्रकाशित

उपर्युक्त सारणी में क्रमांक १ से ७ तक संस्कृत भाषात्मक लेख, क्रमांक ८, ९, १० हिन्दी लेख, कमांक ११ से २९ तक प्रकाशित रचनायें (ग्रन्थ) तथा क्रमांक ३० व ३१ अप्रकाशित शोधग्रन्थ हैं।* आप अभी लेखन कार्यरत हैं तथा उल्लेखनीय विद्वान् हैं।

---

१४२. श्री सुरजनदास स्वामी

श्री स्वामीजी महाराज दादू सम्प्रदाय के एक योग्यतम व्यक्ति हैं। स्वयं का जीवन-परिचय प्रस्तुत करते हुए आपने लिखा है कि संवत् १९७६ में जमात उदयपुर निवासी पंच श्री गीवारामजी से दीक्षा प्राप्त करने के पश्चात् उन्हीं की सेवा में रह कर अक्षराभ्यास भी वहीं प्रारम्भ किया था। प्राणाचार्य आयुर्वेदमार्तण्ड स्वामी श्री लक्ष्मीरामजी महाराज के सत् प्रयत्नों से संस्थापित श्री दादू महाविद्यालय की स्थापना होने पर संवत् १९७७ से आप इस विद्यालय में पढ़ने के लिए जयपुर भिजवा दिये गए थे। उसी दिन से लेकर अब तक आप सम्पूर्ण राजस्थान प्रान्त की, विशेपकर जयपुर की सारस्वत साधना में लीन रहे हैं। श्री दादू महाविद्यालय के स्नातक के रूप में आपने साहित्य शास्त्री संवत् १९८५ में द्वितीय श्रेणि से तथा व्याकरणशास्त्री द्वितीय श्रेणि से संवत् १९८७ में उत्तीर्ण की। (१४२–अ) इसके पश्चात् आपने साहित्याचार्य, वेदान्ताचार्य, सांख्ययोगाचार्य आदि परीक्षायें प्रथम श्रेणि में उत्तीर्ण कीं। इस प्रकार पारंपरिक संस्कृत भाषा का अध्ययन समाप्त कर आपने हाईस्कूल, इन्टर, बी० ए० तथा एम० ए० (संस्कृत) की परीक्षायें भी उत्तीर्ण कीं। बी० ए० को छोड़कर शेप सभी में आप प्रथम श्रेणि से उत्तीर्ण थे। साहित्याचार्य परीथा में सर्वप्रथम रहने के कारण महाराणा भूपालसिंह स्वर्ण पदक द्वारा सम्मानित किये गए, जब कि एम० ए० में सर्वप्रथम रहने के कारण (सम्पूर्ण विश्वविद्यालय में) चांसलर स्वर्ण पदक व महाराजा कालेज से नार्थबुक रजत पदक तथा विद्यालय के दशम वार्षिकोत्सव में महाविद्यालय के विद्यार्थियों में सर्वप्रथम रहने पर 'श्री लक्ष्मीराम स्वर्णपदक' से सम्मानित हुए।

आप मध्यमा (उपाध्याय) परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् ही अध्यापक हो गए थे। सन् १९३१ के जून मास में सहायक अध्यापक के रूप में आपने कार्य प्रारम्भ किया था। तब से आप अध्ययन व अध्यापन का कार्य साथ-साथ करते आ रहे हैं। सन् १९३७ में तत्कालीन शिक्षा निदेशक श्री विलियम ओवन्स के आग्रह पर एक

---

* यह-शोध प्रवन्ध अब छप चुका है।
(१४२–अ)—आपका परिचय श्री दादू महाविद्यालय रजत जयन्ती ग्रन्थ पृष्ठ ४०–४१ पर आधारित है।

वर्ष तक खेतड़ी संस्कृत पाठशाला के प्रधानाध्यापक के पद पर कार्य किया था। सन् १९४२ की मई से सन् १९४६ की जुलाई तक दादू महाविद्यालय के प्रधानाचार्य के रूप में कार्य करते रहे। अगस्त, १९४६ से अक्टूबर, १९४८ तक इण्डियन मेडिसन बोर्ड के रजिस्ट्रार पद पर, सन् १९४८ नवम्बर से सन् १९५० जनवरी तक महाराजा कालेज, जयपुर में संस्कृत विभाग के प्रोफेसर के पद पर, तदनन्तर १३ जुलाई, १९५२ तक सहायक प्रोफेसर के पद पर कार्य किया था। १९५२ ई० के पश्चात् राजकीय महाविद्यालय, किशनगढ़ में संस्कृत विभागाध्यक्ष, फिर राजर्षि कालेज, अलवर में संस्कृत विभागाध्यक्ष, ततश्च राजकीय महाविद्यालय, कोटा में स्नातकोत्तर संस्कृत विभागाध्यक्ष के पद पर कार्य किया। सन् १९६१ के नवम्बर में आपका स्थानान्तरण डूंगर कालेज, बीकानेर में संस्कृत विभागाध्यक्ष के पद पर हुआ, जहां से एक वर्ष पश्चात् ही स्थानान्तरित होकर राजकीय महाविद्यालय, अजमेर में संस्कृत विभागाध्यक्ष बनाये गये। सन् १९६६ ई० से आप जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर के संस्कृत विभाग में रीडर के पद पर कार्य कर रहे हैं।* आप संस्कृताध्यापकों में सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति माने जाते हैं जिनके अनेक शिष्य राजस्थान व अन्य प्रान्तों में संस्कृत व्याख्याताओं के रूप में सेवा संलग्न हैं। इन पंक्तियों के लेखक को भी आपके पास रह कर अध्ययन का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

श्रद्धेय श्री स्वामीजी ने ४ वर्ष तक महामहोपदेशक विद्यावाचस्पति पं० श्री मधुसूदनजी महाराज की सेवा में रह कर वेद विद्या व वैदिक कर्मकाण्ड का भी अध्ययन किया था। उनके दिवंगत होने पर उनके सुपुत्र पं० प्रद्युम्न झा के आदेश से उनके ग्रन्थों का सम्पादन किया था, जो अभी तक निरन्तर चल रहा है। अनेक ग्रन्थों की हिन्दी व्याख्यायें भी प्रस्तुत की गई हैं। आप वैदिक विज्ञान विषय के निरन्तर प्रचार-प्रसार में ही संलग्न रहते हैं। वाणी तथा दर्शन नामक पुस्तक तथा दादूवाणी की सामान्य भूमिका भी लिखी, जो लगभग शत पृष्ठानुमानित है। एक पुस्तक जिसमें स्वतन्त्र विचारों के द्योतक दार्शनिक निबन्धों का संग्रह है, अभी अप्रकाशित है। एक वर्ष ९ मास तक आपने 'भारती' मासिक पत्रिका का सम्पादन कार्य किया था। ४ वर्ष से अधिक समय तक राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन के प्रधान मन्त्री पद पर कार्य करते रहे हैं। आप अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन व राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन के सर्वाधिक सक्रिय सदस्य व उपाध्यक्ष रहे हैं। राजस्थान संस्कृत शिक्षा सलाहकार मण्डल के सम्मानित सदस्य भी रह चुके हैं। इस समय ६ छात्र आपके निर्देशन में विभिन्न विषयों पर शोध कार्य कर रहे हैं जिनका उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है :—

१.	सुश्री श्रद्धा चौहान	—	वेदों में घन नाम
२.	श्री पुरुषोत्तम डोमल	—	कालिदास की कृतियों में दार्शनिकत्व
३.	श्री ईश्वरसिंह	—	ए क्रिटिकल स्टडी आफ कन्ट्रीबुशन आफ वाचस्पति मिश्र टू वेदान्त फिलोसोफी
४.	श्रीमती पद्म कुंवर	—	गीता, महाभारत तथा उपनिषद् आदि के संदर्भ में सांख्य-दर्शन का समालोचनात्मक अध्ययन
५.	सुश्री कुसुम गुप्ता	—	पुराणों की सृष्टि प्रक्रिया का समालोचनात्मक अध्ययन
६.	सुश्री शरद् पूर्णिमा	—	ए क्रिटिकल एण्ड कम्पेरेटिव स्टडी आफ अध्यास इन फिलोसोफी

आपका रचनात्मक कार्य इस रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है :—

* सन् १९७५ में आप वहां से सेवा निवृत्त हो गए हैं तथा सम्प्रति महामण्डलेश्वर स्वामी गंगेश्वरानन्दजी के यहां वेदों का भाष्य लिख रहे हैं।

क्रम सं०	नाम रचना	प्रकाशन विवरण
१.	सत्यकृष्णं रहस्य (सम्पादन मात्र)	विक्रम संवत् १९४९
२.	निरूढपशुबन्ध (सम्पादन मात्र)	विक्रम संवत् १९४९
३.	वैदिकोपाख्यान (सम्पादन मात्र)	विक्रम संवत् १९५०
४.	पदनिरुक्त (हिन्दी सारांश सहित सम्पादन)	विक्रम संवत् १९५०
५.	देवासुरख्याति (हिन्दी सारांश सहित सम्पादन)	विक्रम संवत् १९५१
६.	आधिदैविकाध्याय (हिन्दी सारांश सहित सम्पादन)	विक्रम संवत् २००७
७.	आशौच पंजिका (हिन्दी सारांश सहित सम्पादन)	विक्रम संवत् २००८
८.	पुराणोत्पत्ति संग्रह (हिन्दी व्याख्या सहित सम्पादन)	विक्रम संवत् २००८
९.	मन्वन्तर निर्धारः (हिन्दी व्याख्या सहित सम्पादन)	विक्रम संवत् २०२१
१०.	यज्ञोपवीत विज्ञान (हिन्दी व्याख्या सहित सम्पादन)	विक्रम संवत् २०२१
११.	सन्ध्योपासना रहस्य (स्वतंत्र ग्रन्थ)	विक्रम संवत् २०२१
१२.	पथ्या स्वस्ति (हिन्दी सारांश सहित सम्पादन)	विक्रम संवत् २०२६

आपने अपने गुरु विद्यावाचस्पति श्री मधुसूदनजी ओझा के उपर्युक्त साहित्य का सम्पादन व प्रकाशन किया है। आप इस समय भी विद्यावाचस्पतिजी के अन्यान्य वैदिक विज्ञान साहित्य का सम्पादन करने में संलग्न हैं। श्री ओझाजी के उल्लेखनीय शिष्यों में अब केवल आप ही ऐसे व्यक्ति हैं, जो उनके साहित्य का प्रकाशन मनोयोग पूर्वक कर रहे हैं। वास्तव में आपका यह कार्य जयपुर के संस्कृत-साहित्य के इतिहास में उल्लेखनीय है। आप उनके वैदिक विज्ञान पर साधिकार व्याख्यान दिया करते हैं और वह सभाजनों को अत्यन्त मुग्ध कर देता है। इसी प्रकार आप एक कुशल अध्यापक के रूप में भी उल्लेखनीय हैं, जिनके अनेक छात्र राजस्थान विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणि में तथा सर्वप्रथम रूप में उत्तीर्ण होने के कारण स्वर्ण पदक से सम्मानित किये गए हैं। इन पंक्तियों के लेखक को भी आपके सान्निध्य में रह कर एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण करने व उपर्युक्त सम्मान प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

आपके अनेक शोधपूर्ण निबन्ध भी विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। इनका विवरण इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :—

क्रम सं०	नाम लेख	प्रकाशन रिवरण
१.	वेदेषु विज्ञानम्	संस्कृत साहित्य सम्मेलन सन् १९६७—संस्कृत में
२.	चरके दर्शनम्	संस्कृत रत्नाकर आयुर्वेदांक में प्रकाशित—१९४० ई०
३.	स्वभावोक्तेरलंकारित्वप्रतिपादनम्	संस्कृत साहित्य सम्मेलन स्मारिका
४.	अभिनवगुप्तरीत्यास्वरूपनिरूपणम् (रसस्य)	राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन उदयपुर, १९६८
५.	शान्तोऽपि नवमो रसः	राजकीय महाविद्यालय कोटा पत्रिका—१९५९
६.	वेदेषु मनस्तत्त्वम्	संस्कृत रत्नाकर वेदांक में प्रकाशित
७.	दर्शनदर्शनम्	रा०सं०सा० सम्मेलन १९६५ दर्शनपरिषद् अध्यक्षीयभाषण
८.	गंगायाः वैज्ञानिकस्वरूपनिरूपणम्	संस्कृत रत्नाकर २४।५ में प्रकाशित
९.	वेदेषु इतिहास	संस्कृत रत्नाकर १७।५ में प्रकाशित
१०.	देवो देवता च	संस्कृत रत्नाकर १७।५ में प्रकाशित

११.	रसस्वरूपनिरूपणम्	राजकीय महाविद्यालय कोटा पत्रिका
१२.	काव्यलिंग तथा अर्थान्तरन्यास भेद	विश्वम्भरा शोध पत्रिका १९६३-६४
१३.	वैश्वानरस्वरूप प्रतिपादनम	विश्वम्भरा शोध पत्रिका १९६८
१४.	ऋषि छन्द व देवता स्वरूप विवेचन	स्वाहा पत्रिका रा०प्रा०वि० प्रतिष्ठान, जोधपुर
१५.	वेदा: विज्ञानं च	रा०सं०सा० सम्मेलन १३वां अधिवेशन वेदपरिषद् अध्यक्षीय भाषण
१६.	साधारणीकरणम्	प्रकाश्यमान इत्यादि

आपके अन्य कई लेख अभी अप्रकाशित हैं। आप अभी विद्यमान हैं तथा सरस्वती देवी की उपासना में संलग्न है। सम्प्रति आप श्रौतमुनि वास, वृन्दावन धाम (उ० प्र०) में विराजते हैं।

---

१४३. श्री सूर्यनारायण शास्त्री व्याकरणाचार्य

श्री शास्त्रीजी का जन्म वैशाख शुक्ला सप्तमी विक्रम संवत् १९४० सन् १८८३ को महेन्द्रगढ़ (हरियाणा) में गौड़ ब्राह्मण परिवार में हुआ था। आपके पिता का नाम प० प्रभुदयालजी था। आपके चाचा (पितृव्य) पं० रामगोपालजी जोशी जयपुर में वकालत करते थे। उनके सन्तान न होने से आपको दत्तक पुत्र के रूप में अपने पास रखा। कुछ समय पश्चात् पं० रामगोपालजी के पुत्र हो गया और आपने अपना अधिकार छोड़ दिया। दत्तक पुत्र होते हुए भी आपका स्वत्वाधिकार परित्याग महत्ता का द्योतक है।

बाल्यकाल में ही जयपुर आने पर आप अपनी पूर्व परंपरा के अनुसार संस्कृत पढ़ने लगे तथा महाराज संस्कृत कालेज में प्रवेशिका विभाग में प्रविष्ट हो गए। महामहोपाध्याय पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी तथा राजगुरु पं० चन्द्रदत्त ओझा सदृश महापुरुषों तथा विद्वानों के साथ अध्ययन का सौभाग्य मिलने से आप भी उनके साहचर्य से प्रसिद्ध हो गए। म०म० श्री चतुर्वेदीजी ने अपनी आत्म-कथा में आपका उल्लेख अनेक स्थानों पर किया है। आप ने नियमित छात्र के रूप में व्याकरण विषय से शास्त्री परीक्षा संवत् १९५८ में उत्तीर्ण की तथा व्याकरणाचार्य परीक्षा संवत् १९६० में प्रथम श्रेणि में उत्तीर्ण की। (१४३-अ) आचार्य परीक्षा उत्तीर्ण करने पर आपको शिक्षा विभाग ने रजत पदक प्रदान किया था। आपने पंजाब विश्वविद्यालय से शास्त्री तथा अग्रेजी मे डिप्लोमा परीक्षायें उत्तीर्ण कीं। स्वाधीन छात्र के रूप में आपने न्यायशास्त्री की परीक्षा उत्तीर्ण की। आपने संस्कृत कालेज में पं० श्री लक्ष्मीनाथजी शास्त्री द्राविड़ से सम्पूर्ण शिक्षा प्राप्त की थी। ये ही आप के प्रधान गुरु थे। यों आपने विद्यावाचस्पति पं० श्री मधुसूदनजी ओझा से वैदिक विज्ञान सम्बन्धी ज्ञानार्जन भी किया था।

(१४३-अ)—शास्त्रिपरीक्षोत्तीर्णच्छात्राणां नामादीनि—क्रमांक ३७—व्याकरणे तृतीय श्रेणि व आचार्यपरीक्षोत्तीर्ण-च्छात्राणां नामादीनि—क्रमांक ७—प्रथम श्रेणि।

सन् १६०६ में आप महाराजा हाई स्कूल में संस्कृताध्यापक नियुक्त हुए। इसके पश्चात् पं० बदरीनाथ शास्त्री पदोन्नत होकर जयपुर आंग्ल कालेज से प्राच्यविद्या विभाग लखनऊ में विभागाध्यक्ष होकर चले गये तथा उनका स्थान खाली हुआ। उस स्थान पर पं० वीरेश्वरजी शास्त्री से पूछकर तत्कालीन निदेशक श्री मक्खनलालजी पं० गिरिधर शर्मा को नियुक्त करना चाहते थे, परन्तु उनसे आपको प्राप्त होने वाले स्थान में बाधक बनना उचित नहीं समझा और इस प्रकार वह पद आपको मिला। इसका उल्लेख आत्मकथा में मिलता है। (१४३–आ) कनिष्ठ व्याख्याता से वरिष्ठ व्याख्याता (प्राध्यापक, विभागाध्यक्ष) पद पर सन् १६२१ में पदोन्नत किये गए। (१४३–इ) आपने सन् १६४० तक अध्यापन किया था।

आप धर्मसभा (मोदमन्दिर) के सम्मानित सदस्य भी रहे हैं। आपका उल्लेख जयपुर के महत्वपूर्ण सरस्वती उपासकों में किया जाता है। संस्कृत भाषा के क्षेत्र में आपका उल्लेखनीय योगदान है। आप पंजाब, आगरा, कलकत्ता आदि विश्वविद्यालयों की अनेक समितियों के सदस्य रह चुके हैं।

आपकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर महामहोपाध्याय पं० दुर्गाप्रसादजी द्विवेदी प्राचार्य, महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर ने "व्याख्यानवाचस्पति" तथा भारत धर्म महामण्डल ने "साहित्यभूषण" की उपाधियां प्रदान की थीं। आपने अनेक समाजसेवी संस्थाओं में सक्रिय कार्य किया है। "समाजसुधारक" नामक पत्र का सम्पादन भी किया था।

संस्कृत रत्नाकर के जन्म से आप इस पत्र के सक्रिय कार्यकर्त्ता रहे हैं। आप लोगों के प्रयास से ही इस रत्नाकर ने जन्म लिया, पोषण प्राप्त किया था तथा उपचार से पुनर्जीवन प्राप्त कर सका था। आपकी रचनाओं का प्रकाशन अधिकतर इसी पत्र में हुआ है, जिसका उल्लेख किया जा रहा है। इन सभी रचनाओं के विवरण के अतिरिक्त आपके स्वतन्त्र ग्रन्थ भी हैं, जिनमें बालकों के लिए "संस्कृत शिक्षा" के अनेक भाग उपलब्ध हैं। अनेक सम्पादकीयम्, प्रकाशकीयम् तथा संस्कृत समाचार दर्शन के अतिरिक्त आपका महत्वपूर्ण साहित्य भी है। इसका मूल्यांकन 'कृतित्व खण्ड' में किया जायेगा।*

आपक निधन मार्गशीर्ष कृष्णा १० संवत् २००८, सन् १६५१ को जयपुर में हुआ ही था।

आपने वर्तमान नरेश महाराज मानसिंह को धर्मशास्त्र पढ़ाया था। आपके प्रमुख शिष्यों में से पण्डित श्री हीरालाल शास्त्री, प्रथम मुख्यमन्त्री, राजस्थान, पं० श्री श्यामसुन्दर शर्मा, रजिस्ट्रार, आगरा विश्वविद्यालय, श्री कपूरचन्द्र पाटनी, सामोद के रावल संग्रामसिंह, खंडेला के राजा स्वर्गीय रामसिंह, पं० रामचन्द्र शास्त्री, एडवोकेट, पं० रामकुमार शर्मा (भूतपूर्व जिलाधीश) आदि उल्लेखनीय हैं।

आपके ४ पुत्रों में से पं० हरिप्रसाद शर्मा ने संस्कृत विषय से एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की थी। आप इस समय लोकवाणी तथा 'राष्ट्रदूत' दैनिक समाचार पत्रों के सहायक सम्पादक रहे हैं। कविशिरोमणि भट्ट श्री मथुरानाथजी शास्त्री ने आपकी प्रशंसा करते हुए लिखा है :— (१४३–ई)

(१४३–आ)—"हरिद्वार के ऋषिकुल में"—आत्मकथा और संस्कृत—श्री चतुर्वेदी—पृष्ठ ६१–६२।

(१४३–इ) —लिस्ट आफ एजू० आफिसर्स—महाराजाज् कालेज, जयपुर—क्रमांक ६—प्रोफेसर आफ संस्कृत—ओन प्रजेन्ट पोस्ट १८ जुलाई, १६२१।

* श्री सूर्यनारायण शास्त्री व्याकरणाचार्य 'व्यक्तित्व एवं कृतित्व' शीर्षक पर श्रीमती शशि गुप्ता, बीकानेर ने राज० विश्वविद्यालय से अभी १६७८ में पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त की है। इस शोध प्रबन्ध से विस्तृत जानकारी प्राप्त की जा सकती है। यह शोध प्रबन्ध इस शोध प्रबन्ध के लेखक के निर्देशन में ही सम्पन्न हुआ है।

(१४३–ई)—जयपुरवैभवम्—नागरिकवीथी–सुधीचत्वरः—पृष्ठ २५६ पद्य संख्या ६६।

"अध्यापकमुच्चराजकीयांग्लविद्यालये भाषामेतदीयामाप्य सिद्धं सभ्यसंचये
सरलसरलसाधुसंस्कृतसुशिक्षापरमविरलगाम्भीर्याभिमानमुन्नताशये।
हेलयैव कवितागवीनां मूर्द्धि न केलिपरं सूरिसमृद्धेलितसभासु भान्तमुक्तये
सामाजिकशोधकरणाय मण्डलान्तः स्थितं व्याकरणाचार्यसूर्यनारायणाख्यं श्रये।।"

आपके उल्लेखनीय रचनात्मक कार्य का विवरण इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :—

क्रम	रचना शीर्षक	विधा	प्रकाशन विवरण
१.	धर्मविषयः (१२ अंकों में)	धर्मशास्त्र	संस्कृत रत्नाकर, १९०४
२.	जयपुरस्थ संस्कृतपाठशाला वर्णनम् (२ पद्य)	—	संस्कृत रत्नाकर १।२
३.	संस्कृत भाषाया निवेदनम् (१ पद्य)	—	संस्कृत रत्नाकर १।७
४.	**समस्यापूर्तियाँ**		
	(क) विद्यार्जने के गुणाः		संस्कृत रत्नाकर १।१
	(ख) सतां माने म्लाने मरणमथवा दूरसरणम्		संस्कृत रत्नाकर १।७
५.	मनसः सामर्थ्यम् (दो अंकों में)	गद्यकाव्य	संस्कृत रत्नाकर २।५,६
६.	त्रैभाषिक कोशः (चार अंकों में)	कोश	सं० रत्नाकर २।५,६,७,८
७.	सती संयोगिता	लघुकथा	सं० रत्नाकर ५।१–२
८.	पद्मिनी	लघुकथा	सं० रत्नाकर ५।५–६
९.	वीरमतिः (दो अंकों में)	लघुकथा	सं० र० ५।११–१२, ६।३–४
१०.	दुर्गावती	लघुकथा	सं० र० ६।५–६
११.	महाराजश्चन्द्रगुप्तः (दो अंकों में)	लघुकथा	सं० र० ६।७–८, ११–१२
१२.	किं नामोन्नतिलक्षणम्	गद्यलेख	सं० र० ७।१
१३.	श्रीमान् बिन्दुसारः	ऐतिहासिक कथा	सं० र० ७।१
१४.	कल्पनाशक्तिः	गद्यलेख	सं० र० ७।२
१५.	कुतो मनुष्याणां जीवनक्रमे वैचित्र्यम् भवति	गद्यलेख	सं० र० ७।३
१६.	गृहस्थाश्रमस्य श्रेष्ठता	गद्यलेख	सं० र० ७।३
१७.	निषेध-वैचित्र्यम् (दो अंकों में)	गद्यलेख	सं० र० ७।४, ५
१८.	हनूमान् (कई अंकों में)	पौराणिक कथा	सं० र० ९।३ में समाप्त
१९.	श्रीमानशोक चक्रवर्ती (२७ पृष्ठ)	ऐतिहासिक कथा	सं० र० ९।२ में समाप्त
२०.	अलक्ष्येन्द्रस्य भारताऽऽक्रमः (तीन अंकों में)	गद्यलेख	सं० र० ९।७ में समाप्त
२१.	कुरुक्षेत्र यात्रा	गद्यलेख	सं० र० ९।५ (१९१४ ई०)
२२.	वीरो वीरपत्नी च (५८ पद्य)	लघुकाव्य	सं० र० ९।६
२३.	नरश्च सिंहश्च (२४ पद्य)	लघुकाव्य	सं० र० ९।७
२४.	नरश्च हस्ती च (३३ पद्य) (अपूर्ण)	लघुकाव्य	सं० र० ९।८
२५.	दलितोद्धारो वा धर्मदलनं	गद्यलेख	सं० र० १।१
२६.	देशानाम् धमर्णतायाः कारणानि	गद्यलेख	सं० र० १।७
२७.	ननान्द-प्रजावत्योः कलहस्य कुपरिणामः	गद्यलेख	सं० र० २।५

२८.	रचनावैचित्र्यम्	गद्यलेख	सं० र० २।१०
२९.	विपवृक्षः	गद्यलेख	सं० र० ३।१
३०.	आयुर्मर्माणि रक्षति	गद्यलेख	सं० र० ३।४
३१.	सांसारिकदुःखप्रतीकारोपायः	गद्यलेख	सं० र० ४।१
३२.	साम्यवादिनि रूसदेशे शिक्षा-व्यवस्था	गद्यलेख	सं० र० ४।१
३३.	संस्कृतभाषायाः प्रचाराय परमोपयुक्तः प्रस्तावः	गद्यलेख	सं० र० ४।२
३४.	सौन्दर्य-विचारः	गद्यलेख	सं० र० ४।२
३५.	द्वैतवादे श्रीकृष्णचैतन्यमहाप्रभोः सिद्धान्तः	गद्यलेख	सं० र० ४।१०
३६.	अद्वैतवादे शुद्धाद्वैतमतम्	गद्यलेख	सं० र० ४।११
३७.	अद्वैतवादे विशिष्टाद्वैतमतम्	गद्यलेख	सं० र० ४।१२
३८.	अद्वैतवादे शांकरमतम्	गद्यलेख	सं० र० ५।२
३९.	धर्ममण्डनम् (१९ अंकों में)	गद्यलेख	सं० र० ५।३ से १२ तथा ६।१ से ९ अंक
४०.	वर्षा-वर्णनम्	गद्यलेख	सं० र० ५।७
४१.	हेमन्तः	गद्यलेख	सं० र० ६।१
४२.	सज्जन-सिद्धान्ताः (दो अंकों में)	गद्यलेख	सं० र० ६।६, ७
४३.	मातुरुपदेशाः	गद्यलेख	सं० र० ६।९
४४.	स्मृति-शास्त्रानुसारं युद्धनियमाः	गद्यलेख	सं० र० ६।१०
४५.	भूगर्भ-शास्त्र-विषयः	गद्यलेख	सं० र० ७।२
४६.	दयार्द्र-चित्तता	गद्यलेख	सं० र० ७।२
४७.	तमसो मा ज्योतिर्गमय	गद्यलेख	सं० र० ७।३
४८.	गंगा ब्रह्मद्रवः कथम्	गद्यलेख	सं० र० ७।४
४९.	बुद्धियोग-भेदाः	गद्यलेख	सं० र० ७।४
५०.	वासन्ती सुषमा	गद्यलेख	सं० र० ७।८
५१.	मीमांसानयेन प्रमाणस्य प्रमायाश्च लक्षणे निर्दिश्यन्ते	गद्यलेख	सं० र० ७।८
५२.	जैन सिद्धान्तानुसारं मोक्षलाभोपायाः मोक्षस्वरूपं च	गद्यलेख	सं० र० ७।१०
५३.	उद्योग-लहरी (५४ पद्य)	लघुकाव्य	सं० र० २।८
५४.	सौजन्य-सीमा (२४ पद्य)	लघुकाव्य	सं० र० ४।५
५५.	श्रीजगन्नाथः (३५ पद्य)	लघुकाव्य	सं० र० ४।९
५६.	श्रीकृष्णदूतम् (८ अंकों में)	लघुकाव्य	सं० र० ५।१०, १२ व ६।१, २, ३, ४, ५, ७
५७.	भारतीय-ब्रह्मचारिणो मनोभावाः (२१ पद्य)	लघुकाव्य	सं० र० ७।८
५८.	मानवंश-महाकाव्यम् (१७ अंकों में)	ऐतिहासिक महाकाव्य	सं० र० ७।१२, ८।२ से ५, ७, ८, ११, १२ ९।३, ५, ७, ९, ११, १०।१, ११।१०, १२।१
५९.	दुर्लभ-दाम्पत्यम्	लघुकथा	सं० र० ४।१

६०.	श्रीसूर्यः (तीन अंकों में)	पौराणिक कथा	सं० र० ४, १, २, ४
६१.	श्रीचन्द्रः	पौराणिक कथा	सं० र० ४।५
६२.	श्रीमंगलः	पौराणिक कथा	सं० र० ४।७
६३.	श्रीबृहस्पतिः	पौराणिक कथा	सं० र० ४।९
६४.	अन्धोऽप्यनन्धः पतिः	पौराणिक कथा	सं० र० ७।४
६५.	रत्नाकराभ्यर्थना (तीन पद्य)	प्रकीर्ण पद्य	सं० र० १।१
६६.	देवालय क्रन्दनम् (चार पद्य)	प्रकीर्ण पद्य	सं० र० १।४
६७.	ग्रीष्मविलास-वर्णनम् (१५ पद्य)	प्रकीर्ण पद्य	सं० र० २।६
६८.	वर्षा-वर्णनम् (१७ पद्य)	प्रकीर्ण पद्य	सं० र० २।७
६९.	राजोपदेशः (१७ पद्य)	प्रकीर्ण पद्य	सं० र० ४।२
७०.	सन्ध्या-वर्णनम् (५ पद्य)	प्रकीर्ण पद्य	सं० र० ४।२
७१.	धर्मेण देशोन्नतिः (१० पद्य)	प्रकीर्ण पद्य	सं० र० ४।६
७२.	दौर्जन्य सीमा (१८ पद्य)	प्रकीर्ण पद्य	सं० र० ४।६
७३.	प्रावृट् (७ पद्य)	प्रकीर्ण पद्य	सं० र० ५।८
७४.	नवोढावयस्ययोः संलापः (१९ पद्य)	प्रकीर्ण पद्य	सं० र० ७।२

इन लेखों में क्रमांक १ से २४ तक अंकित लेख संस्कृत रत्नाकर के प्राचीनतम अंकों (१९०४ ई० से १९१४ ई० तक प्रकाशित) तथा शेष १९३३ ई० से प्रकाशित अंकों में उपलब्ध होते हैं। इकके अतिरिक्त आपने अपने प्रधान सम्पादकत्व और सम्पादकत्व (एकाकी) काल में प्रत्येक अंक के प्रारम्भ में यथासम्भव मंगलाचरण का पद्य प्रस्तुत किया है। सम्पादकीयम्, सम्वादाः, समाचाराः तथा अन्य अनेक गद्य व पद्य रचनायें संस्कृत रत्नाकर में प्रकाशित हुई हैं, जिनकी संख्या २२२ से भी अधिक है। इनमें से कतिपय का विवेचन अग्रिम खण्ड में किया जायेगा।

---

१४४. श्री सूर्यनारायण वैदिक

श्री वेदाचार्य का जन्म मार्गशीर्ष शुक्ला द्वादशी विक्रम संवत् १९६० तदनुसार (१४४–अ) दिनांक १ दिसम्बर, १९०४ को जयपुर नगर में ही हुआ था। आपके पिता श्री गोपीनाथजी राजज्योतिषी थे। आपके पूर्वजों का जयपुर में निवास बहुत प्राचीन काल से है। आपकी शिक्षा-दीक्षा जयपुर में ही सम्पन्न हुई। आपने प्रवेशिका से शास्त्री परीक्षोपाधि तक (१४४–आ) उक्त कालेज में अध्ययन किया। इसके पश्चात् व्याकरण, साहित्य, मीमांसा, तन्त्र, ज्योतिष आदि विषयों का ज्ञान स्वतन्त्र रूप में प्राप्त किया। आपके गुरुजनों में सर्वस्व श्री विजय चन्द्रजी चतुर्वेदी (परिचय क्रमांक १२३), श्री गणेश शास्त्री गोडशे (परिचय क्रमांक १८), म० म० पण्डित श्री विद्याधरजी गौड़ तथा श्री वीरेश्वर शास्त्री द्राविड़ (परिचय क्रमांक १२८) आदि विशेषतः उल्लेखनीय हैं। आपके शिष्यों में आपके ही ज्येष्ठ पुत्र श्री चन्द्रधर शर्मा (भारद्वाज), श्री महेशचन्द्र शर्मा वेदाचार्य, पं० श्री गोपीरामजी

(१४४–अ)—लिस्ट आफ एजूकेशनल आफिसर्स—म० संस्कृत कालेज, जयपुर—क्रमांक २६—पण्डित यजुर्वेद—९ पण्डित—पं० सूर्यनारायण शास्त्री—जन्म तिथि १ दिसम्बर, १९०४।

(१४४–आ)—शास्त्रिपरीक्षोत्तीर्णच्छात्राणां नामादीनि—क्रमांक २१३ संवत् १९८२।

शर्मा, पण्डित शिव सहाय शर्मा, श्री हनुमत्प्रसाद शर्मा, श्री विश्वनाथ शर्मा प्रभृति ने आपसे विधिवत् यजुर्वेद का अध्ययन किया था।

आपने श्रौत यागों की पद्धतियों का निर्माण किया, जो आधान से लेकर चिति यागान्त हैं। आपने राजस्थान में चिरकाक्षोन्मूलित स्मार्त याज्ञिक प्रक्रियाओं का श्रीगणेश किया। आप अनेक स्मार्त यज्ञों के आचार्य रहे हैं। संस्कृत कालेज, जयपुर के स्कूल विभाग में यजुर्वेद के पण्डित होने के साथ ही आप व्यवस्थापक भी रहे हैं। आप अभी विद्यमान हैं तथा समय-समय पर यज्ञ-यागादि क्रियायें सम्पन्न किया करते हैं।

आपके पुत्र श्री चन्द्रधर शर्मा इस समय महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर में वेद के प्रोफेसर के पद पर कार्य कर रहे हैं।

---

१४५. श्री सोमदेव शर्मा गुलेरी

महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर के व्याकरणाध्यापक पं० श्री शिवराज शर्मा गुलेरी (परिचय क्रमांक १३५) के तीन पुत्रों में से आप मध्यम पुत्र थे। आपने अपने ज्येष्ठ भ्राता पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी (परिचय क्रमांक ३८, के सान्निध्य में रह कर ज्ञानार्जन किया था। श्री गुलेरी का आप पर बहुत अधिक स्नेह था। अपने पितृचरण के अवकाश प्राप्त व दिवंगत होने के पश्चात् आप मोदमन्दिर (धर्मसभा) के सम्मानित सदस्य बना दिये गए थे। (१४५-अ)

संस्कृत कालेज में उपलब्ध प्राचीन उपस्थिति पत्रकों से ज्ञात होता है कि आप महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर में व्याकरणाध्यापक थे। (१४५-आ) आपके कुछ पद्य तत्कालीन संस्कृत रत्नाकर के प्राचीन अंकों में उपलब्ध होते हैं, जिनके अन्त में लिखा है—'संस्कृत पाठशालाध्यापक पं० सोमदेवशर्मणाम्'। आपकी विद्वत्ता का परिज्ञान निम्नांकित दो पद्यों के विश्लेषण से स्वतः ही प्रतिभासित हो जाता है। ये पद्य हैं :—(१४५-इ)

(१) "स्वार्थान्धेन तथाद्य जर्मनमयं कर्तास्मि सर्वं जगत्
तैनैतेन कुसाहसेन रभसादायोधनं बध्नता।
दृप्यज्जर्मनभूमिपेन सहनः श्रीमान् जयोर्जाभिधः
सम्राडद्य महाहवं प्रकुरुते धर्म्यां प्रथामाश्रितः॥"

(२) "स्थितिजनिलयकारिन् कंसदर्पापहारिन्
स्मरशतरुचिधारिन् आर्तमर्त्यार्तिहारिन्।
विनयनमितमौलिः प्रार्थये केशव त्वां
भुवि जयतु चिरायुर्लार्डहार्डिजवीरः॥"

इसी प्रकार अन्य पद्य भी उपलब्ध हैं। ये सभी पद्य प्रकीर्णक रचनाओं के अन्तर्गत विवेच्य हैं। आपका अल्पायु में ही निधन हो जाने से आप सरस्वती मां की विशेष सेवा न कर सके थे। आपका अल्पायु में निधन एक अपूरणीय क्षति था।

आप उल्लेखनीय विद्वान् थे।

(१४५-अ)—कविशिरोमणि भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्र ने जयपुरवैभवम्—नागरिकवीथी—सुधीचत्वरः में पृष्ठ २४६ पर उल्लेख किया है।

(१४५-आ)—प्राचीन उपस्थिति पत्रक—जनवरी, १९११ से दिसम्बर, १९१३ (मार्च, १९११ में उल्लेख)।

१४६. श्री हरगोविन्द नामावाल

दाधीच कुलावतंस ताजीमी सरदार श्री छोटेलालजी नामावाल (परिचय क्रमांक ४५) का ही दूसरा नाम श्री हरगोविन्द था। राजव्यवहार में आप हरगोविन्द के नाम से ही विख्यात थे। श्री सीताराम भट्ट पर्वणीकर ने अपने जयवंश महाकाव्य में आपका उल्लेख इस प्रकार किया है :—

नेत्रे यस्य विभावसुः सितकरस्स्वान्ते च शान्तिस्स्थिता
पाणिः पौष्करमुच्चकैरनुदिनं सादृश्यमालम्बते।
संज्ञा पावकताश्रया विधुसमं यस्याननं भासते
गोविन्दो हरिरित्यवाप्तमहिमा यः सर्वदा गीयते॥" (१९वां सर्ग—४६वां पद्य)

इसका आशय यह है कि आप उस समय उल्लेखनीय विद्वान् थे।

---

१४७. श्री हरदत्त ओझा

जयपुर के प्रसिद्ध राजगुरु वंश, ओझा, मैथिल चौधरी अवटंक श्री एकनाथ झा के प्रपौत्र तथा श्री नरहरि झा के ज्येष्ठ पुत्र श्री हरदत्त ओझा महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर में अपने पिता के पश्चात् व्याकरण-प्राध्यापक नियुक्त हुए। आपने उक्त कालेज में व्याकरण शास्त्री तक अध्ययन किया था।(१४७–अ) आपकी नियुक्ति संवत् १९५२ में हुई थी। व्याकरण के साथ ही आप साहित्य के भी मार्मिक विद्वान् थे। आप नैषध के अनेक पद्यों का चमत्कारपूर्ण अर्थ सुनाया करते थे। आप सरल स्वभाव और सहृदयता परिपूर्ण व्यक्ति होने के साथ ही अत्यन्त आकर्षक व्यक्तित्व सम्पन्न विद्वान् व कुशल अध्यापक थे। संवत् १९५६ में आपको परंपरागत राजगुरु पद प्राप्त हुआ। कविशिरोमणि भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री ने आपका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार प्रस्तुत किया है :—(१४७–आ)

"विवृतशब्दशास्त्रोदयान् परम-सहृदयान् स्तौमि।
श्रीहरिदत्तमहोदयान् सदयान् सम्प्रति नौमि॥"

आपके शिष्यों में सुविख्यात विद्वान् महामहोपाध्याय पं० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, श्री सूर्यनारायणजी व्याकरणाचार्य, भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री, श्री मदनलाल शास्त्री प्रश्नवर तथा आपके ही कनिष्ठ भ्राता पं० चन्द्रदत्त झा नाम विशेषतः स्मरणीय है। आपने पण्डित श्री शिवरामजी गुलेरी, श्री वीरेश्वरजी शास्त्री द्राविड़ आदि से व्याकरण व अन्य विषयों का अध्ययन किया था। खेद है आपका युवावस्था में ही जलोदर रोग से देहान्त हो गया था। संस्कृत रत्नाकर के कार्तिक अंक १९६५ में आपके दुःखद मृत्यु का समाचार इस प्रकार प्रकाशित हुआ है :—

"हा कष्टम्—प्रकम्पमानया लेखन्याद्य लेखितुमिदं हतवृत्तं विवशीभूताः स्मो यत्सर्वथा गीर्वाणवाण्यां तदाश्रयिषु चाकरुणं विचेष्टमानेन सर्वतस्तदुन्नतिं प्रतिबध्नता हतदैवेनाल्प एव काले जयपुराद् रत्नद्वयं अपहृतम्। हा प्रथमं किल आश्विने मासि जयपुरीय-राजकीय-संस्कृतपाठशालायां व्याकरणप्राध्यापकः राजगुरवो मैथिलश्री हरिदत्तशर्म शास्त्रिपादाः यौवन एव विषद्वेषं विषयान्

(१४७–अ)—शास्त्रिपरीक्षोत्तीर्णच्छात्राणां नामादीनि—क्रमांक ७—संवत् १९५१—प्रथम श्रेणि।
(१४७–आ)—जयपुरवैभवम्—पृष्ठ २४७—पद्य ५५।

सांसारिकान् विद्विषन्त इव स्वर्गारोहणकौतुकितां वितन्वाना विध्यन्ति स्म बलवद्हृदयानि सुहृदामन्तेवासिजनानां चास्मादृशाम्।.......... हा अकाण्ड एव प्रलयपयोदच्छटाभिराच्छन्नः शीतकरः। चत्वारिंशतोऽपि न्यूने वयसि हतदैवेन वियोजिता एभिरात्मीयाः....इत्यादि।" (संस्कृत रत्नाकर ५।७–८)

आप उल्लेखनीय विद्वान् थे।

१४८. श्री हरिदास

आप बंगाली विद्वान् थे और महाराज सवाई माधवसिंह के शासनकाल में शिक्षा विभाग के निदेशक एवं महाराजा कालेज के प्राचार्य रहे हैं। म० म० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ने अपनी आत्मकथा और संस्मरण में आपका उल्लेख किया है :—(१४८–अ)

"यद्यपि यह पाठशाला भी आंग्लविद्यालय के अध्यक्ष श्री हरिदास शास्त्री के ही अधिकार में थी किन्तु वे इसकी मर्यादा में कोई हस्तक्षेप नहीं करते थे।"

राजवैद्य श्रीकृष्णराम भट्ट ने अपने समकालीन विद्वानों में आपको एक उल्लेखनीय विद्वान् माना है और इसीलिये उन्होंने आपका वर्णन चार पद्यों द्वारा प्रस्तुत किया है :—(१४८–आ)

"क्रमात्समस्तास्वपि कक्षिकासु यः श्रूयते दत्तमहापरीक्षा।
चिरं स जीयाज्जयपत्तनीयवाग्वेशमधुर्यो हरिदासशास्त्री ॥२४॥
यः संस्कृतः संस्कृतवाग्विलासे सत्पण्डिते मण्डितभक्तिरुच्चैः।
फिरंगविद्यास्वनवद्यबुद्धिश्चिरं स जीयाद्धरिदासशास्त्री ॥२५॥
हरिदास्यस्फुरितरुचेः कीर्तिरपि तव हरिदास हरिदास्या।
परदास्यपरस्तु परः पलायतेऽतीत्य हरिदास्यम् ॥२३॥
गुणानामावासं कलितमृदुहासं कविकलाविलासं सोल्लासं प्रसृमरमहासंपदुदयम्।
स्फुरद्विद्याभ्यासं कृतखलनिरासं मम कृतिः स्फुटोदञ्चद्भासं सपदि हरिदासं सुखयतु ॥२७॥"

इनका आशय है कि आपने एन्ट्रेन्स, इन्टर, बी० ए०, एम० ए० आदि सभी परीक्षायें उत्तीर्ण कर संस्कृत में योग्यता प्राप्त की थी। आप सत्पण्डितों के भक्त तथा फिरंगी विद्या (अंग्रेजी) में पूर्ण विद्वान् थे। आपके पश्चात् श्री डी० एच० ह्वाचा नामक पारसी विद्वान् महाराजा कालेज के प्रिंसिपल बनाये गये। (१४८–इ) आपके सम्बन्ध में एक उल्लेखनीय घटना का उल्लेख अप्रासंगिक न होगा, जो म० म० श्री चतुर्वेदी ने अपने गुरु विद्यावाचस्पति श्री मधुसूदनजी ओझा के जीवन परिचय के साथ किया है :—(१४८–ई)

"शिक्षा विभागाध्यक्ष श्री हरिदास बाबू संस्कृत के भी उत्तम विद्वान् और परम विपयानुरागी थे। शनैः शनैः उक्त हरिदास बाबूजी से हमारे चरितनायक (विद्यावाचस्पति श्री मधुसूदनजी ओझा) का प्रगाढ़ प्रेम हो गया। वे समीर सेवन के समय इन्हें अपने साथ ले जाते और घंटों तक दर्शनशास्त्र सम्बन्धी विचार इनके साथ

(१४८–अ) —आत्मकथा और संस्मरण—श्री चतुर्वेदीजी—पृष्ठ ७।
(१४८–आ)—जयपुरविलास—पंचम उल्लास—पृष्ठ ५०—पद्य २४ से २७।
(१४८–इ) —आत्मकथा और संस्मरण—श्री चतुर्वेदीजी—पृष्ठ ७।
(१४८–ई) —सुधा पत्रिका वर्ष २ खण्ड १ संख्या १—वि० वा० का जीवन परिचयात्मक लेख।

करते रहते। उनके प्रौढ पाण्डित्य और अद्भुत भाषण शैली से उन्हें बहुत संतोष होता था। उसी अवसर में हरिदास बाबू ने इनकी योग्यता देखकर महत्त्वपूर्ण कार्य का भार इनको सौंपा…। यह निर्विवाद सिद्ध है कि जानकीहरण रघुवंश के जोड़ का काव्य समझा जाता था, किन्तु वह काव्य उपलब्ध नहीं था। श्री हरिदास बाबू को अन्वेषण से सिंहली लिपि में उक्त काव्य की एक टीका, जो सिंहली भाषा में थी, उपलब्ध हुई। मूल की कोई प्रति न मिली। अस्तु उक्त बाबूजी ने ओझाजी को वह टीका दिखाई और इस टीका से ही मूल ग्रन्थ का संकलन करने की इच्छा प्रकट की……। सिंहली लिपि से ओझाजी परिचित न थे…। आपने तीन दिन सिंहली वर्णमाला का अभ्यास कर लिया और टीका के आधार पर मूल जानकी-हरण का सकलन आरम्भ किया…। दैवात् इस ग्रन्थ के प्रकाशन से पूर्व श्री हरिदास बाबू का युवावस्था में ही देहावसान हो गया…। श्री कालीप्रसाद वन्द्योपाध्याय ने सन् १८९३ में कलकत्ते से छपाकर प्रकाशित किया…। आपने उस काव्य का सम्पादक हरिदास बाबू को लिखा और प्रकाशक अपने को। श्री झा को भूमिका में धन्यवाद मात्र दे दिया… इत्यादि।"

घटना चाहे कुछ भी रही हो, श्री हरिदास बाबू संस्कृत साहित्य के इतिहास में जानकीहरण काव्य के प्रथम सम्पादक के रूप में विख्यात हैं। आप संस्कृत के प्रति कितना अधिक प्रेम रखते थे, यह उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है। आपका अन्य रचनात्मक कार्य उपलब्ध नहीं है। आप जयपुर के संस्कृत-साहित्य के इतिहास में संस्कृत भाषा के प्रति श्रद्धावान् एवं कुशल प्रशासक के रूप में उल्लेखनीय रहे हैं।

---

१४९. श्री हरिनारायण शास्त्री "आशुकवि"

श्री शास्त्रीजी इस समय जयपुर नगर के जीवित विद्वानों में मूर्धन्य माने जाते हैं।* आपका जन्म ताजीमी सरदार, राजगुरु कथाभट्ट पं० हरगोविन्दजी नामावाल के कनिष्ठ पुत्रों के वंशजों में पं० श्री दामोदरजी शर्मा दाधीच के यहां वैशाख कृष्णा ४ संवत् १९४० को जयपुर में हुआ था। आपके पिताजी ठाकुरों के ठिकाने की सेवा करते थे। आपने अपना अध्ययन महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर में प्रारम्भ किया था। आपने वेद व कर्मकाण्ड का अध्ययन किया तथा उपाध्याय व शास्त्री परीक्षायें उत्तीर्ण कीं। आपने साहित्यशास्त्र का अध्ययन प्रारम्भ किया तथा शास्त्री व आचार्य परीक्षा उत्तीर्ण कीं। आप आगरा राष्ट्रीय विद्यालय की 'साहित्य महोपाध्याय' परीक्षा में सम्मिलित हुए तथा सफलता प्राप्त की। भारतधर्म महामण्डल ने आपको 'आगमरत्न' की उपाधि तथा शाक्त सम्मेलन प्रयाग ने 'आम्नाय-धुरन्धर' की उपाधि से सम्मानित किया। आपने संस्कृत साहित्य सम्मेलन तथा जयपुरीय विद्वन्-मण्डल से 'आशुकवि' तथा 'कविभूषण' उपाधियों के साथ ही पदक भी प्राप्त किया।

पण्डित श्री मगनीरामजी शास्त्री से वेद व कर्मकाण्ड का ज्ञान प्राप्त किया। पण्डित श्री लक्ष्मीनाथ शास्त्री द्राविड़ से आचार्यान्त साहित्य विषय का अध्ययन किया। साहित्यवेदान्ताचार्य पं० विहारीलालजी शास्त्री दाधीच भी आपके गुरु रहे हैं। आपके उल्लेखनीय शिष्यों में (१) पं० दामोदरजी, (२) पं० रामचन्द्रजी, (३) श्री प्रवीण-चन्द्रजी, (४) श्री हरिशंकरजी, (५) श्री राधेश्यामजी, (६) श्री रामेश्वरजी, (७) श्री प्रकाशचन्द्रजी कथाभट्ट आदि अनेक रहे हैं।

आपने प्रारम्भ में ठिकाना गीजगढ़ में पौरोहित्य कार्य तथा परत: संस्कृत साहित्य के अध्यापन कार्य से जीविकोपार्जन किया। आप हिन्दी तथा संकृत विषयक रचनाकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। आपका साहित्य-सर्जनात्मक कार्य उल्लेखनीय है।

---

* शोध-प्रवन्ध लेखन के समय आप जीवित थे, अब दिवंगत हैं।

बाल्यकाल से ही आपमें कवित्वशक्ति जाग्रत हुई। अपने विद्यार्थी जीवन में ही आपने सुललित पद्य रचना प्रारम्भ कर दी थी। आपकी सर्व प्रथम उपलब्ध रचना 'रामचन्द्रस्तव' है, जो संस्कृत रत्नाकर ७ आकर, रत्न ७ आश्विन सवत् १६६६ (१६१२ ई०) मे प्रकाशित है। यह महाकवि जयदेव (गीतगोविन्दकार) के श्रितकमला-कुचमण्डल धृत कुण्डल ए कलितललित वनमाल' की तर्ज पर बनाया गया है। उदाहरणार्थ :—

"रघुकुलनलिनदिवाकर करुणाकर हे।
श्रुतिसुरनुतपदकंज जयजय राम हरे।।
यशस्थमोदविवर्धन खलमर्दन हे।
हर हृदय मराल जय जय राम हरे।।"

इसी नाम से (रामचन्द्रस्तवः) एक रचना मार्गशीर्ष सवत् १६६६ मे प्रकाशित हुई है। सह-सम्पादक ने इस रचना पर अपने विचार इन शब्दों मे प्रकट किये हैं :–"बहोः कालादेतदधिगतमस्माभिः। विद्यार्थिनोऽभ्यस्यतः कृतिरियं वैचित्र्यपूर्णं चेति परिशोध्य स्थापितमद्य पाठकानां पुरस्तात्। स्तोत्रेऽस्मिन् नाद्यै रक्षरैः 'रामरामेति' श्लोकमन्त्रो निःसरति। अतएव दूरान्वयेनार्थ काठिन्यमनिवार्य भवतीति सौढव्यं पाठकैरिति सहसम्पादकः।" इस स्तोत्र के आद्य अक्षर सम्मेलन से 'राम रामेति रामेति, रमे रामे मनोरमे। सहस्रनामतत्तुल्य रामनाम वरानने' पद्य की अभिव्यक्ति होती है। रचना के अन्त मे लिखा है—'जयपुरीय राजकीय संस्कृतशालाविद्यार्थि—नामावलोपाह्व-दाधीच-हरनारायण शर्मा'। इससे ज्ञात होता है कि आपने विद्यार्थी जीवन से ही सुन्दर कविता बनाना प्रारम्भ कर दिया था। आपकी रचनाओ मे भक्ति भाव अधिक रहा है। प्रारम्भिक रचनाये ईश्वरभक्ति से परिपूर्ण है।

इसी प्रकार महाशिवरात्रि महोत्सवे—श्रीमन्महेशस्तवः (फाल्गुन संवत् १६६६) भी भक्ति प्रधान रचना है। आधुनिक पद्य शैली के अन्तर्गत लावनी (लावण्यवती) आदि का भी प्रयोग किया है—

"अये प्रियवर्याः प्रयतध्वम्। स्वतन्द्रामधुनाऽपनयध्वम्।
सत्सु युष्मासु च संस्कृतकं याति कथमेतदधः पदकम्।।
दोहा—पाणिभाजनात् संस्कृताऽमृतमधिगतं श्रमेण।
जलमिव भिन्नघटादिदं हा संस्रति क्रमेण।।" इत्यादि

(सस्कृत रत्नाकर चैत्र १६७१ लावण्यवती)

समस्यापूर्ति रूपात्मक पद्यो की भी बहुलता है, जो विभिन्न छन्दों मे उपलब्ध है। सर्वप्रथम समस्यापूर्ति है—'रत्नाकरः किल सुधाकर साम्यमेति'। यह संस्कृत रत्नाकर के ६ वर्ष संवत् १६७१ (१६१४ ई०) श्रावण मासांक में प्रकाशित है। इस रचना मे आठ पद्य है। आपकी रचनाओं मे 'प्रेयसी गीतिः' (संस्कृत रत्नाकर

मार्गपौषौ—संवत् १९७१—९ वर्ष) अधिक प्रसिद्ध है। यह कव्वाली की तर्ज पर बनाई गई हैं। इसमें भगवती सरस्वती की स्तुति है—

"अये कल्याणि! वाणि! त्वं विबोधं पाहि दीनं माम्।
कलाविद्याप्रवीणे! हे सवीणे! पाहि दीनं माम्। अये कल्याणि०॥"

शनैः शनैः रचना में गाम्भीर्य तथा प्रौढि आने लगी। स्वयं श्री शास्त्रीजी का कथन है कि यह परिवर्तन अभ्यास व शिक्षा के साथ ही भगवती शक्ति की उपासना का परिणाम है।

आपके रचनात्मक कार्य का उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है :—

क्रम	नाम रचना	विधा	प्रकाशित।अप्रकाशित
१.	राममानसपूजननम्	स्तोत	प्रकाशित
२.	वाणीलहरिः	स्तोत्र	प्रकाशित
३.	सुवर्णलक्ष्मी नक्षत्रमाला	स्तोत्र	प्रकाशित
४.	सिद्धिस्तवः	स्तोत्र	प्रकाशित
५.	शक्तिगीतांजलिः	स्तोत्र	प्रकाशित
६.	साम्राज्यसिद्धिस्तवः	स्तोत्र	अप्रकाशित
७.	उदरप्रशस्तिः	लघुकाव्यम्	प्रकाशित
८.	अलंकारकौतुकम्	अलंकारशास्त्र	प्रकाशित
९.	अलंकारलीला	अलंकारशास्त्र	प्रकाशित
१०.	शिक्षारत्नावलिः	प्रकीर्णक	प्रकाशित
११.	भगवती गीता	अनूदित	प्रकाशित
१२.	दर्पदलन	अनूदित	अप्रकाशित
१३.	वर्णबीजप्रकाशः	तन्त्रमन्त्र साहित्य	अप्रकाशित
१४.	ललितासहस्रकाव्यम्	तन्त्रस्तोत्र	प्रकाशित
१५.	संजीवनीसाम्राज्यम्	आयुर्वेद	प्रकाशित
१६.	अन्योक्ति-मुक्तावलिः	अलकारशास्त्र	अप्रकाशित
१७.	अन्योक्तिशतकम्	अलंकारशास्त्र	अप्रकाशित
१८.	दश उपनिषदनुवादः (पद्यमय)		अप्रकाशित
१९.	होली का हास (हिन्दी)		प्रकाशित

इनके अतिरिक्त आपने अनेक दार्शनिक वृक्ष (चार्ट) भी बनाये हैं, जो विषय की गम्भीरता को सरलता से समझने में सहायक होते हैं। आप महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर में साहित्य के व्याख्याता रहे हैं। इस समय जयपुर से प्रकाशित होने वाली भारती पत्रिका का सम्पादन कर रहे हैं। आप इस समय जयपुर नगर के साहित्य व तान्त्रिक विद्वानों में मूर्धन्य माने जाते हैं। आपको कई कविता प्रतियोगिताओं में स्वर्ण पदक प्राप्त हो चुके हैं। आपने वैदिक छन्दों में 'अम्बिकासूत्र' लिखा है, जिसे आपने समीक्षाचक्रवर्ती पं० मधुसूदनजी ओझा के रजतजयन्ती समारोह में उन्हें भेंट किया था।

संस्कृत और भारती मासिक पत्रिकाओं में आपके अनेक लेख व कवितायें प्रकाशित हुए हैं, जिनमें उल्लेखनीय कतिपय का विवरण इस प्रकार है :—

क्रम	रचना शीर्षक	प्रकाशन विवरण
१.	काश्चिदन्योक्तय:	संस्कृत रत्नाकर १।८, १।११ सन् १९३३
२.	मंगलम् गीतागुणगीति:	संस्कृत रत्नाकर १।११
३.	अत्रापि किंचिद् विमृशन्तु सन्त:	संस्कृत रत्नाकर २।७
४.	संस्कृतभाषामहत्वम् (चार अंकों में)	संस्कृत रत्नाकर ३।५,६,८ व ४।२
५.	सुरसरस्वती गुणगीतिका	संस्कृत रत्नाकर ४।२
६.	श्रीमान् महत्वम्	संस्कृत रत्नाकर १३।८
७.	गीतायां भगवान् कृष्ण:	संस्कृत रत्नाकर १३।८
८.	वसन्त-गीतिका	भारती १।४
९.	ग्रामीण-पण्डित: कालिदासश्च	भारती १।५
१०.	गणपति-स्तुति:	भारती २।११
११.	महात्मा सत्यव्रत:	भारती २।११
१२.	मातृस्तवनम्	भारती ८।११
१३.	गुरुजनवन्दनम्	भारती ९।२,३,४ व ९
१४.	सन्ध्योपासनम्	भारती १०,४,५,६,७
१५.	श्री दधिमथि-पुष्पिताग्रा	भारती १४।११ इत्यादि

भट्ट श्री मथुरानाथजी शास्त्री ने आपका स्मरण इस प्रकार किया है :—

"कैशोरे कवित्वबीजमाप्य कृतिमाकलयन् लोकसाधुवादै: कृतिमानी सुकवीयते
साहित्यं समाप्य शास्त्रिपदवीप्रलब्धावेव सिद्धिस्तव-वाणीलहरीषु व्यवसीयते।
नानाविधोपाधिभरैरुदरप्रशस्तिकरो गर्वभरोन्नद्धो गुणजात्या गुरौ गीयते
नामावलदाधीचेषु नैपुणनिहितनामा सूरिर्हरिनारायणनामा सोऽयमीयते ।।" (१४९–अ)

आप सदृश विद्वानों से जयपुर नगर गौरवान्वित है। (१४९–आ)

---

१५०. श्री हरिलाल वैदिक

सवाई रामसिंह कालीन संस्कृत विद्वानों में श्री वैदिक का नाम उल्लेखनीय है। आप गुजराती औदिच्य ब्राह्मण थे। आपने महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर में स्थापना के समय से वेद के अध्यापन का कार्य किया है। महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर में उपलब्ध प्राचीन उपस्थिति पत्रकों में आपका नाम दिसम्बर, १८८४ से दिसम्बर, १९३० तक उपलब्ध होता है। राजवैद्य श्री कृष्णराम भट्ट ने अपने समकालीन विद्वानों में आपका सांगोपांग चित्र प्रस्तुत किया है :— (१५०–अ)

"यजूंषि सांगानि सदा समभ्यसन्नौदीच्यजातिर्भगवत्युपासन:।
सुवर्णरज्जुत्रयनद्धकंधरस्त्रिपुण्ड्रभालो हरिलालवैदिक: ।।"

संस्कृत कालेज से अवकाश प्राप्त करने के पश्चात् आप राजकीय कर्मकाण्ड कार्यों में सम्मिलित हुआ करते थे। आपका वंश राज्य सम्मानित रहा है। आपके कोई पुरुष सन्तान न थी, अत: आपने अपने दौहित्र श्री प्यारेलाल वैदिक (ज्येष्ठ) को अपना उत्तराधिकारी बनाया। आप भी इनके समान ही राज्य सम्मानित हैं।

(१४९–अ) —जयपुरवैभवम्—नागरिकवीथी—सुधीचत्वर:—पद्य संख्या ९७—पृष्ठ २७३।

(१४९–आ)—आपका उपर्युक्त परिचय स्वयं प्रदत्त जानकारी पर आधारित है।

(१५०–अ)—जयपुरविलास—पंचम उल्लास—पृष्ठ ५३—पद्य ५०।

आपके उल्लेखनीय शिष्यों में श्री मांगीलालजी वैदिक (परिचय क्रमांक ९९) का नाम उल्लेखनीय है, जो कालान्तर में आपके विश्रामग्रहण करने पर संस्कृत कालेज में वेद के अध्यापक रहे हैं।

आपका कोई रचनात्मक कार्य उपलब्ध नहीं है। कर्मकाण्डी वैदिक विद्वानों में आपका नाम उल्लेखनीय है।

---

१५१. श्री हरिवल्लभ भट्ट

"वैद्यवाचस्पति" श्री कुन्दनराम (परिचय क्रमांक १०) के कनिष्ठ पुत्र श्री भट्ट का जन्म, मिती श्रावण शुक्ला पंचमी संवत् १९२३ को हुआ था। आप राजवैद्य श्री कृष्णराम भट्ट के वैमात्रेय कनिष्ठ भ्राता थे। १४ वर्ष की अवस्था में ही पितृचरण का देहावसान होने से अपने अग्रज कवि श्री कृष्णरामजी के सान्निध्य में ही विद्याध्ययन, किया। आपने कुल परम्परागत आयुर्वेद का तो ज्ञान प्राप्त किया, ही साथ ही, न्याय, दर्शन, साहित्य, व्याकरण आदि का भी गूढ ज्ञान प्राप्त किया। स्वयं श्री कृष्णरामजी भट्ट ने 'जयपुरविलास' के पंचम उल्लास की समाप्ति पर पारिवारिक वर्णन के साथ इस प्रकार उल्लेख किया है :—

"गुरुप्रसादाधिगतार्थबोधौ वैद्यागमाकुण्ठितधीप्रसारौ।
श्रीकृष्णरामो हरिवल्लभश्च द्वावात्मजौ तस्य कवी अभूताम् ॥ ७४ ॥
हरिवल्लभकविमल्लो वल्लभरमपि ब्रवीति नो वितथम्।
अधुना बुधवल्लभतां हरिवल्लभतां पटुमतल्ली ॥ ७६ ॥ (१५१-अ)

आपका वंश परिचय श्री कुन्दनराम (परिचय क्रमांक १०), श्री कृष्णराम भट्ट (परिचय क्रमांक ११) के परिचय से अभिन्न है।

अपने अध्ययन एवं प्राध्यापक गुरुजन—वृन्द का उल्लेख करते हुए आपने अपनी रचना 'जयपुर पंचरंगम्' में लिखा है :—

"शब्दानामनुशासनं पठितवान् पूर्वं पितुर्यः परं
भ्रातुश्छान्दसकाव्यकोशसहितं स्वीयं च तद्वैद्यकम्।
श्रीमन्मैथिलजीवनाथगुरुतः साहित्यशास्त्रं तथा
भाईनाथगुरोश्च गौतममतं सोऽहं हरेर्वल्लभः ॥
पुरुषपाटवसंघट्टः सेवितसाहित्यसिन्धुचरमतटः।
इह हरिवल्लभभट्टः सुन्दरसंस्कृतकवित्ववीरभटः ॥" (१५१-आ)

अर्थात् पितृचरण वैद्य श्रीजीवनरामजी से व्याकरण शास्त्र का, उनके दिवंगत होने पर काव्यकोश सहित छन्दःशास्त्र का अध्ययन श्री कृष्णराम भट्ट से तथा श्री जीवनाथ ओझा व भाईनाथजी ओझा से न्यायशास्त्र का विशिष्ट ज्ञान प्राप्त किया था। कवित्व निर्माण प्रयोग राजगुरु पं० नारायण भट्ट पर्वणीकर के सान्निध्य में प्रारम्भ किया था। भट्टजी के प्रपौत्र पं० श्री देवेन्द्रप्रसाद भट्ट ने आपके परिचय में लिखा है कि आपके स्वभाव में अनेक अनूठी विशेषतायें थी। आप वर्ष में एक बार अपने निवास स्थान से अपने जन्म दिवस पर केवल हनुमानजी के दर्शनार्थ बाहर पधारते थे। आपको भ्रमण का और तैरने का बहुत शौक था और इसके लिये आपने तीन मकान खरीदकर अन्दर से सुरंग बनवा ली थी, जिसमें निरन्तर टहलते हुए काव्य रचना किया करते थे। कविशिरोमणि भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री ने इसका संकेत अपने 'जयपुरवैभवम्' नामक ग्रन्थ में इस प्रकार किया है :— (१५१-इ)

(१५१-अ) —जयपुरविलास—पंचम उल्लास—पृष्ठ ५६-५७—पद्य संख्या ७४ व ७६।

(१५१-आ)—जयनगर पंचरंगम्—प्रकाशित—१८९४ सन्—पद्य संख्या २ व ५—पृष्ठ ३७-३८—यह ग्रन्थ निर्णयसागर प्रेस से प्रकाशित है जो अब अनुपलब्ध है।

(१४१-इ)—जयपुरवैभवम्—नागरिकवीथी—सुधीचत्वरः—पद्य संख्या ६१—पृष्ठ २५२ तथा सिद्धभैषजमणिमाला —मणिच्छटा हिन्दी टीका पृष्ठ 'ग' प्रकाशित १९६८।

"भंगाऽभंगश्लेषपरं भंगारससंगात् ।
चंक्रमन्तमन्तर्गृ हं तु मातंगाऽऽरंगात् ।।
यस्य हि जयपुरपंचरंगमुखगुम्फमुदीक्षे ।
बुधतल्लज-कविमल्लमिमं हरिवल्लभमीक्षे ।।"

आपकी रचनायें सारगर्भित होते हुए भी कुछ क्लिष्ट हैं । अतः आप विद्वत् समुदाय में कविमल्ल के नाम से विख्यात रहे हैं । आपकी गर्वोक्ति रही है :—

"नास्तीदृक्पद्यमप्येकं कविमल्लप्रकल्पितम् ।
अल्पाऽनल्पाऽथवा यत्र नैव काचिच्चमत्कृतिः ।।"

आपके रचनात्मक कार्य का विवरण इस प्रकार है :—

क्रम	नाम लेख	विधा	विवरण
१.	जयनगरपंचरंगम्	खण्डकाव्यम्	प्रकाशित
२.	कान्तावक्षोजशतोक्तयः	मुक्तककाव्यम्	प्रकाशित
३.	ललनालोचनोल्लासः	मुक्तककाव्यम्	प्रकाशित
४.	गौर्यालिंकारशतकम्	मुक्तककाव्यम्	प्रकाशित
५.	श्रृंगार-लहरी	मुक्तककाव्यम्	प्रकाशित
६.	श्लोकवद्धा दशकुमारदशा	मुक्तककाव्यम्	प्रकाशित
७.	श्लोकवद्धं दशकुमारचरितम्	अनूदितकाव्य	प्रकाशित
८.	मुक्तकसूक्तानि	मुक्तककाव्यम्	प्रकाशित
९.	देवीस्तोत्रम्	स्तोत्र	प्रकाशित
१०.	विद्याविलासिनी चरित्रम्	लघुकाव्यम्	संस्कृत रत्नाकर में

आपकी अनेक रचनायें (पद्यात्मक) संस्कृत रत्नाकर के प्राचीन अंकों में प्रकाशित हुई हैं । आपका देहान्त पौष शुक्ला ३ संवत् १९७७ को ५४ वर्ष की अवस्था में हुआ था । आपके पुत्र का नाम श्री शंकर भट्ट था, जो ३३ वर्ष की अल्पावस्था में ही दिवंगत हो गया था । आपकी रचनाओं का विवेचन कृतित्व खण्ड में यथास्थान प्रस्तुत किया जायेगा ।*

---

१५२. श्री हरिवल्लभाचार्यः

जयपुर राज्य के प्रसिद्ध तीर्थ गलता या गालवाश्रम के महन्त कहिये या पीठाधिकारी, प्रायः ये सभी विद्वान् होते रहे हैं । सवाई रामसिंह द्वितीय तथा महाराज सवाई माधवसिंह द्वितीय के समय इस पीठ के अधिकारी विद्वान् का नाम श्री हरिवल्लभाचार्य था । आप प्रसिद्ध संगीतशास्त्री तथा मल्ल के रूप में अधिक प्रसिद्ध थे । भट्ट श्री मथुरानाथजी शास्त्री ने आपके उत्तराधिकारी का उल्लेख करते समय भी श्री हरिवल्लभाचार्य का वर्णन प्रस्तुत किया है । इससे स्पष्ट है कि आप वास्तव में उल्लेखनीय विद्वान् थे । उनका उल्लेख इस प्रकार है :— (१५२–अ)

"संगीते प्रवीणो, मंजु वाद्यमानवीणोऽप्यथ
शास्त्रेष्वप्रहीणो यो व्यतारीद् भूरि संपदम् ।
मल्लकर्मदक्षाचार्यतल्लजानामन्यतमो
हरिवल्लभार्यो भूषयांबभूव यत्पदम् ।
तस्मिन्नेव रामानुजाचार्यवर-पीठेऽधुना
विधिना निवेशितः प्रयाति सुखसंमदम् ।

---

* "कविमल्ल हरिवल्लभ भट्ट की रचनाओं का समालोचनात्मक अध्ययन" विषय पर श्री दामोदर पारीक पी–एच.डी. उपाधि हेतु शोध प्रबन्ध लिख रहे हैं, जो शीघ्र ही प्रस्तुत होगा । उससे इनका विस्तृत विवरण जाना जा सकता है ।

(१५२–अ)—जयपुरवैभवम्—नागरिकवीथी—सुवीचत्वरः—पृष्ठ २१५–२१६—पद्य संख्या ६ ।

धनबलताण्डवेन लब्धोज्ज्वलतातपदे
गलताऽधिपेऽस्मिन् मंजु मिलताऽऽहितोन्मदम् ॥"

ऐसा सुना जाता है कि श्री हरिवल्लभाचार्यजी संस्कृत के भी प्रकाण्ड विद्वान् थे तथा संस्कृत गोष्ठियों का आयोजन करते रहते थे एवं संस्कृत विद्वानों के साथ आपका घनिष्ठ सम्बन्ध भी था।

आपका रचनात्मक कार्य उपलब्ध नहीं है।

---

१५३. श्री हरेकृष्ण गोस्वामी

श्री गोस्वामी आमेर-जयपुर के शासक महाराज विष्णुसिंह द्वारा सम्मानित श्री शिवानन्द गोस्वामी के वंशज हैं। आप जयपुर से पश्चिम में दस मील दूर विद्यमान महापुरा ग्रामवासी हैं। आपका सम्पूर्ण जीवन जयपुर में ही व्यतीत हुआ है। आपके पिता पण्डित श्री गोपीकृष्ण गोस्वामी मंत्रशास्त्री होने के साथ जयपुर राज्य के सम्मानित कवि थे। आप का जन्म सन् १९११ में महापुरा ग्राम में हुआ था। आपने साहित्योपाध्याय सन् १९३५ में, साहित्यशास्त्री सन् १९२७ में, न्यायोपाध्याय सन् १९२८ में, न्यायमध्यमा सन् १९३० में, ब्रह्मवादविद्योपाध्याय सन् १९३१ में तथा साहित्याचार्य सन् १९५७ में उत्तीर्ण किया था। आप महाराज संस्कृत कालेज, जयपुर के नियमित छात्र रहे हैं। आपने सवाई महेन्द्र हाईस्कूल, ओरछा में सन् १९३४ से १९४५ तक ११ वर्ष संस्कृताध्यापन किया। उसके पश्चात् अपने ग्राम महापुरा में श्री शिवानन्द संस्कृत पाठशाला की स्थापना की, जहां ४ वर्ष तक अध्यापनरत रहे। आपने आयुर्वेद कालेज, जयपुर तथा जागीर कमिश्नर कार्यालय में भी कार्य किया। १९६० में आप संस्कृत कालेज, उदयपुर में साहित्य के व्याख्याता बनाये गये और तीन वर्ष कार्य करने के पश्चात् संस्कृत कालेज, अजमेर के प्राचार्य का कार्य सन् १९६३ में संभाला। इस समय आप विश्राम कर रहे हैं।* आपको आपकी योग्यता के अनुकूल शुद्धाद्वैतभूषण तथा कविसार्वभौम की उपाधियां प्राप्त हुई हैं। आपकी अधिकांश रचनायें संस्कृत रत्नाकर, भारती, संस्कृत प्रतिभा (दिल्ली), सुप्रभातम् (वाराणसी), पीयूष पत्रिका (नड़ियाद) आदि में प्रकाशित हुई हैं। आप की गणना प्रवर्तमान समय के उल्लेखनीय कवियों में की जाती है। आपकी रचनाओं में ललितकथा-कल्पलता, उद्वेजिनी (रवीन्द्रनाथ के आंख की किरकिरी उपन्यास का संस्कृत अनुवाद), आदर्शौदार्यम् (नाटक), पुनर्जन्म (काव्य), सोमनाथचम्पू, आम्रपाली (उपन्यास) महत्वपूर्ण हैं। आपकी संस्कृत रत्नाकर और भारती में प्रकाशित रचनाओं का विवेचन कृतित्व खण्ड में प्रस्तुत किया जायेगा।

आप अपने विशिष्ट वैदुष्य के कारण सन् १९६७ में राजस्थान सरकार तथा राजस्थान साहित्य अकादमी से पुरस्कृत हैं। आप अभी विद्यमान हैं तथा भट्ट श्री मथुरानाथजी शास्त्री के श्यालक हैं। आप जीवन भर भगवती सरस्वती की साधना में तल्लीन रहे हैं।

---

१५४. श्री हीरकः

"हीरजी" नाम से प्रसिद्ध श्वेताम्बर सम्प्रदाय के विख्यात विद्वान् से तत्कालीन विद्वान् पूर्णतः परिचित थे। आप यति थे तथा महाराज सवाई माधवसिंह द्वितीय के समय जैन सम्प्रदाय में उल्लेखनीय यति विद्वान् थे। राजवैद्य श्री कृष्ण भट्ट ने आपका वर्णन इस पद्य द्वारा प्रस्तुत किया है :— (१५४-अ)

"अयं जड इति श्रुतिस्त्वयि न जातु संभाव्यते
न कोऽपि धनताडनाजनितसंकटो दृश्यते।
न दीनजनदुर्लभस्तदपि सर्वविद्यावता-
मलंकरणभावतस्त्वमसि हीरको हीरक! ॥"

इनका संस्कृत भाषात्मक रचनात्मक कार्य उपलब्ध नहीं हो सका। केवल श्री कृष्णराम भट्टजी के उल्लेख से यह प्रमाणित होता है कि आप संस्कृत के विद्वान् थे।

---

* आपका देहावसान अभी हाल ही में १३ दिसम्बर, १९७९ ई० गुरुवार को मध्याह्न ३·४५ पर हो गया। यह एक अपूरणीय क्षति है।

(१५४-अ)—जयपुरविलास—पंचम उल्लास—पृष्ठ ५५—पद्य संख्या ६५।

उपसंहार

इस प्रकार जयपुर नगर में जन्म लेकर, अल्पकालीन या दीर्घकालीन स्थायी निवास कर संस्कृत साहित्य के वर्द्धन, परिरक्षण एवं विकास के कार्य में जिन उल्लेखनीय विद्वानों ने योग किया, उन १५२ विद्वानों का यथोचित उपलब्ध परिचय प्रस्तुत किया गया है+। साथ ही उनके रचनात्मक कार्य का उल्लेखन भी इसीलिये किया गया है, ताकि उन विद्वानों के कार्यकलाप से अवगति हो सके। अधिकांश विद्वान् साधारण पद्य रचना, समस्यापूर्तियां तथा सामान्य लेखों के लेखक रहे हैं, परन्तु ऐसे भी विद्वान् हैं, जिनके रचनात्मक कार्य का मूल्यांकन केवल इस शोध प्रबन्ध में सम्भव नहीं। उनके रचनात्मक कार्य का विवेचन करने के लिये पृथक् से अनेक शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किये जा सकते हैं। इस श्रेणि के विद्वानों में मूर्धन्य विद्वान् हैं—**समीक्षा चक्रवर्ती विद्यावाचस्पति पण्डित श्री मधुसूदन ओझा** (परिचय क्रमांक ९४) जिनने "वैदिक विज्ञान" तथा "भारतीय संस्कृति" पर २५० के लगभग महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रणयन किया था और इनमें से कतिपय प्रकाशित भी हो चुके हैं। इस विज्ञान विषयक कार्य पर स्वतन्त्र रूप से ही मनन, चिन्तन, पठन व लेखन सम्भव है।

सामान्यतया योगदान के जितने भी प्रकार हो सकते हैं—जिनका उल्लेख उक्त खण्ड के प्रारम्भ में किया गया है—इसके अन्तर्गत परिगणनीय हैं—महामहोपाध्याय पण्डित श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी (परिचय क्रमांक २०)। आपकी विलक्षण प्रतिभा के कारण ही जयपुर तथा सम्पूर्ण भारतवर्ष में भारतीय संस्कृति जीवित रह सकी। आर्य समाज के कतिपय सिद्धान्तों का भीषण धारावाहिक भाषणों से शास्त्रार्थ व मननपूर्वक खण्डन कर सनातन धर्म की स्थापना का उद्देश्य आजीवन रखा और साथ ही अखिल भारतीय संस्कृत सम्मेलन व राजस्थान संस्कृत सम्मेलन जैसी संस्थाओं को जन्म दिया। आपने "संस्कृत रत्नाकर" सदृश संस्कृत मासिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ कर एक उल्लेखनीय कार्य किया। आपके महत्त्वपूर्ण कार्यों से जयपुर नगर गौरवान्वित रहा है। आपके सुन्दर पद्य लेखन, शास्त्रीय विचारात्मक धारावाहिक लेखों तथा वक्तृताओं से आपकी विद्वत्ता चिरस्मरणीय रहेगी।*

जयपुर नगर में अंग्रेजों के शासन काल में महामहोपाध्याय की पदवी से सम्मानित ४ व्यक्ति थे, जो सभी अपने क्षेत्र में उल्लेखनीय तथा चिरस्मरणीय रहेंगे। इनमें **सर्वश्री दुर्गाप्रसादजी शर्मा** (काव्यमाला सम्पादक—परिचय क्रमांक ६१) को तो दिवंगत होने के पश्चात् यह सम्मान प्राप्त हुआ था। "काव्यमाला" सदृश एक महत्त्वपूर्ण योजना का शुभारम्भ वास्तव में श्लाघनीय प्रयास था, जिसे आपके पुत्र श्री केदारनाथ ज्योतिर्विद् (परिचय क्रमांक १४) तथा पण्डित शिवदत्त शास्त्री (परिचय क्रमांक १३१) व उनके पुत्र पण्डित भवदत्त शास्त्री ने यथाशक्ति निभाया। दूसरे महामहोपाध्याय थे **पण्डित शिवदत्त शास्त्री दाधिमथ** (परिचय क्रमांक १३१), जो व्याकरण शास्त्र के उद्भट विद्वान् होने के साथ ही "पुस्तक कीट" थे। आप लट्टूजी के नाम से विख्यात थे। तीसरे महामहोपाध्याय थे, **पण्डित श्री दुर्गाप्रसाद द्विवेदी** (परिचय क्रमांक ६२) जो ज्योतिषशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित, रचनात्मक कार्यकर्ता तथा संस्कृत कालेज के उल्लेखनीय प्राचार्य होने के साथ ही अपनी कुल परम्परा के पूर्ण पालक थे। क्या साहित्य क्या ज्योतिष क्या धर्मशास्त्र क्या तन्त्रशास्त्र, सभी शास्त्रों में आपकी विलक्षण प्रतिभा थी।‾ चतुर्थ व अन्तिम महामहोपाध्याय **पण्डित**

+ प्रस्तुत १५४ संख्या में से २ व्यक्ति श्री कुन्दनराम भट्ट (परिचय क्रमांक १०) तथा श्री जीवनराम भट्ट (परिचय क्रमांक ५४) एवं श्री छोटेलाल नामावाल (परिचय क्रमांक ४५ तथा श्री हरगोविन्द नामावाल (परिचय क्रमांक १४६) अभिन्न हैं। अतः कुल १५२ ही विद्वान् हैं।

* आपके व्यक्तित्व व कृतित्व पर शोध प्रबन्ध प्रस्तुत कर श्री कैलाशचन्द्र त्रिपाठी ने राजस्थान विश्वविद्यालय से सन् १९७८ में पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त कर ली है। यह शोध प्रबन्ध अभी अप्रकाशित है।

‾ आपकी स्मृति में 'प्राच्य शोध संस्थान' की संस्थापना की गई है, जिसका उद्देश्य शोध कार्य है।

श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी (परिचय क्रमांक २०) इस शताब्दी के सर्वाधिक प्रशंसनीय व्यक्ति थे, जिनका उल्लेख अभी किया जा चुका है।

संस्कृत रत्नाकर के उल्लेखनीय सम्पादकों में श्री सूर्यनारायणजी शास्त्री व्याकरणाचार्य* (परिचय क्रमांक १४३), कविशिरोमणि भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री* (परिचय क्रमांक ६१), पण्डित श्री वृद्धिचन्द्रजी शास्त्री व्याकरण-धर्मशास्त्राचार्य (परिचय क्रमांक १२६) का ही नाम स्मरणीय है। इन विद्वानों के सम्पादकीयम् तथा "संवादाः टिप्पण्यश्च" के शीर्षक से लिखे लेख श्लाघनीय तो हैं ही, महत्त्वपूर्ण भी हैं। इसी प्रकार भारती पत्रिका के सम्पादकों में (उल्लेखनीय विद्वानों में) श्री सुरजनदास स्वामी (परिचय क्रमांक १४२), पण्डित श्री वृद्धिचन्द्रजी शास्त्री (परिचय क्रमांक १२६) कविशिरोमणि भट्ट श्री मथुरानाथजी शास्त्री (परिचय क्रमांक ६१) तथा आशुकवि श्री हरि शास्त्री दाधीच (परिचय क्रमांक १४६) प्रमुख हैं। इनका संस्कृत साहित्य के विकास में अनुष्ठित योग अविस्मरणीय है।

काव्य साहित्य के क्षेत्र में यों तो अधिकांशतः सभी विद्वान् योगदाता रहे है, चाहे वे वैयाकरण रहे हों या ज्योतिषी, दार्शनिक रहे हों या धर्मशास्त्री, तथापि पण्डित गोपीनाथ शास्त्री दाधीच (परिचय क्रमांक २४), श्री कृष्णराम भट्ट (परिचय क्रमांक ११), श्री हरिवल्लभ भट्ट (परिचय क्रमांक १५१), भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री (परिचय क्रमांक ६१), श्री नारायण भट्ट पर्वणीकर (परिचय क्रमांक ७४), श्री लक्ष्मीनाथ शास्त्री द्राविड़ (परिचय क्रमांक ११८), पं० सदाशिव शास्त्री (परिचय क्रमांक १३६), श्री सूर्यनारायण व्याकरणाचार्य (परिचय क्रमांक १४४), आशुकवि श्री हरि शास्त्री दाधीच (परिचय क्रमांक १४६) का योगदान महत्त्वपूर्ण होने के साथ ही विवेचनीय भी हैं।

उल्लेखनीय शोधकर्ताओं में विद्यावाचस्पति पं० मधुसूदन ओझा (परिचय क्रमांक ६४) तथा स्व० पं० नन्दकिशोरजी शर्मा नामावाल (परिचय क्रमांक ६८) का नाम प्राचीन परम्परानुयायी विद्वानों में स्मरणीय हैं। यों प्रवर्तमान शताब्दी में शोधकारी विद्वानों में डा० पुरुषोतमलाल भार्गव (परिचय क्रमांक ८१), डा० सुधीरकुमार गुप्त (परिचय क्र० १४१) तथा श्री प्रवीणचन्द्र जैन (परिचय क्रमांक ८०) एवं इन पंक्तियों के लेखक का नाम भी अंकित किया जा सकता है।

यदि जातिगत विश्लेषण किया जाय तो उक्त शोध प्रबन्धगत १५२ विद्वानों में, जो सभी विषयों के योगदाता रहे हैं, सर्वाधिक विद्वान् "गौड़" ब्राह्मण हैं, जिनकी संख्या ३० है। क्रमानुसार दूसरे स्थान पर दाधीच या दाहिमा ब्राह्मण तथा तीसरे स्थान पर विहारी (मैथिली) विद्वानों का उल्लेख किया जा सकता है। चतुर्थ स्थान पर गुजराती विद्वान् परिगणित हैं। यद्यपि तृतीय और चतुर्थ स्थान के विद्वानों की संख्या समान ही है, फिर भी मैथिली विद्वान् रचनात्मक कार्यकर्ता के दृष्टिकोण से उल्लेखनीय रहे हैं। शेष अन्य जातीय विद्वान् अल्पसंख्यक हैं। इसका विवरण इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :—

क्रम	नाम जाति	परिचय क्रमांक	योग
१.	गौड़ (भावन, काङ्कर, चतुर्वेदी आदि)	७,२२,३५,५५,५६,६०,६४,७३,७५,७८, ८२,८३,८४,६०,६७,१०१,१०२,१०७, १०८,११०,११२,११५,११६,१२२,१२३, १३२,१३४,१४३,१४४,१५२	—३०

* इन दोनों विद्वानों के व्यक्तित्व व कृतित्व पर क्रमशः श्रीमती उषा भार्गव व श्रीमती शशि गुप्ता ने शोध प्रबन्ध प्रस्तुत कर पी–एच.डी. उपाधि प्राप्त करली है।

२.	दाधीच (दाधिमथः)	४,५,८,२१,२४,२६,३०,३३,३७,४५, (१४६),४६,४७,६३,६६,६८,६६,७०,७७, ६२,६६,१०५,११६,११७,१२७,१३०, १३१,१४६	—२७
३.	मैथिल—बिहारी (ओझा)	२,१५,३४,३६,४६,५३,५६,७१,८५,८६, ८८,६४,१०४,१०६,११४,१२१,१२४, १२५,१२६,१४७	—२०
४.	गुजराती (प्रश्नवर, भट्टमेवाड़ा, द्विवेदी, श्रीमाली)	३,१०(५४),११,१३,१६,३२,३६,४०, ४१,४३,६५,७२,७६,८६,६३,१११,१२०, १२६,१५०,१५१	—२०
५.	द्राविड़—दाक्षिणात्य	६,१२,१७,१८,२५,७६,८७,६६,११८, १२८,१३६	—११
६.	सरयूपारीण (सारस्वत पर्वतीय)	१४,१६,३१,३८,६१,६२,११३,१३५, १४०,१४५	—१०
७.	महाराष्ट्रीय (सम्राट्, धर्माधिकारी, पर्वणीकर)	२६,२८,७४,६८,१००	— ५
८.	गुर्जरगौड़	४८,५७,५८,१०६,१३३	— ५
६.	तैलंग भट्ट (गोस्वामी)	६,६१,१३७,१५३	— ४
१०.	जैन	१,४३,८०,१३४	— ४
११.	साधु	५०,१३८,१४२	— ३
१२.	खाण्डल	५१,६७,१३६	— ३
१३.	कान्यकुब्ज	६५,१०३	— २
१४.	माथुर चतुर्वेदी	२०,५२	— २
१५.	पारीक पुरोहित	२३,२७	— २
१६.	भार्गव	८१	— १
१७.	बंगाली	१४८	— १
१८.	सनाढ्य	४४	— १
१९.	गुप्त	१४१	— १
		कुल योग	१५२

इस प्रकार इस अध्याय की उपलब्धियों का संकेतात्मक विवरण प्रस्तुत किये जाने के पश्चात् तृतीय खण्ड (कृतित्व खण्ड) में केवल उन्हीं विशेष विद्वानों के रचनात्मक कार्य का विवेचन किया जायेगा, जिन्होंने काव्यसाहित्य की सर्जना की है।

सारणी

(अकारादि क्रम से संस्कृत के उल्लेखनीय विद्वान्)

क्रम	विद्वान् का नाम	वर्गीकरण	संक्षिप्त संकेत	पृष्ठ संख्या
१.	श्री इन्द्रलाल जैन शास्त्री+	ङ	साहित्यिक जैन विद्वान्	११६
२.	श्री एकनाथ ओझा+	च (अ)	संस्कृत कालेज के प्रथम प्राचार्य	११७
३.	श्री कन्हैयालाल प्रश्नवर+	च (उ)	गीतिकार एवं पुस्तकों के लिपिकार	११९
४.	श्री कन्हैयालाल न्यायाचार्य+	ङ	संस्कृत कालेज के न्याय प्राध्यापक	११९
५.	श्री कन्हैयालाल दाधीच (व्यास)+	ङ	गीतिकार, नैयायिक विद्वान्	१२२
६.	श्री कलानाथ शास्त्री	ङ, च (आ) (इ)	देवर्षि भट्ट (परिवार) वंशज	१२४
७.	श्री कल्याणदत्त शर्मा	छ	ज्योतिष यन्त्रालय के भूतपूर्व अधीक्षक	१२७
८.	श्री कल्याण वल्लभ शर्मा+	ङ, च (उ)	स्कूल विभाग में अध्यापक, संशोधक	१२८
९.	श्री काशीनाथ द्रविड+	ङ, च (अ)	दि० जैन सं० कालेज के प्रथम प्राचार्य	१२९
१०.	श्री कुन्दनराम वैद्य+	ग, च (ई)	जीवनराम वैद्य अपरपर्याय, संस्कृत कालेज के प्रथम आयुर्वेदाध्यापक	१३२
११.	श्री कृष्णराम भट्ट (वैद्य)+	क,ख,ग,ङ,च (ई)	प्रसिद्ध विद्वान् (साहित्य व आयुर्वेद)	१३४
१२.	श्री कृष्ण शास्त्री+	ङ,छ	सं० कालेज के साहित्य-प्राध्यापक	१३६
१३.	श्री कृष्णलाल शास्त्री 'कान्हजी'+	ङ	प्रसिद्ध गीतिकार व साहित्य-विद्वान्	१३८
१४.	श्री केदारनाथ ज्योतिर्विद्+	ङ,च (ई) (उ)	सं० काव्यमाला व ज्योतिष यन्त्रालय के भू० पू० अधीक्षक	१३९
१५.	श्री केदारनाथ ओझा	ङ	म०सं० कालेज के भू०पू० व्या० प्रा०	१४१
१६.	श्री केवलराम श्रीमाली+	छ	जयपुर के प्रथम पंचाङ्गकर्त्ता, ज्योतिषी	१४२
१७.	श्री गजाननः (दाक्षिणात्य)+	छ	जयपुर विलास में उल्लेख ५।६३	१४२
१८.	श्री गणेश शास्त्री गोडशे+	छ	सं० कालेज के वेद प्राध्यापक (भू०पू०)	१४३
१९.	श्री गिरिजा प्रसाद द्विवेदी+	ङ,च, (ई) (उ)	स० कालेज के भू०पू० ज्योतिष-व्या०	१४४
२०.	श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी	क,ख,ग,ङ,च, (अ) (आ)(इ)(ई)(उ)	भारत प्रसिद्ध विद्वान् सं० रत्नाकर के प्रकाशक, सं० सम्मेलन के संस्थापक	१४६
२१.	श्री गिरिराज शास्त्री	ङ	'भारती' के प्रबन्ध सम्पादक	१५६
२२.	श्री गोकुल चन्द्र भावन+	छ	ज्योतिष यन्त्रालय के सुधारक	१५८
२३.	श्री गोपालनारायण बहुरा	ङ	पौथीखाना के वर्तमान अधीक्षक	१५९
२४.	श्री गोपीनाथ शास्त्री दाधीच+	क,ख,ग,ङ,च (ई)	सं० कालेज के साहित्य-व्याख्याता	१६१
२५.	श्री गोपीनाथ शास्त्री द्राविड+	ङ	राजगुरु, श्रीजी की मोरी में निवास	१६४
२६.	श्री गोपीनाथ शास्त्री धर्माधिकारी+	ङ	श्रीधर पाठशाला ब्रह्मपुरी के संस्थापक	१६६
२७.	श्री गोपीनाथ पुरोहित+	छ	संस्कृत के उन्नायक	१६८
२८.	श्री गोपीनाथ सम्राट्+	छ	सम्राट् वंशज विद्वान्	१६८
२९.	श्री गोविन्दनारायण शास्त्री	ङ,च (अ)	सं० कालेज के निवर्तमान प्राचार्य	१६९
३०	श्री गोविन्दप्रसाद दाधीच	ङ,च (आ)	'कल्याणी' के सम्पादक, नाटक-लेखक	१७१

३१.	श्री गंगाधर द्विवेदी	ङ	सं० कालेज के साहित्य-प्राध्यापक	१७३
३२.	श्री गंगाधर भट्ट	ङ	भट्ट-मेवाडा जातीय, आयु० विद्वान्	१७५
३३.	श्री गंगावल्लभः⁻	छ	जयपुर विलास (५।५१) में उल्लेख	१७६
३४.	श्री घूटर झा+	ङ,च(अ)	सं० कालेज के प्राचार्य (अल्पकालीन)	१७७
३५.	श्री चन्दनदास साधु+	छ	दादूपन्थी, छन्दःशास्त्र के विद्वान्	१७८
३६.	श्री चन्द्रदत्त ओझा+	ङ,छ	राजगुरु, सं०का० के व्या० प्राध्यापक	१७९
३७.	श्री चन्द्रदत्त दाधीच (नामावाल)+	छ	सं० का० के प्राध्यापक	१८४
३८.	श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी+	ङ,छ	प्रसिद्ध हिन्दी कहानी लेखक, विद्वान्	१८५
३९.	श्री चन्द्रशेखर शास्त्री प्रश्नधर+	छ	सं० का० के व्याकरण प्राध्यापक	१८८
४०.	श्री चन्द्रशेखर द्विवेदी	ङ,च(अ)	सं० का० के प्राचार्य, शंकराचार्य(पुरी)	१८८
४१.	श्री चिरंजीलाल ऋग्वेदी+	छ	सं० का० के ऋग्वेदाध्यापक	१९०
४२.	श्री चुन्नीलाल अथर्ववेदी+	छ	सं० का० के अथर्ववेदाध्यापक	१९०
४३.	श्री चैनसुख दास न्यायतीर्थ+	क,च (अ)	दि०जै०सं० कालेज के प्राचार्य	१९२
४४.	श्री छगनाजी+	छ	जयपुर विलास (५।६९) में उल्लेख	१९३
४५.	श्री छोटेलालजी नामावाल+	छ	श्री हरगोविन्द नामावाल के नाम से विख्यात, राजगुरु, कथाभट्ट	१९४
४६.	श्री जगदीश शर्मा	छ	सं० का० के भू०पू० साहित्य-प्राध्यापक	१९८
४७.	श्री जगदीश चन्द्र कथाभट्ट	ङ,छ	सं० का० के साहित्य-व्याख्याता	१९९
४८.	श्री जगन्नाथ+	छ	जयपुर विलास (५।५२) में उल्लेख	१९९
४९.	श्री जयचन्द्र झा+	ङ,छ	सं० कालेज, के सामवेदाध्यापक	२००
५०.	श्री जयरामदास स्वामी+	ङ,च (अ)(ई)	आयुर्वेद कालेज के प्राचार्य	२०२
५१.	श्री जानकीलाल खाण्डल+	छ	सं० का० (स्कूल विभाग) अध्यापक	२०४
५२.	श्री जानकीलाल चतुर्वेदी+	क,घ,छ	जयपुर विलास (५।४८) में उल्लेख	२०५
५३.	श्री जीवनाथ ओझा+	घ,छ	जयपुर विलास (५।२८,२९) में उल्लेख	२०५
५४.	श्री जीवनराम वैद्य+	ग,छ	श्री कुन्दनराम से अभिन्न	२०८
५५.	श्री दयाराम शास्त्री+	ङ,च(अ)	दादू महाविद्यालय के वर्त० प्राचार्य	२०९
५६.	श्री दामोदर शास्त्री+	ङ,छ	दि० जै० सं० कालेज में प्राध्यापक	२१०
५७.	श्री दीनानाथ त्रिवेदी	ङ,च (आ)	'भारती' के सह-सम्पादक	२११
५८.	श्री दुर्गादत्त ज्योतिषी+	छ	सं० का० में ज्योतिष व्याख्याता	२१४
५९.	श्री दुर्गादत्त झा मैथिल+	ङ,च(आ)	सं० का० के व्याकरण प्राध्यापक	२१४
६०.	श्री दुर्गादत्त शर्मा	ङ	साहित्य के विद्वान्	२१६
६१.	श्री दुर्गाप्रसाद शास्त्री+	च (उ) छ	काव्यमाला के सम्पादक	२१७
६२.	श्री दुर्गाप्रसाद द्विवेदी+	क,ख,ग,ङ,च,(अ) (ई)(उ)	सं० का० के प्राचार्य, महामहोपाध्याय	२२०
६३.	श्री दुर्गाप्रसाद नांगल्या+	च(अ)	दि० जै० आ० सं० कालेज के प्राचार्य	२२४
६४.	श्री दुर्गाप्रसाद वैद्य+	छ	प्रसिद्ध आयुर्वेद विद्वान्	२२४
६५.	श्री देवेन्द्र भट्ट	च (ई) छ	भट्ट-मेवाडा जातीय, वैद्य	२२५

६६.	श्री धन्नालाल कथाभट्ट+	ङ	नामावाल परिवार	२२६
६७.	श्री नन्दकिशोर खाण्डल:+	ङ,च(अ)(आ)	आयुर्वेद विभाग के प्र० निदेशक	२२७
६८.	श्री नन्दकिशोर नामावाल:+	क,ग,ङ,च(उ)	राजगुरु, कथाभट्ट वंशज	२२९
६९.	श्री नन्दकिशोर नैयायिक:+	छ	सं० कालेज के न्याय प्राध्यापक	२३२
७०.	श्री नन्दकुमार नामावाल+	ङ	कथाभट्ट वंशज, सं० का० व्याख्याता	२३२
७१.	श्री नरहरि ओझा+	छ	राजगुरु, सं० का० व्याकरण प्राध्यापक	२३४
७२.	श्री नरहरि भट्ट+	छ	भट्टमेवाडा जातीय, आयु० व्याख्याता	२३५
७३.	श्री नवलकिशोर कांकर	ङ	पारीक कालेज में संस्कृत प्राध्यापक	२३६
७४.	श्री नारायण भट्ट पर्वणीकर+	क,ग,ङ,च(ई)	राजगुरु, पर्वणीकर वंशज	२३९
७५.	श्री नारायण शास्त्री कांकर	ङ,च(इ)	सं० वाग्विवर्द्धिनी के संचालक	२४३
७६.	श्री पट्टाभिराम शास्त्री	क,ङ,च(अ)	सं० कालेज के भू० पू० प्राचार्य	२४५
७७.	श्री परमानन्द शास्त्री+	ङ,च	संस्कृत के विद्वान्	२४६
७८.	श्री परमसुख शास्त्री+	ग,घ	प्रेमानन्द, प्रेमसुख अपरपर्याय, जयपुर विलास ५।५५ में उल्लेख	२४८
७९.	श्री प्रभाकर शास्त्री	ग,ङ,च(ई)	प्रस्तुत शोध ग्रन्थ लेखक	२४९
८०,	श्री प्रवीणचन्द्र जैन	च(अ)छ	म० कालेज में संस्कृत प्राध्यापक	२५१
८१.	श्री पुरुषोत्तमलाल भार्गव	ङ,च(अ)	राज० विश्व० संस्कृत विभागाध्यक्ष	२५२
८२.	श्री बदरीनाथ शास्त्री+	ङ,छ	प्राच्यविद्या-विभाग के सं० प्रा०, लखनऊ	२५४
८३,	श्री बालचन्द्र शास्त्री+	च(आ)छ	सं० रत्नाकर के प्र० मुद्रक, विद्वान्	२५५
८४.	श्री ब्रह्मचारी+	छ	जयपुर विलास (५।३०) में उल्लेख	२५७
८५.	श्री भवदत्त शास्त्री+	ङ	राजगुरु, ओझा वंशज	२५८
८६.	श्री भाईनाथ ओझा+	छ	सं० कालेज के न्यायप्राध्यापक	२६०
८७.	श्री भास्कर+	छ	जयपुर विलास (५।६७) में उल्लेख	२६१
८८.	श्री भैयाजी ओझा+	छ	सं० कालेज में ज्योतिषाध्यक्ष	२६२
८९.	श्री मगनीराम श्रीमाली+	क,छ	सं० कालेज में वेदाध्यापक	२६२
९०.	श्री (डा०) मण्डन मिश्र शास्त्री	ङ,च(आ)(ई)	सं० सम्मेलन के भूतपूर्व महामन्त्री	२६३
९१.	श्री मथुरानाथ शास्त्री भट्ट+	क,ख,ग,ङ,च,(आ)(इ)(ई)(उ)	सं० कालेज के साहित्य-प्राध्यापक सं० रत्नाकर के सम्पादक, विद्वान्	२६५
९२.	श्री मथुरानाथ व्यास+	छ	कथाव्यास परिवारीय विद्वान्	२७१
९३.	श्री मदनलाल प्रश्नवर+	ङ,छ	सं० कालेज में धर्मशास्त्र के प्राध्यापक	२७२
९४.	श्री मधुसूदन ओझा+	क,ख,ग,ङ,च(ई)छ	वैदिक विज्ञान के उद्भट विद्वान्	२७४
९५.	श्री मनोहर शुक्ल+	छ	कवीश्वर वंशज विद्वान्	२८३
९६.	श्री माधवकृष्ण शर्मा+	ङ,च(अ)	भू०पू० निदेशक, सं० शिक्षा, राज०	२८४
९७.	श्री माधव प्रसाद शास्त्री+	ङ,च(अ)	महिला संस्कृत विद्यालय के प्रवर्तक	२८४
९८.	श्री माधवराम भट्ट पर्वणीकर	च(ई)	पर्वणीकर वंशज	२८६
९९.	श्री मांगीलाल वैदिक+	छ	जयपुर विलास (५।५८) में उल्लेख	२८६
१००.	श्री मुकुन्दराम भट्ट पर्वणीकर+	ङ,च(अ)(ई)	माधव विद्यालय के संस्थापक	२८७

१०१. श्री मुरारि+	छ	जयपुर विलास (५।६६) में उल्लेख	२८८
१०२. श्री मोतीलाल शास्त्री+	ङ,च(इ)(ई),छ	वैदिक विज्ञान के प्रसारक, दुर्गापुरा	२८९
१०३. श्री रघुनाथ कान्यकुब्ज+	छ	जयपुर विलास (५।५७) में उल्लेख	२९२
१०४. श्री रघुवर धर्मशास्त्री+	छ	जयपुर विलास (५।५४) में उल्लेख	२९३
१०५. श्री रामकिशोर शर्मा+	ग,छ	नाटककार, दाधीच-वंशज	२९४
१०६. श्री राजीवलोचन ओझा+	घ,छ	श्री मधुसूदन ओझा के चाचा	२९५
१०७. श्री रामकृष्ण चतुर्वेदी+	छ	प्रसिद्ध वैदिक विद्वान्, जयपुर के ब्रह्मा	२९६
१०८. श्री रामगोपाल शास्त्री	ङ	म० सं० का० में धर्मशास्त्र-व्याख्याता	२९७
१०९. श्री रामचन्द्रः+	छ	म० सं० का० में गणिताध्यापक	३००
११०. श्री रामचन्द्र गौड	ङ	म० सं० का० के भूतपूर्व व्याख्याता	३००
१११. श्री रामचन्द्र भट्ट+	ग	अलवर सं० का० के अध्यापक, ब्रह्मपुरी–निवासी	३०२
११२. श्री रामनारायण चतुर्वेदी	ङ	म० सं० का० में वेद-प्राध्यापक	३०३
११३. श्री रामभज सारस्वत+	च(अ),छ	म० सं० का० के पुरातन प्राचार्य	३०४
११४. श्री रामभद्र मैथिल+	ङ	पं० मधुसूदन झा के श्यालक	३०५
११५. श्री रामप्रपन्न शर्मा	ङ	विद्वान्	३०५
११६. श्री रामेश्वर प्रसाद शास्त्री+	ङ	म० सं० का० के व्याकरण व्याख्याता	३०६
११७. श्री लक्ष्मीनाथ शास्त्री+	च(ई)	म० सं० कालेज में अध्यापक	२०६
११८. श्री लक्ष्मीनाथ द्राविड+	क,च(अ)	म० सं० कालेज के भूतपूर्व आचार्य	३०९
११९. श्री लक्ष्मीनाथ वैद्य+	ङ,च(ई),छ	म० सं० का० में आयुर्वेद प्राध्यापक	३११
१२०. श्री लल्लूराम ज्योतिषी+	छ	प्रसिद्ध ज्योतिषी, विद्वान्	३१५
१२१. श्री वसन्त झा+	छ	म० सं० कालेज के न्याय-व्याख्याता	३१६
१२२. श्री विजयचन्द्र पंडित+	ङ,छ	नौवल्स स्कूल में संस्कृत पंडित	३१६
१२३. श्री विजयचन्द्र चतुर्वेदी+	ङ,छ	म० सं० कालेज में वेद प्राध्यापक	३१७
१२४. श्री विन्ध्याचल प्रसाद पाण्डेय+	छ	म० सं० कालेज में ज्योतिष प्राध्यापक	३१८
१२५. श्री विद्यानाथ ओझा	च(आ)	प्रसिद्ध राजगुरु, बड़े ओझाजी	३१९
१२६. श्री विश्वनाथ शास्त्री+	छ	जयपुर विलास (५।४२) में उल्लेख	३२२
१२७. श्री विहारीलाल शास्त्री+	ग,ङ,छ	म० सं० कालेज में साहित्य-प्राध्यापक	३२३
१२८. श्री वीरेश्वर शास्त्री द्राविड+	घ,च(ई)छ	महाराज कालेज में संस्कृत प्राध्यापक	३२५
१२९. श्री वृद्धिचन्द्र शास्त्री+	ङ,च(आ)(ई)	म० सं० का० में धर्मशास्त्र प्राध्यापक	३२८
१३०. श्री वृन्दावन कथाभट्ट+	छ	कथाभट्ट वंशज, पुरातन विद्वान्	३३३
१३१. श्री शिवदत्त शास्त्री दाधिमथः+	क,ख,ङ	महामहोपाध्याय, ओरियन्टल कालेज लाहौर में संस्कृत प्राध्यापक	३३३
१३२. श्री शिवदत्त वैदिक	च(आ)	वैदिक सं० प्र० संघ के निदेशक	३३८
१३३. श्री शिवप्रताप शर्मा	छ	म० सं० का० के वेद-प्राध्यापक(भूतपूर्व)	३३८
१३४. श्री शिवप्रसाद शर्मा+	छ	जयपुर विलास (५।६१) में उल्लेख	३३९
१३५. श्री शिवराम गुलेरी+	छ	जयपुर विलास (५।४३) में उल्लेख	३४०

वर्गीकरण संकेत

क	प्रकाशित उपलब्ध साहित्य
ख	प्रकाशित अनुपलब्ध साहित्य
ग	अप्रकाशित उपलब्ध साहित्य
घ	अप्रकाशित अनुपलब्ध साहित्य
ङ	पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कवितायें, लेख आदि
च (अ)	विद्यालय के प्राचार्य एवं संस्थापक
च (आ)	पत्रिका के सम्पादक या प्रकाशक
च (इ)	संस्था के प्रवर्तक या अध्यक्ष
च (ई)	पुस्तकालय के संरक्षक
च (उ)	पुस्तकों के लिपिकार या सम्पादक

\+ इस चिह्न से अंकित विद्वान् 'दिवंगत' हो चुके हैं। अतः केवल स्मरणीय हैं।